इलाहाबाद विश्वविद्यालय

के

वाणिज्य एवं व्यवसायिक प्रशासन विभाग में

डी० फिल० उपाधि हेतु

शोध प्रबन्ध

उत्तर प्रदेश में कृषि विपणन की स्थिति और सम्भावनाएं

शोधकर्ता

राकेश कुमार

निर्देशक

डॉ0 हरेन्द्र कुमार सिंह

वाणिज्य एवं व्यवसायिक प्रशासन विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

2002

प्रमाण-पत्र

मुझे यह प्रमाणित करते हुए असाधारण हर्ष का अनुभव हो रहा है कि **श्री राकेश कुमार** ने मेरे निर्देशन मे **"उत्तर प्रदेश में कृषि विपणन की स्थिति और सम्भावनाएँ"** विषय मे **डी०फिल० उपाधि** हेतु प्रस्तुत शोध लिपिवद्ध किया है। आप **इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद** के नियमानुसार निर्धारित समय से अधिक दिन तक मेरे सानिध्य मे उपस्थित रहे है।

इनका यह शोध प्रबन्ध एक मौलिक प्रयास है। मै इनके कार्य से अत्यधिक सन्तुष्ट हूँ। मै इन्हे इस शोध प्रबन्ध को विश्वविद्यालय मे प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान करता हूँ।

निर्देशक

डॉ० हरेन्द्र कुमार सिंह
वाणिज्य एव व्यवसायिक प्रशासन विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

दिनांक

प्राक्कथन

भारत वर्ष मे कृषि मात्र जीविकोपार्जन का साधन न हो करके अर्थव्यवस्था का मेरूदण्ड भी है। राष्ट्र का व्यापार, विदेशी मुद्रा अर्जन, रोजगार स्तर, राष्ट्रीय आय और राजनैतिक स्थायित्व कृषि पर ही निर्भर है आज मानव की बढ़ती हुई आवश्यकताओ के साथ ही साथ कृषक को भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कुछ ऐसी फसलो की खेती करना आवश्यक हो गया है जिसकी बिक्री करके वह कुछ नकदी प्राप्त कर सके। इस प्रकार आज के युग मे जबकि स्वाबलम्बी अर्थव्यवस्था का लोप हो चुका है और उत्पादन अन्तर्राष्ट्रीय भागो को दृष्टिकोण मे रखकर किया जाने लगा है तब कृषि विपणन का अर्थव्यवस्था मे विशेष स्थान हो गया है। आज की आर्थिक व्यवस्था मे उत्पादन यदि एक पहलू है तो विपणन दूसरा पहलू और व्यावसायिक फसलो के उत्पादन मे तो मुख्य उद्देश्य बाजार ही होता है।

भारत वर्ष मे कृषि विपणन से आशय केवल कृषि पदार्थो के क्रय एव विक्रय से नहीं है बल्कि कृषि विपणन से आशय उन समस्त क्रियाओ से होता है जिनका सम्बन्ध कृषि उत्पादन को किसान के यहाँ से अतिम उपभोक्ता तक पहुँचाना है। इन क्रियाओं मे सम्मिलित है शारीरिक क्रियाएँ, मानसिक क्रियाएँ एव सेवा सम्बन्धी क्रियाएँ। इस तरह की अनेक क्रियाएँ कृषि पदार्थो के उत्पादन एव विक्रय के बीच सम्पन्न होती है ।

उत्पादक की सफलता केवल उत्पादन पर ही अवलम्बित नहीं है, क्योकि यदि उत्पादक की गाढी मेहनत से तैयार किए गए माल को उचित ढग से न बेचा गया तो हो सकता है कि एक उत्पादक को अपने माल के बदले मे उचित कीमत न मिल सके और उसका लाभ कुछ ऐसी दूसरी जेबो मे चला जाय जो किसान को विपणन कमजोरियो का लाभ उठाने से न चूके। उपज की उचित कीमत उपभोक्ता द्वारा दी जाने पर भी उसका एक बड़ा भाग मध्यस्थों द्वारा हडप लिया जाता है। जिससे उत्पादक को प्राप्त कीमत और उपभोक्ता द्वारा दी गयी कीमत मे पर्याप्त अन्तर आ जाता है। अतएव आधुनिक युग मे उत्पादक और उपभोक्ता दोनों के

हित के लिए यह आवश्यक हो गया है कि देश भर मे कृषि विपणन के कार्यो को समुचित रूप से व्यवस्थित किया जाय।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे **"उत्तर प्रदेश में कृषि विपणन की स्थिति और सम्भावनाएँ"** का एक व्यवस्थित विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इसमे कृषि विपणन की आवधारणा एव प्रबधकीय पहलुओ एव उत्पादन से लेकर उपभोक्ता तक की भूमिका का परीक्षण किया गया है। जिनके द्वारा विपणन सदेश जन-साधारण तक पहुँचाए जाते है उन्हे विपणन प्रक्रिया कहते हैं। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे कृषि विपणन के विभिन्न माध्यमो का व्यवस्थित विश्लेषण किया गया है तथा व्यावसायिक विपणन को नियत्रित करने हेतु सरकार द्वारा जो आचार सहिता बनायी गयी है एव इसके आर्थिक सामाजिक, नैतिक एव व्यावहारिक पहलूओ पर भी आलोचनात्मक प्रकाश डाला गया है।

समस्त विपणन क्रियाओ का केन्द्र बिन्दु वस्तु होती है एव बिना वस्तु के कोई विपणन क्रिया नहीं हो सकती है। उत्पादन, उत्पाद, उपभोक्ता आदि सभी वस्तुओ पर ही निर्भर है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे कृषि उत्पाद को उपभोक्ता तक पहुँचाने के सभी खर्चो का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। कृषि विपणन पर जो व्यय किया गया इसका प्रभाव किसान पर पड़ा कि नही और पडा तो कितना इस तथ्य का विश्लेषण करने एव मूल्याकन की विभिन्न विधियो को स्पष्ट करते हुए इसके व्यावहारिक पक्ष पर भी प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को अधिक महत्वपूर्ण तथा विश्वसनीय बनाने के दृष्टिकोण से प्राथमिक ऑकड़ो का एकत्रीकरण एव साख्यिकीय विश्लेषण तालिका के द्वारा, प्रतिशत विधि, दण्ड चित्रो आदि के द्वारा किया गया है। जिनसे कि यह स्पष्ट हो सके कि इन सभी प्रक्रियाओ से प्रभावित होकर उपभोक्ता वस्तुओ को खरीदने हेतु प्रेरित होता है। इसी समस्या को ध्यान मे रखकर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध **"उत्तर प्रदेश में कृषि विपणन की स्थिति और सम्भावनाएँ"** आप के समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की पूर्णता हेतु मैं अपने **शोध निर्देशक डॉ0 हरेन्द्र कुमार सिंह** के प्रति विशेष आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होने विभिन्न स्तरो पर शोध प्रबन्ध की मौलिकता एव गुणवत्ता बनाने हेतु आवश्यक मार्ग दर्शन किया। वास्तव मे मैं उनके ही प्रोत्साहन एव दिशा निर्देश के कारण इस शोध प्रबन्ध

को पूरा करने मे सफल हुआ हूँ। मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वाणिज्य एव व्यवसायिक प्रशासन विभाग के **अध्यक्ष प्रो0 के0 एम0 शर्मा** के प्रति भी हृदय से आभारी हूँ, जिन्होने मेरे शोध प्रबन्ध के पूरा होने और समय के अन्दर प्रस्तुत करने मे विशेष सहयोग प्रदान किया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वाणिज्य एव व्यवसायिक प्रशासन विभाग के **अधिष्ठाता प्रो0 पी0 एन0 मेहरोत्रा** मेरे शोध कार्य के दौरान सदैव प्रेरणास्रोत रहे हैं जिनके प्रति आभार ज्ञापन हेतु मेरे पास शब्दाभाव है।

मैं अपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के परमश्रद्धेय गुरूजनो विशेषतया **प्रो0 राजशेखर, प्रो0 रमेन्द्रु राय, प्रो0 एस0 ए0 अंसारी,** आदि के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होने मुझे प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से सदैव उत्साहित किया। मैं डॉ० दिनेश कुमार रीडर वाणिज्य सकाय इलाहाबाद डिग्री कालेज इलाहाबाद के प्रति भी हृदय से आभारी हूँ, जिनके मूल्यवान सुझाव से मैं लाभान्वित हुआ। मैं डॉ० मीरा सिह प्रवक्ता वाणिज्य संकाय, चौधरी महादेव प्रसाद डिग्री कालेज इलाहाबाद के प्रति भी आभारी हूँ जिन्होंने शोध प्रबन्ध हेतु समय-समय पर आवश्यक सुझाव दिया।
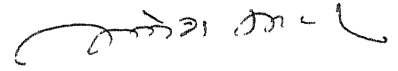
मैं अपने परिजनो विशेष रूप से अपने **पूज्य पिता जी श्री परमानन्द सिंह एव पूज्यनीया माता जी श्रीमती पार्वती सिंह** का विशेष आभारी हूँ जिन्होने मुझे इस योग्य बनाया है और जिनके आर्शीवाद से यह कार्य पूरा हुआ। मैं अपने **अग्रज श्री राजेश कुमार सिंह एव अनुज श्री ब्रजेश कुमार सिंह एवं श्री रवि कुमार सिंह** को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने सदैव इस कार्य हेतु प्रोत्साहित किया है तथा समय समय पर महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया है।

इस शोध प्रबन्ध को पूरा करने मे निदेशक गन्ना मंत्रालय लखनऊ के प्रति भी मैं आभारी हूँ जहाँ से शोध विषय से सम्बन्धित महत्वपूर्ण साहित्य एव ऑकड़ो को एकत्रित करने मे सहायता मिली। मैं निदेशक तिलहन मत्रालय लखनऊ का भी आभारी हूँ जिनका निरतर सहयोग मिलता रहा। इनके अतिरिक्त मुझे जिन सहयोगियो एव मित्रो से सहायता प्राप्त हुई है। उनमे श्री जटाशकर तिवारी, श्री विजय तीर्थ सिंह, श्री मोहन सिह, कु० अनुय्या सुरेश, श्री मुश्ताक अहमद (समाज कल्याण अधिकारी, गाजीपुर), श्री राजकुमार सिह

(उपनिरीक्षक पुलिस, गोरखपुर), श्री थॉमस एस० ई०, श्री जीतेन्द्र सिह, श्री राम कृष्ण सिह, श्री विवेक कुमार, श्री प्रभुनाथ प्रसाद को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिन्होने मुझे समय-समय पर पूर्ण सहयोग प्रदान किया है।

अन्त मे मैं अपने गुरू भाई डॉ० रामकरन वाणिज्य प्रवक्ता, मदनमोहन मालवीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कालाकाकर (प्रतापगढ) का धन्यवाद ज्ञापन जरूर करना चाहूँगा जो प्रतिपल मुझे अभिप्रेरित करते रहे। इसके अतिरिक्त मैं अपने शोध ग्रन्थ के मुद्रण हेतु कम्प्यूटर आपरेटर श्री देवेन्द्र त्रिपाठी को भी हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिनकी तत्परता तथा अदम्य उत्साह के अभाव मे शोध ग्रन्थ समय से मुद्रित नहीं हो पाता।

शोधकर्ता

(राकेश कुमार)

(एम०काम०, डी०ए०सी०)
वाणिज्य एव व्यवसायिक प्रशासन विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

दिनाक – २४ जुलाई, गुरू पुर्णीमा, २००२
इलाहाबाद।

विषय-सूची

अध्याय		पृष्ट संख्या

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना एवं अवधारणात्मक समीक्षा

भारत वर्ष मे कृषि मात्र जीविकोपार्जन का साधन न हो करके अर्थव्यवस्था का मेरूदण्ड भी है। राष्ट्र का व्यापार, विदेशी मुद्रा अर्जन, रोजगार स्तर, राष्ट्रीय आय और राजनैतिक स्थायित्व कृषि पर ही निर्भर है। जनसख्या का दो तिहाई भाग प्रत्यक्ष जीविकोपार्जन हेतु कृषि पर आधारित है, और राष्ट्रीय आय मे कृषि का योगदान लगभग ३० २५ प्रतिशत है।[1] राष्ट्र के निर्यात मे कृषि का योगदान २५ प्रतिशत है, फिर भी कृषि के क्षेत्र मे अभी और उन्नयन की सम्भावना है। कृषि क्षेत्र के दो अपरिहार्य अग है, उत्पादन और विपणन। भारत वर्ष मे हरित क्राति के बाद उत्पादन क्षेत्र मे तो बेहतरी आई है किन्तु विपणन क्षेत्र मे सुधार की अपार सम्भावनाएँ है। उत्पादक की सफलता केवल उत्पादन पर ही लम्बित नहीं होना चाहिए, क्योकि उत्पादक के द्वारा की गई गाढी मेहनत से तैयार किए गए माल को उचित ढग से न बेचा गया, तो हो सकता है कि एक उत्पादक को अपने माल के बदले मे उचित कीमत न मिल सके और उसका लाभ कुछ ऐसे व्यक्तियो के जेबो मे चला जाय जो किसान की विपणन कमजोरियो का फायदा उठाना चाहते हो। कृषि उपज की उचित कीमत उपभोक्ता द्वारा की जाने के बाद भी उसका एक बडा भाग मध्यस्थो के द्वारा अपने पास रख लिया जाता है, जिससे उत्पादक को प्राप्त कीमत और उपभोक्ता द्वारा दी गयी कीमत मे काफी अधिक अतर आ जाता है। अत आधुनिक युग मे उत्पादक एव उपभोक्ता दोनो के फायदा के लिए यह आवश्यक है कि देशभर मे कृषि विपणन के कार्यो को उचित रूप से व्यवस्थित किया जाये।

कृषि विपणन :- भारत वर्ष में विपणन से आशय केवल कृषि पदार्थों के क्रय विक्रय से नहीं हैं बल्कि कृषि विपणन से आशय उन समस्त क्रियाओ से होता है जिनका सम्बन्ध कृषि उत्पादन को किसान के यहाँ से

---

[1] जैन आर० सी० भारत मे सहकारी विपणन की सम्भावनाए, प्रतियोगिता दर्पण, आगरा, मई १९९९ ।

अतिम उपभोक्ता तक पहुँचाना है। इन क्रियाओ मे सम्मिलित है शारीरिक क्रियाएँ, मानसिक क्रियाएँ एव सेवा सम्बन्धी क्रियाएँ । इस तरह के अनेक क्रियाएँ कृषि पदार्थो के उत्पादन एव विक्रय के बीच सम्पन्न होती है।

१ जनवरी १९४८ से ही विश्व व्यापार पर से सीमा शुल्क कम करने तथा विदेशी व्यापार प्रोत्साहन हेतु दुनिया के देशो से अच्छा सम्बन्ध पालन कराने की दिशा मे सामान्य समझौता किया जा रहा है। सस्थापक सदस्य के रूप मे भारत भी इस सस्था मे शामिल है। उरूग्वे दौर गैट समझौता के अतर्गत खास तौर पर चर्चित रहा है। इस दौर मे कृषि एव सेवा क्षेत्र को भी सम्मिलित किया गया है। जिसका आगे चलकर विकसित व कुछ अर्द्ध विकसित देशो ने विरोध किया । इसलिए उसके दौर को आसानी से अतिम रूप दिया जाना सभव नहीं हो पाया था। उस समय गैट के **महानिदेशक आर्थर डंकल** थे । इनको कुछ परिवर्तन एव सशोधन करके ऐसा प्रस्ताव लाने को कहा गया जो सबको मजूर हो। **आर्थर डंकल ने 20 दिसम्बर** 1991 को लगभग पॉच सौ पृष्ठो का एक प्रस्ताव रखा जिसे डकल प्रस्ताव के नाम से जाना जाता है। डकल प्रस्ताव पर १९९३ मे जेनेवा मे गैट के सभी सदस्य राष्ट्रो ने अपनी सहमति प्रदान कर दी और 1994 **में मोरक्को** के मराकेश नगर में औपचारिक रूप से हस्ताक्षर कर दिए।[2]

कृषि विपणन की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं जो उसकी विपणन सम्बन्धी कियाएँ को प्रभावित करती है। कृषि विपणन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता कृषि उपजो को विपणन केन्द्रो पर एकत्रित करने से है, क्योकि एक ओर तो कृषि उपज निम्न स्तर पर होती है और सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्र मे फैली रहती है तथा दूसरी ओर अन्तिम उपभोक्ताओ की अधिकाश सख्या कृषि क्षेत्रो से दूर नगरो मे स्थित हैं। भारत मे कृषि उपजो की मौसमी प्रकृति होती है तथा इनके आकार एव गुणो मे विभिन्नता पाई जाती है। हमारे देश के कृषक विपणन पद्धतियो तथा बाजार की दशाओ से पूर्ण रूप से अनभिज्ञ होते हैं। इतना ही नहीं यहाँ तक कि उपभोक्ताओ को किस किस्म की कृषि पदार्थो की आवश्यकता है इसकी भी जानकारी का अभाव किसानो मे पाया जाता है। जोतो का आकार छोटा एव बिखरे होने के कारण विपणन क्रिया मे काफी परेशानी होती है। इसलिए हमारे देश के किसान विपणन के प्रति तटस्थ रहता है।

---

[2] सिह गजेन्द्र पाल, भारतीय कृषि एवं गैट समझौता, पृष्ठ स० ६०९ प्रतियोगिता दर्पण, आगरा, नवम्बर १९९४ ।

भारतीय किसान को सबसे पहला ज्ञान उत्पादन के आवश्यक तत्वो के बारे मे जानकारी एवं प्रयोग करने की विधि एव उसके लाभो के बारे मे देना आवश्यक है । कृषि विपणन का कार्य क्षेत्र बहुत विस्तृत है इसीलिए हम विपणन को कृषि अर्थव्यवस्था की नींव कहते है । प्रभावशाली विपणन कृषि उत्पादो का उचित मूल्य निर्धारित कराकर किसानो को और अधिक उत्पादन करने के लिए उत्साहित करता है।

अध्ययनार्थ चुनी गयी फसलें :- अध्ययनार्थ उत्तर प्रदेश की वणिज्यिक फसलों मे गन्ना, तिलहन का चुनाव किया गया है। इन फसलो को पैदा करके किसान इनका पूर्णरूप से उपयोग नहीं कर पाता है बल्कि इनको बेचकर अन्य आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए धन कमाता है। अधिकतर भारतीय किसान अत्यत दरिद्रता का जीवन जी रहे हैं, अत किसान को अपनी आर्थिक दशा को सुधारने हेतु नकदी रूपयो की आवश्यकता हैं। इसलिए वाणिज्यिक फसलो की आवश्यकता आज काफी बढ गयी है और इस प्रकार की फसलो की खेती आज के किसान के लिए अत्यत आवश्यक एव अनिवार्य हो गयी है।

अध्ययन हेतु चुनी गयी फसलो का प्रदेश की अर्थव्यवस्था मे महत्वपूर्ण योगदान है। उत्तर प्रदेश की अर्थव्यवस्था मे इन फसलो की स्थिति एव महत्व की विवेचना हम क्रमश· निम्न मे प्रस्तुत कर रहे हैं -

1. गन्ना :- गन्ना उत्तर प्रदेश की एक महत्वपूर्ण नकदी व औद्योगिक फसल है। उत्तर प्रदेश मे उत्पादन की दृष्टि से गन्ना का प्रथम स्थान है। भारत मे गन्ना का क्षेत्रफल विश्व के गन्ना क्षेत्रफल का २४ प्रतिशत हैं। भारतवर्ष के कुल गन्ना क्षेत्रफल का ५२ प्रतिशत भाग और कुल गन्ना उत्पादन का ४२ प्रतिशत भाग अकेले उत्तरप्रदेश मे होता है।[3] देश की कुल ३६० चीनी मिलो मे से उत्तर प्रदेश मे सबसे अधिक ९९ चीनी मिले स्थित है। उत्तर प्रदेश की औसत गन्ना उपज ४२० कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। देश के कुल चीनी उत्पादन का २५ प्रतिशत भाग अकेले उत्तर प्रदेश मे उत्पादित होता है।[4]

अत पूरे भारत मे गन्ना एव चीनी उत्पादन में प्रथम स्थान उत्तर प्रदेश का है, इसके बाद महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, हरियाणा आदि राज्यों का स्थान है। यही नहीं गुड़ और खाण्डसारी के उत्पादन मे भी उत्तर प्रदेश का देश के कुल उत्पादन मे प्रथम स्थान है। देश के कुल गुड और खाण्डसारी

---

[3] सिह अशोक कुमार, भारत मे कृषि विपणन, पृष्ठ संख्या २ ।

[4] "गन्ना" मासिक जुलाई १९८२, पृष्ठ सख्या ३ ।

का लगभग ५० प्रतिशत उत्पादन उत्तर प्रदेश में होता है। इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के ३० लाख से भी अधिक गन्ना किसान और चीनी मिलो एव खाण्डसारी उद्योग मे लगे हुए लाखों मजदूरो के परिवारो का भरण पोषण भी गन्ने की खेती पर निर्भर करता है।[5] इस प्रकार स्पष्ट है कि गन्ना प्रदेश की एक प्रमुख वाणिज्यिक /औद्योगिक फसल है।

हाल के वर्षो मे उत्तर प्रदेश मे गन्ना उत्पादन वृद्धि के अपेक्षा चीनी उत्पादन क्षमता मे वृद्धि न होने के कारण इस प्रदेश मे गुड तथा खाण्डसारी उत्पादन मे अधिक वृद्धि हुई है, जिसका प्रभाव यह हुआ है कि इन उद्योगो से प्रतियोगिता बढ़ने के कारण चीनी मिलो के उत्पादन मे उतार-चढ़ाव के क्रम मे वृद्धि हुई है।

उत्तर प्रदेश मे गन्ने का प्रयोग मुख्य रूप से चीनी, खाण्डसारी और गुड के निर्माण मे होता है। अत इससे स्पष्ट है कि प्रदेश मे सर्वाधिक गन्ने का उपयोग गुड़ के उत्पादन मे हो रहा है। इसके बाद क्रमश चीनी एव खाण्डसारी के उत्पादन मे होता है। अत गन्ने के उपर्युक्त उत्पादों मे से अध्ययन के लिए गुड और चीनी का चुनाव किया गया।

2. तिलहन :- गन्ने के भाँति तिलहन भी हमारे भारत देश की एक प्रमुख व्यावसायिक फसल है। भारत मे अनेक प्रकार के तिलहन पैदा किए जाते हैं जिनमे मुख्य रूप से मूँगफली, तोरी या सरसो, तिल, सोयाबीन, सूरजमुखी, अलसी, अरण्डी अण्डी, एव बिनौला आते है। इनका प्रयोग केवल तेल उत्पादन मे ही नहीं बल्कि अनेक औद्योगिक वस्तुओ को बनाने मे भी किया जाता है जैसे कि औषधियो, साबुन, वार्निश, चिकनाई, वनस्पति, घी, इत्र आदि। वर्तमान समय मे लगभग दो करोड हेक्टेयर क्षेत्रफल मे तिलहन की खेती की जाती है।[6]

भारत मे ही नहीं बल्कि उत्तर प्रदेश की अर्थव्यवस्था मे भी तिलहन का एक बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। तिलहन उत्तर प्रदेश की एक मुख्य नकदी/औद्योगिक फसल है। उत्तर प्रदेश मे देश के कुल तिलहन

उत्पादन का २० प्रतिशत भाग उत्पादित किया जाता है।[7] राई सरसो के उत्पादन मे तो उत्तर प्रदेश का पूरे भारत देश मे प्रथम स्थान है, लेकिन यह बड़ी निराशाजनक बात है कि तिलहनी फसलो के क्षेत्रफल के अतर्गत हमारे प्रदेश मे कोई खास गिरावट तो नहीं आयी है लेकिन औसत उत्पादन एव कुल उत्पादन घटा है। तिलहनी फसलो एव खाद्य तेलो के मूल्य मे निरन्तर वृद्धि होना जारी है। जिससे सामान्य आदमी को अत्यत कठिनाई का सामना करना पड रहा है।

हमारे जीवन में खाद्य पदार्थ के रूप मे चीनी, गुड, सरसो तेल आदि का महत्व इतना आवश्यक हो गया है कि इनका अभाव पुरे जन-जीवन को अस्त-व्यस्त कर देता है। इन फसलो के महत्व को देखते हुए हमे मात्र इनके उत्पादन पर ही नहीं बल्कि विपणन व्यवस्था पर भी विशेष-रूप से ध्यान देना होगा, क्योकि अगर एक अच्छी विपणन प्रणाली नहीं रहेगी तो अच्छे उत्पादन की भी संभावना नहीं रहेगी । इसके अतिरिक्त व्यावसायिक फसलों के बढते हुए महत्व के कारण इनके उत्पादन मे निरतर वृद्धि की सम्भावना बढती जा रही है। ऐसी स्थिति मे इनके बाजार मे विस्तार हुआ है। अत· इनकी विपणन की अच्छी प्रणाली को बढाने पर अधिक से अधिक बल दिया जाना आवश्यक हो गया है।

विपणन व्यय के अध्ययन की आवश्यकता :- कृषि विपणन लागत का अध्ययन किसान एव उपभोक्ता दोनो के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि जहाँ एक ओर कृषि उपजों की उत्पादक को प्राप्त होने वाली कीमत किसान की भविष्य मे कृषि निवेश की क्षमता को प्रभावित करती है वहीं दूसरी ओर विपणन लागत की अधिकता या न्यूनता उपभोक्ता की क्रय शक्ति को प्रभावित करती है। विपणन व्यय के अन्तर्गत उन सभी व्ययो को सम्मिलित किया जाता है जो उत्पादको या निर्माताओ के पास से वस्तु को अतिम उपभोक्ताओ तक पहुँचने के समय तक विभिन्न मध्यस्थो द्वारा किये जाते हैं। इन व्ययो मे एकत्रीकरण, थोक वितरण और फुटकर वितरण के स्तरों पर किये जाने वाले ढुलाई और यातायात व्यय, सग्रहण की लागत, माल की पैकिग आदि अन्य ऐसे तमाम व्यय सम्मिलत होते हैं। विपणन लागत मे मध्यस्थो द्वारा अपनी सेवाओ हेतु लिए जाने वाला लाभ भी जोडा जाता है। यह आवश्यक भी है क्योंकि इसी लोभ से मध्यस्थ व्यापार कार्य मे

---

[7] तिलहन उत्पादन कार्यक्रम, वर्ष १९८१-८२ कृषि निदेशालय उ०प्र० (कपास एव तिलहन अनुभाग) लखनऊ, पृष्ठ

लगे रहते हैं। इस प्रकार एक वस्तु विशेष हेतु किसी उपभोक्ता/प्रयोगकर्ता द्वारा दिए हुए मूल्य तथा उसी वस्तु के लिए उत्पादक/निर्माता द्वारा प्राप्त किए गए मूल्य मे अन्तर को ही विपणन लागत कहते है।[8]

हमारे भारतीय किसानो मे विपणन सम्बन्धी जानकारी का अभाव पाया जाता है। इसके अलावा हमारे देश मे छोटे किसानो का अधिक होने एव इनके विक्रय योग्य को कम होने से इनमे सगठन क्षमता का अभाव पाया जाता है। जिससे अधिकतर छोटे किसान बड़े पैमाने पर होने वाले बिक्री के लाभो से वचित रह जाते है। साथ ही साथ किसानो मे व्यापारियो से मोलभाव करने की क्षमता का अभाव रहता है। दूसरी तरफ बाजार मे कार्य करने वाले व्यापारियो के कई सगठन होते है जिनके सहारे वे लोग किसानों का शोषण करते हैं। विपणन लागत की अध्ययन से कर की दरो के विपणन पर प्रभाव और भार को जाना जा सकता है।

आज के युग मे कृषि मे वैज्ञानिक एव प्राविधिक विकास के बावजूद कृषि उपजो का आकार बेहद जटिल होता जा रहा है, जिससे कृषि विपणन मे मध्यस्थो की सख्या बढ़ी है एव कृषि विपणन की समस्याये अधिक कठिन हो गई है। अत अब कृषि-विपणन एक अलग विषय के रूप मे न केवल शिक्षा के क्षेत्र मे ब्लकि सरकार की आर्थिक नीतियो मे भी महत्वपूर्ण स्थान रखने लगा है। कृषि विपणन पर कई सरकारी और गैरसरकारी अध्ययन हुए है। सरकारी अध्ययन मुख्य रूप से भारत सरकार के कृषि एव ग्रामीण विकास मत्रालय के अधीन विपणन एव निरीक्षण निदेशालय द्वारा किए गए है। इसी निदेशालय द्वारा त्रैमासिक जर्नल **"एग्रीकलचरल मार्केटिंग"** का भी नियमित प्रकाशन होता है। गैरसरकारी सस्थाओं द्वारा भी कृषि विपणन पर कई अध्ययन किए गए हैं, इसमे विश्वविद्यालयो मे किए गए अनुसधान प्रमुख हैं। **उदाहरण** के लिए एग्रीकल्चरल मार्केटिंक इन उत्तर प्रदेश (गुप्ता अबिका प्रसाद १९६०), मार्केटिंग ऑफ एग्रील्चरल प्रोड्यूस इन वैस्टर्न यू० पी० विट् स्पेशल रेफरेन्स टू गुड एण्ड खाण्डसारी (बशल, भारत भूषण, १९६४), मार्केटिंग ऑफ बैको इन गुण्टूर डिस्ट्रक्ट पूरा (राव, टी० पी० सुव्वा, १९६६), मार्केटिंग ऑफ एग्रीकल्चरल प्रोड्यूस इन मध्य प्रदेश (राव, मधुकर गोविन्द, १९५३-६१), दि प्राब्लम्स ऑफ मार्केटिंग एग्रीकल्चरल प्रोड्यूस इन इण्डिया

---

[8] गुप्ता ए०पी०, मार्केटिंग ऑफ एग्रीकल्चरल प्रोड्यूस इन इण्डिया, वोरा एण्ड क०, पब्लिशर्स प्रा० लि० ३ राउण्ड बिल्डिग, बाम्बे-४०० ००२ वर्ष १९७५, पृष्ठ सख्या १८८

विद् पार्टिकुलर रेफरेन्स टू उत्तर प्रदेश (निगम, माधूरी, १९६४), भारत मे कृषि विपणन (सिह आशोक कुमार, १९९६)।[9]

इस प्रकार सरकारी एव गैर सरकारी सस्थाओ द्वारा कृषि उत्पादो के विपणन सम्बन्धी कई अध्ययन हुए हैं, किन्तु ये अध्ययन प्राय सामान्य कृषि पदार्थों अथवा किसी एक उत्पाद विशेष पर ही किए गए हैं। जबकि हाल के वर्षो मे कृषि विपणन की दशा मे तीव्र गति से परिवर्तन हुए हैं। इसलिए कृषि उत्पादो की विपणन गतिविधियो मे होने वाले परिवर्तनो का अध्ययन आवश्यक हो गया है। चूँकि '' **उत्तर प्रदेश में व्यावसायिक फसलों एवं उत्पादों का विपणन** '' विषय पर अध्ययन का अभाव रहा है अत इसकी अध्ययन की आवश्यकता महसूस की गयी है।

गैट समझौता :- भारत वर्ष के अन्तर्गत गैट समझौता कृषि विपणन को तीन प्रकार से प्रभावित करेगा -

- कृषि मे उपभोग की जाने वाली वस्तुओ जैसे बीज उर्वरक, कीटनाशक दवाओ, यत्रो, विद्युत व सिचाई सुविधाओ मे सब्सिडी को कम करना।
- घरेलू आवश्यकताओ के न होते हुए भी अन्य देशो से खाद्यान्नो का विवशतापूर्ण आयात।
- बौद्धिक सम्पदा अधिकार की सुरक्षा।[10]

1- किसानों की सहायता (सब्सिडी) को कम करना :- किसानो की बीजो, उर्वरको, कीटनाशक दवाओ, यन्त्रो, विद्युत व सिचाई साधनो उपलब्ध कराई जाने वाली सहायता (सब्सिडी) कम करना चाहिए। इस सम्बन्ध मे अन्य दूसरे देशो मे कृषि उपज बढाने के लिए कृषि से सम्बन्धित सभी वस्तुओ पर सब्सिडी काफी अधिक मात्रा मे उपलब्ध कराते हैं। जिसके कारण दूसरे देशो मे खाद्यान्नो की उत्पाद काफी अधिक मात्रा मे होती है। वहाँ इतनी अधिक खाद्यान्नो की पैदावार की जाती है कि उसकी खपत के लिए बाजार ढूँढना पडता है। इसीलिए कृषि को भी गैट समझौते के अन्तर्गत सम्मिलत करके विकसित देशो की तरह अधिक खाद्यान्न पैदा की जाए ताकि विकसित देशो के सामने भविष्य मे खाद्यान्नो की निर्यात की समस्या

---

[9] सिह अशोक कुमार, भारत मे कृषि विपणन, १९९६, पृष्ठ सख्या ०९ ।

[10] सिह गजेन्द्र पाल, भारतीय कृषि एवं गैट समझौता, पृष्ठ सख्या ६०९, प्रतियोगिता दर्पण आगरा, नवम्बर १९९४

फसल के लिए बीज के रूप मे प्रयोग नहीं करते हैं। वहीं सूई जेनेरिस के अन्तर्गत किसान बीजो का केवल व्यापारिक लेन देन नहीं कर सकते। इसके अन्तर्गत उपज के एक भाग को बीज के रूप मे प्रयोग करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। **भारत ने सूई जेनेरिस** को ही विकल्प के रूप मे चुना है। तथा किसान अपनी फसल के बीज रख सकते है। एव इच्छानुसार उसका उपयोग कर सकते है। तब ही देश मे उत्पन्न किए जा रहे अच्छे किस्म के बीज पूर्व की भाँति हमेशा उपलब्ध रहेंगे।

इस प्रकार बौद्धिक सम्पदा अधिकार को हमारे कृषि वैज्ञानिको व सरकार ने अगर चुनौती के रूप मे स्वीकार किया तो भविष्य मे हमारा राष्ट्र भी इतना आविष्कार कर लेगा कि विकसित राष्ट्रो की भॉति अधिक से अधिक लाभ अर्जित करने मे समर्थ हो सकते हैं । सूई जेनेरिस के अन्तर्गत व्यवस्थाएँ थोडी अधिक कठोर होगी तथा बीजो के उपयोग के मामले मे किसानों की स्वतन्त्रता का हनन होगा । अत आवश्यकता इस बात की है कि समय रहते इसमे ऐसे परिवर्तन सशोधन का प्रस्ताव किया जाए जिससे भारतीय कृषि के दीर्घकालिक विकास का मार्ग प्रशस्त हो सके।

कृषि निर्यात के बढ़ते चरण :- भारत मे कृषि से सम्बन्धित वस्तुओ के राष्ट्रीय स्तर पर लेन-देन का इतिहास बहुत पुराना है। जैसे सूत, कपास, चाय, शक्कर, जूट, मसाले इत्यादि अनेक वस्तुएँ मुगल काल एव ब्रिटिश काल में भी दूसरे देशो को भेजी जाती थी। लेकिन उस समय कृषि से सम्बन्धित लेने-देन की सरचना भिन्न थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व अंग्रेज शासक कृषि से सम्बन्धित उत्पादो के विदेशी व्यापार को अपने कब्जे मे कर रखे थे तब भारतीय किसानो को कोई विशेष लाभ नहीं मिल पाता था। आजादी प्राप्ति के बाद शुरू मे तो कमोबेश यही स्थिति बनी रही और निर्यात से कहीं अधिक आयात होता रहा। हमारे देश के कुल निर्यात मे कृषि वस्तुओ का बड़ा हिस्सा रहता है। दुनिया भर मे आज शायद ही कोई ऐसा देश हो जो आयात अथवा निर्यात न करता हो। सभी को अपनी-अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के व्यापार में भागीदारी करनी पडती है। उत्पादक व्यापारी तथा उपभोक्ताओं को क्रमश बाजार लाभ और उपलब्धता सुनिश्चित कराने में विश्व व्यापार का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण रहता है। चूँकि हमारा भारत देश कृषि प्रधान है और कृषि उत्पादन के क्षेत्र मे हमारा देश भरण पोषण की स्थिति से ऊपर उठकर कृषि उत्पादो

का दूसरे देश मे निर्यात करने की स्थिति मे आ गया है। खेती को और अधिक लाभपूर्ण बनाने के विभिन्न उपायो मे कृषि उत्पादो का अधिक से अधिक निर्यात करना एक महत्वपूर्ण कदम हो गया है। भारतीय कृषि क्षेत्र मे व्यापार आम समझौते से पौधो की किस्मो के सरक्षण हेतु प्रस्तावित नया कानून लागू होने पर कृषि तथा कृषको की हितो की सुरक्षा और भी बेहतर तरीके से हो सकेगी। साथ ही साथ बीजो को सग्रह करने तथा उनके विनिमय अधिकार पर भी कोई प्रभाव नहीं पडेगा।

भारत को कृषि उत्पादो का निर्यातक बनाने का मुख्य श्रेय कृषि अनुसधान और उत्पादन मे वृद्धि का है। पहले हमे खाद्यान्न आयात करना पड़ता था, लेकिन अब भारत खाद्यान्न उत्पादन के रिकार्ड उत्पादन से इस वर्ष न केवल लक्ष्यो को पार कर गया है, बल्कि उसके पास ३ करोड ५० लाख टन से अधिक का सुरक्षित भण्डार भी है।१९९५-९६ मे भारत ने लगभग ५५ लाख टन गेहूँ और चावल का निर्यात करने का सकल्प लिया था। जिसमे गेहूँ का निर्यात वर्ष १९९५-९६ मे ९०० मिलियन रूपए तक पहुॅच चुका था।[13] देश उदारीकरण प्रक्रिया से ही कृषि के क्षेत्र में उत्पादन और निर्यात के मामले मे अद्वितीय वृद्धि कर पाया है। किन्तु अभी और अधिक कृषि उत्पादन मे स्थिरता लाने के लिए आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकीयो को अपनाना होगा ताकि निर्यात से होने वाली आय बढ़े। भारतीय कृषि उत्पादो के लिए विश्व व्यापार के बदले परिवेश मे व्यापक सम्भावनाएॅ बढ़ी है। विश्व व्यापार मे कृषि क्षेत्र के शामिल होने का भरपूर लाभ उठाना है तो विविध उपयोग के लिए कृषि उत्पादन के नीति को बढ़ावा देना होगा। इसके लिए इस क्षेत्र मे विदेशी निवेश मे प्रोत्साहन दिए जाने के स्पष्ट सकेत मिलने लगे हैं। कुछ वर्ष पहले खाद्य तेलो की कमी हुई थी। और इनका आयात काफी बढ गया था लेकिन आज स्थिति यह है कि खाद्य तेलों का आयात घटकर ३०० करोड रू० प्रतिवर्ष हो गया है। वहीं हमारी तिलहनी फसलो और उनसे बनने वाली उत्पादो का निर्यात आठ गुना बढकर २५०० करोड़ रू० से भी ऊपर हो गया है।[14] विश्व व्यापार में भारतीय कृषि उत्पादो का हिस्सा अभी तक कुल मिलाकर १ प्रतिशत से भी कम है क्योंकि स्वतन्त्रता प्राप्त होने के पश्चात् चार दशको तक कृषि उत्पादन

---

[13] बिश्नोई हरि, कृषि निर्यात के बढ़ते चरण, पृष्ठ सख्या ११९२, प्रतियोगिता दर्पण आगरा, फरवरी १९९७ ।

[14] बिश्नोई हरि, कृषि निर्यात के बढ़ते चरण, पृष्ठ संख्या ११९२, प्रतियोगिता दर्पण आगरा, फरवरी १९९७ ।

से घरेलू आवश्यकताओ की पूर्ति की जाती रही। अत अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा मे उतरने के अत्यधिक अवसर प्राप्त नहीं हुए और इसी कारण असन्तुलन की स्थिति चलती रही।

प्रोत्साहन :- जब नई आर्थिक नीति वर्ष १९९१-९२ से लागू हुई तब से कृषि निर्यात के क्षेत्र मे लाभकारी सम्भावनाओ के नए द्वार खुले। आज हमारा देश बड़ी मात्रा मे चावल निर्यात करने की स्थिति मे समर्थ हुआ है। इसके लिए बहुत से नीतिगत परिवर्तन किए गए ताकि कृषि निर्यात को बढ़ावा मिले । कृषि निर्यात हेतु पर्याप्त वित्त की उपलब्धता को सुगम बनाया गया। अनेक कृषि उत्पादो पर से निर्यात प्रतिबन्धो को समाप्त कर दिया गया। चावल के बाद अब गेहूँ प्रमुखता के साथ निर्यात की दृष्टि से महत्वपूर्ण फसल के रूप मे सामने है। न्यूनतम निर्यात मूल्य से सम्बन्धित नियमो को चावलो पर से समाप्त कर दिया गया है। भारतीय खाद्य निगम द्वारा ३० लाख टन फाइन तथा सुपर फाइन किस्म के चावलो तथा ३० लाख टन गेहूँ वर्ष १९९६ मे निर्यात की अनुमति प्रदान की गई थी। इसी प्रकार कॉफी के बड़े उत्पादको के लिए ७० प्रतिशत तथा लघु उत्पादको के लिए १०० प्रतिशत तक फ्री सेल कोटे की सीमा को बढा दिया गया है।[15] विनासशील वस्तुओ के निर्यात को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से हवाई भाडे मे नियमानुसार छूट और अनुदान की नई व्यवस्था लागू की गई है। कृषि निर्यात के विकास के लिए जो मुख्य निर्णय सरकार द्वारा पिछले दिनो लिए गए उसके प्रमुख बात यह रही कि आठवीं योजना के दौरान कृषि कार्यक्रमों को योजना व्यय का तीन गुना बढाकर १० हजार करोड रूपए कर दिया गया।[16]

बाधाऐं :- हमारे देश को माल निर्यात करने मे कुछ बाधाओ का सामना करना पड़ता है जो निम्न है -

1. भारतीय बंदरगाहों में बढ़ती भीड़ :- भारत का समुद्री तट और बदरगाह बडा होने के बावजूद हिन्द महासागर मे इनकी स्थिति बहुत ही महत्वपूर्ण रही है। इसलिए विश्व के अन्य देशो के समुद्री माल वाहक जहाज भारतीय बदरगाहों पर शरण लेते रहते हैं। भारतीय समान की आवागमन की वजह से उतनी भीड़

---

[15] बिश्नोई हरि, कृषि निर्यात के बढते चरण, पृष्ठ सख्या ११९३, प्रतियोगिता दर्पण आगरा, फरवरी १९९७ ।

[16] बिश्नोई हरि, कृषि निर्यात के बढ़ते चरण, पृष्ठ सख्या ११९३, प्रतियोगिता दर्पण आगरा, फरवरी १९९७ ।

नहीं है बल्कि पूर्वी सागर मे सुविधाजनक स्थिति होने के बाद विदेशी माल की आवाजाही से बदरगाहो पर भीड बहुत बढ गई हैं।

2. ढाँचागत सुविधाओं का अभाव :- कृषि निर्यात के लिए देश मे मूलभूत ढॉचागत सुविधा या सरचना सम्बन्धी सुविधाओ की कमी होने के कारण कृषि के निर्यात मे अडचन आती हैं। यद्यपि हाल के वर्षो मे कृषि निर्यात के क्षेत्र मे सरकार ने ढाँचागत सरचनात्मक, सुविधाओ को प्रदान करने की उद्देश्य से कई महत्वपूर्ण योजनाएँ शुरु की।

3. छोटे बन्दरगाहों से निर्यात न होना :- हमारे देश मे निर्यात का कार्य कुछ चुने हुए बडे बन्दरगाहो से ही होता है क्योकि वहाँ पर विदेशी जलापूर्ति सुविधा उपलब्ध रहती है जो कि छोटे बन्दरगाहो पर नहीं है ऐसे निर्यातको को मजबूरन बडे बदरगाहो की तरफ भागना पडता है।

4. हवाई अड्डों पर फल एवं सब्जियों के लिए अनुकूल स्थिति का अभाव :- हमारे देश मे विशेष रूप से फल और सब्जियो का निर्यात अभी भी हवाई जहाज के मार्गो से नहीं होता है। इसका मुख्य कारण भरतीय हवाई अड्डो पर इन वस्तुओ को रखने के लिए आवश्यक सुविधा एव तापमान की व्यवस्था नहीं की गई है।

5. निर्यात की दृष्टि से प्रमुख नगरों की प्रतिकूल स्थिति :- यदि निर्यात की दृष्टिकोण से देखे तो भारत के जो प्रमुख नगर हैं वे सब कृषि निर्यात के लिए अनुकूल स्थिति मे नहीं हैं। ऐसे क्षेत्र जो कृषि निर्यात के लिए कुछ दृष्टिकोण से अनुकूल स्थिति मे है लेकिन वहाँ पर ढाँचागत सुविधाएँ उपलब्ध नहीं है।

6. विपणन व्यवस्था में पिछड़ापन :- हमारे देश मे आज भी कृषि विपणन बहुत ही पिछडी हुई स्थिति मे है। कृषि उत्पादको को अच्छा मूल्य और प्रोत्साहन तभी मिलता है जब विपणन की व्यवस्था सभी जगह समान रूप से विकसित हो। इस क्षेत्र मे सरकार ने कई सुधारात्मक कियाएँ किए हैं जिसका प्रभाव कृषि विपणन मे धीरे-धीरे दिखाई पड़ने लगा है।

सुझाव :- आज आवश्यकता इस बात की है कि कृषि उत्पादो का निर्यात बढ़ाने के लिए नए बाजारो की तलाश की जाए तथा वाणिज्य मत्रालय द्वारा निर्यात को प्रोत्साहन देने वाली अल्पकालीन रणनीति मे भी कृषि

उत्पादो को भी सम्मिलित किया जाए। कृषि निर्यात के लिए स्पष्ट नीति का निर्धारण किया जाए। काडला बन्दरगाह की सभी चोटियो को सामान्य निर्यातको हेतु खोला जाए। विश्व बाजार मे स्वास्थ्य सुरक्षा और गुणवत्ता का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। अत ऐसे सभी सम्भव प्रयास करने होगे, जिससे कि हमारे उत्पाद विदेशी मानको पर खरे उतरे। इस सदी के अन्त तक कृषि निर्यात बढकर ९६ अरब डालर होने की आशा है। फिलहाल यह अभी ३१ ४ अरब डालर के आस-पास चल रहा है।[17]

नवीं योजना हेतु चार सुझाव है :-

- भारत की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता बढाई जाए।
- कृषक एव उद्यमी अपनी भूमिका को विस्तृत करे।
- देश के ९० करोड के अलावा विश्व के ५५० करोड लोगो तक अपने उत्पाद पहुँचाने की योजना बनाए।
- कृषि उत्पादो से विश्व स्तर पर साख बनाने हेतु प्रयास किए जाए।

इसके अतिरिक्त उक्त श्रेणीकरण, पैकिग, भण्डारण, परिसस्करण, परिवहन तथा विपणन की बेहतर व्यवस्था, शोध एव विकास की निरतरता, कृषको को निर्यातोन्मुखी चेतना जगाने, लागत मे कमी से स्पर्धा मे टीकने तथा निर्यात सवर्धन के लिए राष्ट्रव्यापी वातावरण बनाने की आवश्यकता है, ताकि कृषि निर्यात से अधिक से अधिक विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सके और करोडो कृषको को उसका सीधा लाभ मिले और उनका जीवन स्तर उपर उठ सके।

भारतीय कृषि की कम उपज : कारण और उपाय

भारत एक कृषि प्रधान देश है, फिर भी यहाँ की कृषि अत्यत पिछड़ी हुई है। भारत मे पिछड़ी हुई जातियो तो है ही पिछडे हुए व्यवसाय भी है, और दुर्भाग्यवश कृषि उनमे से एक है। यह स्थिति आज भी सत्य जान पडती है। भारतीय कृषि की प्रति एकड उपज विश्व की सभी धनी देशो की तुलना मे कम है। भारत मे प्रति हेक्टेयर गेहूँ की औसत उपज मिश्र से एक तिहाई भाग तथा ईग्लैण्ड एव डेनमार्क से एक चौथाई भाग,

---

[17] बिश्नोई हरि, कृषि निर्यात के बढते चरण, पृष्ठ सख्या ११९२, प्रतियोगिता दर्पण आगरा, फरवरी १९९७ ।

मकई की औसत उपज स्विट्जरलैण्ड और न्यूजीलैण्ड का एक तिहाई भाग, ईख की औसत उपज जावा की एक तिहाई भाग से भी कम है, तथा कपास की औसत उपज मिश्र के छठे भाग से भी कम है।[18] यही कारण है कि कुल उपज यहाँ आवश्यकता से बहुत कम होती है। इसी कमी को पूरा करने के लिए प्रतिवर्ष हमे अरबो रूपए के अन्न, कपास, जूट, आदि का विदेशो से आयात करना पडता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए अत्यत ही दुख का विषय है।

भारतीय कृषि की कम उपज या पिछड़े होने के कारण

भारतीय कृषि के सामने आज भी बहुत सी समस्याएँ हैं। इन समस्याओ का कृषि तथा किसानो पर बहुत ही बुरा प्रभाव पडता है। भारतीय कृषि की कम उपज या पिछडे होने के बहुत से कारण है, इन कारणो को दो भागो मे बाँटा गया है -

(क) तकनीकी कारण

(ख) सस्थागत कारण

(क) तकनीकी कारण निम्न हैः-

- कृषि पर जनसख्या का अधिक बोझ
- वर्षा की अनिश्चितता
- कृषि का प्राचीन तथा अवैज्ञानिक प्रणाली का अनुकरण
- पुराने तरीके से कृषि औजारो का प्रयोग
- उत्तम बीज का अभाव
- उपजाऊ मिट्टी का अभाव
- जानवरो, कीड़े मकोडे एव पौधो के रोगो से फसलो की बर्बादी
- उत्तम खाद्य का अभाव

---

[18] वर्मा कुमार अजीत, भारतीय कृषि की कम उपज, कारण और उपाय, पृष्ठ सख्या ३६७, प्रतियोगिता दर्पण, आगरा अक्टूबर १९९३ ।

(ख) संस्थागत कारण निम्न है :-

- जोतो का अत्यधिक उपविभाजन एव अपखण्डन
- किसानो की ऋण ग्रस्तता
- आवश्यक पूँजी का अभाव
- सहायक उद्योग धन्धो का अभाव
- दोषपूर्ण कृषि विपणन प्रणाली
- दोषपूर्ण भूमि व्यवस्था
- किसानो का अशिक्षित एव रूढीवादी होना
- कमजोर पशुधन तथा
- किसानो का बुरा स्वास्थ्य

भारतीय कृषि के पिछडे होने के सारे कारणों के विस्तृत विवरण

(क) तकनीकी कारण :

1. कृषि पर जनसंख्या का अधिक प्रभाव :- भारत की कुल जनसख्या का अधिकाश भाग प्राय ७० से ७५ प्रतिशत कृषि पर ही निर्भर है साथ ही साथ मुख्य रूप से अधिकाश जनसख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि से ही जुड़ी है। जबकि विश्व मे किसी भी राष्ट्र मे जनसख्या का इतना बोझ कृषि पर नहीं है। इतना ही नहीं हमारे यहाँ कृषि पर जनसख्या का बोझ निरन्तर बढता ही जा रहा है। जिससे उपज बहुत कम होती है। भारतीय अर्थव्यवस्था का सबसे बडा दोष भारतीय कृषि के पिछडेपन का एक प्रमुख कारण है।

2. वर्षा की अनिश्चितता :- भारतीय कृषि अधिकाँश मॉनसून पर ही निर्भर करती है और मॉनसून की प्रकृति बहुत ही अनिश्चित है। किसी वर्ष बहुत अधिक वर्षा होने के कारण खेत मे फसल डूब जाती है और फसलो को अत्यधिक क्षति होती है तो किसी वर्ष अत्यधिक सूखा पड जाता है जिससे कृषि का कार्य ही अत्यधिक सा दीखने लगता है। वर्षा की कमी को सिचाई द्वारा पूरा किया जाता है लेकिन भारत मे सिचाई के

साधनो का भी अत्याधिक अभाव है। कुल कृषि की १९ प्रतिशत भाग मे ही सिचाई की सुविधा प्राप्त है, शेष लगभग ८१ प्रतिशत भूमि पर कृषि के लिए मॉनसून पर ही निर्भर रहना पडता है। यही कारण है कि भारतीय कृषि के साथ मॉनसून को जुआ कहा जाता है। इसलिए हमारे देश मे भी प्रति एकड उपज भी बहुत कम होती है।

3. कृषि में प्राचीन तथा अवैज्ञानिक प्रणाली का अनुकरण :- भारतीय किसान आज भी प्राचीन तथा अवैज्ञानिक प्रणाली का अनुकरण करते हैं। कृषि के नए-नए वैज्ञानिक तरीको से वे अभी परिचित नहीं हैं। हमारे देश मे आज भी प्राचीन तथा अनुपयुक्त कृषि औजारो को ही कृषि कार्य के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इनके खेतो की उचित ढग से जुताई और बुआई नहीं हो पाती है तथा समय भी अधिक लगता है। कुछ वर्ष पहले राज्य सरकार द्वारा कुछ उतम प्रकार के हल तैयार किए गए थे, जिनमे उत्तर प्रदेश का गुरजर मेस्टन हल, पजाब का राजा हल आदि उल्लेखनीय है, परन्तु हमारे देश मे इनका बहुत कम प्रचार है। यहाँ बीज तथा खाद्य के नए-नए तरीको का प्रयोग नहीं होता है, इसलिए भारतीय कृषि की प्रति एकड उपज बहुत ही कम होती है।

4. पुराने ढंग के कृषि औजारों का प्रयोग :- हमारे देश मे अधिकाश पुराने ढग के कृषि औजारो का ही प्रयोग किया जाता है। जबकि भूमि की पैदावार इसके उपयोग मे आने वाली औजारो पर ही निर्भर करती है। आज भी भारत के गाँवो मे प्राचीन एव सादे हलो एव औजारो का प्रयोग बहुत ही कम होता है। अमरीका तथा अन्य पश्चिमी देशो मे नए-नए औजारो द्वारा कृषि कला मे क्राति सी आ गई है, किन्तु हमारे भारत देश में इन साधनो का बहुत अभाव है।

5. उत्तम बीजों का अभाव :- एक कहावत है कि **'अच्छा बोओगे तो अच्छा काटोगे'** यानी अच्छी फसल का होना अच्छी बीजो पर निर्भर करता है, लेकिन आज भी भारतीय किसान कृषि मे खराब बीजो का ही प्रयोग करते है, जिससे उपज बहुत ही कम होती है। भारतीय किसान बहुधा फसल होने के समय बाजार से सस्ते बीज खरीद लाते हैं अथवा अपने ही पुराने बीज को इस्तेमाल करते हैं। ये बीज बहुत ही साधारण प्रकार के होते हैं। अच्छी उपज के लिए यह जरूरी है कि प्रमाणित बीज ही प्रयोग करे।

6. मिट्टी का कटाव :- अधिक वर्षा एव अधिक बाढ के कारण प्रतिवर्ष बहुत सी उपजाऊ मिट्टी कटकर नदियो मे बह जाती है। प्राय ऐसा देखा जाता है कि भूमि की उपजाऊ शक्ति इसकी उपरी सतह बह जाती है। जिससे वह भूमि कृषि के लिए बिल्कुल अनुपयुक्त हो जाती है अत मिट्टी के कटाव से भी भूमि की उपजाऊ शक्ति कम हो जाती है, तथा उपज कम होने लगती है।

7. जानवरों तथा कीड़े-मकौड़े एवं पौधों के रोगों से फसलों की बर्बादी :- भारत मे खेतो की घेराबन्दी के अभाव मे चूहे, जगली जानवरों,नील गाय, पहाडी जानवरों आदि फसलो को बर्बाद कर देते हैं। इनसे फसलो की रक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। फलस्वरूप उपज का एक बडा भाग इसी तरह से नष्ट हो जाता है। इसके अलावा कीडे-मकौडे से फसलो से रक्षा द्वारा अनाज के उत्पादन मे पाच प्रतिशत तक की वृद्धि की जा सकती है। इस प्रकार जानवरो तथा कीड़े मकोडे एव पौधो के रोगो द्वारा भी बहुत सी फसल बर्बाद हो जाती है जिससे उपज कम होती है।

8. उत्तम खाद्य का अभाव :- खाद्य तथा खेतो की उपजाऊ शक्ति बढाने वाली वस्तुओ का प्रयोग भूमि के उपजाऊपन को बढाने का बहुत बडा उपाय है। लेकिन भारतीय किसान खेतो की उपजाऊ शक्ति बढाने वाले खाद्यों का प्रयोग कम मात्रा मे करते है। खाद्य की अच्छी किस्मों तथा उनके प्रयोग से ये लोग हमेशा अनभिज्ञ रहते हैं। गोबर की खाद्य सबसे अच्छा होता है लेकिन किसान गोबर का प्रयोग जलाने व खाना पकाने मे ही करते हैं। इस प्रकार अच्छी खाद्य के अभाव मे उपज भी बहुत कम होती है। हरी खाद्य का प्रयोग भी बहुत कम करते हैं। उर्वरक, डी० ए० पी०, सुपर पोटाश इतने मॅहगे हैं कि किसान अपनी फसलो मे उचित मात्रा मे खाद्य प्रयोग नहीं कर पाते हैं।

(ख) संस्थागत कारण :

1. जोतों का अत्यधिक उपविभाजन एवं अपखण्डन :- भारतीय कृषि की अवनति का एक प्रमुख कारण जोतो का पीढी दर पीढी एव परिवार से परिवार अतिशय उप-विभाजन एव अपखण्डन है। किसानो की जोते छोटे-छोटे टूकडो मे विभाजित रहती है। जो एक स्थान पर न होकर गॉव के भिन्न-भिन्न भागो मे बिखरी रहती है। ऐसी स्थिति में कृषि का कार्य खर्चीला एव कठिन हो जाता है। अनुमान लगाया जाता है कि

हमारे देश में ७० प्रतिशत से अधिक किसानो की जोते ३ एकड अथवा इससे भी कम की है इन छोटे-छोटे जोतों मे बडे पैमाने पर वैज्ञानिक ढग से कृषि करना सभव नही है, जिससे इनकी उपज कम होती है।

2. किसानों की ऋण ग्रस्तता :- भारतीय किसानों की गरीबी बहुत विश्वविख्यात है। ये कर्ज के बोझ से दबे रहते हैं। देश महाजनो के चगुल मे है ऋण के बन्धन ही कृषि को जकडे हुए हैं। इस गरीबी के कारण ही भारतीय किसान उत्तम बीज खाद्य तथा नए-नए औजारो का प्रयोग नहीं कर पाते हैं, जिससे कृषि मे सुधार लाना असम्भव हो जाता है इसी कारण किसी ने सच ही कहा है कि **"भारतीय किसान ऋण में ही जन्म लेता है, ऋण में ही पलता है, और ऋण में ही मर जाता है"** इसी प्रकार किसानो की ऋण ग्रस्तता भारतीय कृषि के पिछडे होने का एक प्रमुख कारण है।

3. सहायक उद्योग धन्धों का अभाव :- भारतीय किसानो को कृषि के अतिरिक्त अन्य सहायक उद्योग धन्धो का भी अभाव है। कृषि मे किसानो को साधारण रूप से वर्ष मे चार-पाच माह तक ही कार्य करने का मौका मिलता है। वर्ष के बाकी समय मे उन्हे अवकाश ही रहता है। इस अवकाश के समय मे इनके पास कोई सहायक उद्योग धन्धा रहता है तो इनका समय बेकार नहीं जाता है और साथ ही साथ इनकी आय मे वृद्धि होती रहती है इसलिए अवकाश के समुचित उपयोग तथा आय मे वृद्धि के लिए सहायक उद्योग धन्धो का होना अनिवार्य है।

4. कृषि विपणन की दोष पूर्ण प्रणाली :- भारतीय किसानो की उपजो के क्रय-विक्रय की उचित व्यवस्था का भी अभाव पाया है। कृषि बाजार इनके लिए अपूर्ण बाजार है जिससे उपज की बिक्री से इन्हे पूरा पूरा लाभ नहीं मिल पाता है। यातायात तथा सवाद वाहनो का अभाव, माप तौल की विविधता, अत्यधिक बिचौलियो का होना इत्यादि इनके मार्ग मे बाधक सिद्ध होते हैं, अत कृषि मे स्थाई सुधार लाने के लिए कृषि बाजार की समुचित व्यवस्था अति आवश्यक है।

5. दोषपूर्ण भूमि व्यवस्था :- हमारे वर्तमान भूमि व्यवस्था भी काफी हद तक कृषि के पिछडे होने का एक प्रमुख कारण है। किसानो को अधिक लगान देना पडता है, साथ ही किसी वर्ष यदि प्राकृतिक प्रकोप से फसल नष्ट हो जाती है तो भी इन्हे लगान मे छूट नहीं मिल पाती। इस दोषपूर्ण कृषि व्यवस्था के कारण

किसानो को बहुत अधिक नुकसान उठानी पडती है। तथा कृषि की उपज पर भी इसका बुरा प्रभाव पडता है, अत कृषि विकास के लिए भूमि व्यवस्था मे सुधार लाना भी नितांत अनिवार्य है।

6. किसानों को अशिक्षित तथा रूढ़िवादी होना :- भारतीय किसानो मे अशिक्षा की मात्रा बहुत अधिक है। इसके बावजूद वे भाग्यवादी तथा प्राचीन परम्पराओ मे विश्वास अधिक करते हैं। अपने समय शक्ति तथा धन का उपयोग अपनी कुशलता की वृद्धि मे नहीं कर ये व्यर्थ की मुकदमे बाजी मे लगाते हैं। अच्छी शिक्षा से ही उन्नत कृषि की आशाएँ की जा सकती है। रूढीवादिता को त्यागना होगा।

7. कमजोर पशुधन :- भारतीय कृषि का एक प्रमुख अग यहाँ का पशुधन है। हमारे भारत मे कृषि कार्य मे पशुओ से बहुत अधिक सहायता मिलती है। साथ ही भारत जैसे शाकाहारी देश मे दूध-घी, मक्खन आदि के लिए भी इनका विशेष महत्व है, लेकिन भारत के अधिकाश पशु अस्वस्थ्य तथा कमजोर होते हैं इसी कारण इनकी दूध क्षमता मे भी कमी होती है। यद्यपि देश मे पशुओ की सख्या आवश्यकता से बहुत अधिक है फिर भी ये इतने निर्बल होते हैं कि देश मे पशुशक्ति की बहुत बडी कमी आ गई है। इनकी नस्ल भी अच्छी नहीं होती अत इनसे कृषि कार्य मे यथोचित् सहायता नहीं मिलती जिससे उपज का कम होना अत्यन्त स्वाभाविक होता है। क्योकि कृषि का पशुधन से सीधा सम्बन्ध होता है।

8. किसानो का बुरा स्वास्थ्य :- उपर्युक्त सारे दोषों के साथ-साथ भारतीय कृषि की कम उपज का एक प्रमुख कारण किसानो का बुरा स्वास्थ्य भी है जिसके कारण वे कृषि कार्य मे पूरा सहयोग नहीं कर पाते। गॉवो मे सफाई एव चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओ, हवादारों गृहो एवं पीने योग्य स्वच्छ जल आदि के आभाव मे किसानो का स्वास्थ्य निरन्तर खराब होता जाता हैं जिससे वे अपनी कार्य करने की शक्ति खो देते है। इससे उपज भी कम होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय कृषि की कम उपज अथवा पिछडे होने के उपर्युक्त सभी कारण सम्मिलत हैं।

भारतीय कृषि की उपज में वृद्धि के उपाय

भारतीय कृषि की उपज मे वृद्धि करने के लिए निम्नलिखित उपाय को ध्यान मे रखना होगा।

1. जनसंख्या के अनावश्यक बोझ को कम करना :- भारत मे अधिकाश व्यक्तियो की रोजी रोटी का प्रधान साधन कृषि ही है। अत इसके विकास के लिए सर्वप्रथम भूमि पर से जनसख्या के अनावश्यक बोझ को कम करना होगा। इसके लिए नए-नए उधोग धन्धो का विकाश अति आवश्यक है। जिससे लोगो को रोजी रोटी का एक और साधन प्राप्त हो सके। भारत सरकार द्वारा इस दिशा मे आजकल बहुत से प्रयास किए जा रहे है किन्तु अभी सफलता की मात्रा बहुत कम रही है।

2. देश में सफाई की समुचित व्यवस्था :- भारतीय कृषि की उपज मे वृद्वि के दूसरा उपाय है देश मे सिचाई की समुचित व्यवस्था इसके द्वारा कृषि की अनिश्चितता से मुक्त कराना आवश्यक है। सिचाई के साधनो के विस्तार के लिए नहर, कुएँ तथा तालाब खुदवाने की अनेक योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही है जिनके पूर्ण होने पर सिचाई पर्याप्त क्षेत्र मे वृद्वि की उम्मीद की जा सकती है। बडी-बड़ी योजनाओ के अतिरिक्त सिंचाई की लघु योजनाओ पर भी सरकार बहुत जोर दे रही है। सिंचाई के विस्तार के द्वारा कृषि की उपज में ५० से १०० प्रतिशत तक ही वृद्धि की जा सकती हैं।

3. उत्तम बीज एवं खाद्य का महत्व :- कृषि की उपज को बढाने के लिए उत्तम बीज का बडा ही महत्व है। उत्तम बीज की व्यवस्था के लिए सरकार के कृषि विभाग द्वारा निरन्तर अनुसधान तथा अन्वेषण की अवश्यकता है। देश मे आज कल बीज बॉटने वाली बहुत सी फर्म है, लेकिन इनकी सख्या बहुत कम मात्रा मे है। बीज के साथ-साथ उत्तम खाद्य का प्रयोग भी खेतो के उपज बढाने का बहुत बड़ा उपाय है। भारतीय किसान गोबर को जलावन के रूप मे प्रयोग करते है इसे रोकना आवश्यक हैं। भारतीय किसानो को चीन तथा जापान की तरह कम्पोस्ट खाद्य बनाने के तरीको से भी अवगत कराना अति आवश्यक है। साथ ही साथ गॉवो मे पचायत एव सहकारी समितियो द्वारा कम मूल्य पर रासायनिक खादों की वितरण की व्यवस्था की जानी चाहिए तथा सभी रासायनिक खादो पर छूट दी जानी चाहिए ताकि सस्ते होने पर अधिकाश किसान अधिक मात्रा मे प्रयोग कर सके। इससे खेतो की उपज मे बहुत अधिक वृद्धि होगी।[19]

---

[19] वर्मा कुमार अजीत, भारतीय कृषि की कम उपज, कारण और उपाय, पृष्ठ सख्या ३६८, प्रतियोगिता दर्पण, आगरा अक्टूबर १९९३ ।

4. पशुधन का महत्वपूर्ण स्थान :- भारतीय कृषि व्यवस्था मे पशुधन का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है।इनसे खेती, यातायात, तथा वाणिज्य व्यापार मे सहायता मिलने के अतिरिक्त दूध,घी,गोबर आदि भी प्राप्त होते हैं। इसलिए भारत मे पशुधन का विकास अति आवश्यक है। इसके लिए पर्याप्त चारा, उचित चिकित्सा, नस्ल सुधार की व्यवस्था होनी चाहिए। सरकार द्वारा किए गए अभी तक सारे प्रयास असतोषजनक ही हैं।

5. भूमि की उचित व्यवस्था :- भारतीय कृषि मे सुधार के लिए भूमि की उचित व्यवस्था भी अनिवार्य है। किसानो को अपनी भूमि के प्रति स्थाई हक होनी चाहिए तथा लगान की दर से उपज के अनुसार परिवर्तन लाने की व्यवस्था होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध मे हमारी नीति " **भूमि का स्वामित्व उसके जोतने वालो का हो** " होनी चाहिए।[20] सतोष का विषय है कि वर्षो से खास तौर से स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् इस दिशा मे महत्वपूर्ण कार्य किए जा रहे है इनमे जमीदारी उन्मूलन तथा जोतो के स्वामित्व की सीमा का निर्धारण विशेष रूप से प्रचलित है,किन्तु इसके साथ-साथ कृषि मे लगे मजदूरो की स्थिति मे भी अमूल परिवर्तन लाना होगा तथा उनकी न्यूनतम मजदूरी की दर निर्धारित करनी होगी और समय-समय पर मॅहगाई के अनुसार बढाई जाए।

6. गॉवों में छोटी-छोटी उद्योग धन्धों की व्यवस्था :- भारतीय किसानो के लिए गॉवो मे छोटी-छोटी उद्योग धन्धो की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे वे अपने अवकाश के समय मे कुछ आयोपार्जन कर अपनी आर्थिक स्थिति को अच्छा बना सके, इसके लिए गॉवो मे गृह उद्योग धन्धो के विकास का पूरा-पूरा प्रयत्न करना चाहिए।

7. कृषि मध्यस्थों द्वारा शोषण :- कृषि बाजार की वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत किसान अपनी उपज की बिक्री से पूर्ण लाभ नहीं उठा पाते हैं। इनके लाभ का अधिकाश भाग बिचौलियो के हाथ चला जाता है। इस दिशा मे किए गए सरकारी प्रयत्नो मे अभी बहुत कम सफलता मिल पाई है। अत इसमे सुधार की अति आवश्यकता है। १९५९ ई० मे सरकार के खाद्यान्नो के राजकीय व्यापार की नीति अपनाई, जिसके अनुसार

---

[20] वर्मा कुमार अजीत, भारतीय कृषि की कम उपज, कारण और उपाय, पृष्ठ सख्या ३६९, प्रतियोगिता दर्पण, आगरा अक्टूबर १९९३ ।

सभी प्रमुख कृषि पदार्थो का थोक मूल्य निश्चित किया जा रहा है।[21] जिस पर रजिस्टर्ड व्यापारी इन वस्तुओ का क्रय करते है।

8. कृषि प्रशिक्षण एवं अनुसंधान का अभाव :- कृषि सम्बन्धी प्रशिक्षण तथा अनुसधान की व्यवस्था के अतर्गत वैज्ञानिक शिक्षा तथा अनुसधान की सर्वथा अभाव है। किसान अशिक्षित है तथा कृषि कला से पूर्णतया अनभिज्ञ है। ऐसी स्थिति मे उनसे कृषि मे विकास की कोई भी आशा करना बिल्कुल व्यर्थ है, अत कृषि विकास के लिए किसानो को शिक्षित बनाना अनिवार्य है।

9. कृषि योग्य भूमि में उतरोत्तर ह्रास :- अच्छी भूमि जो शहरीकरण मे विलय होती जा रही है। उदाहरण के लिए प्रमुख शहर दिल्ली, आगरा, कानपुर आदि इतने बढ गए है कि कृषि योग्य भूमि पर अब बहुत आवासीय मकान दिखाई देते हैं, इस पर सरकार का नियत्रण हो, अथवा बेकार भूमि पर उद्योग धन्धो को विकसित किया जाए। जैसे - धौलपुर के पास चम्बल के खादर मे हजारो एकड़ भूमि सुधारी जा सकती है जिसे कृषि योग्य या उसे उद्योग धन्धो के कार्य लायक बनाया जाए।

इन सभी उपायों के द्वारा खेती की उपज मे वृद्धि तथा कृषि का विकास किया जा सकता है, लेकिन इन सारे उपायो को सफलता पूर्वक कार्यान्वित करने के लिए एक विस्तुत कृषि योजना की आवश्यकता होगी। इन योजनाओ के द्वारा कृषि विकास के लिए सरकार तथा किसान दोनो को हमेशा प्रयत्नशील रहना होगा।

भारतीय कृषि निम्न उत्पादकता का पर्याय :- भारतीय अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है क्योकि देश की कुल श्रमशक्ति का लगभग २/३ भाग अभी भी अपने जीविकोपार्जन के लिए कृषि पर निर्भर है। भारतीय कृषि से न केवल खाद्यान्नो की घरेलू माँग (सन् २००० तक २३.५,२४० करोड टन वार्षिक) एवं अन्य कृषि सामानो की घरेलू माँग को पुरा करने की उमीद की जाती है, बल्कि निर्यात

---

[21] वर्मा कुमार अजीत, भारतीय कृषि की कम उपज, कारण और उपाय, पृष्ठ सख्या ३६९, प्रतियोगिता दर्पण, आगरा अक्टूबर १९९३ ।

सम्बन्धी आवश्यकताओ को पुरा करने का दायित्व भी कृषि पर है।[22] छठे दशक के मध्य मे देश मे अभूतपूर्व खाद्यान्न सकट उत्पन्न हो जाने पर उसका मुकाबला करने के लिए कृषि विकास की जो नवीन तकनीक हरित क्रान्ति अपनाई गई उससे कृषि के क्षेत्र मे व्यापक स्तर पर प्रगति हुई है और खाद्यान्न उत्पादन के मामले मे आज हमारा भारत देश आत्म निर्भर हो गया है। सिचित क्षेत्र के विस्तार उर्वरको, अधिक उपज देने वाले बीजो, कीटनाशको आदि के बढते प्रयोग, आधारभूत सुविधाओ, कृषि निवेशो के वितरण का विस्तृत ढॉचा, भडारण, अभिसस्करण, परिवहन एव विपणन आदि का विकास निर्माण इत्यादि के कारण ही कृषि विकास मे तेजी हुई है तथा खाद्यान्न उत्पादन की सवृद्धि दर २ ५ प्रतिशत वार्षिक के आस-पास रही है जो जनसख्या की वार्षिक घाताक वृद्धि दर २ १४ प्रतिशत से अधिक है। पॉचवे दशक मे ५० प्रतिशत रहने के बाद छठे तथा सातवे दशक मे ४४ प्रतिशत के लगभग रहा है।[23] इसका अर्थ यह नहीं है कि योजना काल मे भारतीय कृषि ने प्रगति नहीं की है। प्रगति तो हुई ही है लेकिन वह द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्र की तुलना मे कम हुई है। खेती के अतर्गत और अधिक क्षेत्र लाने और कम लागत की सिचाई के लिए सरल एवं सस्ता विकल्प लगभग समाप्त हो चुका है। सरकार अनुसधान एव विकास एजेन्सियो एव स्वय किसानो के तमाम प्रयासो के बावजूद भारतीय कृषि की उत्पादकता अन्य क्षेत्रो एव अन्य देशो की तुलना मे काफी कम है।

कृषि उत्पादकता की स्थिति :- भारत मे विभिन्न फसलो की प्रति हेक्टेयर उपज की तुलना विदेशो की फसलो की प्रति हेक्टेयर उपज की तुलना से बहुत ही कम है। यह निम्नलिखित तथ्यो से प्रमाणित हो जाता है।

- भारत मे कुछ प्रमुख फसलों धान, गेहूँ, कपास एव मूगफली „ आदि की प्रति हेक्टेयर उपज विश्व की सर्वोतम स्तर की लगभग १/६ से १/३ तक है।

---

[22] चौहान सिंह श्याम सुन्दर, नीची उत्पादकता का पर्याय भारतीय कृषि, पृष्ठ सख्या १७२४, प्रतियोगिता दर्पण आगरा, जून १९९५ ।

[23] वही पृष्ठ सख्या १७२६, प्रतियोगिता दर्पण आगरा, जून १९९५ ।

तालिका-1-1

चुने हुए कृषि उत्पादों की उपज एवं उत्पादकता

देश	विश्व के कुल उत्पादन में उत्पादन भाग चावल	उत्पादकता *
जापान	2 50	63 30
चीन	36 30	57 30
इडोनेशिया	8.60	43.30
वियतनाम	3.50	31.20
वर्मा	2.70	29.10
फिलीपीन्स	3.70	28 10
भारत	21.60	26 90
बाग्लादेश	5 40	26 90
थाइलैण्ड	3 70	19 60
ब्राजील	1.40	18 80
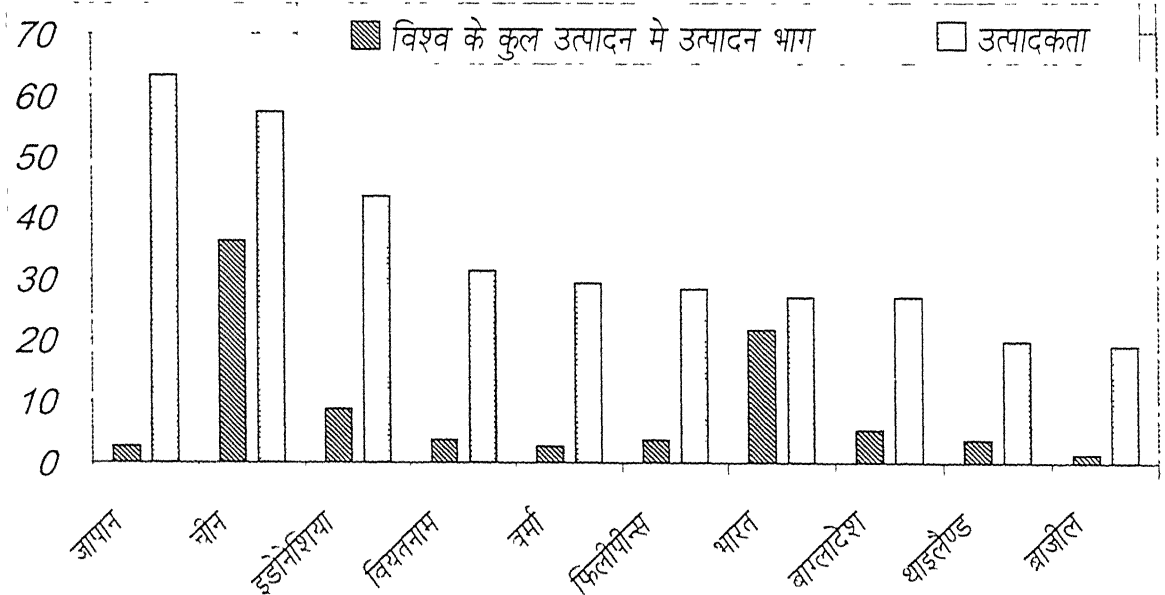
स्रोत प्रतियोगिता दर्पण जून १९९५ आगरा

तालिका-1-2

देश	विश्व के कुल उत्पादन में उत्पादन भाग कपास	उत्पादकता
आस्ट्रेलिया	1 70	13 30
टर्की	3 30	9.10
भू०पू० सोवियत सघ	14 20	8.30
चीन	24 20	8 00
मिस्र	1 80	7 70
स०रा० अमरीका	18 40	7 20
पाकिस्तान	8 00	5 50
अर्जेनटाइना	1 40	4 60
ब्राजील	3 60	3 50
भारत	9.80	2 30

स्रोत प्रतियोगिता दर्पण
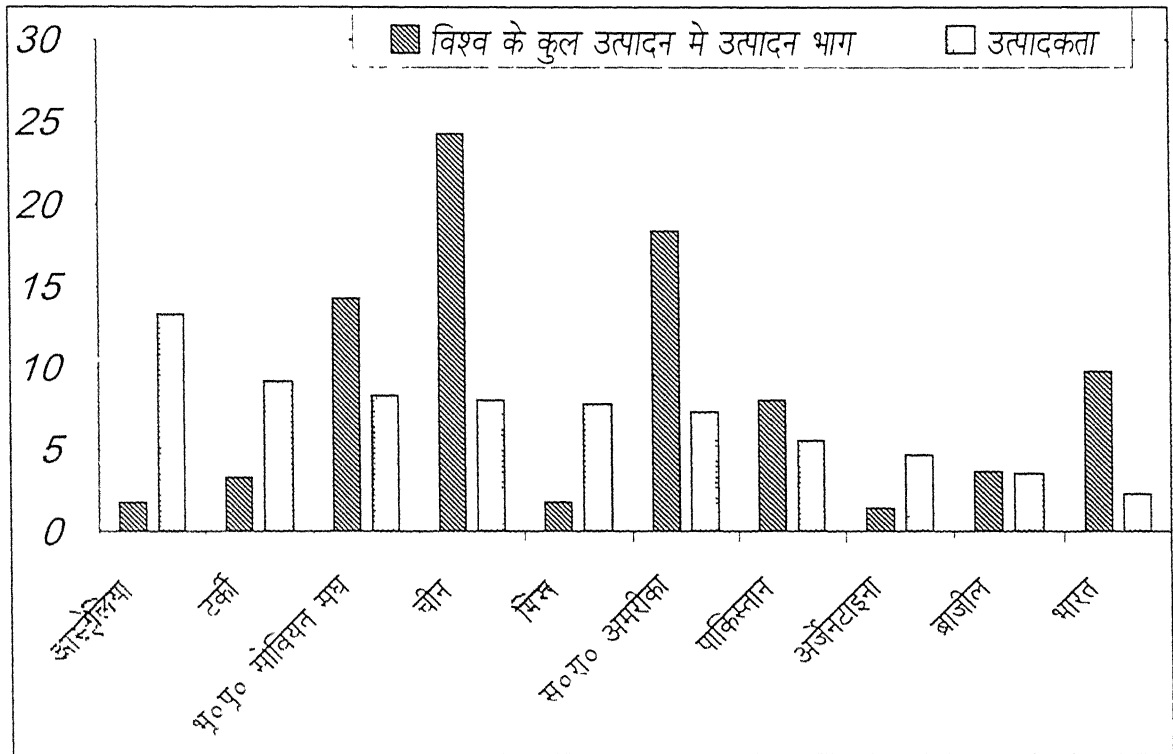
तालिका-1-3

देश	विश्व के कुल उत्पादन में उत्पादन भाग गेहूँ	उत्पादकता
यू०के०	2 30	69 10
फ्रास	5 60	64 90
चीन	16 10	31 80
स०रा० अमरीका	12 40	26 60
कनाडा	5 30	22 30
भूतपूर्व सोवियत सघ	18 10	22.40
भारत	8 30	21.20
टर्की	3 40	21.20
पाकिस्तान	2 40	18 30
आस्ट्रेलिया	2 60	16.00
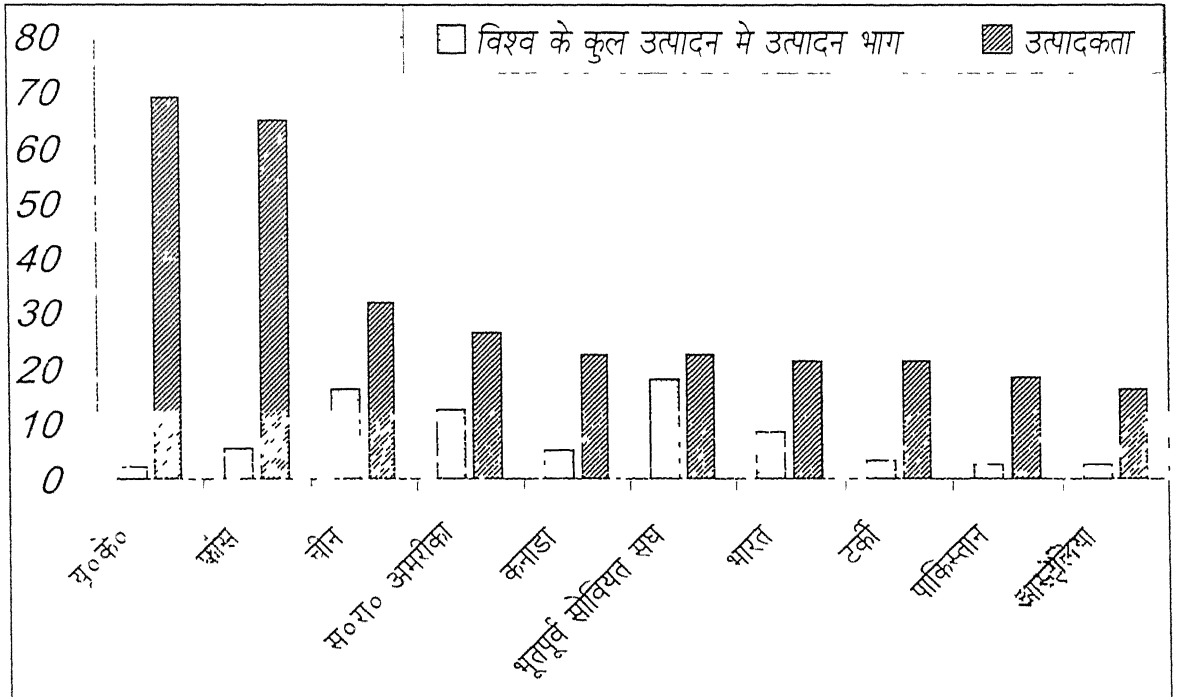
स्रोत प्रतियोगिता दर्पण

तालिका-1-4

देश	विश्व के कुल उत्पादन में उत्पादन भाग मूँगफली	उत्पादकता
स० रा० अमरीका	7 10	22 40
चीन	28 40	21 30
अर्जेनटाइना	1 60	20 60
इडोनेशिया	4 00	14 60
नाईजीरिया	5 00	11 70
वियतनाम	0 90	9 60
भारत	31 20	9 00
वर्मा	2 00	8 80
सेनेगल	3 00	7 90
जामर	1 90	7 50
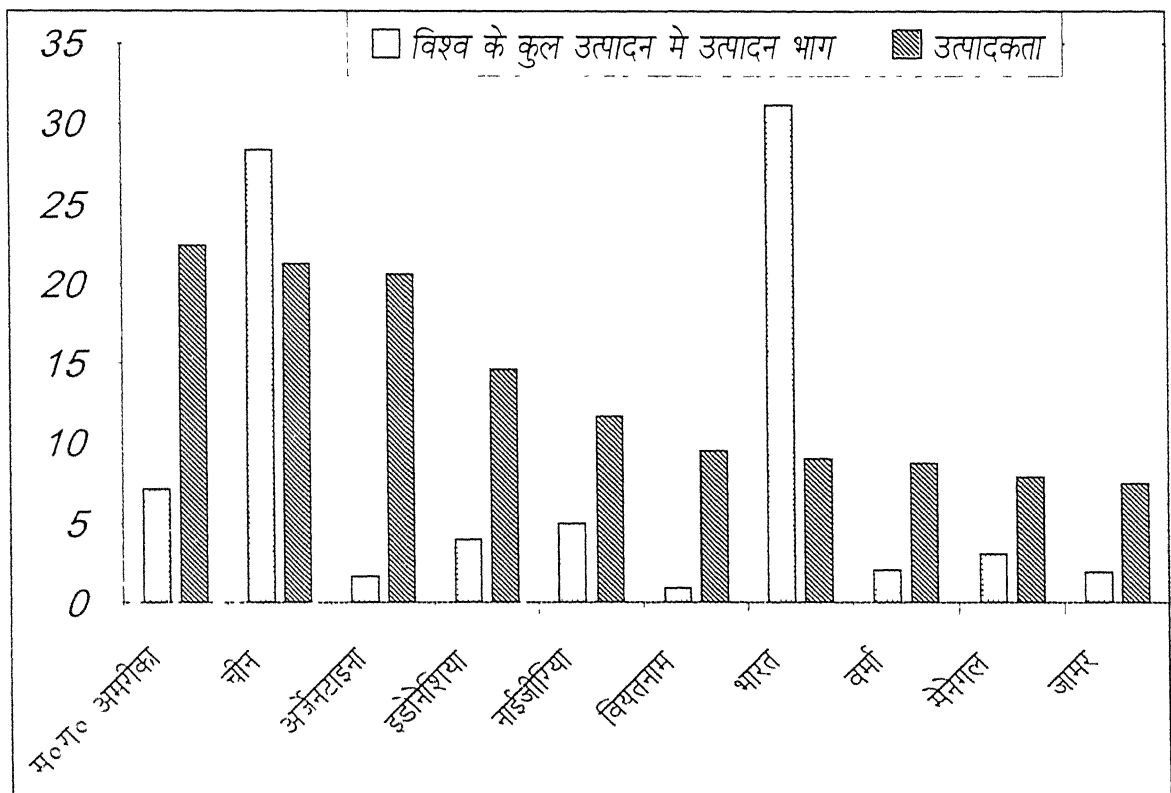
स्रोत प्रतियोगिता दर्पण

उत्पादकता 100 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर

❖ *देश की कुल श्रम शक्ति का लगभग ६६ प्रतिशत भाग खेती मे लगा हुआ है और सकल राष्ट्रीय उत्पाद मे उसका योगदान केवल ३२ प्रतिशत है । इसका प्रमुख कारण कृषि श्रमिको की आवश्यकता का अन्य श्रमिकों की तुलना मे काफी कम होना है ।*

तालिका-1-5

भारतीय अर्थव्यवस्था में श्रम उत्पादकता

क्षेत्र	श्रम	उत्पादकता
कृषि वानिकी और मत्स्यपालन	2305	3157
खनन एव उत्खनन	5214	13417
विनिर्माण	3671	11099
विद्युत गैस एव जलपूर्ति	अनु	14608
निर्माण	9182	16110
व्यापार एव वाणिज्य	4942	13136
सचार	3695	8761
अन्य सेवाएँ	4418	14625
भारतीय अर्थव्यवस्था	2898	6169

स्रोत प्रतियोगिता दर्पण जून
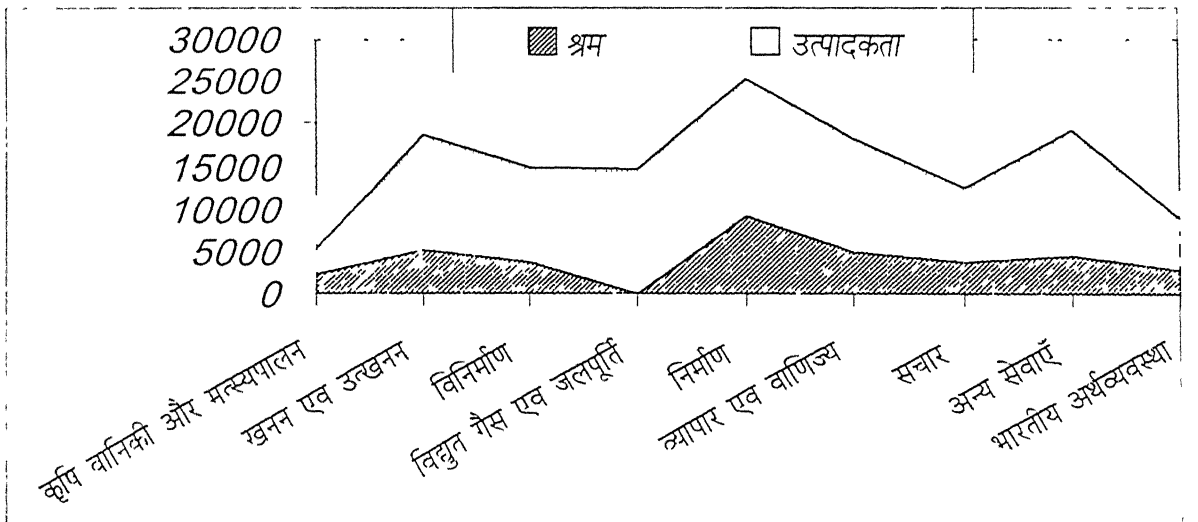
- देश के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रो मे कृषि उत्पादकता मे भिन्नाताएँ हैं। उदाहरण के लिए प्रति हेक्टेयर शुद्ध आय उतरी क्षेत्र मे ९५ रू, मध्य क्षेत्र मे ७६ रूप, तथा दक्षिणी क्षेत्र मे ११० रूपए है। लागत से प्रति हेक्टेयर सकल आगम का अनुपात उतरी क्षेत्र मे ७८ ५ प्रतिशत, मध्यक्षेत्र मे ८२ ५ तथा दक्षिणी क्षेत्र मे ७५ ५ प्रतिशत है।[24]
- भारत के विभिन्न राज्यो मे कृषि उत्पादकता मे भारी असमानताएँ विद्यमान है।

तालिका-1-6

खाद्यान्न की राज्यवार उत्पादकता (किलोग्राम प्रति हेक्टेयर)

राज्य	खाद्यान्न	उत्पादकता
आध्र प्रदेश	778	1618
उडीसा	779	982
उत्तर प्रदेश	871	1733
कर्नाटक	646	918
केरल	1346	1875
तमिलनाडु	1136	1925
गुजरात	657	1048
पजाब	1511	3390
पश्चिम बगाल	1021	1728
बिहार	877	1298
मध्यप्रदेश	635	1005
महाराष्ट्र	518	846
राजस्थान	532	866
अखिल भारतीय	783	1382

स्रोत प्रतियोगिता दर्पण जून

---

[24] चौहान सिह श्याम सुन्दर, नीची उत्पादकता का पर्याय भारतीय कृषि, पृष्ठ सख्या १७२७, प्रतियोगिता दर्पण आगरा, जून १९९५
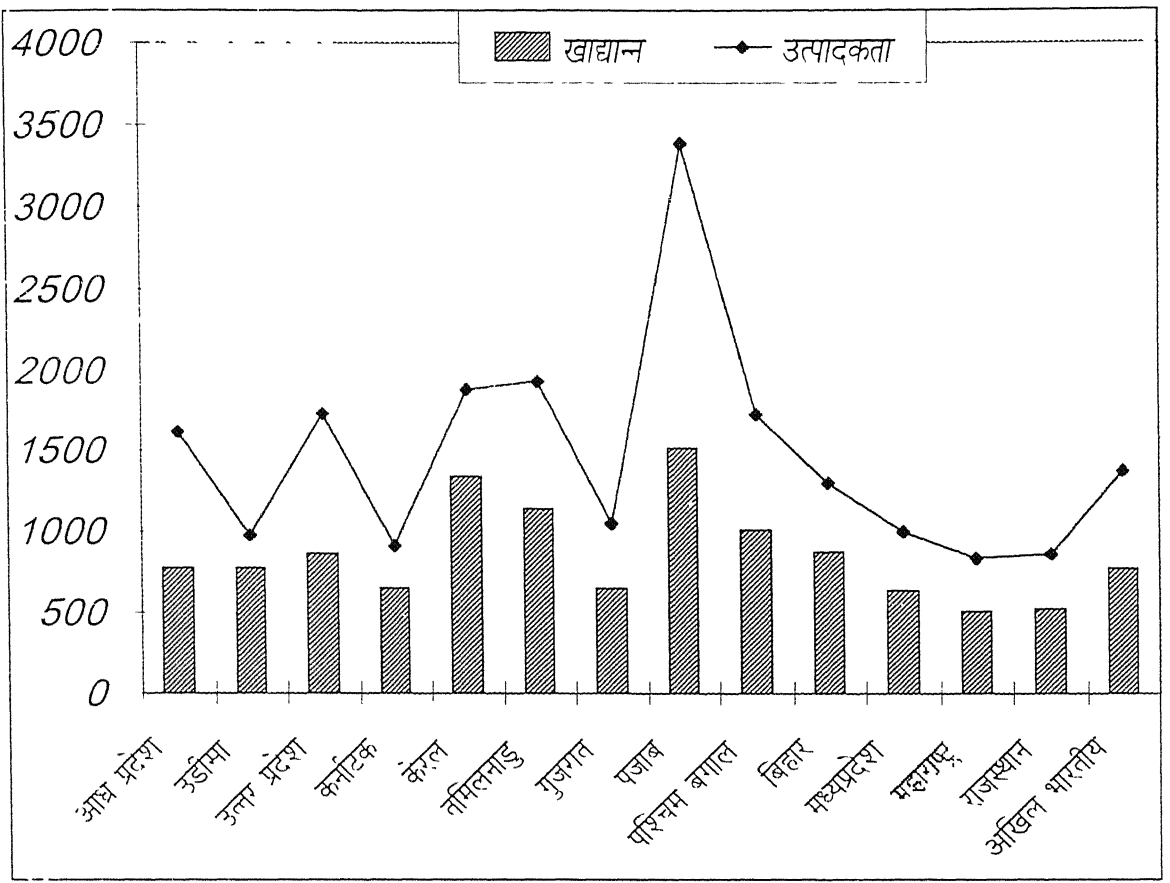
उत्पादन की अस्थिरता और वृद्धि को प्रभावित करने वाले तत्व

भारत मे कृषि उत्पादन की अस्थिरता और वृद्धि को अनेक कारक प्रभावित करते हैं, इनका सक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है -

1. जनांकिकीय कारक :- विगत् वर्षो मे भारत की जनसख्या मे तेजी से वृद्धि हुई है। सन् १९५१ मे भारत की जनसख्या ३६ ११ करोड तथा वार्षिक चक्रवृद्धि सवृद्धि १ २५ प्रतिशत थी। सन् १९८१ मे देश की जनसख्या बढ़कर ६८ ३३ करोड तथा जनसंख्या की वार्षिक सवृद्धि दर २ २२ प्रतिशत हो गई। अगले दशक १९९१ मे वार्षिक सवृद्धि दर घटकर २ १४ प्रतिशत रह जाने के बावजूद भी देश की जनसख्या ८४ ६३ करोड़ हो गयी। जनसख्या मे होने वाले वृद्धि के अनुरूप कृषि से सम्बन्धित क्षेत्र मे रोजगार के नवीन अवसर सृजित न होने के कारण अधिक सख्या अतिरिक्त श्रमिक कृषि क्षेत्र मे ही रोजगार पाने को विवश हुई है। इससे कृषि जोतो का उप-विभाजन एव अपखडन बढा है। कृषि की उन्नत प्राविधियो एव सेवाओ की आपूर्ति हमेशा

ही आवश्यकता से कम रही है। इससे कृषि क्षेत्र मे काफी बेरोजगारी बढ़ी है तथा इन सबके फलस्वरूप अतत भूमि उत्पादकता तथा कृषि श्रम उत्पादकता दोनो मे ही अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया है।

2. प्रौद्योगिक कारक :- भारतीय किसान के लिए कृषि जीवन यापन का एक अभिन्न अग है। अधिकाश किसानो ने कृषि को एक व्यवसाय के रूप मे न तो कभी अपनाया है और न ही अपना रहा है, क्योकि उनकी आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर है कि वे ऐसा नहीं कर सकते। नतीजे के तौर पर वे आज भी खेती की परम्परागत प्रौद्योगिकी को प्रयोग मे ला रहे है। साठ के दशक मे प्रारम्भ की गई हरित-क्राति ने देश मे कृषि की नवीन तकनीक के प्रसार मे भारी योगदान दिया है लेकिन इसकी उपलब्धियाँ कुछ गिने चुने राज्यो तक ही सीमित रह गई है।

गुजरात, कर्नाटक, महाराष्ट्र और राजस्थान जैसे कम वर्षा वाले राज्यो में कुल फसल क्षेत्र से कुल सिचाई क्षेत्र का अनुपात २५ प्रतिशत से भी कम है । जिससे उर्वरक उपयोग और अधिक उपज देने वाले प्रजातियो के अतर्गत क्षेत्रफल के विस्तार पर प्रतिकुल प्रभाव पडा है। ६ पूर्वी राज्यो मे कार्यान्वित की जा रही केन्द्रीय प्रायोजित योजना विशेष चावल उत्पादन कार्यक्रम से सम्बन्धित मूल्याकन रिपोर्ट से यह तथ्य प्रकट हुआ है कि सिचाई अधिक उपज देने वालें प्रजातियो के बीजो तथा उर्वरको के प्रयोग से चावल उत्पादन मे प्रभावशाली ढग से वृद्धि की जा सकती है ।

अनेक अध्ययनो से यह प्रमाणित हो चुका है कि बहुत बडी सीमा तक वर्षा की मात्रा तथा उसका वितरण कम वर्षा वालें अथवा कम सिचाई सुविधाओ वाले अन्य राज्यो मे विगत् वर्षो के दौरान खाद्यान्न उत्पादन मे उतार-चढ़ाव को प्रभावित करते रहे हैं। राजस्थान में वर्षा भी कम होती है तथा सिचाई के आधुनिक साधन भी विकसित नहीं हो पाए हैं, परिणामस्वरूप वहाँ कृषि उत्पादकता अभी भी बहुत नीची है, तथा उत्पादन मे उतार-चढाव भी आता रहा है। इसके विपरित पंजाब जैसे राज्यो मे कम वर्षा होने के बावजूद भी उत्पादकता ऊँची है तथा उत्पादन में भारी उतार-चढ़ाव भी नही आए हैं, क्योकि यहाँ सिचाई सुविधाएँ बहुत अधिक मात्रा तक करा ली गई है।

कीटो और बीमारियो से फसलो की सुरक्षा, कृषि यत्रीकरण, भूमि विकास, आधारभूत सुविधाओ का विकास आदि दूसरे दर्जे के निवेश है जो कृषि उत्पादकता को बढ़ाने मे सहायक होते है। भारत के कुछ

विकसित राज्यो को छोड दे तो शेष भाग मे इनकी पहुच और उपलब्धता सीमित है जिसके कारण कृषि उत्पादकता नीची है।

3. निवेश सम्बन्धी कारक :- भारतीय कृषि की नीची उत्पादकता बने रहने का एक प्रमुख कारण कृषि मे समुचित निवेश न हो पाना भी है। अस्सी के दशक मे कृषि निवेश मे वास्तविक रूप से कमी आई है सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि कृषि में सरकारी निवेश मे अपेक्षाकृत अधिक कमी आई है। निवेश मे कमी हो जाने के कारण कृषि विकाश के लिए आधारभूत ससाधन जुटाना सभव नहीं हो पा रहा है। भारतीय किसानो की आर्थिक स्थिति ऐसी नही है कि वे अपने स्तर पर निवेश सम्बन्धी आवश्यकताओ को पुरा कर सके। उसका परिणाम कुल मिलाकर यह हो रहा है कि किसान घिसे-पिटे उपलब्ध ससाधनो को ही प्रयुक्त करके उत्पादन कर रहे हैं। भले ही उसकी उत्पादकता कितनी ही नीची क्यो न हो।

4. संस्थागत कारक :- भारतीय कृषि की नीची उत्पादन के लिए दोषी अन्य कारको मे वे सस्थागत व्यवस्थाएँ हैं जो भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था मे काफी लम्बे समय से विराजमान है। यद्यपि स्वतत्रता प्राप्ति के बाद से देश मे अनेक प्रकार के भूमि सुधार कार्यक्रम चलाए गए हैं। तथापि अभी भी कुल खेती योग्य भूमि के एक बडे भाग पर ऐसे बडे कृषको का कब्जा है जो स्वय खेती नहीं करते हैं। राज्यो मे चकबन्दी कार्यक्रम के बावजूद भी खेतो का आकार छोटा है तथा अपखण्डन एव उपविभाजन की सतत् प्रक्रिया के तहत दिनो-दिन और भी छोटा होता जा रहा है। कृषि का सरचनात्मक ढाँचा तो कमजोर है ही इसे अन्य विपणन वित्त एव साख आदि से सहायता भी नहीं मिल पा रही है। उदाहरण के लिए गेहूँ एवं चावल की बड़े पैमाने पर सरकारी खरीद किए जाने के बावजूद भी देश के कुल उत्पादन का बहुत बड़ा भाग बिचौलियो के माध्यम से ही बेचा जाता है जो कृषकों को हर प्रकार से शोषण करते हैं। कृषि साख व्यवस्था के अन्तर्गत क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, वाणिज्यक बैंक तथा सहकारी समितियाँ, कृषकों को अल्पकालीन, मध्यकालीन एव दीर्घकालीन सुविधाएँ उपलब्ध तो करा रही है लेकिन वह कमजोर आर्थिक स्थिति वाले करोड़ो किसानों विशेष रूप से छोटे एव सीमान्त किसानो की कुल साख आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पा रहे हैं। परिणामस्वरूप आज भी बडी मात्रा मे निजी साहूकारो से ऊँची ब्याज दर पर ऋण लेते हैं। देश के अधिकाश जनजातीय क्षेत्रो मे खड़ी फसल को गिरवी

रखकर उपभोग प्रयोजनो हेतु उधार लेना एक आम परम्परा है। जब ऐसा उधार-उत्सव मनाने अथवा परिवार के सदस्य की मृत्यु होने के पश्चात् धार्मिक कर्मकाण्डो को पूरा करने के लिए लिया जाता है तब विशेष रूप से इसकी राशि अधिक होती है तथा ब्याज की दर कभी-कभी १०० प्रतिशत से भी ऊपर हो जाती है।

भारतीय कृषि की सस्थागत कमजोरियो मे एक प्रमुख कमजोरी कृषि सहायता कार्यक्रमो की अपर्याप्तता है। अधिकाश कृषि उत्पाद शीघ्र नाश्वान है तथा किसानो के पास इनके लम्बे समय तक जब तक की उनकी समुचित कीमत न मिलने लगे। भण्डारण की आधुनिक सविधाएँ भी विद्यमान नहीं है। दूसरी बात यह है कि किसानो की आर्थिक स्थिति भी कमजोर है इसलिए उन्हे विवश होकर उत्पाद फसल कटने के तुरन्त बाद ही कम मूल्य पर बेचनी पडती है। जिस किसी वर्ष फसल अच्छी होती है उस वर्ष कीमत मे होने वाली गिरावट से किसानो के हितो की रक्षा करने के लिए भी भारत मे कोई सस्थागत उपाय नहीं किया गया है।

विकसित देशों की तुलना मे यदि भारत मे कृषि उत्पादकता नीची है तो इसके पिछे मात्र एक कारण है वो है कृषि को एक लाभ प्रदान करने वाले उद्यम के रूप मे न अपनाया जाना है। इससे कृषि क्षेत्र मे प्रतिस्पर्धात्मिकता उत्पन्न नहीं हो पायी है तथा दक्षता का स्तर भी नीचा है।

5. नीतिगत कमजोरियाँ :- भारतीय कृषि की नीची उत्पादकता के लिए नीतिगत अवधारणाएँ भी जिम्मेदार है। साठ सत्तर एव अस्सी के दशक मे कृषि नीतियो का एक मात्र आधार देश को खाद्यान्न उत्पादन मे आत्मनिर्भर बनाना रहा है। हरित क्राति कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य भी यही था। उदाहरण के लिए देश मे खाद्य तेलो की आपूर्ति कम हो जाने पर खाद्य तेलो की कीमते आसमान छूने लगी तो सरकार ने तिहलन उत्पादन को बढाने के लिए विशिष्ट कार्यक्रम प्रारम्भ कर दिए। आज चीनी की कमी हो गई है तो गन्ना उत्पादन बढाने पर अधिक जोर दिया जा रहा है। अब तक की कृषि नीतियो का गहन विश्लेषण करने पर पता चलता है कि इन नीतियो मे समग्र रूप से कृषि उत्पादकता मे वृद्धि करने का लक्ष्य नहीं रहा है। यही कारण है कि उत्पादकता वृद्धि के मामले मे कुछ गिनी-चुनी फसले तथा कुछ विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र ही आगे रहे हैं।

कृषि उत्पादकता के उपाय :- अब जबकि भारत ने खाद्यान्न उत्पादन मे आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है तथा देश के पास पर्याप्त मात्रा मे खाद्यान्नो का सुरक्षित भण्डार भी है। वर्तमान समय मे देश के लिए

ऐसी कृषि नीति एव ग्रामीण साख नीति तैयार किए जाने की आवश्यकता है जो कृषि को उद्योग का दर्जा प्रदान करके कृषि उत्पादकता मे वृद्धि करने मे सहायक हो, साथ ही उनसे ग्रामीण क्षेत्र मे विकराल रूप धारण कर चुकी बेरोजगारी तथा निर्धनता को दूर करने मे निर्णायक भूमिका निभाए।

वर्तमान समय मे देश मे खेती योग्य-भूमि मे विस्तार करके कृषि उत्पादन मे वृद्धि कर पाना सम्भव नहीं है क्योकि कृषि उत्पादकता नीची है इसलिए आने वाली दिनो मे तेजी से बढती जनसख्या के लिए खाद्यान्न, खाद तेल, चीनी, चाय, काफी, रबर, फल एव सब्जियॉ सूत एव जूट आदि की आवश्यकताओ को पूरा करना है तो उत्पादन के उच्चतम स्तर को प्राप्त करना होगा और यह कार्य केवल उत्पादकता भूमि एव कृषि श्रम उत्पादकता मे सकरात्मक वृद्धि करके ही किया जा सकता है।

इसके लिए सर्वप्रथम प्राथमिकता के आधार पर सम्पूर्ण कृषि व्यवस्था का पुर्नसगठन किया जाना चाहिए। कृषि के परम्परागत स्वरूप के आधार पर इसे शुद्ध व्यावसायिक स्वरूप प्रदान किए जाने की आवश्यकता है। यह कार्य कृषि प्रणाली मे प्रौद्योगिकी क्राति लाए बिना नहीं हो सकता है सस्थागत उपायो मे (1) भूमि सुधारो मे तेजी लाकर अच्छे कृषि सम्बन्धो की स्थापना (2) खेतो की उप-विभाजन एव अपखण्डन को रोकना (3) पर्याप्त कृषि साख हेतु समुचित व्यवस्था (4) कृषि उत्पादो के वितरण का विनियमन आदि अधिक कारगर सिद्ध हो सकते है। इस दिशा में यद्यपि सरकार निरन्तर प्रयत्नशील है, तथापि इसमे और अधिक तेजी लाए जाने की आवश्यकता है।

कृषि उत्पादकता मे वृद्धि लाने के लिए प्रौद्योगिकीय सुधारों का बहुत बड़ा योगदान हो सकता है। ये सुधार दो प्रकार के हो सकते हैं। (1) यांत्रिक एवं जैविक यन्त्रिकरण अपनाया जाना निहित है। लेकिन इसके लिए खेतों का आकार बडा होना चाहिए चूँकि भारत मे ऐसा नहीं है इसलिए यहॉ पर कृषि यन्त्रीकरण के लिए ऐसी नीति अपनायी जानी चाहिए जो छोटे-छोटे खेतो तथा कमजोर आर्थिक स्थिति वाले किसानो के लिए उपयुक्त हो, साथ ही उससे बेरोजगारी का भी अदेशा न हो। जैविक उपायो के रूप में अधिक उपज देने वाली तथा रोग प्रतिरोधी प्रजातियों, कम लागत वाले जैविक उर्वरकों तथा कीटनाशकों आदि की खोज सम्मिलित है। इससे निश्चित तौर पर भूमि उत्पादकता मे वृद्धि होगी। भारत सरकार द्वारा गैट-९४ के डकल

प्रस्तावो के स्वीकार कर लिए जाने के बाद इस प्रकार के प्रयासो मे अधिक तेजी लाए जाने की आवश्यकता है। यदि हमारे देश के कृषि वैज्ञानिको एव शोधकर्ताओ घरेलू स्तर पर ऐसी प्रजातियॉ विकसित करने मे असफल रहे जो अधिक उपज देने के साथ-साथ रोग न लगने वाले हो तो अन्तत भारतीय कृषको को बहुराष्ट्रीय कम्पनीयो द्वारा विकसित बीजो को ही क्रय करने के लिए बाध्य होना पडेगा और इसके लिए वे पेटेन्ट अधिकारो के तहत अधिक मूल्य देगे।

प्रौद्योगिकीय सुधारो के द्वारा फसल प्रतिरूपण, बहुफसली प्रणाली, एक ही वर्ष मे एक से अधिक फसल लेने की व्यवस्था नई तकनीक के आगतो, समुन्नत बीज, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, सिचाई आदि के सम्मिश्रण आदि को अपनाना सुगम हो जाएगा, और इससे कृषि उत्पादन एव उत्पादकता मे निश्चित रूप से वृद्धि होगी, लेकिन इतना ही पर्याप्त नहीं है। कृषि को एक उद्योग के रूप मे स्थापित किए बिना कृषि उत्पादकता के उन स्तरो को प्राप्त नहीं किया जा सकता है जो विकसित देशो को प्राप्त है। कृषि मे निवेश बढाए जाने की तीव्र आवश्यकता है। सरकारी निवेश के द्वारा कृषि के लिए आवश्यक सुविधाएँ सिंचाई, ग्रामीण, परिवहन, बैकिग, फसल बीमा, विपणन एवं अनुसधान और विकास, विकसित की जानी चाहिए। इसके साथ-साथ सस्थागत कृषि, साख सुविधा का विस्तार इस सीमा तक किया जाना अधिक श्रेयस्कर होगा कि वह किसानो को कृषि एव गैर कृषि दोनो ही प्रकार की साख आवश्यकताओ को पूरा करने मे सक्षम हो।

किसानो को उनके उत्पाद की ऊँची कीमत प्राप्त हो जाना उनके पैदावार को बढाने के लिए प्रेरित करेगा। किसानो को कृषि सामानो की कीमतो मे होने वाले उतार-चढ़ाव की पूरी-पूरी जानकारी प्रदान करना। उन्हे कृषि जिसो के व्यापार मे लगे बिचौलियो के चगुल से मुक्त कराया जाना, जब तक उन्हे उनकी उपज की पूरी-पूरी कीमत न मिल रही हो उस समय तक उनके उत्पाद के भण्डारण की वैज्ञानिक व्यवस्था करना तथा उसकी जमानत पर उन्हे अल्पकालीन ऋण मुहैया कराना आदि कुछ अन्य ऐसे उपाय हैं जिनको अपनाने से परोक्ष रूप से कृषि उत्पादकता मे वृद्धि होगी।

नई चुनौतियाँ और नई कृषि नीति

भारत सरकार के कृषि मन्त्रालय द्वारा स्वतन्त्र भारत की पहली कृषि नीति १९९४ का प्रारूप प्रस्ताव ससद के विचारार्थ लोक सभा मे प्रस्तुत किया गया। इस सौदे मे योजनाकाल मे कृषि उपलब्धियो का जिक्र करते हुए यह स्वीकार किया गया है कि यदि कृषि विकास की दर पहले की भॉति २ ५ प्रतिशत वार्षिक के आस-पास रही तो भविष्य मे देश के समक्ष खाद्यान्न सकट पुन उत्पन्न हो सकता है इस दर से वर्तमान शताब्दी के अत तक एक अरब के स्तर पहुॅच चुकी जनसख्या मे उदरपूर्ति मे भारतीय कृषि लगभग असफल रहेगी। इसी को ध्यान मे रखते हुए तथा ग्रामीण क्षेत्र मे विद्यमान निर्धारित अभी हाल ही मे अर्थव्यवस्था का उदारीकरण, व्यापार का वैशवीकरण, ग्रामीण रोजगार, आय मे निर्यात बढाने के लिए अपनाई गई रणनीति आदि के सन्दर्भ मे यह आवश्यक हो गया है कि कृषि के सर्वागीण एव सतुलित विकास हेतु एक स्पष्ट नीति निर्धारित की जाए।

नई कृषि नीति के प्रारूप मे कहा गया है कि “विगत चार दशको मे कृषि उत्पादन मे कई गुना वृद्धि हुई है, लेकिन इसमे विभिन्न क्षेत्रो तथा फसलो के मामले मे अनुसधान एव विकास की प्रक्रिया भी असमान रही है, इसलिए नई नीति का उद्देश्य बागवानी, पशुपालन, मत्स्य पालन एव रेशम कीट पालन सहित सम्पूर्ण कृषि की आर्थिक सक्षमता एव चहुॅमुखी विकास को तेज करना होगा। यह नीति विकास मे निजी निवेश को अधिक महत्व प्रदान करते हुए खेती को आवश्यक सहायता प्रदान किया जाएगा ताकि ग्रामीण क्षेत्रो के लोग इस सम्मानजनक व्यवसाय को अपना जीवन स्तर ऊँचा उठाने के लिए प्रयुक्त करे।

नई कृषि नीति मे निम्नलिखित चुनौतियॉ दर्शायी गई है ।

- ❖ तेजी से बढती जनसख्या को खाद्यान्न सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए कृषि उत्पादन एव उत्पादकता मे वृद्धि होगी।
- ❖ अब तक अदोहित सम्भाव्य क्षेत्रो का विकास करना, इसके लिए पूर्वी पर्वतीय, वर्षाहीन एव सूखे की सम्भावना वाले क्षेत्रो मे उभरे असन्तुलित विकास को ठीक करना।

- भूमि पर बढते जैविक दवाब के कारण पैदा हो रहे परिस्थितिकीय असन्तुलन, भूमि एव जल सशाधनो के क्षरण की चुनौतियो का सामना करना।
- भूमि के अविभाजन एव अपखण्डन को रोकना।
- कृषि के विविधीकरण एव बागवानी, मत्स्य पालन, डेयरी, पशुपालन, कुककुट पालन, मधुमक्खी पालन एव रेशम कीट पालन को प्रोन्नती करके ग्रामीण क्षेत्रो मे कुपोषण और अर्द्ध-रोजगार, अल्प रोजगार की समस्याओ के निराकरण पर ध्यान देना।
- प्रसस्करण, विपणन एव भण्डारण सुविधाओ मे सुधार लाकर कृषि मे मूल्य जोड की प्रक्रिया को तेज करना। इसके लिए कृषि प्रसस्करण उद्योगो को बढावा देना।
- कृषि साख आगतो की आपूर्ति, भण्डारण विपणन एव प्रसस्करण की सुवधिाओ का प्रसार करने के लिए सहकारिताओ को पुनर्जीवित करना तथा उनमे लोकतान्त्रिक पद्धति लागू करना,
- वर्षाहीन, सूखे की सम्भावना वाले तथा सिचित क्षेत्रो मे स्थान विशिष्ट एवं आर्थिक रूप से सफल प्रौद्योगिकियॉ का विकास करने के लिए कृषि अनुसधान प्रणाली पर ध्यान केन्द्रित करना तथा कृषको की समुन्नत खेती तकनीको की शिक्षा एव प्रशिक्षण हेतु सस्थागत ढॉचा मजबूत करना।
- समस्त कृषि समुदाय के लिए विज्ञान एव प्रौद्योगिकी क्षेत्र मे वैज्ञानिक अनुसधान को बढ़ावा देना।
- खेतिहर महिलाओ, आदिवासी क्षेत्रो मे रह रहे किसानो एव ग्रामीण समाज के अन्य उपेक्षित वर्गो की आय मे सकारात्मक वृद्धि करने तथा उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने की दृष्टि से उनकी आगत आवश्यकताओ एव प्रौद्योगिकी प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान देना।
- घरेलू बाजारो एव निर्यातो दोनो के लिए प्रसस्करण एव विपणन की सहायक सुविधाओ सहित वर्षाहीन एव सिचित बागवानी पुष्प, सुगन्धित औषधीय-पौधो और बागवानी फसलों के विकास मे तेजी लाना।
- सीमान्त भूमि के दक्ष उपयोग को बढ़ावा देना तथा फार्म वानिकी को प्रोत्साहित करना।
- सिचाई सम्भाव्यता के उपयोग को बढ़ाना तथा जल सरक्षण एव इसके प्रभावी प्रबन्धन को प्रोन्नत करना।

❖ किसानो को कृषि आगतो-समुन्नत बीज, रासायनिक उर्वरक कीटनाशक एव कृषि यन्त्र को उनके गॉव मे अथवा उसके निकट ही उपलब्ध करना।

प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन

आजादी के बाद के दौर मे कृषि उत्पादन मे करीब चार गुने से ज्यादा की शानदार बढोत्तरी हुई और अनाज की पैदावार, जो १९५० के दशक के प्रारभ मे ५ करोड टन थी। २ ५ प्रतिशत वार्षिक की चक्रवृद्धि दर से बढकर इस वक्त २० करोड टन के स्तर पर पहुँच चुकी है।[25] कहाँ एक वक्त हमे अनाज के लिए दुनिया के और देशो का मोहताज रहना पड़ता था और कहाँ आज हम खाद्यान्न उत्पादन मे न सिर्फ आत्मनिर्भर ही नहीं हैं बल्कि अनाज निर्यात करने वाले देशो मे हमारी गिनती होती है। देश को इस स्थिति तक पहुँचाने मे हरित क्रान्ति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मगर आज हमे सदाबहार हरित क्रान्ति की आवश्यकता है। इसी सन्दर्भ मे कृषि के क्षेत्र मे स्थायित्व लाने का मुद्दा काफी महत्वपूर्ण हो गया है। भारत जैसे विकासशील देश मे जहाँ आबादी बेतहाशा बढ़ रही है और जल व भूमि ससाधन सीमित है। आगामी वर्षो मे कृषि उत्पादकता लगातार बढाना बेहद जरूरी है। इस स्थिति मे टिकाऊ खेती के लिए प्राकृतिक ससाधनो का प्रबधन बडा अच्छा तरीका हो सकता है। अनाज की बढती हुई मॉग को पूरा करने के लिए कृषि सम्बन्धी गतिविधियो मे बढ़ोत्तरी के लिए बडी कठिन स्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है। प्राकृतिक ससाधनो का समुचित प्रबध न होने तथा उत्पादकता बढ़ाने के लिए खेती मे काम आने वाले रसायनो का अधाधुध उपयोग करने से कृषि का टिकाऊपन-यानी उत्पादन मे बढ़ोत्तरी का सिलसिला लगातार जारी रखना आसान काम नहीं है।

आखिर कृषि के क्षेत्र में स्थायित्व या टिकाऊपन का क्या अर्थ है? स्थायी प्रणाली का अर्थ ऐसी प्रणाली से है जिसमे उत्पादन मे लगातार वृद्धि हो। अत कहा जा सकता है कि निवेश मे बढोत्तरी न होने पर भी अगर लम्बे समय तक उत्पादन मे वृद्धि का सिलसिला जारी रहता है तो उस कृषि प्रणाली को स्थायी या टिकाऊ कहा जा सकता है। इसे बेहतर तरीके से समझने के लिए सीजी आई ए आर द्वारा १९८८

---

[25] कुमारी प्रियका, प्राकृतिक ससाधनो का प्रबधन, रोजगार समाचार, खण्ड २४, अंक ४६, पृष्ठ ३२, नई दिल्ली १२-१८ फरवरी २०००

मे दी गई परिभाषा अधिक प्रासगिक होगी। इसमे कहा गया है कि स्थायी कृषि मनुष्य की बदलती आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए ससाधनो की खेती मे सफलता पूर्वक उपयोग को कहा जा सकता है बशर्ते पर्यावरण की गुणवता बनी रहे या इसमे वृद्धि हो और प्राकृतिक ससाधनो का भी सरक्षण होता रहे।[26]

इस परिभाषा के चार मुख्य भाग है ।

- समय के साथ-साथ मनुष्य की बदलती आवश्यकताएँ
- प्राकृतिक ससाधनो का समुचित प्रबधन
- पर्यावरण की गुणवता बनाए रखना या इसमे सुधार, और
- प्राकृतिक ससाधनो का सरक्षण

इनके आलावा स्थायी कृषि के अन्तर्गत आर्थिक उपयुक्तता भी शामिल है। **डोनाल्ड एंड डोनल्ड (खाद्य तथा कृषि संगठन, 1995)** के अनुसार खेती की किस्म से आमदनी मे वृद्धि के साथ-साथ बढती हुई मॉग को आर्थिक पर्यावरण सबधी तथा सामाजिक दृष्टि से लाभप्रद लागत पर अनिश्चित काल तक पूरा किया जा सकता है। स्थायी प्रणाली के तहत ससाधनो का इस्तेमाल इतनी कुशलता और दूरदर्शिता से किया जाता है कि उत्पादकता तथा लाभप्रदता अधिकतम रहे। सही अर्थो मे उत्पादक कृषि के अन्तर्गत दीर्घकालीन स्थायित्व जरूरी है और इसके लिए आर्थिक दृष्टि से उपयुक्त प्राकृतिक ससाधन, सामाजिक स्वीकार्य उत्पादन प्रणाली तथा पर्यावरण का सरक्षण आवश्यक है।[27]

उपलब्धियाँ और भविष्य की चुनौतियाँ :- अनाज का उत्पादन सन् १९५०-५१ मे ५ ०८ करोड से बढकर आज १९ २४ करोड़ हो चुका है। जिससे हरित क्राति की सफलता का पता चलता है। इसी अवधि मे उत्पादकता भी बढी है और ६४४ क्रि ग्रा प्रति हेक्टेयर (१९४९-५०) से १५५१ क्रि ग्रा प्रति हेक्टेयर के वर्तमान स्तर तक पहुॅच गई है।[28] टेक्नोलॉजी के विकास के समन्वित प्रयासो से कृषि से सम्बन्धित

---

26 कुमारी प्रियका, प्राकृतिक ससाधनो का प्रबधन, रोजगार समाचार, खण्ड २४, अक ४६, पृष्ठ ३२, नई दिल्ली १२-१८ फरवरी २००० ।

27 वही पृष्ठ ३२, नई दिल्ली १२-१८ फरवरी २००० ।

28 वही पृष्ठ ३२, नई दिल्ली १२-१८ फरवरी २००० ।

अन्य क्षेत्रो मे भी शानदार सफलताएँ प्राप्त की गई है। दूध के उत्पादन के क्षेत्र मे श्वेत क्राति, तिलहनो के उत्पादन मे पीली क्राति, कदवाली फसलो के क्षेत्र मे गोल क्राति और मछली उत्पादन के क्षेत्र मे नील क्राति हुई है। प्रति व्यक्ति भोजन और कैलोरी की उपलब्धता से भी बढोत्तरी का साफ पता चलता है।

कृषि के क्षेत्र मे अनुसधान और विकास के प्रयासो की दृष्टि से आज भारत अनाज उत्पादन मे दुनिया का अग्रणी देश बन गया है। आज जब खाद्यान्न उत्पादन बढकर १९ २ करोड टन के स्तर पर पहुँच गया है, हम सिर्फ आत्म निर्भर ही नहीं हुए है, बल्कि देश मे ३ ५ करोड टन अनाज का सुरक्षित भडार भी बना लिया गया है। गेहूँ और चावल जैसी दो प्रमुख फसलो का उत्पादन क्रमश ८ २ करोड टन और ६ ६५ करोड टन तक जा पहुँचा है।[29] इस तरह भारत इनके उत्पादन मे दूसरे स्थान पर है। इन दो फसलो की पैदावार मे तेजी से बढोत्तरी होने से देश मे खाद्य सुरक्षा सुदृढ़ हुई है। बाजार मे पर्याप्त अनाज बिक्री के लिए उपलब्ध होने से इनकी कीमते कम हुई है और आम आदमी को आसानी से सुलभ होने लगा है। भारत फलो, दलहनो, चाय, पटसन और दूध के सबसे बडे उत्पादक के रूप मे उभरकर सामने आया है। १९९७-९८ मे ५ करोड टन फलो का उत्पादन कर भारत ने ब्राजील को पछाड दिया है और ७ २ करोड़ टन सब्जियॉ पैदा कर उसने चीन के बाद दूसरा स्थान प्राप्त किया है।[30] भारत सिर्फ मात्रा की दृष्टि से ही आगे नहीं बढा है बल्कि विविधता की दृष्टि से भी अग्रणी है। यहॉ करीब ५० अलग-अलग किस्म की सब्जियॉ उगायी जाती है। आलू और कपास उत्पादन मे भी हम दुनिया मे आगे है। हमारे कुल कृषि उत्पादन मे पशुपालन और दुग्ध उत्पादन का योगदान करीब ३० प्रतिशत के बराबर है। भारत मे दुधारू पशुओ की सख्या विश्व मे सबसे ज्यादा है और १९९७-९८ मे ७ ४ करोड टन दूध के उत्पादन का रिकार्ड कायम कर हमने अमरीका को पीछे कर दिया है और पहले स्थान पर आ गए हैं। इसी तरह १९९७-९८ मे ५२ लाख टन मछली उत्पादन करके दुनिया मे सातवॉ स्थान प्राप्त कर लिया है।[31]

---

[29] कुमारी प्रियका, प्राकृतिक ससाधनो का प्रबधन, रोजगार समाचार, खण्ड २४, अक ४६, पृष्ठ ३२, नई दिल्ली १२-१८ फरवरी २००० ।

[30] वही पृष्ठ ३२, नई दिल्ली १२-१८ फरवरी २००० ।

[31] वही पृष्ठ ३२, नई दिल्ली १२-१८ फरवरी २००० ।

विगत कुछ वर्षो मे भारत ताजा तथा प्रसस्कृत खाद्य पदार्थो के प्रमुख निर्यातक के रूप मे भी उभरकर सामने आया है। बेहतरीन किस्म का बासमती चावल, मसाले, काजू, मॉस और मॉस उत्पाद और कट फ्लावर्ष (फूल उत्पादन) के क्षेत्र मे भी हमने अतराष्ट्रीय बाजार मे अच्छी सफलता प्राप्त की है । तमाम आकर्षक उपलब्धियो के बावजूद तेजी से बढती हुई मॉग को पूरा करने मे हमे कडी चुनौती का सामना करना पड रहा है। पिछले ५ सालो से हमारा खाद्यान्न उत्पादन १९ करोड तक के स्तर पर अटका हुआ है।[32] इसमे वृद्धि की दर बडी धीमी है। गेहूँ और चावल जैसी प्रमुख फसलो की पैदावार तो पिछले दशक मे क्रमश १ प्रतिशत और ० १ प्रतिशत की दर से बढी है। निवेशो की इस्तेमाल की कार्यकुशलता लगातार घट रही है जिससे निवेश और उत्पादन का अनुपात लगातार कम हो रहा है। उत्पादकता के विश्व औसत की तुलना मे हमारी उत्पादकता बहुत कम है। जहॉ तक ससाधनो का सवाल है क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत के पास सिर्फ २ प्रतिशत जमीन ० ५ प्रतिशत बन क्षेत्र और ० ५ प्रतिशत चारागाह है तथा यहॉ दुनिया मे कुल वर्षा जल का सिर्फ १ प्रतिशत बारिश के रूप मे प्राप्त होता है। मगर इतने सीमित ससाधनो से उसे दुनिया के १४ प्रतिशत मनुष्यो और १५ प्रतिशत पालतू पशुओ का निर्वाह करना होता है।[33]

अनुमान है कि सन् २०२० तक भारत की जनसख्या में १३ करोड की बढोत्तरी हो जाएगी और देश को हर साल ३२ ५ करोड़ टन खाद्यान्न की आवश्यकता पड़ने लगेगी। इसे पूरा करने के लिए हमे अनाज के उत्पादन मे हर साल ५६ लाख टन अतिरिक्त उत्पादन करना होगा। जबकि पिछले ४० वर्षो मे हम ३१ लाख टन अतिरिक्त खाद्यान्न का ही उत्पादन करते आए है। यह काम आसान नहीं हैं। उपभोग के वर्तमान रूझान को देखते हुए हमे सन् २००१-२ तक २२ करोड टन और २००६-७ तक २४ ३२ करोड टन अनाज की जरूरत पडेगी। इन दो वर्षो मे चावल की अनुमानित जरूरत ९ ४ करोड़ टन और १० ३५ करोड टन तथा गेहूॅ की मॉंग ७ ५७ करोड टन और ८ ४३ करोड टन और २००६-७ मे २ १५ करोड़ टन पहुँच

---

32 कुमारी प्रियका, प्राकृतिक ससाधनो का प्रबधन, रोजगार समाचार, खण्ड २४, अक ४६, पृष्ठ ३२, नई दिल्ली १२-१८ फरवरी २००० ।

33 वही पृष्ठ ३२, नई दिल्ली १२-१८ फरवरी २००० ।

जाने का अनुमान है। खाद्य तेलो और फल-सब्जियो की मॉग क्रमश ७९ लाख टन और ९५ लाख टन, ९ ३ करोड टन और ७ ०५ करोड टन रहेगी। इसे पूरा करना एक बडी चुनौती होगा।[34]

कृषि की वर्तमान प्रणाली यानी हरित क्राति के बाद की प्रणाली आर्थिक विकास की ऐसी नीति पर आधारित है जिसमे व्यावसायिक उद्देश्यो के लिए उच्च उत्पादकता पर जोर दिया जाता रहा है। इसके अन्तर्गत कृषि योग्य भूमि पर सघन खेती करने, एक ही फसल के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र के विस्तार और कीटनाशको, उर्वरको तथा कृत्रिम पोषक तत्वो जैसे कृषि रसायनो के इस्तेमाल पर जोर दिया गया है। उत्पादन बढाने की इस तरह की एक तरफा विधियो से कई खराबियॉ पैदा हुई है। जल और भूमि ससाधनो मे गिरावट आई है, पर्यावरण प्रदूषण बढा है और जलवायु मे बदलाव के लक्षण नजर आने लगे है। कृषि की स्थायी प्रणाली विकसित करने के लिए ये बडी चुनौतियॉ है।

प्राकृतिक स्रोत्रो की क्षमता का ध्यान रखे बिना उनके अधाधुध इस्तेमाल तथा बिना पूरी जानकारी हासिल किए कृषि रसायनो के गलत उपयोग से यह स्थिति उत्पन्न हुई है।

वर्तमान कृषि प्रणाली में बदलाव :- आज जब अधिक उत्पादन देने वाली लाभप्रद और अधिक टिकाऊ कृषि प्रणाली की आवश्यकता महसूस की जा रही है तो खेती के उन्नत तौर तरीको के बारे मे कई अवधारणाऍ सामने आ रही है, इन सबके पीछे बुनियादी धारणा उत्पादन मे बढोत्तरी बनाए रखना है।

समन्वित सघन कृषि प्रणाली :- इस प्रणाली के अन्तर्गत कृषि ससाधनो का उपयोग इस तरह किया जाता है कि यह पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित हो। इस तरह का सघन उपयोग जानकारी की अधिकता पर अधारित तकनीको पर आधारित होना चाहिए न कि पूॅजी अधिकता पर। इसके अन्तर्गत बाजार से खरीदे गए रसायनो के स्थान पर खेतो मे उगाये गए जैव ससाधनों को अपनाया जाता है। इससे पोषक तत्वो के बार-बार इस्तेमाल की सभावना बढ जाती है।

---

[34] कुमारी प्रियका, प्राकृतिक ससाधनो का प्रबधन, रोजगार समाचार, खण्ड २४, अक ४६, पृष्ठ ३२, नई दिल्ली १२-१८ फरवरी २००० ।

इसी सन्दर्भ मे एक अन्य शब्द "**सुनिश्चित खेती**" भी प्रचलन मे आया है। इसके अन्तर्गत प्रायोगिक डिजाइन और कृषि वैज्ञानिक तकनीको के बारे मे एक व्यवस्थित दृष्टिकोण अपनाया जाता है। इसमे बहुआयामी नीति के साथ-साथ भूमि व जल ससाधनो के वैज्ञानिक तरीके से उपयोग की आवश्यकता पडती है। सुनिश्चित कृषि के माध्यम से हम ससाधनो तथा उत्पादन तकनीको का बेहतर इस्तेमाल सुनिश्चित कर सकते हैं। इस अवधारणा के अनुसार मिट्टी के परीक्षण के आधार पर उर्वरको का इस्तेमाल किया जाता है। इससे जहॉ उर्वरको का कम से कम उपयोग होता है वही रसायनो से जमीन को होने वाला नुकसान भी न्यूनतम हो जाता है और फसलों पर रसायनो का जहरीला असर कम हो जाता है। इसी तरह जमीन और सिचाई के साधनो की कमी की समस्या को दूर करने के लिए जमीन के सर्वेक्षण, उसे समतल बनाने तथा सूक्ष्म सिचाई प्रणाली के विकास का सहारा लिया जाता है। जमीन मे पोषक तत्वो की कमी को पूरा करने के लिए फसलो की बुवाई अदला बदली करके की जाती है और बारी-बारी से अनाज और दलहनी फसले बोई जाती है।

एक अन्य शब्द "कार्बनिक खेती का भी खूब इस्तेमाल हो रहा है। इसका अर्थ है कृत्रिम रूप से बनाए गए उर्वरको, कीटनाशको और अन्य रसायनो का उपयोग किए बिना खेती का तरीका। इस तरह हम कह सकते है कि भविष्य मे जो हरित क्राति होगी उसके लिए हमे खेती को दूरदर्शितापूर्ण उपयुक्त तथा पारम्परिक तौर तरीको का इस्तेमाल करना होगा।

मृदा प्रबंध :- बजर जमीन को उपजाऊ बनाने जैसे जमीन के समुचित उपयोग के तरीको से कृषि योग्य क्षेत्र मे बढोत्तरी की जा सकेगी। इससे उत्पादकता बढाने मे भी मदद मिलेगी। खेती के विभिन्न तौर तरीको के अन्तर्गत जमीन को उर्वराशक्ति पर असर डालने वाली भौतिक बाधाओ का पता लगाया जाना चाहिए। और विभिन्न विधियो से उनको दूर किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए अधिक रिसाव वाली जमीन को सुधारा जाना चाहिए। सख्त मिट्टी को गहरी जुताई से नरम बनाया जाना चाहिए तथा अम्लीय और क्षारीय भूमि की समस्या को दूर किया जाना चाहिए। जैव तकनीको से मिट्टी के कटाव को रोकने के साथ-साथ मरूस्थलीकरण और जमीन के बीहड़ मे बदलने को भी कुछ हद तक रोका जा सकता है। इसी तरह कृषि प्रबधन के समुचित तरीको से पानी के भराव वाले इलाकों को खेती के योग्य बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष :-

योजना काल मे भारतीय कृषि की उपलब्धियॉ इस दृष्टि से तो ठीक कही जा सकती है कि आज भारत खाद्यान्न उत्पादन के मामले मे तो आत्मनिर्भर है तथा देश के कुल राष्ट्रीय आय मे भी कृषि का योगदान एक-तिहाई के लगभग है और भारतीय कृषि ६०करोड से अधिक जनसख्या के जीवन यापन का एक अग भी है लेकिन जब भारतीय कृषि की उत्पादकता की तुलना विकसित देशो से की जाती है तो वह अत्यधिक पिछडी हुई दशा मे प्रतीत होती है। भारतीय कृषि की नीची उत्पादकता के लिए सस्थागत प्रौद्योगिकीय एव नीतिगत कारक मुख्य रूप से उत्तरदायी है। पिछले वर्षो मे कृषि विकास के लिए जो भी नीतियॉ अपनाई गई है वे मुख्य रूप से उत्तरदायी है। तथा सम्पूर्ण कृषि व्यवस्था के एक क्षेत्र तक ही सीमित रही है। कभी खाद्यान्न उत्पादन मे आत्म निर्भरता पर जोर दिया गया है तो कभी तिलहन उत्पादन को बढ़ाने की बात कही गई है। अबतक की नीतियॉ का सबसे बडा दोष यह रहा है कि इसमे समुचित रूप से कहीं भी कृषि उत्पादकता बढाने की बात पर जोर नहीं दिया गया है। यदि आने वाली दिनो मे १०० करोड से अधिक होने वाली विशाल जनसख्या की उदरपूर्ति के साथ उसके जीवन स्तर को ऊँचा उठाना है तो कृषि उत्पादकता को बढ़ाकर विश्व के विकसित देशो के स्तर पर लाना होगा।

भारत में कृषि क्षेत्र उपेक्षा के बावजूद सम्भावनापूर्ण है

नि सदेह भारतीय कृषि विकास की दर पिछले कुछ वर्षो से प्रतिकूल रही है, जबकि इस अवधि मे देश मे मानसून की स्थिति अनुकूल ही रही है। आठवीं पचवर्षीय योजनावधि के प्रांरभिक काल मे कृषि विकास की दर ३ ४ प्रतिशत थी जो कि वर्ष १९९५-९६ तक घट कर ० ९ प्रतिशत ही रह गई है।[35]

भारतीय कृषि नीति निर्धारक के लिए यह गिरावट चिताजनक बात है। दूसरी ओर कृषि क्षेत्र मे आत्मनिर्भरता प्राप्त करके नई विश्व व्यापार व्यवस्था मे अपने आपको स्थापित करना है। जबकि भारत के कृषि अर्थशास्त्रियो का यह भी मानना है कि इस गिरावट का प्रमुख कारण यह है कि गत कुछेकं वर्षों से कृषि क्षेत्र मे

---

[35] *बनर्जी शुभकर, भारत मे कृषि क्षेत्र उपेक्षा के बावजूद सम्भावनापूर्ण हैं । पृष्ठ सख्या १५९९, प्रतियोगिता दर्पण आगरा अप्रैल १९९८ ।*

निवेश करने से लोग कतराते हैं। हालाकि सकल घरेलू मुद्रा निर्माण मे कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी मे भी कमी आई है, लेकिन सकल मुद्रा निर्माण मे कृषि क्षेत्र की कम हिस्सेदारी का मुख्य कारण यह था कि कृषि ने दुसरे क्षेत्रो की अपेक्षा निवेशको को कम आकृष्ट किया । इसके निम्नलिखित दो प्रमुख कारण थे।

(१) योजनागत खर्च मे कृषि की भागीदारी मे कमी होती गई।

(२) दूसरे क्षेत्रो की तुलना मे कृषि क्षेत्र मे निवेश से लाभ अपेक्षाकृत कम होता है।

उपर्युक्त कारणो के परिणामस्वरूप सार्वजनिक क्षेत्रो द्वारा कृषि क्षेत्र मे किया जा रहा व्यय मुख्य तौर से उर्वरको पर सब्सिडी बढाने, सिचाई रसायनो, कृषि उपकरणो, बिजली मे रियायत तथा ऋण प्रदान करने मे किया जा रहा है। दूसरी और अपेक्षाकृत कम लाभ होने की वजह से ही निजी निवेशक कृषि के प्रति रूचि नहीं लेते हैं।

भारत मे वर्ष १९९१ के बाद कृषि व्यापार की परिस्थिति मे काफी सुधार हुआ, कृषि लागत तथा कीमत आयोग द्वारा हाल मे एक सर्वेक्षण किया गया। इसकी रिपोर्ट के अनुसार कृषि व्यापार सूचकाक मे उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। वर्ष १९९०-९१ की अवधि मे यह ८९ ९ था जबकि १९९४-९५ की अवधि मे ९८ ७ तक बढ गया परन्तु इस सराहनीय वृद्धि के बावजूद अब भी लाभ की दृष्टि से यह क्षेत्र दूसरे उद्योग से काफी पीछे चल रहा है।[36]

कृषि व्यापार मे वर्ष १९९१ से ही उल्लेखनीय वृद्धि शुरू हुई जिसका मुख्य कारण यह रहा कि सरकार द्वारा अनाजो की खरीद मूल्यो में काफी वृद्धि की गई। वित्तीय वर्ष १९९३ तथा १९९४ मे गेहूँ की न्यूनतम खरीद मूल्य ३३० रू० से बढ़ाकर ३८० रू० प्रति क्विटल कर दिया गया जो वर्ष १९९६-९७ मे ४१५ रू० + ६० रू० बोनस (कुल ४७५ रू०) किया गया है, इसी अवधि मे चावल के भी खरीद मूल्य बढाकर ३१० रू० से ३६० रू० तथा १९९६-९७ मे बढ़ाकर ३८० रू० कर दिया गया।[37]

---

[36] बनर्जी शुभकर, भारत मे कृषि क्षेत्र उपेक्षा के बावजूद सम्भावनापूर्ण हैं । पृष्ठ सख्या १५९९, प्रतियोगिता दर्पण आगरा अप्रैल १९९८ ।

[37] वही, पृष्ठ सख्या १५९९, प्रतियोगिता दर्पण आगरा अप्रैल १९९८

खरीफ फसलो के समर्थन मूल्य फसल वर्ष १९९५-९६ की तुलना मे फसल वर्ष १९९६-९७ हेतु मूल्यो मे निम्न वृद्धि की गई है।

तालिका-1-7

खरीद फसलों के समर्थन मूल्य

फसल	फसल वर्ष 1995-96	फसल वर्ष 1996-97	वृद्धि रू0/ कु0
धान (साधारण)	३६०	३८०	२०
ज्वार/बाजरा	३००	३१०	१०
दाले	८००	८४०	४०
मूंगफली	९००	९२०	२०
सूरजमुखी	९५०	९६०	१०
तिल	८५०	८७०	२०
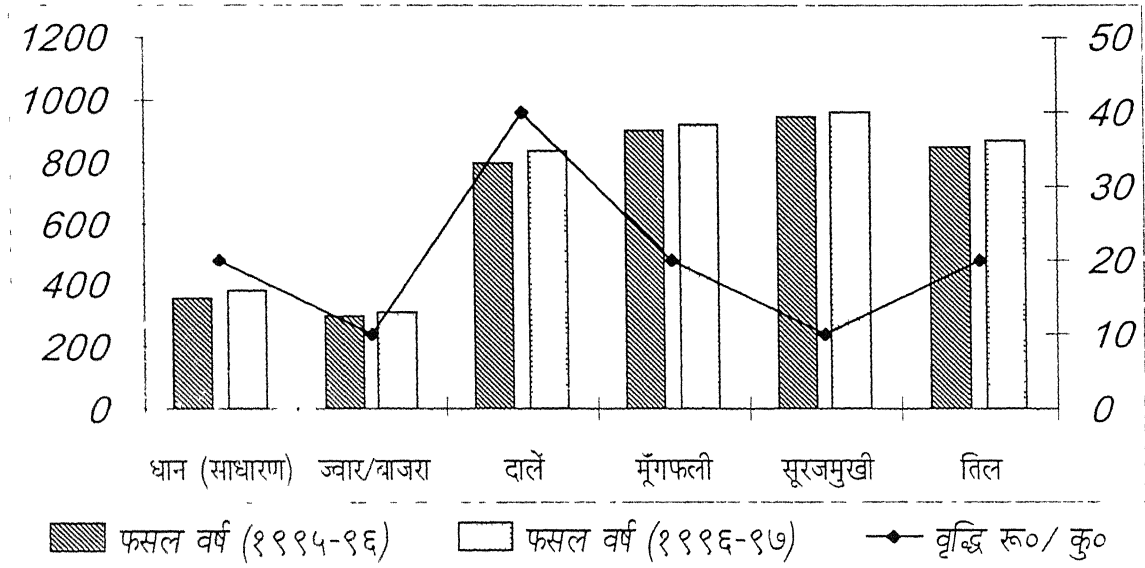
स्रोत - प्रतियोगिता दर्पण आगरा अप्रैल १९९८

रवि फसलो के लिए विपणन वर्ष १९९६-९७ (फसल वर्ष १९९५-९६) की तुलना मे विपणन वर्ष १९९७-९८ (फसल वर्ष १९९६-९७) हेतु भारत सरकार के कृषि लागत एवं मूल्य आयोग द्वारा

१९ अक्टूबर १९९६ को न्यूनतम समर्थन मूल्य मे वृद्धि निम्नलिखित तालिको मे दर्शाई गई है।[38]

तालिका-1-8

रबि फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्यों में वृद्धि

फसल	विपणन वर्ष 1996-97	विपणन वर्ष 1997-98	वृद्धि रू0/कु0
गेहूँ	380	415*	35*
जौ	294	305	10
चना	700	740	40
रैपसीड और सरसो	860	890	30
सूरजमुखी	800	830	30
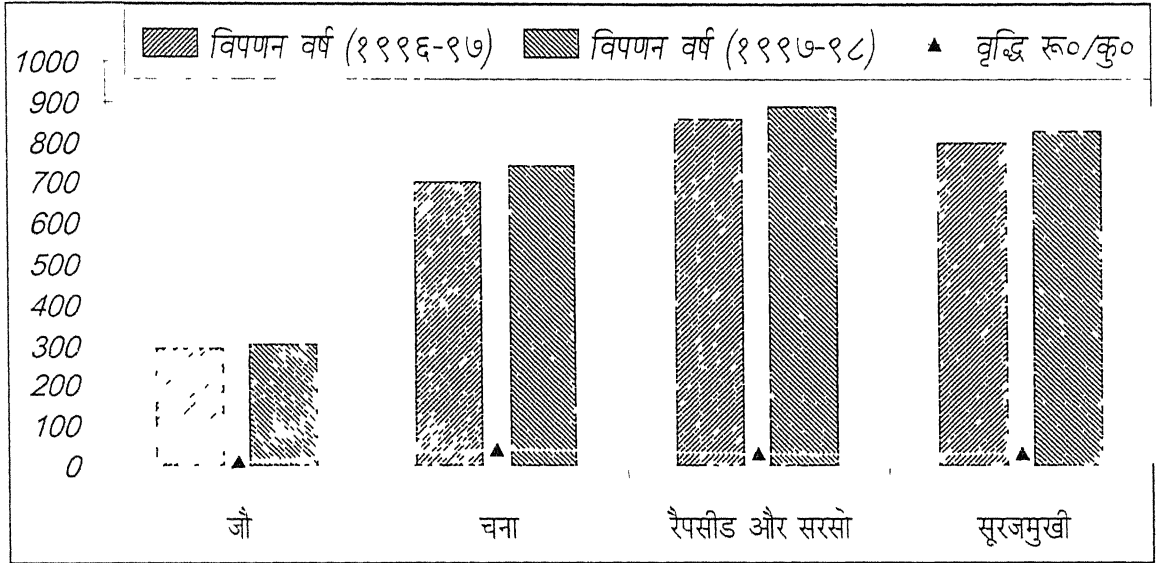
स्रोत - प्रतियोगिता दर्पण आगरा अप्रैल १९९८

* बाद मे ३५ रू० के स्थान पर ६० रू०/कु० कर दी गई अत लेवी मूल्य कुल ४७५ रू०/कु० हो गया।[39]

---

[38] बनर्जी शुभकर, भारत में कृषि क्षेत्र उपेक्षा के बावजूद सम्भावनापूर्ण हैं । पृष्ठ सख्या १५९९, प्रतियोगिता दर्पण आगरा अप्रैल १९९८ ।

[39] वही, पृष्ठ सख्या १५९९, प्रतियोगिता दर्पण आगरा अप्रैल १९९८ ।

स्पष्ट है कि विश्व व्यापार का परिदृश्य बदलता जा रहा है अत इस दृष्टिकोण से कृषि विकास की नई योजना तैयार करके निजी क्षेत्र को निवेश के लिए प्रोत्साहित करना भी जरूरी है। इसके अलावा विश्व व्यापार सगठन को स्थापना के बाद से कृषि उत्पाद के बाजार में भी परिवर्तन की संभावना बन गई है। इस बात से भी इकार नहीं किया जा सकता है कि इस क्षेत्र पर भी विकसित राष्ट्रो का वर्चस्व स्थापित हो चुका है। वैसे विकासशील देशो को भी समान अवसर देने के लिए तथा साथ ही कृषि उत्पाद के निर्यात मे वृद्धि लाने के लिए विश्व व्यापार, सगठन ने भी कई प्रकार के नए कदम उठाने की पहल की है।

उल्लेखनीय है कि कृषि उत्पादन के क्षेत्र मे भारत की क्षमता श्रम शक्ति तथा शोध नेटर्वक भी काफी अच्छी स्थिति मे है। देश मे वर्तमान मे ***I.C.A.R. (Indian Caunci1 of Agricultural Recerch)*** के अन्तर्गत (1) अनुसधान एव विकास हेतु ४० केन्द्रीय सस्थान, ४ राष्ट्रीय ब्यूरो, ३० राष्ट्रीय अनुसधान केन्द्र, १० परियोजना निदेशालय, ८० भारतीय समन्वित परियोजनाएँ, २६ अन्य योजनाएॅ, (2) कृषि शिक्षा हेतु २८ राज्य कृषि विश्व विद्यालय, १ केन्द्रीय विश्वविद्यालय, ४ डीम्ड विश्वविद्यालय [40] (3) कृषि प्रसार हेतु २६१ कृषि विज्ञान केन्द्र, ८ प्रशिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र तथा राष्ट्रीय महिला शिक्षा अनसुधान केन्द्र है जिसमे ३०००० से अधिक कर्मचारी (६२०० कृषि अनुसधान वैज्ञानिक भी सम्मिलत) कार्यरत है।[41] इस प्रकार यह कृषि का बहुत बडा शोध नेटर्वक है। जिसका कृषि उत्पादन बढ़ाने मे काफी योगदान रहा है, और आगे भी रहने की सम्भावना है। यदि भारत की कृषि नीति मे सकारात्मक परिवर्तन की पहल की जाए तो स्थिति और भी आकर्षक तथा लाभप्रद बन सकती है। फलस्वरूप विश्व व्यापार सगठन के द्वारा की गई घोषणाओ तथा प्रयासो का लाभ भारत को मिल सकता है। निम्नलिखित तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि विश्व के कुल खाद्यान्न उत्पादन मे भारत की भागीदारी उल्लेखनीय रही है।

---

[40] बनर्जी शुभकर, भारत मे कृषि क्षेत्र उपेक्षा के बावजूद सम्भावनापूर्ण हैं । पृष्ठ सख्या १६००, प्रतियोगिता दर्पण आगरा अप्रैल १९९८ ।

[41] वही, पृष्ठ सख्या १६००, प्रतियोगिता दर्पण आगरा अप्रैल १९९८ ।

तालिका-1-9

विश्व के कुल उत्पादन में भारत की भागीदारी

प्रमुख खाद्यान्न	विश्व उत्पादन	भारतीय उत्पादन	भागीदारी (प्रतिशत)
धान	524425	110149	21
गेहूँ	524425	55862	10
मक्का	495496	9277	1 9
गन्ना	1078734	241958	22.4
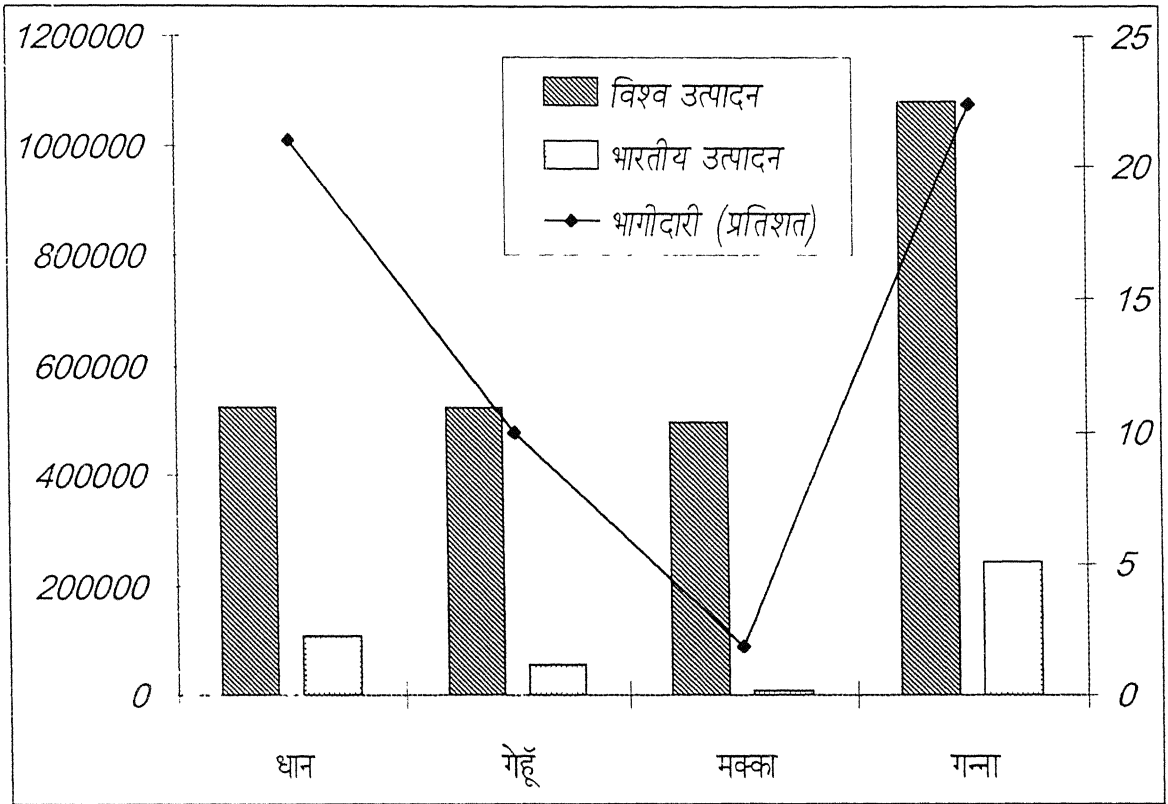
स्रोत प्रतियोगिता दर्पण अप्रैल १९९८ आगरा

भारत मे भूमि का विकास तथा अन्य संशाधनो के विकास पर वास्तविक पहल ६० के दशक से शुरू हुई। प्रारम्भिक स्तर पर मुख्य उद्देश्य केवल खाद्यान्न मे अधिक से अधिक वृद्धि करना था। भारत ने अपने इस उद्देश्य को पूरा करने मे काफी हद तक सफलता भी प्राप्त कर ली है परन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे जरूरत इस बात की है कि उन क्षेत्रो की ओर विशेष ध्यान दिया जाए जहाँ कृषि क्षेत्र मे आशा के अनुरूप

विकास सभव नहीं हो पाया है। उदाहरण के तौर पर पजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश मे गेहूँ की औसत उपज ४ ५,३ ६ एव ३ २ टन/हेक्टयर क्रमश है जबकि उत्तर प्रदेश का सम्पूर्ण औसत मात्र २ ६ टन/हेक्टेयर है।[42] इसी प्रकार बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश एव मध्य प्रदेश का बिलासपुर क्षेत्र जो बिहार से जुडा है वहाँ पर १ ५ टन/हेक्टेयर गेहूँ की औसत उपज है अत इन क्षेत्रो मे गेहूँ की प्रति हेक्टेयर उपज बढाने की काफी सम्भावना है।[43] उदाहरण स्वरूप ऐसी जमीनो मे फल-फूल आदि की खेती करनी चाहिए जिसमे ऐसी ही फसलो का उत्पादन मुख्य रूप से होता है। साथ ही साथ फसल उत्पादन के साथ अब मुर्गी पालन/डेयरी/बतख पालन/सुअर पालन/मशरूम खेती/रेशम उत्पादन/ऐग्रो फोरेस्ट्री आदि का फार्मिग सिस्टम को बढ़ावा दिया जाए, मुनाफा लागत को बढाया जा सकेगा।

वर्ष १९९०-९१ से वर्ष १९९५-९६ की अवधि मे भारत ने खाद्यान्न उत्पादन के क्षेत्र मे काफी उन्नति की है परन्तु विकास दर मे काफी विभिन्नताएँ भी थी जो कि निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है।[44]

तालिका-1-10

भारत में खाद्यान्न उत्पादन विकास का प्रतिशत

वर्ष	कुल खाद्यान्न उत्पादन (मिलियन टन)	उत्पादन वृद्धि * (प्रतिशत में)
1990-91	176.39	3.13
1991-92	168.37	4.15
1992-93	179 48	6.49
1993-94	184.25	2 66
1994-95	191 10	3.71
1995-96	185.00	3.19

* पिछले वर्ष की तुलना मे/ फर्टीलाइजर स्टैटिसटिक्स १९९५-९६ एफ०ए० आई० नई दिल्ली।

[42] बनर्जी शुभकर, भारत मे कृषि क्षेत्र उपेक्षा के बावजूद सम्भावनापूर्ण हैं । पृष्ठ संख्या १६०१, प्रतियोगिता दर्पण आगरा अप्रैल १९९८ ।

[43] वही, पृष्ठ सख्या १६०२, प्रतियोगिता दर्पण आगरा अप्रैल १९९८ ।

[44] वही, पृष्ठ सख्या १६०३, प्रतियोगिता दर्पण आगरा अप्रैल १९९८ ।
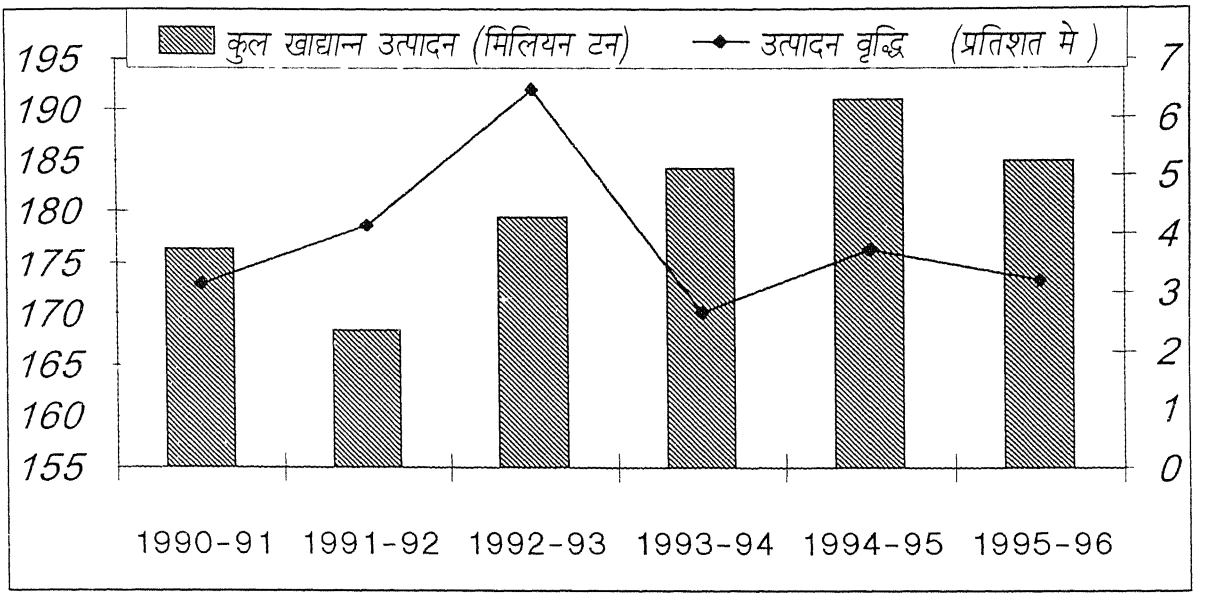
बागवानी के लिए बिहार का कृषि वातावरण काफी उपर्युक्त है इसलिए बिहार मे ऐसी ही कृषि व्यवस्था को प्रोत्साहित करना चाहिए। दूसरी ओर पजाब तथा हरियाणा मे अधिशेष अनाज उत्पादन पर बल देना निरर्थक है क्योकि इन राज्यो की भौगोलिक परिस्थिति ऐसी है कि यहाँ से देश के दूसरे भागों मे अनाजो की ढुलाई मॅहगी तथा कठिन होगी इसलिए इन क्षेत्रो में ऐसी फसल की खेती की जानी चाहिए जो व्यावसायिक दृष्टि से ज्यादा महत्वपूर्ण हो तथा उसकी परिवहन व्यवस्था सस्ती तथा सरल हो।

वर्ष १९९०-९१ से १९९५-९६ तक भारत ने फल तथा सब्जी उत्पादन के निर्यात मे उल्लेखनीय प्रगति की है । जिसका विवरण निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है।[45]

तालिका-1-11

वर्ष	फल एवं सब्जी उत्पाद का निर्यात (करोड़ रू0 में)
1990-91	122 50
1991-92	193 90
1992-93	253 00
1993-94	338.20

45 *बनर्जी शुभकर, भारत मे कृषि क्षेत्र उपेक्षा के बावजूद सम्भावनापूर्ण हैं । पृष्ठ सख्या १६०४, प्रतियोगिता दर्पण आगरा अप्रैल १९९८ ।*

1994-95	348 00
1995-96	470 00

स्रोत - प्रतियोगिता दर्पण अप्रैल १९९८ आगरा

वैसे यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि भारत को कृषि उत्पाद के घरेलू एव विदेशी व्यापार नियत्रण मे थोडी और छूट देनी चाहिए ताकि उन क्षेत्र मे वर्तमान उपलब्ध अवसरो मे और भी बढोत्तरी की जा सके। फिलहाल कृषि निर्यात एव आयात दोनो पर अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष नियत्रण अब भी बना हुआ है इसी नियत्रण के अन्तर्गत आयात निर्यात के लिए लाइसेस प्राप्त करने की जरूरत पडती है। हालाकि १९९१ से ही आर्थिक उदारीकरण की नीति प्रारम्भ की गई, परन्तु फिर भी कृषि तथा कृषि उत्पादन पर किसी न किसी प्रकार से नियत्रण बना हुआ है।

नि:सदेह भारतीय अर्थव्यवस्था मे आर्थिक सुधार की नीति की वजह से व्यापक परिवर्तन हुए, परन्तु इस दृष्टिकोण से कृषि क्षेत्र का विकास अपेक्षाकृत कम ही रहा। इसी बीच मे वर्ष १९९३ मे कृषि उत्पादन के क्षेत्रीय आवागमन पर से प्रतिबन्ध उठा लिया गया। परन्तु अप्रत्यक्ष नियत्रण अभी भी बना हुआ है। हालाकि कृषि क्षेत्र की नीतियो मे भी काफी परिवर्तन किए गए, परन्तु फिर भी अनेक वस्तुओ पर मूल्य निर्धारण मे विद्यमान भिन्नता के बावजूद समर्पित मूल्य नीति अब भी लागू है, वैसे इस परिवर्तित नीति की वजह से खाद्यान्नो (जैसे- गेहूँ, चावल तथा नकदी फसल आदि) मे विशेष लाभ प्राप्त हुआ है।

इस समय महत्वपूर्ण पेटेट बिल भी पारित किया जाता है, ताकि विस्तृत कृषि शोध नेटवर्क को यथा योग्य लाभ प्राप्त हो तथा कृषि शोधो की कीमत भी मिल सके। यह विषय भी काफी महत्वपूर्ण है क्योकि पिछले कुछ वर्षो से इस क्षेत्र मे किए जा रहे खर्चो मे कटौती की जा रही है, परन्तु सर्वाधिक जरूरी बात तो यह है कि कृषि मे सम्बन्धित तकनीकी सुधारो के लाभो को प्रयोगशाला से निकालकर किसानो तक पहुँचाए जाने के लिए यथार्थ रूप से कार्य किए जाए हालाकि कृषि क्षेत्र में और भी तकनीकी सुधार की आवश्यकता है परन्तु इस समय विद्यमान कृषि तकनीकी सुधार भी विश्व स्तर से किसी भी तरह से कम नहीं है, बस जरूरत इस बात की है कि उन्हे आम किसानो तक सुलभ करवाया जाए।

भारत मे कृषि क्षेत्र मे हुए व्यापक विकास के बावजूद इनका लाभ सभी क्षेत्रो के लोगो को समान रूप से उपलब्ध नहीं हो पाया है। अभी भी देश के कई पिछडे राज्यो के किसान कृषि कार्य से पर्याप्त आय प्राप्त करके अपनी आर्थिक स्थिति मे सुधार लाने में सफल हो रहे है। जिसका मुख्य कारण कृषि क्षेत्र के तकनीकी सुधारो की जानकारियो का लाभ देश के हर किसान को उपलब्ध नहीं हो पाया है। दूसरी ओर कृषि मे हो रही अपर्याप्त आय की ही वजह से अब भी रोजगार के लिए लोग शहरो की ओर भाग रहे हैं। यह एक त्रासदीपूर्ण परिस्थिति है, क्योकि कृषि क्षेत्र मे विकास तथा उससे प्राप्त आय की सम्भावनाएँ उज्जवल होते हुए भी कृषि क्षेत्र की अवहेलना जारी है, फलस्वरूप कृषि क्षेत्र मे निवेश को यथायोग्य प्रोत्साहन नहीं मिल पा रहा है, अर्थात सम्भावनापूर्ण परिस्थिति के बावजूद विकास सतोषप्रद नहीं है, जिसे अनुकूल बनाना कोई कठिन कार्य भी नहीं है।

राष्ट्रीय कृषि नीति :-

हमारे राष्ट्र मे कृषि ऐसी जीवन पद्धति और परपरा है जिसने भारत के लोगो के विचार दृष्टिकोण, सस्कृति और आर्थिक जीवन को सदियो से सुन्दर बनाया है। अत कृषि देश के नियोजित सामाजिक आर्थिक विकास की सभी कार्यनीतियो का मूल है तथा इसका केन्द्र बनी रहेगी। न केवल राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि घरेलू खाद्य सुरक्षा के लिए भी आत्म निर्भरता प्राप्त करने तथा निर्धनता स्तर मे तेजी से कमी करने के लिए, आय एव धन सम्पदा के वितरण मे सामजस्य लाने के लिए कृषि का तेजी से विकास आवश्यक है।

स्वतत्रता प्राप्ति के बाद हमारे कृषि मे आशातीत प्रगति हुई है। वार्षिक खाद्यान्न उत्पादन के पिछले ५० वर्षो के ५ करोड़ १० लाख टन से शताब्दी के मोड़ पर २० करोड ६ लाख मिलियन टन तक हो जाने का अनुमान है। इस प्रकार कृषि ने खाद्यान्न मे आत्मनिर्भरता प्राप्त करने तथा हमारे देश मे खाद्यान्न की कमी से बचने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। कृषि की वृद्धि के ढग से अलग-अलग क्षेत्रो, फसलो और कृषक समुदाय के विभिन्न वर्गो का असमान विकास हुआ है तथा कुछ क्षेत्रो मे उत्पादकता स्तर नीचे गिरा है तथा प्राकृतिक ससाधनो का ह्रास हुआ है पूँजी की अपर्याप्तता, अवसरचनात्मक सहायता का अभाव तथा

सचालन पर नियत्रण, भडारण और कृषि क्षेत्र की आर्थिक व्ययवहारता को प्रभावित करती रही है। परिणामत नब्बे के दशक मे कृषि वृद्धि मे गिरावट की प्रवृत्ति देखी गई।

लगातार प्रतिकूल मूल्य व्यवस्था तथा निम्न मूल्य सवर्धन के कारण कृषि एक अलाभप्रद व्यवसाय हो गया है जिसके कारण बहुत लोग कृषि कार्य छोड रहे है तथा ग्रामीण क्षेत्रो से पलायन बढ रहा है। भूमडलीय प्रणाली मे कृषि व्यापार को जोडने की स्थिति मे यह हालात और उग्र हो जाएगी। अत तत्काल उपचारात्मक उपाय करने की आवश्यकता है।

आज लगभग २० करोड भारतीय कृषक और कृषि मजदूर भारतीय कृषि की रीढ़ हैं। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने के बावजूद कृषक समुदाय के कल्याण की बात देश के नियोजको और नीति निर्माताओ की चिता का विषय रही है। कृषि क्षेत्र मे सुधारो का मुख्य आधार कृषि अर्थव्यवस्था की स्थापना है क्योकि यह भारत के करोडो लोगो के लिए खाद्य और पोषक तत्व, बढ़ते औद्योगिक आधार के लिए कच्चा माल एव निर्यात अधिशेष तथा कृषि समुदायो द्वारा समाज को दी गई सेवाओ के लिए उचित और न्यायसगत लाभ की प्रणाली सुनिश्चित करता है। यह कृषि क्षेत्र मे सुधार का मुख्य केन्द्र बिन्दु होगा।

राष्ट्रीय कृषि नीति मे भारतीय कृषि की विशाल अदोहित क्षमता को वास्तविक रूप देने, तीव्रतर कृषि विकास को समर्थन देने के लिए ग्रामीण अवसरचना को सुदृढ़ करने, मूल्य प्रवर्धन को बढ़ावा देने, कृषि व्यवसाय की वृद्धि को तीव्रता प्रदान करने, ग्रामीण क्षेत्रो मे रोजगार सृजन करने, किसानो, कृषि मजदूरो और उनके परिवारो का जीवन-स्तर सुधारने, शहरी क्षेत्रो मे प्रवास हतोत्साहित करने तथा आर्थिक उदारीकरण और विश्वव्यापीकरण से उत्पन्न चुनौतियो का सामना करने की परिकल्पना है। अगले दो दशको मे इसके मुख्य उद्देश्य इस प्रकार है -

- कृषि क्षेत्र मे प्रतिवर्ष ४ प्रतिशत से अधिक वृद्धि दर प्राप्त करना।
- वृद्धि, जो ससाधनो के कुशल उपयोग पर आधारित है तथा अपनी मृदा, जल और जैव विविधता का सरंक्षण करना।
- साम्य वृद्धि, अर्थात वृद्धि जो क्षेत्र दर क्षेत्र तथा किसान दर किसान व्याप्त है।

- ऐसी वृद्धि जो मॉग के अनुसार हो और स्वदेशी बाजारो की मॉग को पूरा करे तथा आर्थिक उदारीकरण और विश्वव्यापी-करण से उत्पन्न चुनौतियो की स्थिति मे कृषि उत्पादो की निर्यात से अधिकतम लाभ मिल सके।
- वृद्धि जो प्रौद्योगिकीय, पर्यावरणीय तथा वित्तीय रूप से दीर्घकालीन हो।

दीर्घकालीन कृषि :-

राष्ट्रीय कृषि नीति मे दीर्घकालीन विकास को बढावा देने के लिए तकनीकी रूप से ठोस, आर्थिक रूप से व्यवहार्य, पर्यावरण की दृष्टि से अपक्षयी तथा देश के प्राकृतिक ससाधन भूमि, जल और आनुवाशिक सम्पदा को बढावा देने की परिकल्पना है। भूमि पर जैविक दबाव को सीमित करने तथा कृषि भूमि के गैर कृषि प्रयोजनो मे अधाधुध परिवर्तन पर नियत्रण पाने के प्रयास किए जा रहे है।

सरकार देश की भूमि और मृदा ससाधनो की गुणवता के सुधार को स्थायी रूप से महत्व दे रही है। अपरदित एव परती भूमि के सुधार को उच्च्च प्राथमिकता दी जाएगी ताकि उनके उत्पादक उपयोग को इष्टतम बनाया जा सके। देश के प्रचुर जल ससाधनो के तर्कसगत उपयोग और सरक्षण को बढ़ावा दिया जाएगा। सतही जल और भू-जल के सयुक्त उपयोग को उच्च्च प्राथमिकता दी जाएगी। जल के अधिक कुशल उपयोग और उत्पादकता मे सुधार के लिए स्वस्थाने नमी प्रबध तकनीक जैसे मल्चिग के उपयोग और टपका व छिडकाव तथा पादप घर प्रौद्योगिकी जैसी प्लास्टिक और माइक्रो ओवर हैंड प्रेसर्ड सिचाई प्रणालियो के उपयोग को बढ़ावा दिया जाएगा। क्षेत्रीय असमानताओ को दूर करने के लिए पहाड़ी और अधिक वर्षा वाले क्षेत्रो मे जल कृषि सरचना और उपर्युक्त जल सचार प्रणालियो के प्रबध पर जोर दिया जाएगा।

पिछले कुछ दशको मे भारत के पादप एव पशु आनुवाशिक ससाधन अवक्रमण और सकीर्ण आधार देश की खाद्य सुरक्षा को प्रभावित कर रहे है। आनुवाशिक ससाधनो के सर्वेक्षण एवं मूल्यांकन और फसलो, पशुओ तथा उनकी जगली प्रजातियो मे लागू की गई स्वदेशी तथा बहिजातीय आनुवाशिक परिवर्तनशीलता पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाएगा। ऐसे पादप जो जल की खपत कम करते हो, सूखे के प्रति सहनशील हो, क्रीम प्रतिरोधी हो जिनमे पोषक तत्वो की मात्रा अधिक हो, अधिक उपज देते हो तथा

पर्यावरणीय रुप से सुरक्षित हो, के विकास के लिए जैव प्रौद्योगिकी के उपयोग को बढावा दिया जाएगा। 'देश की विशाल जैव विविधता की सूची बनाने तथा उसे वर्गीकृत करने के लिए समयबद्ध कार्यक्रम बनाया जाएगा।

कृषक समुदायो को पर्यावरणीय चिताओ के प्रति सवेदनशील बनाने का उच्च प्राथमिकता दी जाएगी। समेकित पोषक तत्वो तथा कृषि प्रबध के जारिए बायोमास, कार्बनिक और अकार्बनिक उर्वरको के सतुलित उपयोग तथा कृषि रसायनो के नियत्रित उपयोग को बढावा दिया जाएगा ताकि कृषि उत्पादन मे स्थायी वृद्धि की जा सके ।

कृषि प्रणालियो में परिस्थितिकी सतुलन बनाए रखने तथा बायोमास उत्पादन मे वृद्धि के लिए कृषि वानिकी और सामाजिक वानिकी मुख्य अपेक्षाएँ है। पोषक तत्वो के प्रभावी चक्रण, नाइट्रोजन के निर्धारण, कार्बनिक पदार्थों के वर्धन तथा सरणि मे सुधार के लिए कृषि वानिकी पर मुख्य रूप से जोर दिया जाएगा। किसानो को फार्म प्रौद्योगिकी विस्तार और ऋण सहायता पैकेज विकसित करके अधिक आय सृजन और सीमात भूमियो के कुशल उपयोग तथा कृषि और फार्म वानिकी के विकास मे आने वाली बाधाओ को दूर करने के लिए फार्म कृषि वानिकी शुरू करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा।

जैव कृषि व पोषाहारीय एव औषधीय प्रयोजनो के लिए परम्परागत् पद्धतियो, ज्ञान तथा बुद्धि को समेकित करने व मूल्याकन करने और स्थायी कृषि वृद्धि के लिए उनका उपयोग करने का सतत् प्रयास किया जाएगा।

खाद्य एवं पोषण सुरक्षा :-

निरन्तर जनसख्या वृद्धि के दबाव के कारण बढती खाद्य माँग तथा कृषि उद्योगो के विस्तार के लिए कच्चे माल की आवश्यकता पूर्ण करने के लिए फसल उत्पादन एव उत्पादकता बढ़ाने के विशेष प्रयास किए जाऍगे। इसके लिए क्षेत्र विशिष्ट रणनीति पर अमल किया जाएगा। उच्च पोषण वाली नई फसल किस्मो के विकास, विशेषकर खाद्य फसलो के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

ग्रामीण क्षेत्रो मे रोजगार सृजन एव खाद्य आपूर्ति, निर्यात मे वृद्धि के लिए वर्षा सिचित एव सिचित बागवानी, पुष्पकृषि, कद-मूल फसलो, बागवानी फसलो, सुगधित एव चिकित्सीय फसलो, मधुमक्खी पालन एव रेशम कृषि विकास पर मुख्य जोर दिया जाएगा।

पशु पालन एव मात्स्यिकी भी कृषि क्षेत्र मे पूँजी तथा रोजगार का सृजन करते है। कृषि विविधिकरण, भोजन मे जन्तु प्रोटीन की उपलब्धता बढाने तथा निर्यात हेतु अधिशेष के सृजन के प्रयासो मे पशुपालन, कुक्कुट पालन, दुग्ध उद्योग एव जल कृषि के विकास को उच्च प्राथमिकता दी जाएगी। दूध, मास अडा एव पशु उत्पादो की आवश्यकता पूरी करने तथा कृषि कार्यों तथा परिवहन हेतु गैर पारम्परिक उर्जा श्रोत के रूप मे भारवाही पशुओ की भूमिका बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय पशु प्रजनन नीति बनाई जाएगी।

उत्पादन एव उत्पादकता - स्तर बढाने के लिए पशु उत्पादन के साथ-साथ स्वास्थ्य क्षेत्र मे उपर्युक्त प्रौद्योगिकियो के सृजन एव विस्तार पर अधिक ध्यान दिया जाएगा। खाद्य एव चारा आवश्यकताओ को पूरा करने तथा पशु पोषण एव कल्याण को बढावा देने के लिए चारा फसलो एव चारा वृक्षो की खेती मे वृद्धि की जाएगी। बूचडखानो के आधुनिकीकरण ठठरी के उपयोग और उनके मूल्यवर्धन पर जोर के साथ-साथ प्रसस्करण विपणन और परिवहन सुविधाओ को उन्नत करने पर प्राथमिक रूप से ध्यान दिया जाएगा।

समुद्री एव अतर्देशीय मात्स्यिकी के लिए समेकित दृष्टिकोण जिसका उद्देश्य दीर्घकालीन जल कृषि को प्रोत्साहन देना है, अपनाया जाएगा। फिन एव शेल मत्स्य कृषि के साथ-साथ पर्ल कल्चर, उनकी उत्पादकता को आदर्श स्तर तक लाने, उनके कटाई एव कटाई उपरात प्रचलनो, मत्स्य नावो के यत्रीकरण, मत्स्य बीजो के उत्पादन के लिए अवसरचना सुदृढ़ करने, मत्स्य नावो के ठहराने एव उतारने की सुविधाओ के निर्माण तथा विपणन अवसरचना के विकास को उच्च प्राथमिकता दी जाएगी।

प्रौद्योगिकी सृजन एवं हस्तांतरण :-

कृषि एव बागवानी फसलो, पशु प्रजातियों एव जल-कृषि की स्थान विशिष्ट एव आर्थिक रूप से व्यवहार्य उन्नत किस्मों के विकास के साथ-साथ अन्य जैव विविधता संसाधनो के संरक्षण एव उचित उपयोग को भी प्राथमिकता दी जाएगी। राष्ट्रीय अनुसाधन प्रणाली के साथ-साथ मालिकाना अनुसधान के माध्यम से भी

जैव- प्रौद्योगिकी, दूर सवेदन प्रौद्योगिकी, कटाई पूर्व एव कटाई उपरात प्रौद्योगिकी उर्जा सरक्षण प्रौद्योगिकी, पर्यावरण सरक्षण प्रौद्योगिकी जैसी उन्नत विधाओ के उपयोग को प्रोत्साहन दिया जाएगा। हमारा प्रयास भारतीय कृषि मे प्रौद्योगिकी परिवर्तन के लिए एक सुसगठित, कुशल एव परिणामोन्मुखी कृषि अनुसधान एव शिक्षा प्रणाली के निर्माण का होगा।

अनुसधान और विस्तार प्रणाली की गुणवता और कुशलता मे सुधार के लिए अनुसधान और विस्तार सपर्क मजबूत बनाया जाएगा। माँग चालित उत्पादन प्रणाली के आयोजन के लिए कृषि विस्तार मे कृषि विज्ञान केन्द्रो,गैर-सरकारी सगठनो, कृषक सगठनो/सहकारिताओ, निगम क्षेत्र एव पैरा टैक्नीशियनो की भूमिका को प्रोत्साहन दिया जाएगा। क्षमता निर्माण के माध्यम से मानव ससाधन विकास एव लोक विस्तार कर्मियो तथा अन्य कर्मियो की कार्यकाल मे सुधार को उच्च प्राथमिकता दी जाएगी।

कृषि मे लिग सम्बन्धी असतुलन दूर करने पर विशेष ध्यान दिया जाएगा । महिलाओ को शक्तिसम्पन्न बनाने एव उनकी आदानो प्रौद्योगिकी एव अन्य कृषि ससाधनों तक पहुँच मे सुधार तथा उनमे क्षमता निर्माण के लिए उपर्युक्त सरचनात्मक, कार्यात्मक एव सस्थागत उपाय किए जाएँगे।

आदान प्रबंध :-

सरकार का प्रयास उच्च गुणवता वाले आदानो, यानी बीज, उर्वरको, पौध-संरक्षण रसायन, जैव-कृमिनाशी, कृषि मशीनरी एव ऋण को उचित दरो पर तथा समय से एव पर्याप्त मात्रा मे किसानो तक पहुँचाना होगा। मृदा परीक्षण एव उर्वरको तथा बीजो का गुणवता परीक्षण सुनिश्चित किया जाएगा तथा मिलावटी आदानो की आपूर्ति पर रोक लगाई जाएगी।

उन्नत किस्म के बीजो एव रोपण सामग्री के उत्पादन एव वितरण तथा निजी क्षेत्र के सहयोग से बीज प्रमाणन प्रणाली के सुदृढीकरण को उच्च प्राथमिकता दी जाएगी। निवेश और जनशक्ति के कुशल उपयोग के लिए राष्ट्रीय बीज निगम और भारतीय राज्य फार्म निगम का पुनर्गठन किया जाएगा। किसानो को वाणिज्यक उद्देश्यो के लिए सरक्षित किस्मों के ब्राण्डयुक्त बीजो को छोड़कर अपनी कृषि में बचाए हुए बीजो

की बचत, उपयोग विनिमय, लेन-देन एव बिक्री के अपने पारपरिक अधिकार अनुमन्य होंगे। नई किस्मो के विकास के लिए मालिकाना किस्मो पर अनुसधान करने सम्बन्धी शोधार्थियो के हितो की सुरक्षा की जाएगी।

प्रोत्साहन :-

सरकार घरेलू कर-सरचना को उपर्युक्त बनाने के माध्यम से निर्माण क्षेत्र के साथ व्यापार शर्तो मे सुधार तथा बाह्य एव आतरिक मडी सुधार, कृषि के लिए प्रोत्साहन व्यवस्था मे विसगतियो को दूर करके किसानो के अपने निवेश के निर्माण तथा पूँजी निर्माण मे वृद्धि हेतु अनुकूल आर्थिक वातावरण के सृजन का प्रयास करेगी।

कृषि पर विश्व व्यापार सगठन समझौते के अनुसार आयातो पर परिमाणात्मक प्रतिबन्धो को हटाए जाने के बाद निर्यात बढाने के लिए विश्व बाजार मे होने वाली मूल्य अस्थिरता के प्रतिकूल प्रभाव से उत्पादको को सरक्षित करने के लिए सामग्रीवार रणनीतियो एवं व्यवस्थाओ का प्रतिपादन किया जाएगा। बागवानी उत्पादो और समुद्री उत्पादो के निर्यात पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। निर्यात उपार्जन से किसानो को सवर्धित आय मुहैया कराने की दृष्टि से कृषि उत्पाद विविधता तथा मूल्य सयोजन की दोहरी दीर्घकालिक नीति बनाई जाएगी। निर्यात व आयात दोनो के सगरोध पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाएगा ताकि भारतीय कृषि को जहरीले कीटो तथा रोगो के प्रभाव से बचाया जा सके।

घरेलू कृषि सगरोधात्मक प्रतिबन्धो को हटाने के सदर्भ मे किसानो के हितो की रक्षा के लिए अन्तराष्ट्रीय मूल्यो की लगातार मानिटरिंग की जाएगी तथा उचित टैरिफ सरक्षण दिया जाएगा । कृषि कार्य मे प्रयुक्त होने वाली निर्मित वस्तुओ पर आयात शुल्क तर्क सगत बनाया जाएगा । मडी क्षेत्र को उदार बनाया जाएगा और कृषि आय वृद्धि मे व्यवधान डालने वाले सभी नियंत्रणों और शर्तो की समीक्षा की जाएगी और उन्हे समाप्त किया जाएगा।

खाद्यान्नो तथा अन्य वाणिज्यिक फसलो पर कर ढॉचे की समीक्षा की जाएगी तथा इसे युक्तिसंगत बनाया जाएगा। इस तरह से कार्य मशीनरी तथा उपकरणो, उर्वकों आदि जैसी सामग्री, जिन्हे कृषि

उत्पादन, फसल कटाई उपरात भडारण और प्रसस्करण मे प्रयोग किया जाता है, पर उत्पाद कर की समीक्षा की जाएगी।

कृषि निवेश :-

कृषि क्षेत्र मे निवेश के सम्बन्ध मे सार्वजनिक क्षेत्र की ह्‌समान प्रवृति रही है क्षेत्रीय असतुलनो को कम करने हेतु कृषि एव ग्रामीण विकास की सहायक अवसरचना के त्वरित विकास के लिए विशेष रूप से गॉवो के सबध मे सार्वजनिक निवेश को बढावा दिया जाएगा। आदानो के उचित तथा पारदर्शी मूल्यनिर्धारण द्वारा नीतियो को युक्ति सगत बनाने के लिए एक नियत तालिका नीति प्रतिपादित की जाएगी ताकि कृषि एव आदानो के प्रयोग मे दक्षता सवर्धन हेतु ससाधनो का सृजन किया जा सके।

ग्रामीण विकास के लिए प्रथम प्रयास के रूप मे गॉवो मे विद्युतीकरण को उच्च प्राथमिकता दी जाएगी। विद्युत आपूर्ति की गुणवता और उपलब्धता मे सुधार किया जाएगा तथा उर्जा के नए पुनरूज्जीवन योग्य ससाधनो के उपयोग को भी प्रोत्साहित किया जाएगा।

सिचाई क्षमता के सृजन तथा उपयोग के बीच की खाई को पाटते हुए सभी चालू परियोजनाओ को पूरा करने, सिचाई अवसरचना के पुनरद्धार तथा आधुनिकीकरण, राष्ट्रीय जल ससाधनो के संवर्धन एव प्रबधन की समेकित योजना के विकास एव कार्यान्यिवन पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

फसलोपरात हानियो को कम करने तथा किसानो हेतु बेहतर मूल्य सुनिश्चित करने की दृष्टि से विपणन अवसरचना, परिक्षण, भडारण और परिवहन तकनीको के विकास पर जोर दिया जाएगा। पचायती राज सस्थाओ के सीधे नियत्रणाधीन साप्तहिक मडियो (हाटो) को उन्नत और सुदृढ बनाया जाएगा। बाजार दक्षता के उन्नयन और प्रसार पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। विशेष रूप से बागवानी उत्पाद के अवशिष्टो को कम करने तथा मूल्य सवर्धन मे वृद्धि के लिए उत्पादन क्षेत्रो मे कृषि प्रसंस्करण इकाइयो की स्थापना की जाएगी तथा ग्रामीण क्षेत्रो मे आफ फार्म रोजगार सृजन को प्रोत्साहन दिया जाएगा। कृषि प्रसरस्कण उद्योग के सवर्धन के लिए उत्पादक सहकारी समितियो तथा समष्टि क्षेत्र के बीच सहयोग को प्रोत्साहित किया जाएगा।

संस्थागत संरचना :-

छोटे व सीमात किसानो को प्रमुखता देना भारतीय कृषि की विशेषता है। सस्थागत सुधार इस प्रकार किए जाएँगे जिससे इनकी उर्जा का प्रचलन बेहतर उत्पादकता और उत्पादन प्राप्ति के लिए किया जा सके। ग्रामीण विकास तथा भूमि सुधार हेतु निम्नलिखित क्षेत्रो पर ध्यान केन्द्रित किया जाएगा।

- उत्तर-पश्चिमी राज्यो के प्रतिमान पर पूरे देश मे जोतो का समकेन,
- निर्धारित सीमा से अधिक और परती भूमि का भूमिहीन किसानो, बेरोजगार युवको मे प्रारभिक पूँजी के साथ पुनर्वितरण,
- पट्टेदारो तथा फसल हिस्सेदारो के अधिकारो को मान्यता देने के लिए पट्टेदारी सुधार,
- खेती व कृषि व्यापार हेतु निजी भूमि पट्टे पर देने के वास्ते वैधानिक प्रावधान करके जोतो के आकार मे वृद्धि करने की दृष्टि से पट्टा बाजारो का विकास,
- भूमि अभिलेखो का अद्यतन सुधार, कप्युटरीकरण तथा किसानो को भूमि पास-बुक जारी करना,
- भूमि में महिला अधिकारो को मान्यता देना।

पचायती राज सस्थाओ, स्वैच्छिक समूहो, सामाजिक गतिविधियो तथा सामुदायिक प्रणेताओ की मदद से भूमि-सुधारो के कार्यान्वियन मे ग्रामीण गरीबो को अधिक शामिल किया जाएगा।

फसल, विशेष रूप से तिलहन, कपास तथा बागवानी फसलों के उत्पादन के लिए त्वरित प्रौद्योगिकी अतरण, पूँजी अतर्वाह तथा बीमाकृत बाजारो की अनुमति के वास्ते सविदा खेती तथा पट्टेदारी व्यवस्था के माध्यम से निजी क्षेत्र की भागीदारी बढाई जाएगी।

ग्रामीण तथा कृषि ऋण का प्रणाली सास्थानीकरण जारी रहेगा जिससे किसानो को समय पर और पर्याप्त मात्रा मे ऋण मुहैया कराया जा सके। बचतो निवेशों तथा जोखिम प्रबधन के सवर्धन के लिए ग्रामीण ऋण संस्थाओ के कार्यों को और तेज किया जाएगा। कृषि तथा ग्रामीण क्षेत्रों के वाणिज्यिक बैको द्वारा ऋण प्राथमिकता क्षेत्र मे विकारो को समाप्त करने पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। ऋण वितरण मे साम्यता सुनिश्चित करने के प्रयास किए जाएँगे।

गत वर्षो मे कर्मठता से सृजित सहकारी क्षेत्र द्वारा कृषि को मूल सहायता दी गई है। उद्यम के सहकारी रूप को बढावा देने के लिए सरकार सक्रिय सहायता देगी तथा यह भी सुनिश्चित करेगी कि उन्हे और अधिक स्वायतता एव प्रचलनात्मक स्वतन्त्रता मिले ताकि वे अपने कार्यकलापो मे सुधार कर सके।

जोखिम प्रबंध :-

तकनीकी एव आर्थिक विकास के बावजूद प्राकृतिक आपदाओ एव मूल्य अस्थिरता के कारण किसानो की स्थिति असतोषजनक बनी हुई है। राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना, जिसमे देश के सभी किसानो एव फसलो को शामिल किया जाता है एव जिसमे प्राकृतिक आपदाओ के कारण होने वाले वित्तीय सकट से किसानो को बचाने एव कृषि को आर्थिक रूप से व्यावहार्य बनाने का प्रावधान है, को अधिक किसानोन्मुखी एव प्रभावी बनाया जाएगा। कृषि मे जोखिम कम करने, सूखा और बाढ का सामना करने मे भारतीय कृषि को समर्थ बनाने के लिए बाढ प्रवण खेती को बाढ से बचाने और वर्षा सिंचित कृषि को सूखे से बचाने के प्रयास किए जाएँगे। केन्द्र सरकार मुख्य कृषि जिंसो हेतु न्यूनतम समर्थन मूल्य नीति के माध्यम से कृषि उत्पादो के लिए लाभकारी मूल्य सुनिश्चित करने की अपनी जिम्मेदारी निभाना जारी रखेगी। विभिन्न जिंसो के समर्थन मूल्य का निर्धारण करते समय खाद्य, पोषण एव देश की अन्य घरेलू निर्यात आवश्यकताओ को ध्यान मे रखा जाएगा। कृषि क्षेत्र के लिए अनुकूल आर्थिक वातवरण तैयार करने और ग्रामीण एव शहरी आय के बीच सतुलन बनाए रखने हेतु मूल्य सरचना और व्यापार प्रणाली की निरतर समीक्षा की जाएगी। किसानो द्वारा मजबूरन बिक्री रोकने के लिए घरेलू बाजार मूल्यो की कडी निगरानी की जाएगी। विपणन कार्यो मे लगे सार्वजनिक एव सहकारी अभिकरणो को सुदृढ किया जाएगा।

प्रबंधन सुधार :-

नीतिगत प्रयासो के प्रभावी क्रियान्यवन के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारो द्वारा कृषि प्रबधन मे व्यापक सुधार करना होगा। केन्द्र सरकार की भूमिका क्षेत्र विशिष्ट कार्य-योजनाओ के माध्यम से राज्य सरकारो के प्रयासो को पूर्ण करने मे सहायता करने की होगी। केन्द्र सरकार योजना केन्द्रित दृष्टिकोण छोडकर वृहद् प्रबध दृष्टिकोण अपनाएगी। सरकार बुआई से प्राथमिक प्रसस्करण तक फार्म प्रचालन के सभी चरणो के गुणवता

पक्ष पर ध्यान देगी। किसानो एव कृषि प्रसस्करणो के बीच गुणवता के बारे मे जाग्रृति लाई जाएगी। निर्यात सवर्धन के लिए कृषि उत्पादो के श्रेणीकरण एव मानकीकरण को प्रोत्साहन न दिया जाएगा। कृषि क्षेत्र को विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धात्मक बनाने के लिए विज्ञान एव प्रौद्योगिकी सस्थानो एवं उपयोगकर्ताओ/सभावित उपयोगकर्ताओ के बीच विचार-विमर्श की नियमित प्रणाली के माध्यम से कृषि मे विज्ञान एव प्रौघोगिकी के प्रयोग को प्रोत्साहन दिया जाएगा ।

अनुमान एव भविष्यवाणी को अधिक विश्वसनीय बनाने के लिए कृषि क्षेत्र मे सबधित ऑकडो को सुदृढ बनाया जाएगा। जिससे नियोजन एव नीति निर्माण प्रक्रिया मे सहायता मिलेगी। जोखिम प्रबध एव विकास प्रक्रिया को तेज करने के लिए ऑकडो के सग्रहण, मिलान, मूल्य सयोजन एव समुचित स्थानो पर इसके वितरण हेतु दूरसवेदी एव सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग एव इनमे सुधार के प्रयास किए जाऐंगे। भारत सरकार का विश्वास है कि राष्ट्रीय कृषि नीति जनता के सभी वर्गो का समर्थन हासिल-करेगी तथा इससे कृषि का दीर्घकालीन विकास, ग्रामीण क्षेत्रों मे स्वावलबन आधार पर रोजगार सृजन, कृषक समुदाय के जीवन स्तर मे सुधार एव पर्यावरण सरक्षण होगा तथा यह एक उदीयमान राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के निर्माण की वाहक होगी।

राष्ट्रीय कृषि नीति और विश्व व्यापार संगठन

विषय की दृष्टि से १९८६ से १९९४ तक के उरूग्वे दौर के समझौतो को तीन शीर्षको मे बॉटा जा सकता है। पहला, बाजार तक पहुॅच के समझौतो, दूसरा, बहुपक्षीय नियमो, तीसरा, नए क्षेत्रों से जुडे समझौते। उरूग्वे दौर के बाद के मुद्दे जैसे श्रम और पर्यावरण मानक, स्पर्धा नीति और इलेक्ट्रॉनिक वाणिज्य नवीनतम मामले है। उरूग्वे दौर के समझौते १ जनवरी १९९५ को लागू हुए। पॉच वर्ष के बाद यह पूछना पडेगा कि भारत को कृषि उदारीकरण से क्या लाभ हुआ है। अगर नही लाभ हुआ है तो भारत को क्या मिला और दिक्कते दूर करने के लिए क्या किया जा सकता है।

लेकिन इससे पहले विश्व व्यापार सगठन के उन चार समझौतो पर हम ध्यान देगे जो कृषि पर असर डालते हैं। पहला, कृषि का मूल पाठ, दूसरा सफाई और वनस्पति सफाई पर समझौता, तीसरा बौद्धिक सपदा अधिकारो, विशेष रूप से सूक्ष्म जीवो और पौधे तथा बीज की किस्मो के बारे मे समझौते, जो

कृषि के लिए महत्व रखते है, चौथा, उर्वरको और उर्वरक नीति को प्रभावित करने वाले औद्योगिक शुल्क समझौते, विशेष रूप से मात्रा अकुशो की क्रमिक समाप्ति के बाद के समझौते। हालाकि आखिरी दो समझौते निश्चित रूप से सबद्ध है तो भी उनसे बिल्कुल अलग तरह के मुद्दे जुडे है इसलिए हम अपने विचार पहले दो समझौतो तक सीमित रखेगे।

कृषि के मूल पाठ की रूप रेखा काफी हद तक ज्ञात है। मोटे तौर पर इसमे सीमा सबधी उपाय और आतरिक नीति नियम शामिल है। सीमा उपायो मे मात्रात्मक अकुशो को शुल्को मे बदलना होगा और ये शुल्क विकसित देशो को अगले छह वर्षो मे ३६ प्रतिशत तक नीचे लाने होंगे तथा विकासशील देशो को अगले १० वर्षो मे २४ प्रतिशत तक कम करने होगे। निर्यात सब्सिडियॉ परिमाण और बजटीय अवधि दोनो क्षेत्रो मे कम करनी होगी। परिमाण की दृष्टि से विकसित देशो को २१ प्रतिशत और विकासशील देशो को १६ प्रतिशत सब्सिडियॉ कम करनी होगी। उधर बजटीय दृष्टि से विकसित देशो को ३६ प्रतिशत और विकासशील देशो को २४ प्रतिशत सब्सिडियॉ कम करनी होगी। जहॉ तक आतरिक उपायो का सबध है, कुल समर्थन आकलन की एक प्रणाली है जिसमे विकासशील देशो के लिए कुल दहलीज समर्थन स्तर १०प्रतिशत है और विकसित देशो के लिए ५ प्रतिशत। अधिक सहायता राशि पर विकसित देशो को आधार स्तर पर कुल समर्थन २० प्रतिशत और विकासशील देशो को १३-१/३ प्रतिशत घटाना होगा।[46]

क्रियान्वयन समस्याएँ :- एक जनवरी १९९५ को उरूग्वे दौर के समझौतो के लागू होने के पॉच या अधिक वर्ष बाद आज कृषि क्षेत्र के उदारीकरण उपायो के प्रति असतोष होना स्वाभाविक है। अवधारणा के स्तर पर तीन प्रकार की समस्याएॅ है। पहली समझौते लागू नहीं किए गए है बल्कि उनका उल्लघन हुआ है। दूसरी, समझौतो की अवहेलना की गई है, अर्थात् कुछ कामो से समझौते की भावना का उल्लघन हुआ है, न कि कानून का। तीसरा, कुछ मुद्दे वर्तमान समझौतो से हटकर भी है। अधिकतर समस्याओ का सबध अतिम दो वर्ग के समझौतो से है। अगर दो तथ्यों का ध्यान रखा जाए तो इस तरह की क्रियान्वयन समस्याएॅ अप्रत्याशित नहीं है। पहली बात तो यह है कि उरूग्वे दौर कृषि क्षेत्र मे बहुपक्षीय नियम लागू करने का पहला प्रयास था।

---

[46] देबराय विवेक, राष्ट्रीय कृषि नीति और विश्व व्यापार सगठन, योजना जनवरी २००१, पृष्ठ सख्या १० ।

दूसरी बात यह है कि दिसबर १९९३ के पैकेज मे प्रस्तावित उदारीकरण डकल प्रारूप के विपरीत हैं [47] और अपूर्ण है। डकल प्रारूप व कृषि को उमिद से कही अधिक उदारीकृत कर देता। इसका कुछ प्रमुख समस्याएँ इस प्रकार है -

✓ हरे बक्से और नीले बक्से से जुडी कुछ नीतियॉ ए० एम० एस० से मुक्त है। हरे बक्से या नीले बक्से सब्सिडियो के कृत्रिम हस्तातरण मे विकृतियॉ है।

✓ १९८६ से १९८८ तक की आधार समयावधि मे (एग्रीगेट मैजरमेट आफ सपोर्ट) ए० एम० एस० स्तर ऊँचा था। नतीजतन कटौती उच्च ए० एम० एस० पर की गई है और निर्धारित कटौतियो के बाट भी कुछ देशो मे कुल ए० एम० एस० का स्तर ऊँचा बना रहेगा। यह इस दलील से सम्बद्ध मुद्दा है कि समग्र समर्थन की कोई सीमा तय नहीं की गई है।

✓ निर्यात सब्सिडी प्रति–बद्धताएँ अक्सर समग्र रूप मे व्यक्त की जाती हैं। इससे सब्सिडियॉ कायम रखने और बढाने मे लचीलापन बना रहता है।

✓ शुल्क दरो के कोटो का आबटन अक्सर मनमाना होता है और इसमे पारदर्शिता नहीं बरती जाती । जब तक शुल्क दर कोटे बने रहेगे, व्यवहार रूप मे मात्रात्मक अकुश लागू रहेगे।

✓ मात्रात्मक अकुशो का स्थान शुल्क दरो के ले लेने पर वास्तविक शुल्क मात्रा अकुशो के समकक्ष समझे जाने वाले शुल्को से अधिक बैठेगी।

✓ एस० पी० एस० समझौते के अन्तर्गत सरक्षण की बात उठती है क्योकि समझौते मे ऐसे मानको को मजबूरी दी गई है जो अन्तराष्ट्रीयरूप से स्वीकृत मानदडो से ऊँचे होते हैं, बशर्ते कि इनका पर्याप्त वैज्ञानिक आधार हो, कभी-कभी डपिंग विरोधी और सब्सिडी विरोधी जॉच-पडताल के माध्यम से भी संरक्षण का प्रश्न उठाया जाता है।

✓ राज्य व्यापार सरकारी खरीद और सरकारी एकाधिकार को पर्याप्त रूप से नियत्रित नहीं किया जाता। विश्व बाजारो मे व्याप्त कमियो के कारण स्पर्धा नीति भी एक मुद्दा बन गई है।

भारतीय वार्ताएँ :- भारत की बातचीत की दो दृष्टिकोणो से देखा जाना चाहिए। एक तो यह कि भारत को क्या करना है और दूसरा यह कि अन्य देशो को क्या करना है।

भारत पर लागू नियमो से जुडे मुद्दे काफी आसान है। सीमा उपायो की समस्याएँ बहुत अधिक नहीं है क्योकि अधिकतर कृषि वस्तुओ की बधी दरें १०० और १५० प्रतिशत के बीच रहती हैं। कुछ वस्तुओ की दरे ३०० प्रतिशत तक चली जाती है। यह माना जा सकता है कि **अशोक गुलाटी और अनिल शर्मा** जैसे कृषि अर्थशास्त्रियो का अनुभवपरक कार्य काफी सतुलित है। उससे प्रमाणित होता है कि कुछ वस्तुओ को छोड भारत के कृषि उत्पाद मूल्य की दृष्टि से स्पर्धात्मक है।

अपूर्णता के बावजूद भी चूँकि उदारीकरण से विश्व मूल्यों मे वृद्धि होती है, भारत मे कृषि उत्पाद मूल्य की दृष्टि से अधिकाधिक स्पर्धात्मक होते जाएँगे, ऐसी सभावना है। नतीजतन आयात शुल्क शून्य करने के बावजूद भारत मे कृषि उत्पादो के आयात की बाढ आ जाने की आशकाएँ वास्तविकता से परे है। आयात शुल्क शत-प्रतिशत होने पर तो इस तर्क को और बल मिलेगा। यह मुद्दा कुछ अधिक महत्वपूर्ण बन गया है क्योकि भारत की निषिद्ध तथा प्रतिबंधित वस्तुओ की एक छोटी सूची को छोड प्रत्येक वस्तु एक अप्रैल, २००१ से खुले आम लाइसेस के दायरे मे आ जाएगी। बहुत-सी वस्तुएँ जिन पर काफी अर्से से मात्रात्मक प्रतिबध लगे है, कृषि उत्पाद है जिन्हे उपभोक्ता वस्तुओ की श्रेणी मे रख दिया गया है । इस समय भारत पर उपभोक्ता वस्तुओं पर बधे शुल्क की प्रतिबद्धताएँ नहीं हैं। औद्योगिक उत्पादो पर बधी दरे या तो २५ प्रतिशत हैं या ४० प्रतिशत। सहस्त्रावदी के अत तक बधी दर प्रतिबद्धताओ के दायरे में वे उत्पाद भी आ जाएँगे जो इस समय उसके बाहर हैं, इनमे उपभोक्ता वस्तुएँ भी शमिल है। ऐसे समय जब औद्योगिक उत्पादो पर अधिकतम आयात शुल्क ४० प्रतिशत है, कृषि उत्पादो पर ४० प्रतिशत से अधिक आयात शुल्क लगाकर विकृतियाँ पैदा करने का कोई कारण नहीं है। इसलिए कृषि उत्पादो पर ४० प्रतिशत का अधिकतम शुल्क लगाना तर्कसगत है। उत्पादो पर यह मानकर कोई शुल्क नहीं लगाया गया कि इन पर मात्रात्मक प्रतिबंध लगे होगे। यह स्थिति उरूग्वे दौर से ही नहीं उससे कई वर्ष पहले से चली आ रही है। स्वाभाविक है इस स्थिति पर सीमा शुल्क और व्यापार के आम समझौते के अन्तर्गत फिर से विचार करना होगा। अब शुल्क दर कोटे की

ढग की प्रणाली थोप दी गई है। अन्य देशो मे इस प्रणाली की चुनौती देना और भारत मे उन्हे बनाए रखना तार्किक दृष्टि से ठीक नहीं है। जो हो, इस समय शुल्क दर कोटा लागू है। इस प्रक्रिया मे व्यापारिक साझेदारो को मुआवजा देना होगा। कुछ मुआवजा दिया भी गया होगा लेकिन इसकी जानकारी अब तक सार्वजनिक नहीं की गई है। एक ऐसी ही समस्या पॉच प्रतिशत बधे शुल्क वाले डी ए पी उर्वरक के सबध मे मौजूद है लेकिन अभी इस पर बातचीत शुरू नहीं हुई है।

जहॉ तक आतरिक नियमो का सबध है, कुल समर्थन की राशि साल-दर-साल बदलती रहती है, लेकिन इस बात से इकार नहीं किया जा सकता है कि यह राशि दस प्रतिशत से कम रहती है। परिणाम स्वरूप आतरिक कृषि सुधार विश्व व्यापार सगठन के कारण नहीं होते। कुल समान का हिसाब-किताब लगाने मे कुछ कार्य- विधि मामलो को बाद की बात-चीत मे स्पष्ट करना जरूरी है। एग्रीगेट मैजरमेंट ऑफ सपोर्ट (ए० एम० एस०) का प्रणाली विज्ञान बाहरी सदर्भ मूल्य और आतरिक प्रशासनिक मूल्य के बीच के अतर पर आधारित होता है। साथ ही यह उस उत्पादन मात्रा के गुण पर आधारित होगा जो समर्थन की पात्र हो, आतरिक मुद्रा स्फीतियॉ मुद्रा के मूल्य ह्रास को साफ शब्दों मे स्वीकारा नहीं गया है। उत्पाद आधारित सब्सिडियो की कुल राशि भी स्पष्ट नहीं है।

कृषि वार्ता के प्रति भारतीय दृष्टिकोण मे ज्यादातर खडित मानसिकता का पुट रहा है। उदारीकरण से भारत को कोई लाभ होगा या पी एल ४८० का हौआ। अब भी सताता रहेगा। अगर यह स्वीकार कर लिया जाए कि भारत को सार्वभौम कृषि उदारीकरण से लाभ होगा, जैसा कि अध्ययनो ने प्रमाणित किया है, भारत केयरस समूह के साथ मिलकर बातचीत मे अधिक आक्रामक रूख अपना सकता है। तब भारत दलील दे सकता है कि कुल समर्थन से मुक्त नीले और हरे बक्से की नीतियों को अनुशासित किया जाए। कुल समर्थन की सीमा भी निश्चित की जाए और न्यूनतम बाजार प्रवेश प्रतिबद्धता को कुल समर्थन के वास्तविक स्तर से जोडा जाए। यह दलील दी जा सकती है कि निर्यात सब्सिडी नियम अति सूक्ष्म स्तर जैसे आठ अक पर लागू किए जाने चाहिए और शुल्क दर कोटे निसिद्ध किए जाने चाहिए कृषि समझौते मे एक विशेष सरक्षण धारा है जिसका अभी भारत उपयोग नहीं कर रहा है क्योकि विशेष संरक्षण धारा का उपयोग शुल्कीकरण प्रक्रिया से जुडा है। शायद सफलता की बहुत आशा के बिना यह दलील दी जा सकती है कि विशेष सरक्षण धारा रद्द

कर दी जानी चाहिए। इस धारा मे कहा गया है कि अतिरिक्त सरक्षणो के लिए लगाया गया शुल्क उस समय लागू वास्तविक आयात शुल्क के एक तिहाई से अधिक नहीं होना चाहिए।

आंतरिक सुधार और कृषि नीति :-

वर्ष १९९१ के बाद से जो कुछ हुआ है उसके बावजूद विदेशी उदारीकरण के प्रति हमारी खडित मन स्थिति का एक कारण कृषि मे आन्तरिक सुधारो का अभाव रहा है। कृषि विकास और गरीबी खासकर ग्रामीण गरीबो के बीच सबध काफी स्पष्ट है। कृषि उत्पादकता का कम स्तर और हरित क्राति की भौगोलिक और अन्य सीमाएँ भी काफी स्पष्ट है। विदेशी उदारीकरण हद से हद एक आवश्यक शर्त हो सकता है, जो अपने मे पर्याप्त नहीं है। भारत की आतरिक कृषि को सुधारने के लिए जिस बात की आवश्यकता है, उसकी जानकारी तो कुछ समय से प्राप्त है। समस्या यह है कि बहुत ही कम सुधारो को वास्तव मे लागू किया जा रहा है। प्राथमिकता क्रम मे न होते हुए भी एजेडा मे निम्न विषय शामिल है।[48]

- कृषि उत्पादो की अतर्राज्यीय आवाजाही पर लगे अकुश हटा लिया जाए। इनमे से कई का प्रादुर्भाव आवश्यक सामग्री अधिनियम के अन्तर्गत जारी आदेशो से हुआ है। मूल्यवर्धित कर की ओर बढाया जाए क्योकि स्थानीय कर भी अन्तर्राज्यीय आवाजाही मे रूकावट डालते है।
- ग्रामीण ऋण व्यवस्था, ग्रामीण बीमा और विस्तार सेवाओ मे नीजी क्षेत्र की भागीदारी को अनुमति दी जाए। इससे एक वास्तविक फसल बीमा पद्धति शुरू होगी, न कि वर्तमान कथित फसल बीमा। इससे फलो और सब्जियो की बरबादी कम होगी और बिचौलिए खत्म होंगे जिससे वितरण की वर्तमान बेतहाशी लबी श्रृखलाएँ कम हो जाएगी। बिचौलियो के न रहने से किसान को बेहतर मूल्य मिलेगा और उधर उपभोक्ता को भी ऊँचे दाम नहीं देने पडेगे।
- बायदा व्यापार शुरू किया जाए।
- भूमि अधिकतम सीमा कानून से सशोधन किया जाए और ठेके पर खेतों की सुविधा हो।

---

[48] देबराय विवेक, राष्ट्रीय कृषि नीति और विश्व व्यापार सगठन, योजना जनवरी २००१, पृष्ठ सख्या १३ ।

- कृषि मे सरकारी व्यय के कुशल प्रयोग को बढावा दिया जाए। इसका मतलब है बीजो उर्वरको, बिजली, पानी या ऋण पर निविष्ट सब्सिडियॉ खत्म कर दी जाएँ। प्रयोक्ताओ से समुचित शुल्को की वसूली विकेन्द्रीकरण और स्थानीय प्रयोक्ता सस्थाओ से सुनिश्चित कराई जा सकती है। अगर सार्वजनिक वितरण प्रणाली का पुनर्गठन कर दिया जाए और उसके स्थान पर खाद्य स्टाम्प पद्धति लागू कर दी जाए या अगर सरकारी खरीद निजी क्षेत्र के लिए खोल दी जाए तो भारतीय खाद्य निगम के अकुशलता के कारण होने वाले खर्च मे बचत हो सकती है। सब्सिडियॉ समूचित लक्ष्यो के लिए निर्धारित कर उत्पादो के मूल्य भी बढ़ाए जा सकते है। कोई वजह नहीं कि लाड़ले शहरी-माध्यम वर्ग को सब्सिडी युक्त वस्तुऍ दी जाए। इससे उपलब्ध ससाधन ग्रामीण बुनियादी ढॉचे के सार्वजनिक व्यय मे वृद्धि के लिए इस्तेमाल किए जा सकते हैं। अक्सर यह निजी क्षेत्र के व्यय मे वृद्धि का आवश्यक उत्प्रेरक बन जाता है।

विकेन्द्रीकरण ग्रामीण बुनियादी ढॉचे को बनाए रखने मे भी सहायक होता है। कभी-कभी ग्रामीण बुनियादी ढॉचे को बनाए रखना बुनियादी ढॉचे को बनाने से अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है लेकिन अक्सर इस तथ्य को अनदेखी कर दी जाती है।

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि रूढीवाद और आलस्य मे डूबी कृषि तथा गतिशील उद्योग के बीच का परपरागत् विभाजन जरूरी नहीं है सही हो। यह विभाजन विकृत नीतियो का परिणाम है जनसख्या के दो तिहाई हिस्से के ग्रामीण क्षेत्र मे रोजगार पर लगे होने के कारण कृषि सुधारो का होना आवश्यक है। तभी सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर बढेगी, गरीबी कम होगी और रोजगार के नए अवसर जुटाए जा सकेगे। इसके लिए मानसिकता को बदलना होगा। जरूरी नहीं कि हम उतना ही करे जितना विश्व व्यापार सगठन हम से करवाना चाहता है, वह तो न्यूनतम प्रतिबद्धता है। विश्व व्यापार सगठन हमसे जितना चाहता है, हमे उससे कही अधिक कर दिखाना है।

कृषि और ग्रामीण विकास :-

हमारा मानना है कि गरीबी दूर करने, आमदनी और रोजगार के अवसर बढ़ाने, खाद्य सुरक्षा और उद्योग तथा सेवाओ के लिए घरेलू बाजार को बनाए रखने के लिए कृषि पर ध्यान देना और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ करना आवश्यक है। अर्थव्यवस्था के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र की विकास की रफ्तार तेज करने के लिए पिछले कुछ बजटो मे कई प्रयास किए गए है।

2000-01 बजट कृषि के लिए ऋण सुविधा में बढ़ोत्तरी

ऐसा अनुमान है कि वाणिज्यिक बैको, सहकारी बैको और क्षेत्रीय ग्रामीण बैको जैसे सस्थागत माध्यमो से कृषि के लिए ऋण सुविधा इस वर्ष के ४१,८०० करोड रूपये से बढ़कर २०००-०१ मे ५१,५०० करोड रूपये हो जाएगी।

ग्रामीण आधारभूत संरचना विकास निधि आर0 आई0 डी0 एफ0 VI में बढ़ोत्तरी

राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक नाबार्ड द्वारा सचालित ग्रामीण आधारभूत सरचना विकास निधि गॉवो मे बुनियादी ढॉचे की परियोजनाओ के वित पोषण के लिए एक लोकप्रिय और कारगर योजना के रूप मे उभर कर सामने आयी है। १९९०-२००० मे आर० आई डी० एफ - V के लिए ३५०० करोड रूपये का प्रावधान किया गया और ऋण की अदायगी की मियाद बढाकर सात साल कर दी गई। इस साल आर० आई डी० एफ० VI की निधि बढाकर ४५०० करोड कर दी जाएगी और ऋण राशि पर वसूल किए जाने वाले ब्याज की दर आधा प्रतिशत कम कर दी जाएगी।[49]

गरीबी कम करने के लिए छोटे-छोटे ऋणों पर जोर

राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक/लघु उद्योग विकास बैंक २०००-०१ मे एक लाख स्व -सहायता समूहो की सहायता करेंगे। ये समूह इस साल नाबार्ड से सहायता प्राप्त करने वाले ५० हजार स्व-सहायता समूहो के अलावा होगे।

---

[49] *सिन्हा यशवन्त (भारत सरकार वित्त मत्री) कृषि और ग्रामीण विकास, रोजगार समाचार खण्ड २५, अक ४३, पृष्ठ ३२ नई दिल्ली, २०-२६ जनवरी २००१ ।*

कृषि के विकास में समन्वय और विकेन्द्रीकरण के लिए महत्वपूर्ण प्रयास

योजना आयोग और कृषि मन्त्रालय ने कृषि के विकास केन्द्र द्वारा प्रायोजित २८ चालू कार्यक्रमो को एक विस्तृत समन्वित कार्यक्रम का रूप देने के तौर-तरीके तय कर लिए है। इससे दोहरावट कम होगी, सहायक कार्यक्रमो की उत्पादकता बढेगी और राज्य सरकारो को क्षेत्रीय प्राथमिकताओ के आधार पर गतिविधियो की रूप रेखा तैयार करने तथा उनके कार्यन्वयन मे और अधिक आसानी होगी।

भूमि उपयोग की नीति के बारे में राष्ट्रीय आयोग का गठन

जमीन के इस्तेमाल के विभिन्न पहलुओ, जैसे वन सपदा के सरक्षण और विकास, बजर भूमि के अधिकतम उपयोग, वाटरशेड के विकास और जैव-विविधता की सरक्षण के लिए भूमि उपयोग की नीति के बारे मे राष्ट्रीय आयोग का गठन किया जाएगा। इसमे विभिन्न क्षेत्रो के विशेषज्ञ शामिल किए जाएँगे। आयोग सरकार को अपनी सिफारिशे देगा।

पूर्वोत्तर क्षेत्र के लिए विशेष योजना

पूर्वोत्तर राज्यो मे कृषि और बागवानी के विकास की क्षमता का उपयोग करने के लिए छोटी-छोटी सिचाई ८ परियोजनाओ और बागवानी के विकास की योजनाओ का बढ़ावा दिया जाएगा। पूर्वोत्तर राज्यो मे बागवानी के विकास के लिए एक टेक्नोलॉजी मिशन भी शुरू किया जाएगा।

संवेदनशील कृषि उत्पादों का शुल्क समायोजन

गेहूँ, चावल, चीनी और खाद्य तेलो जैसे महत्वपूर्ण कृषि उत्पादो के मामले मे आपूर्ति प्रबधन के हमारे अनुभव ने समय-समय पर शुल्क समायोजन की आवश्यकता रेखाकित कर दी है। सरकार ने उच्च स्तर पर वैधानिक शुल्क दरे तय करने के लिए आवश्यक प्रावधान किए हैं। इसमे दरे तय करने मे लचीलापन आ जाता है।

1998-99 बजट[50]

कृषि उत्पादकता को स्थायी रूप से बढाने के लिए बारानी खेती वाले इलाको के वाटरशेड आधार पर विकास को प्राथमिकता विभिन्न मत्रालयो और विभागो के माध्यम से चलाए जा रहे बाटरशेड विकास कार्यक्रमो का समन्वय करना। इस मद के लिए योजना खर्च बढाकर ६७७ करोड[51] रूपये किया गया। सबधित सिचाई कार्यक्रम के खर्च मे ५८ प्रतिशत की बढोत्तरी, ग्रामीण आधारयुक्त सरचना निधि आर० आई० डी० एफ० IV के लिए ३००० करोड रूपए का आवटन, नाबार्ड की शेयर पूँजी मे ५०० करोड की बढोत्तरी, इसमे से १०० करोड रूपये सरकार बजट मे से देगी और बाकी राशि भारतीय रिजर्व बैंक उपलब्ध कराएगा। नाबार्ड स्व-सहायता समूहो को प्रोत्साहन देने की योजना का दायरा बढाएगा। माइक्रो क्रेडिट यानी बहुत छोटे उद्यमो को ऋण उपलब्ध कराने की योजना के तहत अगले पॉच वर्षो मे २ लाख स्व-सहायता समूहो के माध्यम से ४० लाख परिवारो को इसके दायरे मे लाकर सहायता उपलब्ध कराई जाएगी। इस वर्ष १० हजार स्व-सहायता समूहो के माध्यम से २ लाख परिवारो को सहायता देने का प्रस्ताव है। ग्रामीण बैंको के पुनर्वितीयकरण और पुनर्वास की प्रक्रिया को आगे बढाने के लिए २६५ करोड़ रूपये की व्यवस्था, किसानो को उनकी जमीन के आधार पर किसान क्रेडिट कार्ड जारी करने की आदर्श योजना तैयार करने के लिए नाबार्ड से कहा गया ताकि किसान ऋण लेकर बीज, उर्वरक, कीटनाशक जैसी खेती मे काम आनेवाली चीजे आसानी से खरीद सके। सरकार ने हाल ही मे राष्ट्रीय कृषि नीति के बारे मे एक दस्तावेज जारी किया है जिसमे कृषि उत्पादो के उत्पादन, वितरण और लाने ले जाने सबधी नियमो और कानूनो से उत्पन्न किसानो की समस्याओ का समाधान सुझाया गया है। सहकारी क्षेत्र मे नयी जान फूँकने के लिए सरकार शीघ्र ही एक आदर्श सहकारिता कानून बनाएगी जो १९८४ के अलग-अलग राज्यो के सहकारी समिति अधिनियमो का स्थान लेगा। सरकार खाद्य तेलो और खाली कीमतो मे भारी उतार-चढाव को कम करने तथा अच्छा व्यापारिक माहौल बनाने के लिए इन वस्तुओ का वायदा कारोबार शुरू करेगी। सवर्धित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम के लिए आबटन १३०२ करोड़ रूपये से बढाकर १६२७ करोड़ रूपये किया गया। वाटरशेड विकास कार्यक्रमो पर विशेष जोर

---

[50] १९९८-९९ बजट ।

[51] १९९८-९९ बजट ।

और समुदाय आधारित जल आपूर्ति कार्यक्रमो को सस्थागत रूप देने के लिए राज्यो को प्रोत्साहन। इन कार्यक्रमो मे लाभर्थियो को ग्रामीण जल आपूर्ति परियोजनाओ के स्वामित्व, सचालन और रखरखाव के काम मे सक्रिय रूप से भागीदार बनाने की व्यवस्था है। स्व-रोजगार कार्यक्रमो और दिहाड़ी वाली रोजगार योजनाओ के अन्तर्गत आने वाले तमाम कार्यक्रमो की समेकित करने का प्रस्ताव है।[52]

कृषि और संबधित गतिविधियों में केन्द्र सरकार का खर्च

तालिका-1-12

(योजना और गैर योजना खर्च)

अवधि	वर्ष	योजना	गैर-योजना	कुल	प्रतिशत
1	1992-93	1897	442	2339	13 3
	1993-94	2005	527	2532	8 3
	1994-95	2552	504	3056	20 7
	1995-96	2374	529	2904	5
2	1996-97	2352	477	2829	2 6
	1997-98	2262	539	2801	1
3	1998-99	2620	627	3247	15 9
	1999-2000	2931	1260	4191	29.1 (सशोधित अनुमान)
	2000-2001	3512	1169	4681	11 7 (बजट अनुमान)

---
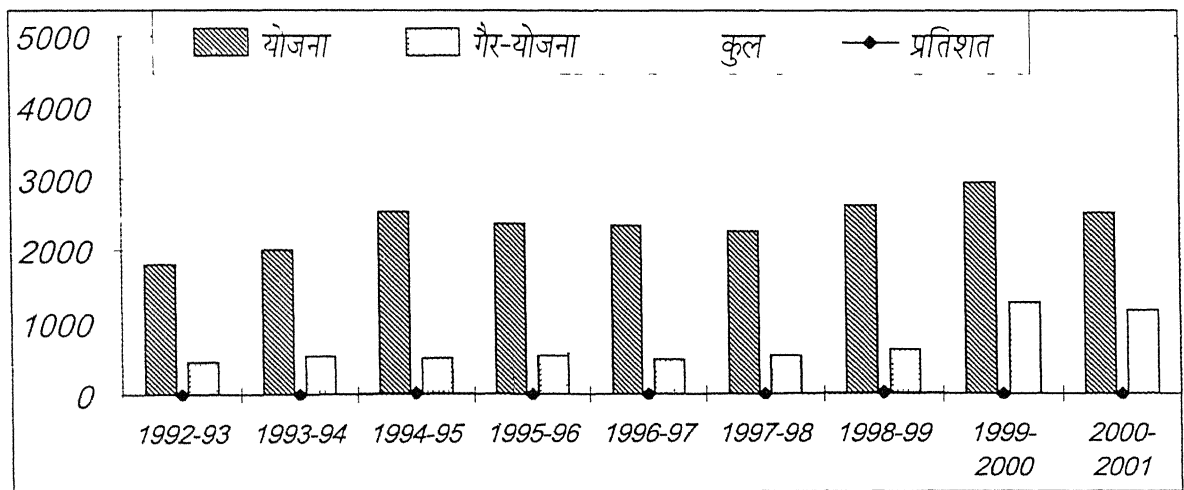
52 १९९८-९९ बजट ।

विकास की रणनीति :-

वित्त मत्री की रणनीति कृषि एव खाद्यान्न अर्थव्यवस्था मे सुधार लाना और बुनियादी ढॉचे मे सार्वजनिक एव निजी निवेश बढाकर विकास दर मे वृद्धि लाना है इसी के साथ वे वित्तीय क्षेत्र और स्टाक मार्केट को सुदृढ बनाना और कमजोर वर्गो को सुरक्षा कवच प्रदान करना भी आवश्यक समझते हैं।

पिछले वर्ष की भॉति इस वर्ष भी वित्त मत्री के बजट का केन्द्र बिन्दु कृषि और ग्रामीण विकास है। वे कृषि उपज मे विविधता लाकर और कृषि उत्पादो को शीत भडारो में सुरक्षित रखने की व्यवस्था करके या उनका ससाधन करके इस क्षेत्र मे तीसरी क्राति लाना चाहते हैं। कृषि क्षेत्र मे विकास की असीम सभावनाएँ हैं। देश की ७० प्रतिशत जनता अभी भी कृषि से जुड़ी हैं।[53] कृषि क्षेत्र मे उत्पादकता बढाकर परम्परागत गेहूँ और चावल के स्थान पर तिलहनो, दालो, फलो, फूलो और सब्जियो आदि का उत्पादन शुरू करके उनकी भडारण और रक्षण की समुचित व्यवस्था करके कृषि क्षेत्र की अर्थव्यवस्था का रूपान्तरण किया जा सकता है। इससे एक ओर मॉग और लोगो की क्रय शक्ति बढेगी और दूसरी ओर विकास का मार्ग प्रशस्त होगा। इससे ग्रामीण क्षेत्रो में रोजगार के हजारो अवसर बढ़ेगे और गॉवो से लोगो का शहरों की ओर पलायन रूकेगा।[54]

पिछले वर्ष वित्त मत्री ने शीत भडारो के निर्माण के लिए ऋण से जुडी सब्सिडी योजना शुरू की थी। इस योजना के अतर्गत २१ लाख टन क्षमता के शीत भडारो के निर्माण की मजूरी दी जा चुकी है। जबकि लक्ष्य मात्र १२ लाख शीत भडार बनाने का था।[55] पिछले वर्ष गॉवों मे गोदाम बनाने की एक योजना भी शुरू की गई थी। सरकार को आशा है कि कृषि जिन्सो की आवाजाही पर और अन्य नियत्रण के समाप्त होने से इस क्षेत्र मे निवेश बढेगा। वित्त मंत्री ने इस वर्ष भी सब्सिडी से जुडी इस योजना के लिए ७० करोड रूपये आवटित किए हैं।[56]

---

[53] भारत मे आर्थिक सर्वेक्षण २००१-२००२ ।
[54] भारत मे आर्थिक सर्वेक्षण २००१-२००२ ।
[55] भारत मे आर्थिक सर्वेक्षण २००१-२००२ ।
[56] भारत में आर्थिक सर्वेक्षण २००१-२००२ ।

ग्रामीण क्षेत्रो की उत्पादक गतिविधियो के लिए पिछले वर्ष वित्त मत्री ने ६४,००० करोड रू० के सस्थागत ऋण की व्यवस्था की थी। इस वर्ष उन्होने इस राशि को बढ़ाकर ७५,००० करोड़ रू० कर दिया है।[57] सरकार ने कृषि अनुसधान की राशि मे ९१ करोड रूपये की वृद्धि की गई है। कृषि उत्पादो को बढावा देने के लिए देश के विभिन्न राज्यो मे कृषि निर्यात क्षेत्रो को बढावा दिया जा रहा है। अब तक १५ ऐसे क्षेत्रो की स्थापना को मजूरी दी जा चुकी है।[58]

वर्ष २००१-२००२ मे ५ ४ प्रतिशत की जो कुल वृद्धि दर प्राप्त हुई है उसमे कृषि व सबद्ध क्षेत्रो मे हुई ५ ७ प्रतिशत की वृद्धि दर, उद्योगो मे ३ ३ प्रतिशत की वृद्धि दर तथा सेवा क्षेत्र मे ६ ५ प्रतिशत की वृद्धि दर का योगदान है।[59] सामान्य मानसून और उचित समय पर लगभग सभी क्षेत्रो मे अच्छी वर्षा के परिणामस्वरूप वर्ष २००१-०२ मे कृषि उत्पादन की सभावनाएँ उज्जवल मानी गई। वर्ष २००१-०२ मे कृषि पैदावार लगभग ७ प्रतिशत बढने का अनुमान है। अनाज का उत्पादन बढकर २० करोड़ ९० लाख टन होने की सभावना है जबकि वर्ष २०००-०१ मे यह १९ करोड़ ६० लाख टन था।[60] तिलहन उत्पादन मे गिरावट भी रूक जाने की सभावना है।

२००२-०३ के बजट मे कृषि अनुसधान के लिए अवटित धनराशि को ६८४ करोड रू० से बढाकर ७७५ करोड रू० कर दिया गया है।[61] अनुसधान तथा प्रसार के बीच सबधो को और अधिक मजबूत बनाया जाएगा जिससे कि गुणवत्ता तथा प्रभावोत्पादकता मे सुधार हो। ''कृषि विज्ञान केन्द्रो'' के माध्यम से प्रसार तत्र को और अधिक विस्तृत या पुनर्जीवित किया जायेगा। इसमे गैर - सरकारी सगठनो, किसान सगठनो कोआपरेटिव, तथा किसान सगठनो को भी मदद की जाएगी ।

कृषि उत्पादो के लिए समुचित कीमत मिले इसके लिए आवश्यक है कि इनका अधिक से अधिक निर्यात हो जिसके लिए माहौल पैदा करना होगा। इस कार्य के लिए विभिन्न राज्यो मे १५ कृषि निर्यात

---

[57] बजट २००१-२००२ ।
[58] बजट २००१-२००२ ।
[59] बजट २००१-२००२ ।
[60] बजट २००१-२००२ ।
[61] बजट २००१-२००२ ।

जोनो की स्थापना की गयी है।[62] कृषि निर्यात जोन आधारभूत ढॉचे के विकास को प्रोत्साहित करेगे तथा इसके अलावा इन जोनो मे स्थापित इकाईयो को साख भी उपलब्ध करायेगे।

नौवी पंचवर्षीय योजना (1997-2002) के अनुसार इस अवधि मे श्रम शक्ति मे वृद्धि सबसे अधिक रहने की सभावना है। सन् २००७ तक पूर्ण रोजगार का लक्ष्य प्राप्त करना कोई युक्ति सगत कार्य नहीं है, बशर्ते वृद्धि दर मे तेजी लाने के लिए अनुकूल हालात पैदा किए जाते रहे और विभिन्न क्षेत्रो की श्रमिको को खजाने की क्षमता मे कमी न आए। अनुमान है कि सन् २००७ तक पूर्ण रोजगार इस बात पर निर्भर है कि नौवी योजना के बाद की अवधि मे रोजगार मे बढ़ोत्तरी २.८ प्रतिशत की दर से हो जबकि १९७८-९४ मे २ ३७ प्रतिशत की सर्वोच्च वृद्धि दर हासिल की गई थी और नौवी योजना मे २ ४४ प्रतिशत वृद्धि दर का अनुमान लगाया गया है। इसके लिए नौवी योजना के बाद के वर्षो मे सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर ७ ७ प्रतिशत वार्षिक रखनी होगी। नौवी योजना मे श्रम शक्ति और रोजगार के अवसर सबधी अनुमानो से इस योजना-अवधि के दौरान आठवीं योजना के मुकाबले बेराजगार की औसत दर मे गिरावट आएगी।

तालिका-1-13

आठवी और नौवी योजना अवधि में श्रम शक्ति और रोजगार

	आठवी योजना (1992-97)	नौवी योजना (1997-2002)
श्रम शक्ति	3742	4234
रोजगार	3672	4164
बेरोजगारी	70	70
बेराजगारी (प्रतिशत)	(1 87)	(1.66)

स्रोत योजना आयोग ।

[62] बजट २००१-२००२
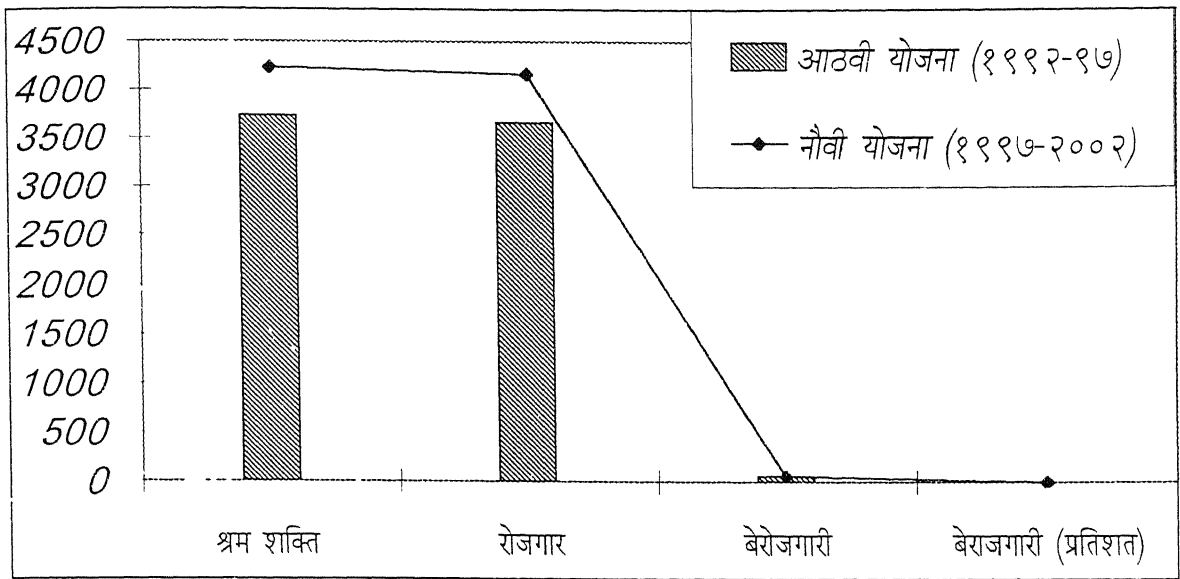
नोट :-

- श्रम शक्ति और रोजगार सबधी अनुमान सामान्य स्थिति सबधी अवधारणा पर आधारित है और १५ वर्ष इससे ऊपर के लिए है।
- श्रम-शक्ति, रोजगार, बेरोजगारी योजनावधि के दौरान वार्षिक औसत पर आधारित है।
- कोष्ठक मे दिए गए ऑकडे ठीक पहले की अवधि मे चक्रवृद्धि विकास दरे है।
- देश के करोडो श्रमिको के सरक्षण के लिए सरकार के दूसरा राष्ट्रीय श्रम आयोग गठित करने का फैसला किया है।

******

द्वितीय अध्याय

भारत में कृषि विपणन की व्यवस्था एवं समस्याएँ

प्राचीन काल से ही भारतीय अर्थव्यवस्था मे कृषि का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। मसाले, जडी-बूटियो तथा कपास और इसके रेशे से बने सूती वस्त्रो के अतिरिक्त गन्ने से बनी सफेद शक्कर के निर्यात का सिलसिला बहुत पुराना है। भरण-पोषण हेतु उपयोग के बाद बचे कृषि उत्पादो का व्यापार प्राचीन भारत मे भी किया जाता था। पतजलि के महाभाष्य तथा जातक के अतिरिक्त अनेक प्राचीन ग्रन्थो मे कृषि वाणिज्य का उल्लेख मिलता है। हरित क्राति के परिणाम स्वरूप कृषि मे उत्पादन बढ़ने तथा अब कृषि उत्पादो के निर्यात सवर्धन के कारण भारतीय कृषि मे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के जो नए सोपान सामने आए हैं उसमे कृषि विपणन तथा मडी नियमन का महत्वूर्ण योगदान रहा है।[1]

विपणन आर्थिक गतिविधियो का मूल आधार है। वस्तुओ का उत्पादन चाहे जितना कर लिया जाए, किन्तु जब तक उनके विपणन की समुचित व्यवस्था नहीं होगी तब तक आर्थिक विकास की सम्भावनाएँ अत्यन्त धीमी होगी। भारतीय कृषि के पिछडेपन के अनेक कारण रहे हैं परन्तु यह भी सत्य है कि भारतीय कृषि के पिछडेपन का एक प्रमुख कारण पर्याप्त कृषि विपणन के सुविधाओ का अभाव रहा है। किसानो की आर्थिक दशा मे तब तक सुधार सभव नहीं है जब तक की उन्हे उनकी उपज का सही मूल्य नहीं प्राप्त हो जाता है।कृषि उपजो के विपणन मे एकत्रीकरण, यातायात, सग्रहण, श्रेणीकरण, प्रमापीकरण, वित्त व्यवस्था, जोखिम व बिक्री आदि विभिन्न क्रियाएँ समाविष्ट है।

---

[1] विश्नोई हरि ' भारत मे कृषि विपणन व्यवस्था एव सुझाव, पृष्ठ सख्या ८८५, प्रतियोगिता दर्पण आगरा, नवम्बर १९९७।

कृषि एक लघु पैमाने का व्यवसाय है अत इसका उत्पादन पुरे देश मे यत्र-तत्र बिखरा हुआ होता है। अत देश भर मे बिखरे हुए कृषि पदार्थो का एकत्रीकरण अत्यन्त जटिल क्रिया होती है। कृषि उपजो की मौसमी प्रकृति उनके विपणन की कठिनाईयो मे वृद्धि कर देती है। अधिकाश कृषि फसले वर्ष मे थोडे समयावधि मे पक जाती है। इसके परिणामस्वरूप उनकी बिक्री, सग्रहण, यातायात तथा वित्तीय कार्यो के लिए शीर्ष भार वहन करना पडता है, क्योकि जो अधिक बिकाऊ कृषि पदार्थ है उन्हे महीनो सुरक्षित रखने की आवश्यकता होती है, जिनका वर्ष भर उपयोग किया जाता है। कच्चे मालो के रूप मे प्रयुक्त होने वाले कृषि पदार्थो के विषय मे यह बात पूर्णतया सत्य है क्योकि निर्माणकर्ता कुछ प्रमापित पदार्थो की ही माँग करते हैं।[2]

कृषि उपजो के विपणन मे एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या यह होती है कि ये अधिक जगह घेरने वाली होती है अथार्त मूल्य की तुलना मे इनकी भार व मात्रा विशाल होती है अथार्त् मूल्य की तुलना मे इनकी भार व मात्रा विशाल होती है और उनमे से अधिकाश विनष्ट होने वाली होती है, जिससे परिवहन और सग्रहण की लागत बढ जाती है, इसके अतिरिक्त अभी हमारे देश मे अधिकाश किसान अशिक्षित एव गँवार है जो विपणन पद्धतियो एव बाजार की दशाओ से पूर्णतया अनभिज्ञ है तथा उन्हे विभिन्न मण्डियो के प्रचलित मूल्यो की जानकारी नही रहती है। उपभोक्ताओ को किस किस्म के कृषि पदार्थो की आवश्यकता है इसकी भी जानकारी किसानो को नहीं रहती है। वित्तीय सकट के कारण किसान उत्पादन होते ही कृषि उपज गाँव के व्यापारी, साहूकार, महाजन आदि के हाथो बेच देते है, जहाँ उन्हे अपनी उपज का सही मूल्य नहीं मिल पाता है। इस प्रकार हमारे देश मे किसानो को अपनी उपज की उचित समय उचित स्थान और उचित मूल्यपर बिक्री करने मे अनेक कठिनाईयो का सामना करना पड़ता है।[3] इसके अतिरिक्त अब कृषि का व्यापारीकरण हो रहा है, जिससे कृषि पदार्थ अधिक मात्रा मे देश-विदेश के कोन-कोने मे पहूँचने लगे है, जिसके परिणाम- स्वरूप कृषि विपणन मे मध्यस्थों की सख्या बढ़ी है, जिससे कृषि विपणन की समस्याएँ और अधिक जटिल हो गई है। व्यापारी वर्ग से तथा मध्यस्थो से किसानो एव उपभोक्ताओं का शोषण बढने लगा है। अतएव उत्पादक

---

[2] सिह कुमार अशोक, भारत मे कृषि विपणन पृष्ठ सख्या १२, विजय प्रकाशन मन्दिर सुडिया वाराणसी।

[3] वही पृष्ठ सख्या – १३।

एव उपभोक्ताओ दोनों के हित के लिए कृषि विपणन व्यवस्था मे सुधार किया जाना आवश्यक हो गया है। चूँकि हमारे देश मे उत्पादन का ढॉचा, सगठन प्रणाली, वितरण पद्धति, वित्तीय ससाधन, विनिमय तथा विपणन प्रक्रियाएँ पूर्णतया अविकसित एव अवैज्ञानिक है।

अत कृषि उत्पादकता एव उत्पादन मे प्रगति के लक्ष्यो को पूरा करना जितना आवश्यक है उसमे कहीं अधिक विपणन प्रक्रिया को समुन्त करने पर बल देना आवश्यक है।

प्राचीन भारत में विपणन व्यवस्था :-

भारतीय कृषि मे विपणन व्यवस्था का विकास वस्तु विनिमय प्रथा के बाद मुद्रा का प्रादुर्भाव हो जाने पर तेजी के साथ हुआ और बाजार बढे। **कौटिल्य के अर्थशास्त्र** ओर चरक सहिता से लेकर वर्तमान के शोध ग्रन्थो तक मे ऐसे अनेक उल्लेख मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि सदियो पूर्व भी हमारे देश मे विभिन्न कृषि उत्पादो की बिक्री के लिए मडी, हाट-बाजार, माप तौल के लिए बाट और नापने के लिए पात्र निश्चित थे।[4] प्रमुख कृषि उत्पादो का मूल्य राज्य सरकार द्वारा निर्धारित होता था। कृषि उत्पादो के व्यापार पर कर लगाया जाता था तथा खाद्य वस्तुओ के कम तौलने या चोर बाजारी करने वालो के लिए दण्ड दिया जाता था। भारत के गर्म मसाले, चन्दन, घी, मलमल और मिश्री जैसी चीजे विश्वविख्यात थी, दूर-दूर तक निर्यात की जाती थी।

देश के अधिकाश भागो मे कच्ची सडको के होते हुए खेतो से कृषि उत्पादो को बाजारो तक ले जाने के लिए परिवहन का माध्यम हमारे देश मे मात्र एक बैलगाडी थी, और अनाज को भण्डार करने के लिए कोठी, कुठले और कोठारो को उपयोग होता था, जिसे मिट्टी से बनाया जाता था। फिर भी व्यापारियो की साठ गाठ, ठगी और लूट-पाट तथा असगठित एव अनियमित मडियो मे कृषि उत्पादों की बिक्री करने मे बहुत जोखिम बना रहता था, इसलिए घाटा होने की सम्भावना अधिक रहती थी। कौटिल्य ने तो कर चोरी को नियन्त्रित करने के लिए ऐसा विधान बनाया था कि खेत बाग और उत्पादन के स्थान पर कृषि उपज को बेचना प्रतिबन्धित था। अत विवश होकर उत्पादको को अपनी उपज बेचने के लिए मण्डी तक आना ही पड़ता था।

---

[4] विश्नोई हरि भारत मे कृषि विपणन व्यवस्था एव सुझाव, पृष्ठ सख्या ८८५, प्रतियोगिता दर्पण आगरा, नवम्बर १९९७।

कम कृषि उत्पादन, कम जनसख्या और उसकी सीमित आवश्यकताओ के कारण उस समय कृषि विपणन से सम्बन्धित समस्याए कम थी और वर्तमान समस्याएं से अलग थी। सीमित क्रय क्षमता थी और परिवहन तथा भण्डारण के अभाव मे उत्पाद वस्तुएँ जल्दी खराब हो जाती थी। विधिवत श्रेणीकरण का हमेशा अभाव था। कानून तो थे लेकिन फिर भी स्थिति काफी खराब थी।

स्वतंत्रता-पूर्व कृषि विपणन सुधारार्थ प्रयास [5]

सन् १९२८	शाही कृषि आयोग की स्थापना
सन् १९३०	हैदराबाद एग्रीकल्चरल मार्केटिंग एक्ट पारित
सन् १९३५	सेन्ट्रल प्राविन्स काटन मार्केटिग एक्ट पारित
सन् १९३७	कृषि उत्पाद श्रेणीकरण एव चिन्हाकन अधिनियम पारित
सन् १९३८	इडियन सेन्ट्रल कॉटन कमेटी गठित।
सन् १९३९	पजाब राज्य कृषि एक्ट पारित।

आजादी प्राप्त होने के बाद से नव-जागरण काल शुरू हुआ और स्थिति मे धिरे-धिरे सुधार हुआ क्योकि स्वदेशी सरकार को अपने देशवासी किसानो के प्रति सच्ची सहानुभूति थी। अग्रेजों ने आजादी से पहले किसानो और कारीगरो का शोषण किया था, इसलिए कृषि विपणन को भी इन्होने अपने हितो का पोषक बनाया, अत स्वतन्त्रता प्राप्त हाने से पूर्व एक समय वह भी था जब भारतीय कृषक अपना खून पसीना बहाकर फसल उगाते थे और जब बेचने के लिए उसे लेकर मण्डी पहुँचते थे तो वहाँ दलालो और कच्चे तथा पक्के आढतियो के चगुल मे फँसकर अपने सारे अनाजो को सस्ते दाम में बेचकर घर पहुँचते थे। किसानो को उनके परिश्रम का उचित मेहनताना नहीं मिलता था, क्योकि आढ़तिए, करदा, धर्मादा, गौशाला, प्याऊ आदि के नाम पर बेवजह काफी पैसा कटौती के नाम पर खुद हडप जाते थे। इसी कारण काफी दिनो तक भारतीय किसान कर्ज गरीबी और महाजनो के चगुल मे फँसे रहे। पुरानी मडियो मे व्यापारी सॉठ-गाँठ करके नीलामी करते थे और मनमाने दामो पर कृषि उपज को खरीद लेते थे। उनी चालबाजी अनपढ किसानो की समझ मे नहीं आती थी,

[5] विश्नोई हरि भारत मे कृषि विपणन व्यवस्था एव सुझाव, पृष्ठ सख्या ८८६, प्रतियोगिता दर्पण आगरा, नवम्बर १९९७।

लेकिन आजादी मिलने के बाद देश मे जब नियोजन काल प्रारम्भ हुआ तो सरकार का ध्यान इस ओर गया और कृषि विपणन व्यवस्था मे सुधार का नया दौर प्रारम्भ हुआ और किसानो को राहत मिली ।

क्रमिक विकासः-

कृषि विपणन के अन्तर्गत सभी वस्तु विनिमय तथा क्रय-विक्रय की क्रियाएँ शामिल होती है। हमारे कृषि प्रधान देश की तरक्की एव खुशहाली के लिए कृषि विपणन व्यवस्था का बेहतर होना अति आवश्यक है। अत सर्वप्रथम आजादी से पहले सन् १९३५ मे कृषि विपणन सलाहकार का कार्यालय खोला गया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति होने के बाद से इस सगठन का विस्तार और तेजी के साथ हुआ तथा बाद मे उसका नाम बदलकर विपणन एव निरीक्षण निदेशालय कर दिया गया जो अब कृषि मत्रालय के अन्तर्गत काम कर रहा है। इसका मुख्यालय फरीदाबाद (हरियाणा) मे तथा प्रधान शाखा कार्यालय नागपुर मे है। यह निदेशालय कृषि बागवानी, पशुधन, डेयरी तथा वनोत्पादो को लिए उपयुक्त गुणवत्ता परिभाषाओ एव श्रेणी के आधार १५१ कृषि वस्तुओ पर मानको का निर्धारण करता है जिसे एग्रीकल्चरल मार्किंग **''कृषि चिन्ह''** अथार्त **''एगमार्क''** कहा जाता है[6]

विपणन निदेशालय की प्रमुख गतिविधियाँ निम्नवत है।

- श्रेणीकरण एव कोटि नियत्रण।
- मण्डियो का विनियमन, विकास अनुसधान, सर्वेक्षण और आयोजना।
- शीतागार तथा मासोत्पाद आदेश लागू करना।
- कार्मिक प्रशिक्षण तथा विपणन विस्तार एव प्रचार प्रकाशन।
- राज्यो हेतु मडी नियमन मे मार्गदर्शन एव परामर्श।
- मण्डी विकास हेतु राज्यों को केन्द्रीय सहायता।
- व्यापारियो का एकाधिकार तथा बिचौलियो की भूमिका समाप्त करना।

---

[6] विश्नोई हरि भारत मे कृषि विपणन व्यवस्था एव सुझाव, पृष्ठ सख्या ८८६, प्रतियोगिता दर्पण आगरा, नवम्बर १९९७।

- एगमार्क प्रयोगशालाओ का सचालन।
- निर्यात कोटि नियत्रण।
- मण्डियो का नियोजन एव डिजाइन।

मण्डियो मे कृषि उत्पादो के क्रय विक्रय से समबन्धित समुची कार्य प्रणाली को अब नियमबद्ध किया गया है। उसी को मण्डी विनियमन कहते है। इसके अन्तर्गत कृषि उपज को छानने, साफ करने एव उसका वर्गीकरण (ग्रेडिग) करने के बाद विक्रेता की पूर्ण सहमति से नीलामी क्रिया द्वारा सौदा तय कराया जाता है। कृषि उपज की सही-सही माप-तौल मीट्रिक प्रणाली से होती है तथा कुल मूल्य का नकद भुगतान कृषको को तुरन्त कराया जाता है। अब सभी परपरागत कटौतियो के अवैधानिक घोषित किया जा चुका है यह व्यवस्था उन सभी मडी क्षेत्र मे है जहाँ स्थानीय रूप से मडी समितियों का गठन किया गया है। इस समितियो की गठन का उद्देश्य निम्नानुसार है।

- किसान एव व्यापारियो मे न्यायपूर्ण व्यवहार हो।
- नीलामी द्वारा कृषि उपज की बिक्री।
- सही माप तौल और तुरन्त पुरा भुगतान।
- बाजार भावो एव अन्य जरूरी सूचनाओं का सग्रह तथा प्रचार।
- मडियो मे आवश्यक सुविधाएँ।
- विवादास्पद मामलो मे मध्यस्थता।

मण्डी समितियो को चलाने, नियत्रण तथा मार्गदर्शन के लिए १९७२-७३ से राज्यो मे मण्डी परिषदो को गठन किया गया।[7] इन परिषदो ने कृषकों के हित मे खलिहान, दुर्घटना बीमा योजना समूह, जनता व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा योजना, भण्डारण पात्रो पर अनुदान, ग्रामीण गोदाम निर्माण, सड़क और पुलिया निर्माण, ग्राम विकास योजना, पेय जल हेतु हैण्ड पम्प लगाने तथा खाण्डसारी इकाइयो हेतु एक मुश्त योजना आदि की शुरूआत की वर्तमान कृषि विपणन व्यवस्था का उद्देश्य है। कृषको को शोषण से बचाना

---

[7] विश्नोई हरि भारत मे कृषि विपणन व्यवस्था एव सुझाव, पृष्ठ सख्या ८८६, प्रतियोगिता दर्पण आगरा, नवम्बर १९९७।

क्रेता-विक्रेता का मध्य सहयोग एव समन्वय का वातावरण बनाना तथा उपभोक्ता के लिए गुणवत्ता नियत्रण तथा श्रेणीकरण आदि को सुनिश्चित करना। यद्यपि मण्डियो का राज्य सरकारो का विषय है, लेकिन निरीक्षण एव विपणन निदेशालय इसमे मार्गदर्शन एव सलाह देने का काम करता है। वर्तमान समय मे मण्डी विकास की दिशा मे जो भी स्थल, निमार्ण आदि के कार्य हुए है उनमे तेजी लाने का कार्य मुख्य रूप से इसी निदेशालय द्वारा किया गया है। इससे कृषको को विपणन कार्य मे काफी सहायता मिली है।

अब आढतियो के रहमो करम पर किसानो के माल की बिक्री का समय बीत चुका है। फलस्वरूप अब किसानो को अच्छे दाम मिलने लगे है। समर्थन मूल्य पर सरकारी खरीद से तो और भी ज्यादा सहारा मिलता है। वर्ष १९९७-९८ की खरीफ की फसलो के लिए कृषि की विभिन्न फसलो खरीफ एव रबी के समर्थन मू० (रु० कु०) भारत सरकार के कृषि लागत एव मूल्य आयोग निधार्रित कर दिए है।

सारणी 2-1

कृषि की विभिन्न फसलों के लिए घोषित समर्थन मूल्य

फसल/वर्ष	१९९३-९४ (रु०प्रति कु०)	१९९४-९५ (रु०प्रति कु०)	१९९५-९६ (रु०प्रति कु०)	१९९६-९७ (रु०प्रति कु०)	१९९७-९८ (रु०प्रति कु०)
1. खरीफ फसलें					
साधारण धान	310	340	360	380	415
फाइन धान	----	360	375	395	435
सुपर फाइन धान	----	380	395	415	455
ज्वार/बाजरा/रागी	260	280	300	310	360
मक्का	265	290	310	320	----
अरहर/मूग/उरद (अच्छी क्वालिटी)	700	760	800	840	900
मूगफली (छिल्के वाली औसत दर्जे की)	800	860	900	920	980
सोयाबीन (पीले)	586	656	680	700	750
सोयाबीन (काले)	525	570	600	620	670
सूरजमुखी	850	900	930	960	----
तिल	----	----	850	870	----
राम तिल	----	----	700	720	----
कपास एफ - 414 एच - 777	900	1000	1070	1100	1330

एच - 4	900	1050	1270	1380	1530
2. रबी फसलें					
गेहूं (औसत दर्जे का)	350	360	380	415	अभी घोषित नहीं
चना (औसत किस्म)	640	670	700	740	
जौ	275	285	295	305	
रैपसीड व सरसों	810	830	860	890	
सूरजमुखी	760	780	800	830	
नारियल (अच्छे गुणवाले)	----	----	2725	----	
नारियल (औसत)	----	----	2500	----	

1. खरीफ फसलें
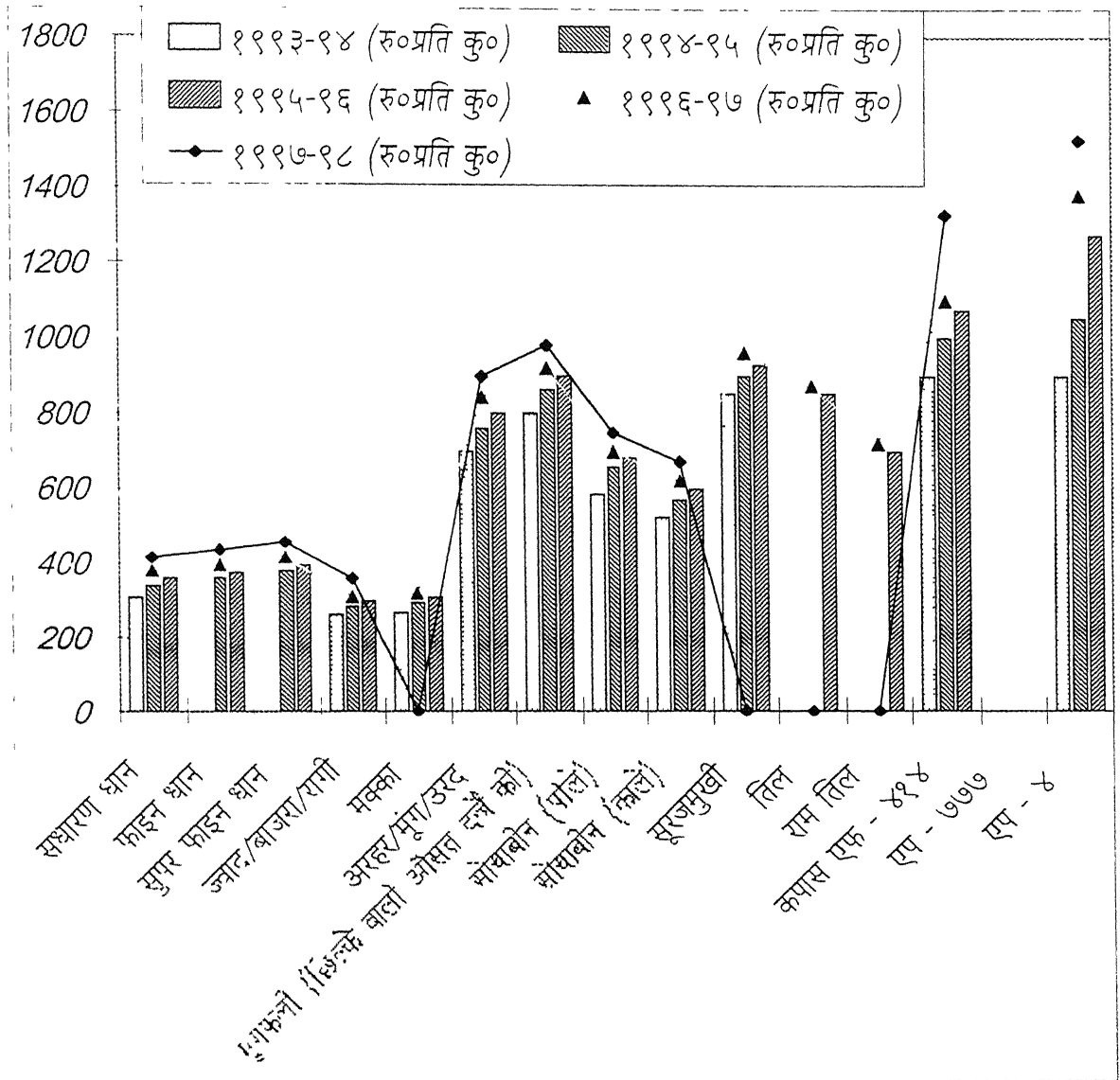
2. रबी फसलें
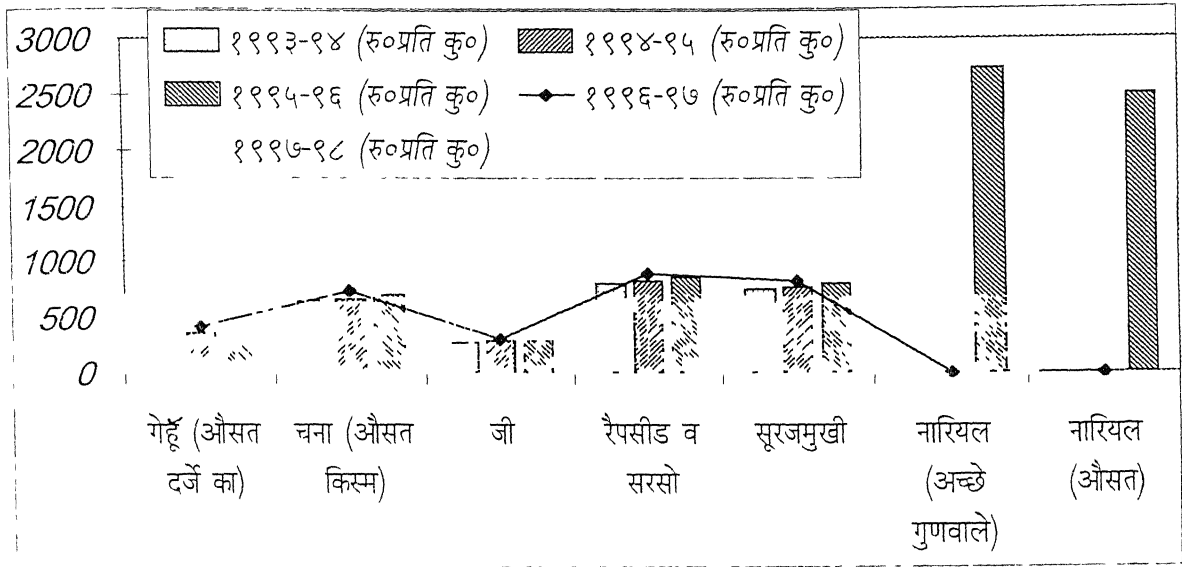
स्त्रोत :- प्रतियोगिता दर्पण दिसम्बर 1997

इसके अतिरिक्त देश भर मे अब तो प्राय हर नगर मे ऐसे नवीन मडी स्थलो का निर्माण हो चुका है जहॉ किसानो की सुविधा के लिए डाकघर, बैंक पुलिस चौकी, शीतल छाया, भोजन, पीने का पानी, ठहरने की जगह, सुलभ परिवहन सुविधा और माल के सुरक्षित भण्डार के लिए आवश्यक गोदाम तथा टीन शेड आदि की व्यवस्था उपलब्ध रहती है। कृषि उत्पादन मण्डी समिति के कर्मचारी इस पूरी व्यवस्था का सचालन सुनिश्चित करते हैं इस प्रकार माल की खरीद एवं बेच मे शोषण की प्रायः नग्न हो गई है।

भारत मे कृषि उत्पादो का विपणन मॉग एव पूर्ति द्वारा प्रभावित रहता है। इस बाजार तत्र का केन्द्र बिन्दू वास्तव मे निजी क्षेत्र का खुला व्यापार है। सरकार का इसमे इतना ही योगदान रहता है कि वह उत्पादक एव उपभोक्ता इन दोनो के हितो का सरक्षण करे और इसीलिए कृषि विपणन सगठित स्वरूप को प्रोत्साहित किया जाता है विभिन्न राज्य सरकारों ने इसके लिए अधिनियम और नियम बना रखे है ताकि कृषि मडियो विनियमित किया जा सके। केन्द्र सरकार ग्रामीण गोदाम, मडी विकास का बुनियादी ढाचा विकसित करने के लिए सहायता प्रदान करती है। कृषि उत्पादो के मूल्य बिक्री और बाजार से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओ को हल करने मे कृषि मूल्य आयोग, भारतीय खाद्य निगम, रूई निगम, कपास निगम का योगदान महत्वपूर्ण रहता

है। इसके अतिरिक्त रबर, कॉफी, गर्म मसाले, नारियल, तिलहल तथा सब्जियो के लिए राष्ट्रीय स्तर पर अलग-अलग बोर्ड के भी कार्य कर रहे है जो इसके उत्पादन के विपणन मे मदद करते है तथा विक्रय विकास की योजनाएँ चलाते हैं। गन्ना, जूट, तम्बाकू, कपास, आदि के लिए केन्द्रीय कृषि मत्रालय के अन्तर्गत पृथ्क-पृथ्क निदेशालय हमारे देश मे कार्यरत है।

मडी अथवा बाजार मुख्य रूप से कृषि विपणन का आधार होता है। क्योकि वहाँ पर किसान अपनी उपज को व्यापारी अथवा उपभोक्ताओ को बेचकर मूल्य का भुगतान करते हैं। इस लेन-देन मे किसान अधिकतम मूल्य प्राप्त करना चाहता है। विपणन के लिए निर्धारित स्थान का भी अपना अलग महत्व होता हैं। सभी किसान एक जगह एकत्र होकर जब अपनी उपज को बेचते हैं तो उनके ठगे जाने अथवा उनके शोषण की सम्भावना बहुत कम हो जाती है। उन्हे पता रहता है कि अन्य किसान अपनी उपज को किस भाव मे बेच रहे है और यही सजगता कृषि विपणन मे कृषको की सक्रिय भागीदारी को सुनिश्चित करती है।

कृषि बाजारों का वर्गीकरण :-

भारत मे कृषि बाजारो का अध्ययन निम्न शीर्षको के अन्तर्गत किया जा सकता है।

1. प्राथमिक बाजार :- यह बाजार प्राय नियत कालिक होता है और स्थानीय भाषा मे इन्हे उत्तर प्रदेश, बिहार और उडीसा मे हाट और पैंठ, पश्चिमी बगाल मे हाट तथा दक्षिणी भारत में शैंडी कहते हैं। ये बाजार सप्ताह मे एक या दो बार लगते है। इनमे कार्य दोपहर के बाद २ बजे से ५ बजे तक होता है।[8] इनमे अधिकतर उत्पादक स्वय अपना माल लाकर उपभोक्ताओ को, आढतियो को या थोक व्यापारियों को बेचते है। ग्रामीण व्यापारी तथा फेरीवाले व्यापरारी इन बाजारो मे उत्पादको से माल खरीदकर थोक व्यापारियो के पास पहुँचाते है।[9] इन बाजारो को लगाने के लिए मुख्य भवन नहीं होता है, ये प्राय खुले स्थानो मे, पेडो के नीचे अथवा सड़क के किनारे लगाये जाते है। कभी-कभी मिट्टी के चबूतरे बना लिये जाते हैं जिससे विक्रेताओ को धूल से बचाव हो सके। दाँतवाला कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार हमारे देश मे प्राथिमिक बाजारो की सख्या २५००० बतायी गयी है। ऑल इडिया क्रेडिट सर्वे कमेटी का यह मत है कि हमारे देश में किसान अपने विक्रय योग्य

---

[8] गुप्ता ए० पी० मार्केटिंग ऑफ एग्रीकल्चरल प्राड्यूस इन इण्डिया, पृष्ठ सख्या १३ ।

[9] भालेराव, एम०एम०, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी (१९७७) पृष्ठ सख्या ३९४ ।

अतिरेक का ७५ प्रतिशत भाग गॉव मे ही इन प्राथमिक बाजारो मे बेच देता है। इन बाजारो मे थोक एव फुटकर दोनो प्रकार की बिक्री होती है।[10]

2. थोक बाजार अथवा मण्डी :- प्राथमिक बाजारो के विपरीत ये बाजार दैनिक होते हैं और व्यावसायिक सौदो हेतु स्थायी स्थान प्रदान करते है। इन्हे मडी या गज भी कहते है। इनमे कार्य प्रात काल मे प्रारम्भ होते है और देर रात तक चलता रहता है। कुछ बाजारो जैसे मथुरा, हाथरस, आदि मे सौदो का निपटारा एव भुगतान आधी रात के बाद तक भी चलता रहता है।[11] ये बाजार मुख्यत जिला, शहरो, अन्य नगगे व महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्रो व रेलवे स्टेशनो के समीप होते हैं ताकि दूर-दूर से आसानी से माल आ सके और विभिन्न उपभोक्ताओ केन्द्रो पर माल भेजा जा सके। इन्हे द्वितीयक बाजार भी कहते हैं। इनमें अधिकाशत कृषि पदार्थो की थोक बिक्री ही होती है तथा बडे-बडे थोक व्यापरी, आढतिया, दलाल आदि काम मे लगे रहते है। प्राथमिक बाजारो, हाटो मे किसान अपने कृषि पदार्थों की विक्री तो करते ही हैं साथ ही साथ कुछ किसान अपने कृषि पदार्थों को इन मण्डियो मे स्वय ले जा कर बेंचते है। दाँत वाला कमेटी के अनुसार भारत मे इस प्रकार की ३५०० थोक मण्डीयाँ है।[12]

थोक मण्डियो को दो भागो मे विभाजित किया गया है -

(१) अनियन्त्रित मण्डियाँ

(२) नियत्रित मण्डियाँ

1. अनियन्त्रित मण्डियाँ :- अनियन्त्रित मण्डियाँ किसी निश्चित नियम द्वारा सचालित नहीं होती है। इसमे बिक्री दलाल के माध्यम से होती है। सर्वप्रथम किसान अपनी उत्पादन मण्डी मे ले जाकर आढ़तियो के यहाँ उतार देता है मण्डी के दलाल, आढतिया व खरीददार के बीच सौदा तय करते हैं। इन मण्डियो मे किसानो से भाव के बारे में कोई स्वीकृति आदि नहीं ली जाती है। सौदा दलाल तथा थोक व्यापारियो के बीच

---

10 इण्डियन फूड एग्रीकल्चरल मीनी-दाँतवाला रिपोर्ट ऑफ दि कमिटी ऑन कोआपरेटिव मार्केटिंग १९६६, पृष्ठ सख्या ६७ ।

11 गुप्ता ए०पी० मार्केटिंग ऑफ एग्रीकल्चर प्रोड्यूस इन इण्डिया, १९७५ पृष्ठ सख्या १७ ।

12 इण्डियन फूड एग्रीकल्चरल मीनी दाँतवाला रिपोर्ट ऑफ दी कमेटी आन कोआपरेटिव मार्केटिंग, १९६६, पृष्ठ ६७।

होता है। दलाल आपसी लाभ को ध्यान मे रखते हुए एक मूल्य निश्चित कर देता है। जिसे किसान लेने के लिए बाध्य होता है, यही नहीं मण्डी मे कई प्रकार की धोखेबाजी की कार्यवाही की जाती है और विभिन्न प्रकार के खर्चे किसान से वसूल किये जाते हैं। इस प्रकार से इन मण्डियो मे किसान का शोषण अनेक प्रकार से किया जाता है।

2. नियन्त्रित मण्डियाँ :- नियन्त्रित मण्डियाँ एक विशेष प्रकार की मण्डियाँ होती है। जो विशेष राजकीय अधिनियम द्वारा म्यूनिसिपल या डिस्ट्रीकट बोर्ड द्वारा विशेष नियमो पर नियन्त्रित होती है। इनमे सौदा करने, माल के उतारने, तौलने, सग्रह करने व कीमत को अदा करने के विशेष नियम होते है। विपणन के विभिन्न खर्चे पहले से ही निर्धारित कर दिए जाते हैं। इन विशेष विधानो द्वारा स्थापित मण्डियो का एक ही आशय है कि मण्डियो की कुरीतियो को दूर करके विपणन का एक स्वस्थ वातावरण उपस्थित किया जाए जिसमे किसी का शेषण न हो सके। देश मे कई राज्यो ने इस प्रकार के विशेष अधिनियम पास किए है।

3. फुटकर मण्डी :- जहाँ क्रेताओ एव विक्रेताओ द्वारा कृषि पदार्थों की फुटकर खरीद-बिक्री होती है उसे फुटकर मण्डी कहते हैं। इसे हम इस प्रकार भी कह सकते है कि फुटकर मण्डी वे मण्डियाँ होती है जो वास्तविक उपभोक्ता को उसकी आवश्यकता के अनुसार खरीदने का अवसर देती है यह मण्डियाँ पुरे देश मे विभिन्न स्थानो पर फैली हुई है। जैसे शहरो एव कस्बो के बाजारो मे स्थान-स्थान पर फुटकर दुकानदार पाये जाते है, जो कृषि वस्तुओ का विक्रय करते है। यही दुकानदार फुटकर मण्डी के अन्तर्गत आते हैं।

4. सीमान्त मण्डी :- इस प्रकार के बाजारो में एक देश या प्रदेश की कृषि वस्तुएँ एकत्रित करके दूसरे देश या प्रदेश मे भेजी जाती है। ऐसे बाजार बडे-बडे शहरों या बन्दरगाहो मे पाए जाते हैं जहाँ यातायात की विशेष सुविधा रहती है।[13] उदाहरण स्वरूप कोलकता की चाय तथा पटसन का सीमान्त बाजार कहते है। इन मण्डियो मे स्थानीय थोक बाजारो से कृषि पदार्थों की, खरीद की जाती है। मण्डी मे एकत्रित कृषि पदार्थो को या तो विदेश मे निर्यात किया जाता है या तो उसे अपने देश के अन्दर ही वितरित किया जाता है, स्थानीय थोक बाजारो की भाँति सीमान्त बाजार भी विपणन सम्बन्धी कार्य करते है। परन्तु सीमान्त मण्डियो मे बडे पैमाने पर

---

[13] इण्डियन फूड एग्रीकल्चरल मीनी दाँतवाला रिपोर्ट ऑफ दी कमेटी आन कोआपरेटिव मार्केटिंग, १९६६, पृष्ठ ९।

विपणन का कार्य होता है, तथा स्थानीय थोक बाजारो की अपेक्षा इसमे अधिक सुविधाएँ दी जाती है। वित का भी ये समुचित प्रबन्ध करती है। इन मण्डियो मे सग्रह का भी अच्छा प्रबन्ध रहता है तथा इसमे स्थानीय थोक बाजारो से खरीदे गये कृषि उपजो का पुन वर्गीकरण किया जाता है। यहाँ विशेष तौर पर दो प्रकार के मध्यस्थो का अधिक महत्व होता है, जो थोक व्यापारी या थोक एजेन्ट कहे जाते हैं। इन मध्यस्थो के अतिरिक्त सहकारी सस्थाओ के प्रतिनिधि तथा अन्तर्राष्ट्रीय दलाल भी महत्वपूर्ण व्यापारी होते है। भारत मे ऐसी मण्डियाँ बहुत कम है।

सहकारिता क्षेत्र :- सहकारिता के आधार पर कृषि विपणन का मुख्य उद्देश्य किसानो के शोषण को रोकना था। सहकारी विपणन ढाँचे के न होने से किसानो को अपनी उपजो की बिक्री कम मूल्यो पर करनी पडती थी। सहकारी आँदोलनो के विकास और व्यवस्थित सहकारी ढाँचे ने बिचौलियो और अन्य व्यक्तियो के द्वारा किसानो के शोषण को काफी सीमा तक रोक दिया है। केन्द्र तथा राज्य सरकारे कृषि के सहकारी विपणन ढाँचे मे सुधार के लिए सभी आवश्यक कदम उठाने के लिए उत्सुक है।[14]

सहकारी क्षेत्र मे नोडल एजेन्सी के रूप मे राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय सहकारी कृषि विपणन महासघ द्वारा समर्थन मूल्य पर चयनित कृषि उत्पादो की खरीद बिक्री एव आयात निर्यात से सम्बन्धित प्रमुख गतिविधियों का सचालन किया जाता है। भारतीय किसानो को सरकारी खरीद का लाभ देने मे भारतीय खाद्य निगम की भूमिका अग्रणी रहती है। गुजरात मे अमूल डेयरी के विपणन सघ की उपलब्धियाँ देश भर मे अग्रणी स्थान रखती है। दिल्ली स्थित राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम कृषि उत्पादन विपणन प्रक्रिया तथा भण्डारण से सम्बन्धित गतिविधियो को बढावा देने के लिए राज्य सरकारो के माध्यम से आर्थिक एवं तकनीकी सहायता एव मार्गदर्शन देता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय उपभोक्ता सहकारी महासघ तथा अनुसूचित सहकारी विपणन महासघ भी विशेष रूप से सम्बन्धित क्षेत्रो मे कृषि विपणन की समस्याओ का समाधान करते हैं।[15]

सहकारिता के आधार पर गुजरात मे अमूल डेयरी की सफल विपणन व्यवस्था की भाँति मध्य प्रदेश मे सोयाबीन और महाराष्ट्र तथा उत्तर प्रदेश मे गन्ने की फसल बहुत बड़े पैमान पर होती है। तीनों राज्यो

---

[14] विश्नोई हरि, भारत में कृषि विपणन व्यवस्था एवं सुझाव पृष्ठ सख्या ८८७, आगरा, नवम्बर १९९७ ।

[15] विश्नोई हरि, भारत मे कृषि विपणन व्यवस्था एव सुझाव पृष्ठ सख्या ८८८, आगरा, नवम्बर १९९७ ।

मे ही विपणन की व्यवसथा सहकारी क्षेत्र मे है, अर्थात् किसानो की अपनी व्यवस्था है जिसे उन्होने खुद मिल-जुलकर सहकारिता के आधार पर चला रखा है। मध्य प्रदेश मे राज्य तिलहन सहकारी सघ मर्यादित, महाराष्ट्र मे सहकारी चीनी मिले (समितियाँ) तथा उत्तर प्रदेश मे सहकारी गन्ना विकास समितियाँ क्रमश सोयाबीन और गन्ने का विपणन तथा मूल्य भुगतान की प्रक्रिया को पुरा करती है। यद्यपि गेहूँ की सर्वाधिक खरीद मे पजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश का स्थान देश भर मे अग्रणी रहता है। लेकिन कृषि विपणन जागृति मे गुजरात के कृषक सबसे आगे है। गुजरात के किसान राज्य के हर जिले मे अनाज मडियो के भाव पता करके अपनी फसल बेचते हैं, यह सुविधा उन्हे योजना आयोग के राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र द्वारा उपलब्ध कराई जाती है। गुजरात के कृषक जागरूक हैं अत लाभ उठाते है।

राष्ट्रीय सूचना विज्ञान क्रेन्द्र की शाखा प्रतिदिन हर जिले मे स्थित अपने सूचना केन्द्रो से जानकारी लेकर अनाज मडियो मे चल रहे भाव का परिपत्र जारी करती है। इससे किसानो को अपने जिले की मडी मे बैठे-बैठे यह जानकारी मिल जाती है कि किस जिले मे किस अनाज का क्या भण्डार है और उसके क्या भाव है। इस जानकारी के आधार पर कृषक अपनी फसल कब कहाँ और किस भाव पर बेचे इसका फैसला करते हैं। सूचना हेतु कम्प्यूटरो के हर जिले मे फैले जाल से उपलब्ध इस सूचना तत्र का यह प्रत्यक्ष लाभ तो होता ही है कि किसान को अपनी फसल का सही दाम मिल जाता है। इसका एक लाभ यह भी देखा गया है कि कमी वाले क्षेत्रो मे अनाज व अन्य कृषि उत्पाद अब आसानी से पहुँच जाते हैं, यह संचार क्रान्ति का परिणाम है।

भारत में कृषि सहकारी विपणन व्यवस्था :- भारत एक कृषि प्रधान राष्ट्र है। देश की ७० प्रतिशत से भी अधिक जनसख्या कृषि एव सहायक उद्योग धन्धो पर आश्रित है अर्थात् देश की अधिकाश जनसख्या कृषि पर ही निर्भर है।[16] कृषि के विकास द्वारा ही देश की इस विशाल जनसख्या की समृद्धि सम्भव है। इन व्यक्तियो की आर्थिक समृद्धि कृषि उत्पाद एव उत्पादकता में वृद्धि उत्पन्न करने के प्रयासों तक ही सीमित नही है। अपितु सर्वाधिक महत्वपूर्ण तो कृषक समुदाय को उनके उत्पादन का उचित मूल्य प्रदान करना

---

[16] बड़थ्वाल वल्लभ विजय, भारत मे कृषि सहकारी विपणन व्यवस्था, समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ सख्या ९४५, प्रतियोगिता दर्पण फरवरी १९९९ ।

है। अर्थात् कृषि सामानो के विपणन की समुचित व्यवस्था के द्वारा ही कृषको के जीवन यापन मे सुधार लाया जा सकता है, तथा उनकी पारिवारिक आय मे वृद्धि करके उनके जीवन स्तर को अधिक उन्नत किया जा सकता है। अत स्वतत्रता प्राप्ति के बाद नियोजन काल मे ही किसानो को उनकी उपज की उचित कीमते दिलाने हेतु सहकारी विपणन व्यवस्था को सर्वोपरि स्थान दिया गया है ताकि उनहे मध्यस्थो के शोषण से बचाया जा सके। कृषि जिन्सो सहकारी विपणन समितियो के माध्यम से बिक्री करके किसानो की उपज का उचित मूल्य उन्हे उपलब्ध कराया जा सकता है। इस सन्दर्भ मे शाही कृषि आयोग का यह कथन शत-प्रतिशत सही प्रतित होता है कि " हमारा आदर्श सहकारी विक्रय समितियाँ होनी चाहिए जो कि कृषक का उपज पैदा करने व उसे तैयार करने में शिक्षित करे तथा बाजार के लिए भी उपज की पर्याप्त मात्रा एकत्रित करे।"[17]

स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् कृषि उपजो के विपणन हेतु नियमित बाजारो एव सहकारी विपणन समितियो की सख्या मे तीव्र वृद्धि हुई है, फिर भी अनेक दोष उनमे आज भी व्याप्त है। इनमे से कुछ प्रमुख दोष निम्न है -

- एक साधारण कृषक को अपनी उपज का विक्रय करने के लिए अनेक प्रकार के व्ययो का भार सहना पडता है, जो कि उनके शुद्ध प्रतिफल को और भी कम कर देता है।
- सामान्य कृषक अपनी उपज का भली प्रकार से श्रेणीकरण भी नहीं कर पाता है। फलत श्रेष्ठ किस्म व निम्न किस्म का उत्पादन समान मूल्य पर ही बेच देना पड़ता है।
- कृषको को उसकी उपज के मूल्य का तुरन्त भुगतान नहीं किया जाता है, बल्कि काफी विलम्ब से किया जाता है। अन्तिम भुगतान मे लम्बा समय लगने के कारण वह पूँजी का तात्कालिक लाभ नहीं उठा पाता है तथा समय पर भुगतान किए जाने पर उसे व्यापारी वर्ग द्वारा उपज का उचित मूल्य नहीं दिया जाता है।

---

[17] बड़थ्वाल वल्लभ विजय, भारत मे कृषि सहकारी विपणन व्यवस्था, समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ सख्या १४६, प्रतियोगिता दर्पण फरवरी १९९९ ।

- देश के कृषको के पास आज भी अपने उपज के लम्बे समय तक सुरक्षित रखने के लिए उचित भाण्डारण सुविधा का अभाव है फलत मौसम के बाद जब उनकी उपज के मूल्यो मे वृद्धि होती है तो वे बढी हुए कीमतो का लाभ नहीं उठा पाते है। साथ ही कृषि उत्पादन का एक बहुत बडा भाग नष्ट हो जाता है।

- ग्रामीण क्षेत्रो मे सदेशवाहन के साधनो की समुचित व्यवस्था न होने के कारण भी कृषक समाज विपणन समाचारो से अवगत नहीं हो पाता परिणामत वे तात्कालिक व्यावसायिक अवसरो का लाभ नहीं उठा पाते।

- ग्रामीण क्षेत्रो के निकट, नियमित बाजार पर्याप्त सख्या मे नहीं है फलत ग्रामीण अपनी कृषि उपजो का उचित मूल्य प्राप्त नहीं कर पाते।

- भारतीय किसान पूर्णरूप से मॉनसून पर निर्भर है, जो कि अनिश्चित है। किसान को निरन्तर प्राकृतिक आपदाओ से जुझना पडता है। इनसे उनकी आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है तथा उनकी ऋणग्रस्तता मे निरतर वृद्धि होती जाती है। यही कारण है कि फसल तैयार होने के तुरन्त बाद ही वह उसे बेचने के लिए मजबूर हो जाता है। उपज के मूल्य मे वृद्धि होने का वह इन्तजार नहीं कर सकता।

उपर्युक्त के अतिरिक्त यातायात के साधनो की व्यवस्था न हो पाना मध्यस्थो के रूप मे व्यापारिक वर्ग का वर्चस्व तथा बिक्री योग्य अतिरेक का अल्प होना भी कृषि विपणन की कुछ प्रमुख समस्याएँ है। इन समस्याओ के निराकरण से ही कृषको को उसकी उपज का उचित मूल्य दिलाया जा सकता है। कृषि उपजो के श्रेष्ठ विपणन से ही देश के ग्रामीण निर्धन कृषक समुदाय के जीवन स्तर मे वृद्धि उत्पन्न की जा सकती है। इस दिशा मे सहकारी विपणन व्यवस्था अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसके माध्यम मे देश को लघु एव सीमात कृषक अपने उत्पादन के बिक्री के लिए स्वेच्छा से सगठित होकर अपने सामूहिक हितो को संरक्षित करते है।

सहकारी बिक्री के द्वारा कृषको की अनेक कठिनाइया असानी से दूर की जा सकती है। अलग-अलग कार्य करने की स्थिति में छोटे किसानो को माल लाने ले जाने मे, उसके श्रेणीकरण और सग्रहण मे, ठहरकर बिक्री करने मे, मण्डी के व्यापारियो एव दलालो का सामना करने एवं बाजार सम्बन्धी आवश्यक

सूचनाएँ समय पर प्राप्त करने आदि के सिलसिले मे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है। इन कठिनाइयो के फलस्वरूप किसानो को प्रति इकाई खर्च अधिक करना पडता है; जिससे लागत बढ जाती है और प्राप्ति कम होती है। सहकारी विपणन से इन समस्त कठिनाइयो को काफी सीमा तक दूर किया जा सकता है सहकारी बिक्री के अन्तर्गत सदस्य किसानो को छोटी-छोटी उपजो को इकट्ठा करके सयुक्त रूप से बिक्री का प्रबन्ध किया जाता है। इसके फलस्वरूप एक ओर तो उपज के भण्डारण एव परिवहन मे बचत होगी तथा दूसरी ओर उपज को सीधे थोक व्यापारियो एव खरीददारो के हाथ बेचने से बाजार के अनेक मध्यस्थो को हटाना सम्भव बन जाएगा। इस प्रकार उपज की कीमत का एक बडा भाग, जो पहले बीच के लोगो को चला जाता था, वह अब किसानो को मिलने लगेगा।

भारत में सहकारी कृषि विपणन के उद्देश्य [18]

भारत मे सहकारी कृषि विपणन समितियाँ निम्नलिखित मूलभूत उद्देश्यो की पूर्ति हेतु कार्य कर रही है -

- कृषको को उनकी उपज का उचित मूल्य दिलाना।
- कृषको की सौदेबाजी की शक्ति को मजबूत करना, जिससे कि उन्हे उपज का उचित मूल्य प्राप्त हो सके।
- समिति के सदस्यो को उचित ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराना।
- किसानों के उत्पादन का श्रेणीकरण करना, जिससे कि उत्पादन की किस्म में सुधार हो सके और उनके प्रतिफल मे भी वृद्धि हो सके।
- कृषको के खेतो के निकट ही भण्डारण की सुविधा का विकास करना।
- कृषि जिन्सो के मूल्यो मे स्थयित्व लाना।
- ग्रामीण क्षेत्रों मे परिवहन सुविधाओ का विस्तार करना जिससे कि उपज को विक्रय केन्द्रों एव उपभोक्ताओं तक सुगमत पूर्वक पहुचाया जा सके।

---

[18] बडथ्वाल वल्लभ विजय, भारत में कृषि सहकारी विपणन व्यवस्था, समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ संख्या ९४७, प्रतियोगिता दर्पण फरवरी १९९९ ।

- ❖ किसानो के आर्थिक हितो को सुरक्षित करना तथा उन्हे बिचौलियो के शोषण से मुक्त करना।
- ❖ किसानो एव उपभोक्ताओ के बीच मध्यस्थो को समाप्त करना।
- ❖ समस्त सहकारी विपणन व्यवस्था को सहकारिता के आदर्श पर स्थापित करना।
- ❖ उपभोक्ताओ को उचित किमतो पर श्रेष्ठ उत्पादन उपलब्ध कराना।

भारत में सहकारी कृषि विपणन का संगठनात्मक ढाँचा [19]

भारत मे सहकारी कृषि विपणन ढाँचा विभिन्न अगो का योग है इसे निम्नलिखत चार स्तरो के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

- ➢ राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन सघ
- ➢ राज्य स्तर पर राज्य सहकारी विपणन सघ
- ➢ जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकारी विपणन समितियाँ
- ➢ मण्डी या बाजार स्तर पर प्रथामिक सहकारी विपणन समितियाँ।

इनकी सक्षिप्त व्याख्या निम्न है -

राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ :- राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित सघीय सस्था है, जिसका प्रमुख कार्य राज्य समितियो का मार्गदर्शन एव परामर्श देना तथा निर्यात व्यापार मे हिस्सा लेना है। देश के सभी राज्यो की शीर्ष विपणन समितियाँ इसकी सदस्य है।

राज्य सहकारी विपणन समितियाँ :- यह द्वितीय स्तर की समितियाँ है, जो कि भारत के सभी राज्यो मे स्थापित की गई है। तथा इन्हे शीर्ष विपणन सघ भी कहते हैं, इनके प्रमुख कार्य निम्नलिखित है -

- ✓ सदस्य क्रय-विक्रय समितियो को कृषि उपज का विक्रय करना।
- ✓ कृषि मे प्रयुक्त मूलभूत आगतो को किसानों को सरलता एवं उचित कीमतो पर उपलब्ध कराना।
- ✓ अन्तर्राज्यीय व्यापार एव निर्यात व्यापार में सहयोग देना।

---

[19] बडथ्वाल वल्लभ विजय, भारत मे कृषि सहकारी विपणन व्यवस्था, समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ सख्या १५०, प्रतियोगिता दर्पण फरवरी १९९९ ।

✓ कृषि उपज को प्रोसेसिग करना।

✓ बाजार की वास्तविक प्रवृत्तियो को ग्रामीण किसानो तक पहुँचाना।

✓ ग्रामीण क्षेत्रो मे कृषि उपज को सुरक्षित रखने के लिए गोदामो की स्थापना करना।

केन्द्रीय सहकारी कृषि विपणन समितियाँ :- यह समितियाँ तृतीय स्तर की है। इनको निम्न कार्य सम्पादित करने होते है -

- कृषि उपज का विधायन करना।
- आवश्यकतानुसार अर्न्तजिला व्यापार करना।
- कृषि उपज के विक्रय तथा कृषि मे प्रयुक्त अन्य आगतो को कृषको के लिए उपलब्ध कराना।
- किसानो को उपभोक्ता वस्तुओ की पूर्ति करना।

प्रथामिक सहकारी विपणन समितियाँ :- यह सबसे निचले स्तर पर अर्थात् ग्राम, मण्डी, तहसील या बाजार स्तर पर गठित की गई हैं। इनके प्रमुख कार्य निम्नलिखित है:-

- समितियो के सदस्यो की कृषि पैदावार को उचित कीमतों पर बेचना।
- कृषिगत आगतो (उर्वरक, खाद्य, बीज व कृषि उपकरण) को उपलबध कराना।
- कृषि साख की पूर्ति व कृषि विपणन मे सामजस्य स्थापित करना।
- कृषि उपज का श्रेणीयन व वर्गीकरण कर बेंचना।
- सदस्यो को ऋण उपलब्ध कराना तथा आवश्यकतानुसार उनकी उपज की जमानत पर ऋण उपलब्ध कराना।
- कृषि उत्पादन को बाजार तक पहुॅचाने के लिए यातायात के साधनो की व्यवस्था करना।
- कृषि उपज की सरकारी खरीद के कार्य मे सरकारी प्रतिनिधि के रूप मे कार्य करना।

भारत में सहकारी कृषि विपणन की प्रगति

भारत मे सहकारी आन्दोलन का विकास प्रमुखत सहकारी साख समितियो की स्थापना के साथ हुआ फलत अन्य क्षेत्रो मे सहकारी समितियो के गठन का कार्य काफी विलम्ब से प्रारम्भ हो सका । यही

वजह है कि हमारे देश मे सहकारी कृषि विपणन समितियो का विकास काफी देरी से एव धीमी गति से प्रारम्भ हुआ। प्रथम पचवर्षीय योजना के प्रारम्भिक वर्ष मे सहकारी विपणन समितियो के द्वारा मात्र ४७ करोड रू० मूल्य की कृषि वस्तुओ का विपणन किया गया[20] इस योजना अवधि मे ही सहकारी क्षेत्र के अन्तर्गत कृषि विपणन व्यवस्था को और अधिक सशक्त बनाने के उद्देश्य से दाँतवाला समिति का गठन किया गया। समिति ने खेद व्यक्त किया कि सम्पूर्ण प्रथम पचवर्षीय योजना काल मे सहकारी कृषि विपणन क्षेत्र उपेक्षित ही बना रहा। द्वितीय पचवर्षीय योजना के प्रारम्भ के साथ ही देश मे सहकारी कृषि विपणन के विकास हेतु अनुकूल वातावरण तैयार हुआ। इस योजना अवधि मे ही अन्तर्राज्यीय व्यापार वृद्धि व राज्यो की शीर्ष विपणन समितियो के कार्यो को समन्वित करने के लिए राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन सघ स्थापित किया गया इस योजना के अतिम वर्ष मे २४ शीर्ष समितियाँ, १७१ केन्द्रीय समितियाँ तथा ३१०८ प्राथमिक विपणन समितियाँ सथापित की जा चुकी थी। अनुमानत १७९ करोड रु मूल्य की कृषि उपजो का विपणन किया गया[21] तृतीय, चौथी, और पचवर्षीय योजनाओ मे सहकारी साख के विस्तार, कृषि उपज मे वृद्धि करने के उद्देश्य से सहकारी विपणन के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इसके अतिरिक्त प्राथमिक स्तरीय सहकारी विपणन व्यवस्था को और अधिक सशक्त बनाने, राष्ट्रीय व राज्य सघो को सुदृढ़ करने, विपणन समितियो मे कृषि उपजो के वर्गीकरण श्रेणीकरण व संग्रहण कार्यो का श्री गणेश भी इन योजना अवधियो मे ही किया गया। षष्ठम पचवर्षीय योजना मे निम्नलिखित क्षेत्रो मे प्रभावी कदम उठाये गए है।

- प्राथमिक समितियो को अत्याधिक मजबूत आधार प्रदान करना जिससे वे बहुउद्देशीय इकाइयो के रूप मे अपनी सार्थक भूमिका निभा सके तथा अपने सदस्यो की अधिकतम आवश्यकताओ की पूर्ति कर सके।
- सहकारी कृषि विपणन का विकास देश मे व्याप्त गरीबी उन्मूलन हेतु हो फलत विद्यमान सहकारी विपणन समितियो की भूमिका का परीक्षण इस सदर्भ मे किया जा सके।

---

20 बडथ्वाल वल्लभ विजय, भारत मे कृषि सहकारी विपणन व्यवस्था, समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ सख्या ९५२, प्रतियोगिता दर्पण फरवरी १९९९ ।

21 वही पृष्ठ सख्या – ९५३, प्रतियोगिता दर्पण फरवरी १९९९

❖ कर्मचारी सवर्ग के विकास पर और अधिक जोर देना जिससे कि उनमे अधिकतम प्रबधकीय योग्यता का विकास हो सके।

❖ सहकारी विपणन के क्षेत्र मे कार्यरत शीर्ष सस्थाओ की पुर्नस्थापना व सगठन पर जोर दिया जाना चाहिए। जिससे कि वे आपनी अधिनस्थ सस्थाओ का कुशलतम तरीके से मार्गदर्शन कर सके।[22]

भारत में सहकारी कृषि विपणन समितियों के धीमें विकास के कारण [23]

भारत मे सहकारी कृषि विपणन समितियो के धीमे विकास के लिए निम्नलिखित कारण बताए जा सकते हैं -

➢ इन समितियो के पास पर्याप्त मात्रा मे पूँजीगत साधन न होने की वजह से इनका व्यवसाय सीमित है।

➢ सहकारी कृषि विपणन समितियाँ सरकार द्वारा नियन्त्रित है। व्यापारिक वर्ग के इसमे सम्मिलित हो जाने से कृषको के हित सुरक्षित नहीं रह पाए।

➢ इनके कर्मचारी सवर्ग मे भी प्रबधकीय कार्य कुशलता का अभाव है।

➢ विपणन समितियो के पास कार्यशील पूँजी की अपर्याप्तता रहती है। फलत वे अपने ग्राहकों को साख की सुविधा भी प्रदान नहीं कर पाती।

➢ सहकारी कृषि विपणन समितियों के पास कृषि उपजो के संग्रहण के लिए भडारण की भी समुचित सुविधा उपलब्ध नहीं है।

➢ इन विपणन समितियो द्वारा सामान्यत वितरण कार्यो का ही सम्पादन किया जाता है तथा विपणन कार्यो की ओर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया जाता।

➢ इनके द्वारा कृषि उपज के विधायन का कार्य सम्पन्न नहीं किया जाता, फलत उनके विक्रयमे कठिनाइयाँ आती है तथा उपज का उचित मूल्य भी प्राप्त नहीं हो पाता।

---

22 बडथ्वाल वल्लभ विजय, भारत मे कृषि सहकारी विपणन व्यवस्था, समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ सख्या १५४, प्रतियोगिता दर्पण फरवरी १९९९ ।

23 वही पृष्ठ सख्या – १५५, प्रतियोगिता दर्पण फरवरी १९९९ ।

- इनकी ऋण व्यवस्था भी दोषपूर्ण है, अधिकाशत ऋण गैर जमानती होते है, फलत ऋण वसूली मे अत्यधिक कठिनाइयो का समना करना पड़ता है।
- अपनी शीर्ष विपणन समितियो द्वारा नीचे स्तर पर कार्यरत समितियो को उचित मार्गदर्शन नहीं दिया जाता है और न ही दोनो मे किसी प्रकार का समन्वय किया जाता है। परिणामत प्राथमिक व केन्द्रीय सहकारो विपणन समितियाँ दक्षता पूर्वक अपना कार्य सम्पादित नहीं कर पातो।
- इन समितियो द्वारा अपने सदस्यो को यथोचित् विपणन सेवाएँ उपलब्ध नहीं कराई जाती। फलत किसानो को उनकी उपज का उचित मूल्य नहीं मिल पाता और वे इनके माध्यम से अपनी उपज के विक्रय मे रूचि नहीं लेते।
- आज भी अनेक व्यापारिक मडियो से बाहर है और ऐसे मे सहकारी कृषि विपणन समितियाँ कार्य नहीं कर पाती है।

भारतीय सहकारी कृषि विपणन व्यवस्था के द्रुत विकास व प्रगति हेतु सुझाव [24]

भारतीय सहकारी कृषि विपणन व्यवस्था मे व्याप्त दोषो के उन्मूलनार्थ निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते है।

- ✓ कृषि उपज की खरीद के लिए विपणन समितियो को पर्याप्त मात्रा में पूजीगत सुविधाएँ प्रदान करनी चहिए।
- ✓ कृषि उपज के सग्रहण के लिए ग्रामीण क्षेत्रों मे गोदामो की भी समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए। इन गोटामो के निर्माण हेतु राज्य अथवा केन्दीय सरकार द्वारा इन विपणन समितियो को वित्त उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
- ✓ सहकारी विपणन समितियो को पर्याप्त सरकारी सरक्षण भी प्रदान करना चाहिए ताकि प्रत्येक सहकारी समिति कृषि उपज की खरीद के अतिरिक्त अन्य उपभोक्ता वस्तुए एवें महतवपूर्ण कृषि इन पुट किसानो को उचित मूल्य पर प्रदान कर सके।

---

24 बडथ्वाल वल्लभ विजय, भारत में कृषि सहकारी विपणन व्यवस्था, समीक्षात्मक अध्ययन, पृष्ठ सख्या ९५५, प्रतियोगिता दर्पण फरवरी १९९९ ।

✓ कृषि उपज की श्रेणीकरण की ओर भी इन समितियो द्वारा ध्यान दिया जाना चाहिए। कृषि पैदावार के विद्यमान से ही उचित मूल्य प्राप्त किया जा सकता है।

✓ सहकारी कृषि विपणन व्यवस्था को सहकारी कृषि साख से सम्बद्ध करना चाहिए तभी इनका व्यवसाय सफल हो सकता है।

✓ विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियो के कार्यो मे तालमेल बैठाया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ उपभोक्ता तथा उत्पादक सहकारो समितियो एव विपणन समितियो के कार्यो मे पर्याप्त समन्वय स्थापित किया जाना चहिए।

✓ सहकारी विपणन समितियो के कर्मचारी सवर्ग मे विपणन प्रबन्ध मे शिक्षित प्रबधक को ही नियुक्ति किया जाना चाहिए।

✓ कृषि विपणन समितियो के कार्यक्षेत्र का निर्धारण ग्रामीण क्षेत्र के आधार पर किया जाना चाहिए न कि प्रशासनिक खड के आधार पर इससे अधिकतम ग्रामीण क्षेत्र एव जनसख्या कृषि विपणन समितियो की परिधि मे लाई जा सके।

✓ इन विपणन समितियो की अपनी अशपूजी मे वृद्धि तथा ऋण पूजी पर निर्भरता कम करनी चाहिए।

उपर्युक्त सुझावो के अतिरिक्त रिजर्व बैंक, नाबार्ड एस० बी० आई० एव अन्य राष्ट्रीयकृत बैंको को इन समितियो की वित्तीय कठिनाइयों के निवारण के लिए विशेष पहल करनी चाहिए। इनके द्रुत विकास के लिए इन्हे पर्याप्त सरकारी सरक्षण मिलने के साथ-साथ सहकारी विभाग का समुचित सहयोग मिलना भी एक अनिवार्य शर्त है।

कृषि विपणन अनुसंधान[25]

कृषि विपणन के बहुआयामी विकास के लिए भली-भाँति तैयार किए गए अनुसंधान कार्यक्रम की आवश्यकता है, जिसका उद्देश्य विपणन प्रक्रिया और वास्तविक बाजार दोनो मे सुधार होना चाहिए। पिछले पॉच दशको से हमारे देश मे अनुसधान विपणन और निरीक्षण निदेशालय पर अधिक निर्भर रहा है।

---

[25] सिंह एल०पी०, कृषि विपणन का महत्व, रोजगार समाचार पृष्ठ सख्या १, नई दिल्ली, २८-१ जनवरी, १९९९ ।

निदेशालय का अधिकतर समय सरकारी निति निर्देशो और कानूनो के बारे मे किए गए सर्वेक्षणो मे व्यतीत होता रहा है। अत खाद्य और कृषि विपणन अनुसधान मे राष्ट्रीय तथा विदेशी सहायता वाली परियोजनाओ, विश्वविद्यालय कार्यक्रमो और व्यक्तिगत प्रयासो का योगदान रहा है जो टूकडो-टूकडो मे सामने आया है। इसलिए अनुसधान पे निरन्तरता और सगति का अभाव रहा है। नेफेड, एन० सी० डी० सी०, वस्तु विपणन बोर्डो और विश्वविद्यालयो द्वारा कृषि विपणन सबधो बुनियादी जानकारी पर अनुसधान किए गए है। सेवाओ और सहायता कार्यक्रमो की शुरूआत और उन्हे मजबूती प्रदान करने पर पर्याप्त सार्वजनिक/निजी किया गया है। इसके अतर्गत बडी सख्या मे बाजारो, ग्रामीण और सम्पर्क सड़को का निर्माण, अतिरिक्त भाण्डारण क्षमता का विकास, प्रोसेसिग सुविधाओ को आधुनिक बनाना, बाजार सम्बन्धी समाचार और सूचना प्रणालियो के कार्यक्रम, उत्पादक स्तर पर ग्रडिग सेन्टरो की स्थापना आदि कार्य किए गए है, किन्तु आर्थिक एव तकनीकी व्यवहार्यता सम्बन्धी अध्ययन और इन निवेशो के सदर्भ मे लागत-लाभ विश्लेषण, जेसे महत्वपूर्ण मुद्दो पर किसी भी स्तर पर ध्यान नहीं दिया गया है। नई विपणन सुविधाओ जैसे बाजारो भडारो, यातायात सुविधाओ, नई प्रौद्योगिकी की शुरूआत और नई प्रबध प्रक्रियाओ के लिए निवेश के क्षेत्र सुझाने की दिशा मे अनुसधान प्रयासो का अभाव रहा है।

कृषि और सबद्ध विषयो के बारे मे मूलभूत अनुसधान और विशुद्ध सैद्धान्तिक अनुसधान क्रमश भारतीय कृषि अनुसधान परिषद् और विश्वविद्यालयो द्वारा किया जा रहा है। अत अन्य विपणन विभागो, बोर्डो, सस्थाओं को चाहिए कि वे कृषि उद्यमो और किसानो की आवश्यकताओ के अनुरूप प्रयोग उन्मुखी लेकिन धारणात्मक दृष्टि से मजबूत अनुसधान गतिविधियो चलाए, इस तरह के कार्यक्रम के अन्तर्गत उत्पादन क्षेत्रो और वितरण केन्द्रो मे थोक खरीद को ध्यान मे रखकर विपणन सुविधाओ को योजना तैयार करने, उत्पादो को इधर-उधर ले जाने का सर्वोत्कृष्ट तरीका निर्धारित करने उपकरणो और यातायात भडारण पैकेजिग आदि विभिन्न अवस्थाओ में विपणन की स्थानीय स्थितियो के तहत उनके इस्तेमाल, सचालन लागत और नुकसान तथा क्षति मे कमी लाने के उपायो और थोक तथा खुदरा व्यापार के परिष्कृत तरीको के विकास के उपायों को परिष्कृत किया जाना चाहिए। इस तरह के समस्या आधारित अध्ययन के लिए विपणन अनुसधान कर्मिको को आधुनिक प्रबन्ध की धारणाओ और प्रवृतियो को व्यापक रूप मे समझना होगा।

विपणन और निरीक्षण निदेशालय को चाहिए कि वह अपने को अनुकूलन प्रायोगिक अनुसधान आवश्यकताओ के प्रति फिर से उन्मूख करे और अपनी अनुसधान ऊर्जा को उत्पादन आयोजना का मार्ग-दर्शन करने और खास वस्तुओ की बिक्री उपभोग को प्रोत्साहित करने पर केन्द्रीत करें। निदेशालय को विपणन अनुसधान कार्यक्रमो के अभिन्न अग के रूप मे उपयोग प्राथमिकता सर्वेक्षणो मे लगना चाहिए ताकि भारतीय अर्थव्यवस्था को शेष दुनिया के साथ जोड़ा जा सके। भविष्य मे अनुसधान कार्यक्रमो की कृषि उत्पादन प्रणाली का स्थायित्व सुनिश्चित करना होगा और आन्तरिक तथा बाहरी स्थितियो, खासकर अत्यन्त विविध जैव-भौतिक और सामाजिक आर्थिक स्थितियो के अनुकूल परिष्कृत विपणन प्रौद्योगिक विकसित करनी होगी । कृषि उत्पादो का निर्यात बढाने के लिए गैर परम्परागत विपणन अवसरो के विकल्प तलाश करना और विपणन समस्याओ के लिए सुसबद्ध, तकनीकी दृष्टि से उपयुक्त, आर्थिक दृष्टि से व्यवहार्य, सामाजिक-सास्कृतिक दृष्टि से सविकार्य परिस्थितिकी के अनुकूल और पर्यावरण प्रणालियो के प्रति उतरदायी समाधान करना भी भावी अनुसधान का लक्ष्य है। भावी अनुसधान कार्यक्रम मे यह ध्यान भी रखना होगा कि ग्रामीण निर्धनो और भूमिहिनो के लिए रोजगार के अवसर पैदा हो तथा कृषि श्रमिको के कौशाल और उत्पादकता मे सुधार हो। अनुसधान कार्यक्रमो का प्रौद्योगिकी का यथार्थ मूल्याकन करना होगा और सामाजिक विज्ञान अनुसधान के जरीए कृषि विकास के बारे मे हमारी समझ को बढाना होगा और साथ ही अनाज तथा खराब होने वाले अन्य उत्पादो के भण्डारण, आवागमन की दिर्घावधि की उपर्युक्त पद्धतिया विकसित करनी होगी।

कृषि विपणन के अन्तर्गत बडी सख्या मे कार्यकर्ता हिस्सा लेते है और उत्पादक से उपभोक्ता तक उपज के वितरण की प्रक्रिया मे दोहरे कार्य होते हैं। अत अनुकूल अनुसधान की आवश्यकता है ताकि विपणन कार्यो का गुणात्मक एव मात्रात्मक एकीकरण हो सके। इससे विपणन लागत मे कमी आएगी और उत्पादको तथा उपभोक्ताओ दोनो के लिए उपज का उचित मूल्य निर्धारित हो सकेगा ।

कृषि आधारित उद्योगों में संस्थागत वित्त की भूमिका

भारत मे कृषि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का सबसे बडा एव महत्वपूर्ण अग है। देश की लगभग ७० प्रतिशत कार्यशील जनसख्या इसमे लगी हुई है। देश की लगभग ७० प्रतिशत कार्यशील जनसख्या इसमे

लगी हुई है और एक तिहाई राष्ट्रीय आय इस क्षेत्र से प्राप्त होती है।[26] विदेशी व्यापार की दृष्टि से भी हमारी खेती का स्थान महत्वपूर्ण है। चाय, तम्बाकू, तिहलन आदि अनेक कृषि पदार्थो के निर्यात से देश को बड़ी मात्रा मे विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। साथ ही साथ अनेक छोटे बडे उद्योग अपने कच्चे माल के लिए देश की खेती पर निर्भर है। कृषि जन्म पदार्थो के सम्बन्ध मे किया गया व्यापार कुल आन्तरिक व्यापार का बहुत बडा भाग ठहरता है और रेल, ट्रक आदि परिवहन सेवाओ की आय का एक महत्वपूर्ण भाग कृषि पदार्थो को ढोने से प्राप्त होता है।

अपने इस महत्व के बावजूद खेती बहुत ही पिछडी हुई दशा मे है। उत्पादन और उत्पादक के निम्न स्तर से इसका स्पष्ट बोध होता है। कृषि की प्रति एकड उपज कम होने के कारण यह आवश्यक है कि कृषि से ग्रामीण जनसख्या की निर्भरता को कम किया जाए और कच्चेमाल पर आधारित विकेन्द्रीत औद्योगिक विकास पर अधिक बल दिया जाए। कृषि आधारित उद्योग ग्रामीण तथा पिछडे क्षेत्रो के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। इन उद्योगो से जहाँ एक ओर रोजगार तथा आय मे वृद्धि होती है। वहीं दूसरी ओर कृषि यत्रो, उर्वरको तथा कीटनाशक दवाओ के जरिए उत्पादन मे भी वृद्धि होती है।

कृषि उद्योग की आवधारणा कृषि एव उद्योग के मध्य अर्न्तनिर्भरता को दर्शाती है। कृषि उद्योग ऐसे उद्योग को कहते है जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कृषि के आगत-निर्गत से जुडे हुए होते है। ये उद्योग अधिकतर कृषि उपज पर निर्भर रहते है या कृषि से प्राप्त कच्चे माल की प्रक्रिया से उपयोग सामग्री का उत्पादन करते है। इस परिभाषा से कृषि उद्योग की निम्नाकित विशेषताएँ परिलक्षित होती है-

- ✓ कृषि उद्योग, कृषि और उद्योग के बीच परस्पर निर्माता की गति मे तेजी लाता है।
- ✓ यह कृषि द्वारा उपलब्ध होने वाले कच्चेमाल का समुचित उपयोग करता है तथा ग्रामीण जनता के बीच इसके द्वारा तैयार मालो का क्रय-विक्रय होता है।
- ✓ यह नवीनतम कृषि यत्रो, तकनीको एवं रासायनिक दवाओ द्वारा कृषि क्षेत्र की उत्पादकता मे वृद्धि करता है।
- ✓ यह यथा सभव स्वदेशी तकनीकी का प्रयोग करता है।

---

[26] नेमा एम०एल०, कृषि आधारित उद्योगो मे वित्त की भूमिका, योजना, दिसम्बर १९९९, पृष्ठ सख्या १२ ।

कृषि उद्योग मे मुख्यत चीनी मिल, गुड, खाडसारी, उद्योग, धान, दाल, एव तेल मिल, कपास और जूट बुनाई तथा कताई उद्योग, बिस्कुट एव पेय उद्योग, फल और सब्जी प्रसाधन उद्योग, अनाज तथा दाल उद्योग, पशुपालन एव दुग्ध व्यवसाय आदि ऐसे उद्योग है। जो कृषि यत्रो का प्रयोग करते हैं, कृषि यत्र और औजार निर्माण करने वाले उद्योग, उर्वरक कीटनाशक निर्माण उद्योग कृषि उद्योगो की श्रेणी मे आते है।

कृषि आधारित उद्योग के समन्वित विकास से देश मे खुशहाली लायी जा सकती है क्योकि ऐसा करने से सम्पूर्ण ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास मे सहायता मिलती है। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार होने के कारण ही औद्योगिक इकाइयो, औद्योगिक रोजगार तथा कुल उत्पादन मूल्यो में कृषि उद्योगो का महत्वपूर्ण योगदान होता है जबकि इन उद्योगो मे बहुत कम पूँजी विनियोग की आवश्यकता होती है क्योकि वे उद्योग मुख्यत श्रम प्रधान होते है।

हरित क्रान्ति के बाद भारतीय कृषि का वाणिज्यिकरण हुआ जिससे बडी मात्रा मे बाजार योग्य कृषि आधिक्य सृजित हुआ जो अतत कृषि उद्योगो की स्थापना मे सहायक होता है। वर्तमान मे कृषि आधे से अधिक उद्योग धन्धो के लिए कच्चा माल प्रदान करती है। भारतीय व्यापार और उद्योग सघ के एक अध्ययन के अनुसार यदि उत्पादन मे १० प्रतिशत की वृद्धि होती है तो औद्योगिक उत्पादन मे २५ प्रतिशत की प्रत्यक्ष तथा ४५ प्रतिशत की अप्रत्यक्ष वृद्धि होगी, अर्थात् कुल मिलाकर ७० प्रतिशत की वृद्धि होगी।[27] कृषि उद्योग अग्रगामी तथा उत्तरगामी प्रभावो द्वारा कृषि उत्पादकता और खाद्य तथा अखाद्य फसलो के उत्पादन मे वृद्धि करता है। उदाहरण के तौर पर किसी पिछड़े और ग्रामीण क्षेत्र मे चीनी मिल की स्थापना के साथ ही गन्ना उत्पादको द्वारा उर्वरक एव कीटनाशक दवाओ के प्रयोग मे वृद्धि हो जाती है। इसका सीधा प्रभाव कृषि उत्पादकता मे वृद्धि तथा उद्योगो को कच्चे माल की आपूर्ति के रूप मे देखा जा सकता है। इसकी अतिम परिणति जीवन निर्वहन कृषि को वाणिज्यिक कृषि में बदलकर ग्रामीण विकास की गति तेज करने मे होती है।

यद्यपि पंचवर्षीय योजनाओ मे ग्रामीण अर्थव्यवस्था की कायापलट के लिए अनेक उपाय किए गए थे पर जनसख्या मे भारी वृद्धि तथा अन्य व्यवसायो मे उस गति से विकास न होने के कारण विगत् वर्षो मे भूमि पर जनसख्या का भार निरन्तर बढता गया। जिससे अप्रत्यक्ष बेरोजगारी तथा अर्द्ध बेरोजगारी की समस्या

---

[27] नेमा एम०एल०, कृषि आधारित उद्योगो मे वित्त की भूमिका, योजना, दिसम्बर १९९९, पृष्ठ सख्या १३ ।

उत्पन्न हो गयी। आज कृषि क्षेत्र मे काम करने वाला प्रत्येक पॉचवा व्यक्ति प्रच्छन्न बेरोजगारी की चपेट में है। स्वभावत यह बेरोजगारी प्रति व्यक्ति आय को कम करके गरीबी को बढावा देती है। ठीक इसी परिप्रेक्ष्य मे इस अतिरिक्त श्रम शक्ति के बोझ को कम करके और उसे गैर कृषि क्षेत्रो मे रोजगार प्रदान करके कृषि उद्योग बेरोजगारी उन्मूलन और राष्ट्रीय विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है।

डा० राधा कमल मुकर्जी के अनुसार भारत के किसान के पास वर्ष मे केवल १४६ कार्य दिवस उपलब्ध होते है[28] यह सच है कि बेकारी की इस समस्या का निदान न केवल कठिन अपितु दुरूह है। लेकिन विकेन्द्रीत औद्योगिक विकास से इसे कम आवश्य किया जा सकता है। फिर भी कृषि आधारित उद्योग स्थानीय ससाधनो पर आधारित होने के साथ-साथ श्रम प्रधान होते है और इसके लिए बहुत कम पूजी विनियोग की आवश्यकता होती है। तकनीकी रूप से इन उद्योगो के कम विकसित होने के कारण ही यहाँ उन लोगो को भी रोजगार मिल जाता है जो अन्य उद्योगो के लिए अपेक्षित प्रशिक्षण प्राप्त नहीं कर पाते तथा शिक्षा प्राप्त करके भी बेरोजगार ही रहते है।

कृषि उद्योग देश कि सतुलित आर्थिक विकास मे भी मदद करते हैं। ये ग्रामीण क्षेत्रो से शहरी क्षेत्रो मे तेजी से बढते शक्ति प्रवाह को रोक कर दोनो क्षेत्रो के सतुलित विकास मे मदद करते है। इस अर्थ मे इन उद्योगो मे विकेन्द्रीकरण का मार्ग प्रशस्त होता है और आय बढती है तथा सम्पति के समान वितरण को प्रोत्साहित करके समाज मे बढती आय विषमता की प्रवृत्ति पर भी प्रतिबध लगता है।

ग्रामीण विकास मे कृषि साख का दायरा बहुत ही विस्तृत है। इसके अन्तर्गत प्राय कृषि साख को ही ग्रामीण साख की पर्यायवाची मान लिया गया है और ग्रामीण क्षेत्र के लगभग दो तिहाई लोग आज भी अपनी आजीविका के लिए कृषि पर ही निर्भर है ग्रामीण क्षेत्र में विविध आर्थिक क्रियाएँ जैसे - कृषि, दस्तकारी, शिल्पकारी, प्रसस्करण, पशुपालन, मुर्गीपालन, मछलीपालन, आदि होती है जिनमें सभी के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है किन्तु कृषि के लिए सबसे अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। कृषक की बचत इतनी नहीं होती कि वह कृषि के लिए आवश्यक बीज की व्यवस्था अपने साधनों से कर सके। अत बाध्य होकर उसे

---

[28] नेमा एम०एल०, कृषि आधारित उद्योगो मे वित्त की भूमिका, योजना, दिसम्बर १९९९, पृष्ठ सख्या १३ ।

विभिन्न वित की व्यवस्था करनी पडती है। भारतीय कृषि के पिछडने के लिए वित की कमी एक प्रमुख घटक है। जैसे-जैसे व्यावसायिक खेती की ओर रूझान बढेगा वैसे-वैसे कृषि साख की मात्रा मे तेजी से वृद्धि हो पाएगी। उससे कृषि सरचना मे परिवर्तन होगा। तब ज्यादा बडे निवेशो वाली आधुनिक कृषि के लिए धन की आवश्यकना की पूर्ति की जा सकेगी। वैसे तो किसान की वित सबधी आवश्यकताओ का वर्गीकरण कई दृष्टिकोणो से किया जाता है जैसे अवधि के अनुसार, ऋणदाता के अनुसार, और जमानत के अनुसार। भारतीय किसान जिन स्रोतो से साख प्राप्त करता है उन्हे मोटे तौर पर निम्नलिखित दो वर्गो-निजी तथा सस्थागत स्रोत मे विभक्त किया गया है।

निजी स्त्रोत :- निजी स्रोत के अन्तर्गत गाँव का महाजन या साहूकार, भू-स्वामी, कृषक के सगे-सबधी, मित्र-व्यापारी, के कमीशन एजेन्ट आदि आते है। इनमे महाजन की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इसके अनुसार वही गाँव बसने योग्य है जहाँ पर आवश्यकता पडने पर कर्ज देने के लिए महाजन हो, दवा-दारु के लिए वैद्य हो, पूजा-पाठ के लिए पडित हो तथा एक ऐसा जल साधन हो जो कभी सुखता न हो । महाजन की ग्रामीण साख मे इतनी अहम् भूमिका होती है कि उसे देशी बैंक की सज्ञा दी जाती है ।

संस्थागत स्त्रोत :- सस्थागत स्रोत मे ऐसी राशियाँ शामिल की जाती है जो सरकार समितियो, व्यापारिक बैंको तथा क्षेत्रीय ग्रामीण विकास बैंक द्वारा उपलबध करायी जाती है राज्य सरकारे राज्यो के सहकारी बैको और भूमि विकास बैंको द्वारा वितीय सहायता दिलाने के अतिरिक्त सबसिडी उपलब्ध कराती है। सहकारी क्षेत्र मे प्राथमिक कृषि साख समितियाँ अल्पकालीन एव मध्यम-कालीन ऋण उपलब्ध कराती है और भूमि विकास बैंक कृषि के लिए दीर्घकालीन ऋणो का प्रबध करते हैं। व्यापारिक बैंक एव क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अल्पकालीन और सावधि ऋणो की व्यवस्था करते हैं। राष्ट्रीय कृषि एव ग्रामीण विकास बैंक राष्ट्रीय स्तर पर कृषि वित के लिए शिखर सस्थान है जो उपर वर्णित सभी वित्तीय सस्थाओ के लिए पुनर्वित सहायता उपलब्ध कराता है।

विश्व बैंककताजा रिपोर्ट के अनुसार विगत् दो दशको मे ग्रामीण क्षेत्रो मे सस्थागत बैंकिंग ढाँचे को अधिक सुदृढता और विस्तार प्राप्त हुआ है। इसी कारण सस्थागत स्रोतो से ग्रामीण वित की अधिक से अधिक आपूर्ति की जा रही है। सहकारी समितियो, सरकार व वाणिज्यिक बैंको द्वारा अधिकाधिक मात्रा मे

ग्रामीण ऋण उपलब्ध कराया जाने लगा है। सरकार प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष दोनो प्रकार से किसानो की सहायता करती है। प्रत्यक्ष रूप से सब्सिडी देती है और अप्रत्यक्ष रूप से प्राथमिक साख समितियो के शेयर खरीदती है तथा कमजोर समितियो को आर्थिक सहायता देते हुए कर्मचारियो के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था भी करती है। देश मे कृषि साख के सस्थागत् श्रोतो की भूमिका निम्नाकित है -

(क) सहकारी साख समितियाँ :- देश मे सपालित विभिन्न आर्थिक और औद्योगिक नीतियो मे सहकारिता को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया हैं। इसी के परिणाम-स्वरूप आज सहकारी सस्थाओ का विस्तार गाँवो तक हो सका है।

(ख) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक :- ग्रामीण क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था की बुनियाद है। इसलिए ग्रामीण क्षेत्र की आर्थिक खुशहाली के बगैर समूचे सामाजिक परिवेश की खुशहाल की तस्वीर अधूरी ही है। पहले ग्रामीण ऋण से सबधित सभी कार्य सहकारी बैंको द्वारा किये जाते थे। इन बैंको की कार्य प्रणाली के सदर्भ मे गाडगिल सहकारी ऋण जाँच समिति १९४५, भारतीय ग्रामीण बैकिग जाच समिति १९५०, भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति १९६९ आदि [29] समितियो ने अपनी-अपनी रिपोर्ट मे कहा है कि सहकारी एव सहयोगी बैंक ग्रामीण साख की समस्या के समाधान मे विफल रहे हैं। इसके मद्देनजर ग्रामीण ऋण सबधी माँग की पूर्ति के लिए अलग से सस्थान स्थापित करने की आवश्यकता महसूस की गई। बैकिग आयोग १९७२ ने ग्रामीण अचलो मे कृषि और ग्रामीण लघु कुटीर उद्योगो की सहायता के लिए ग्रामीण बैंक स्थापित करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इसमे सहकारी और व्यावसायिक बैंक के कार्यों का अशत समावेश किया गया। इस प्रस्ताव के परिणामस्वरूप भारत सरकार ने 26 सितम्बर 1975 को एक अध्यादेश जारी कर देश मे क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको की स्थापना की स्विकृति दी।[30] पहला क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक २ अक्टूबर १९७५ को प्रथमा बैंक के नाम से उत्तर प्रदेश मे खोला गया। ३१ मार्च १९९४ तक ग्रामीण बैंको का विस्तार सीमित ही रहा और कुल १९६ शाखाएँ खुल सकी। इस समय इन बैंको की देश के ४०५ जिलो मे १४,५४७ शाखाएँ खुल चुकी है। जिनमे

---

[29] नेमा एम०एल०, कृषि आधारित उद्योगो मे वित्त की भूमिका, योजना, दिसम्बर १९९९, पृष्ठ सख्या १४ ।
[30] नेमा एम०एल०, कृषि आधारित उद्योगो मे वित्त की भूमिका, योजना, दिसम्बर १९९९, पृष्ठ सख्या १५ ।

कुल जमा राशि ४६,२५७२ लाख रूपये है। इनके द्वारा ५,२५,३०० के आग्रिम दिए गए। इस तरह अग्रिम व जमा का अनुपात ५९ प्रतिशत रहा है।[31]

यद्यपि इन बैंको का प्रमुख लक्ष्य ग्रामीणो को महाजनो एव साहूकारो के चगुल से मुक्त कराना ग्रामीण क्षेत्र मे कृषि, व्यापार, वाणिज्य, उद्योग तथा अन्य उत्पादक गति विधियो के लिए लघु एव सीमात कृषक, खेतिहर मजदूर, दस्तकार, लघु व्यवसायी तथा इनसे सबधित अन्य व्यवसायो की साख एव अन्य सुविधाएँ प्रदान करके ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास करना है। इस लक्ष्य को लेकर बैंको ने ऐसे दुरस्थ ग्रामीण अच लो मे प्रवेश किया जहाँ सस्थागत वित्त की कोई ऐजेन्सी नहीं पहुँच सकी थी। वहाँ ये बैंक गरीबी रेखा से नीचे गुजर-बसर करने वाले के उत्थान के लिए सक्रिय भूमिका निभा रहे है।

(ग) **राष्ट्रीयकृत वाणिज्यिक बैंक** :- राष्ट्रीयकरण के पश्चात् इन बैंको की अधिकाश शाखाएँ ग्रामीण क्षेत्रो या अर्द्धशहरी क्षेत्रो मे खुली है। व्यापारिक बैंको को अपने अग्रिम का ४० प्रतिशत प्रथामिकता प्राप्त क्षेत्रो को देना था। सन् १९९१ तक इन बैंकों द्वारा ग्रामीण क्षेत्र को दिए अग्रिम मे लगभग २० गुना की वृद्धि हुई है। सन् १९६९ से व्यापारिक बैंकों ने ग्रामीण क्षेत्रो मे पर्यापत मात्रा मे ऋण देना प्रारभ कर दिया था किन्तु इन्हे अनेक समस्याओ का सामना भी करना पड रहा था, सबसे प्रमुख समस्या अतिदेयता की है।[32] अतिदेयता के अतिरिक्त प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रो के ऋणो पर भारी मात्रा मे अधिदान (सब्सिडी) के कारण बैंको का लाभ घट रहा है। सामाजिक न्याय के नाम पर लगाये गये "ऋण मेले" बैकिग के मूल सिद्धान्तो को ही नष्ट कर रहे है। इसलिए नरसिम्हन कमेटी ने साफ शब्दो मे लिखा है कि वितरणात्मक न्याय को प्राप्त करने के लिए प्रणाली का नही बल्कि राजकोषीय यत्रो का प्रयोग करना चाहिए। सन् १९६९ मे वाणिज्य बैंको का राष्ट्रीयकरण के पहले चरण के बाद ग्रामीण क्षेत्रों मे सुदृढ सस्थागत आधार बनाने के लिए ग्रामीण साखा विस्तार कार्यक्रम चलाया गया। इस समय वाणिज्यिक बैंको के कार्यालय की सख्या मात्र ८१८७ तथा ग्रामीण कार्यालयो की सख्या १४४३ (१७ ६३ प्रतिशत) थी।[33] आज क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों सहित वाणिज्यिक बैंक

---

31 नेमा एम०एल० कृषि आधारित उद्योगो में वित्त की भूमिका, योजना, दिसम्बर १९९९, पृष्ठ सख्या १५ ।
32 नेमा एम०एल०, कृषि आधारित उद्योगो मे वित्त की भूमिका, योजना, दिसम्बर १९९९, पृष्ठ सख्या १५ ।
33 नेमा एम०एल०, कृषि आधारित उद्योगो मे वित्त की भूमिका, योजना, दिसम्बर १९९९, पृष्ठ सख्या १५ ।

शाखाओ की सख्या ६२,००० से अधिक है जिनमे ३५,००० (५ ६ प्रतिशत) ग्रामीण क्षेत्रो मे कार्यरत बैंक है। भौगोलिक दृष्टि से लगभग सभी विकास खण्ड मुख्यालयो मे बैंको की शाखाएँ है। बैंको की सयुक्त पहुँच का औसत मोटे तौर पर प्रत्येक ४ ३ गाँव पर एक तथा लगभग ५००० की ग्रामीण आबादी पर एक शाखा है।[34]

(घ) राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक :- देश मे कृषि क्षेत्र को दिए जाने वाले ऋणो मे वृद्धि और कमजोर वर्गों की सहायता के लिए कई योजनाएँ तैयार की गई। इस श्रृखला मे १२ जुलाई १९८२ को एक अधिनियम के अन्तर्गत राष्ट्रीय कृषि एव ग्रामीण विकास बैंक की स्थापना की गई।[35] यह बैंक कृषि के उन्नयन, लघु उद्योगो, ग्रहो एव ग्रामोद्योग, दस्तकारी, शिल्पकारी, एव दूसरी ग्रामीण कलाओ तथा गाँव मे चलने वाली अन्य सम्बध आर्थिक क्रियाओ के लिए ऋण सुलभ कराने के सम्बध मे नीति निर्धारण एव क्रियान्वयन के सम्बध मे सर्वोच्च सगठन है। यह बैंक कृषि एव आर्थिक विकास से सबधित कार्यो के लिए ऋण सुलभ कराने की समन्वित एजेन्सी है।

इस बैंक की स्थापना के पश्चात् कृषि पुनर्वित एव विकास निगम के समस्त कार्य और रिजर्व बैंक के कृषि साख के मुख्य कार्य इस बैंक के अधिन हो गये। सहकारी समितियों एव क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको को पुर्नवित्त सहायता अब रिजर्व बैंक की जगह राष्ट्रीय कृषि एव ग्रामीण विकास बैंक से मिलती है। राष्ट्रीय कृषि एव ग्रामीण विकास बैंक का रिजर्व बैंक से सीधा सम्बन्ध है और इसके लिए रिजर्व बैंक मे इसकी हिस्सा पूँजी के आधे के बराबर योगदान भी है । शेष आधा भाग भारत सरकार के द्वारा जुटाया गया है।

राष्ट्रीय कृषि एव ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) की शेयर पूजी १९९५-९६ मे ५०० करोड़ रूपये और १९९६-९७ मे १००० करोड रूपये कर दी गई। अगले पाच वर्षो के दौरान इसे बढाकर २००० करोड रूपये करने का प्रस्ताव है।[36] सन् १९९५-९६ के बजट के अनुसार नाबार्ड मे ग्रामीण क्षेत्रो मे बुनियादी सुविधाओ के विकास के लिए एक निधि स्थापित की गई। इस निधि से राज्य सरकारो और उनके स्वामित्व

---

[34] नेमा एम०एल०, कृषि आधारित उद्योगो मे वित्त की भूमिका, योजना, दिसम्बर १९९९, पृष्ठ सख्या १५ ।
[35] नेमा एम०एल०, कृषि आधारित उद्योगो मे वित्त की भूमिका, योजना, दिसम्बर १९९९, पृष्ठ सख्या १५ ।
[36] नेमा एम०एल०, कृषि आधारित उद्योगो मे वित्त की भूमिका, योजना, दिसम्बर १९९९, पृष्ठ सख्या १६ ।

वाले निगमो को ग्रामीण आधारित सरचनाओ से सबधित परियोजनाओ को तेजी से पूरा करने के लिए ऋण दिया जाता हैं। इस निधि से १९९६-९७ मे अनुसूचित वाणिज्य बैंको को लगभग २००० करोड़ रू० दिए गए है।[37]

व्यावसायिक या उच्च टेक्नॉलाजी वाली कृषि और सबद्ध गतिविधियो मे निवेश को बढावा देने के लिए सभी राज्यो मे (कृषि विकास वित्तीय सस्थाएँ) स्थापित करने का प्रस्ताव है। ये सस्थाए कृषि मे अधुनिकतम टक्नोलॉजी के प्रवेश के लिए वित्तीय सहायता देने के साथ-साथ उच्च किस्म के टेक्नालॉजी भी उपलब्ध कराएगी।

वित्तमत्री ने १९९६-९७ के बजट मे नये निजी स्थानीय बैंको की स्थापना का प्रस्ताव दिया हैं। इन बैंको का अधिकार क्षेत्र दो या तीन जिला होगा। ये बैंक ग्रामीण बचत जुटाने के साथ अपने क्षेत्र मे उसका विनियोजन भी करेगे। रिजर्व बैंक के सरकारी क्षेत्र के बैंको को सलाह दी है कि वे विशेष कृषि ऋण योजनाएँ तैयार करें। सन् १९९५-९६ मे इस योजना के अन्तर्गत १०१२१ करोड रूपए वितरित किए गए जबकि लक्ष्य १२११२१ करोड रूपये का था।[38] कृषि वित एव ग्राम विकास की दिशा मे सार्थक कार्य इस बैंक द्वारा किए गऐ हैं व भविष्य मे भी यह बैंक देश की प्रगति मे अपना अनवरत् योगदान दें सकेगा।

भारी परिदृश्य एवं चुनौतियाँ :- अल्पकालीन, मध्यकालीन एव दीर्घ कालीन कृषि साख के सस्थागत् स्रोतो की माँग का अनुमान १९९९-२००० के लिए लगाया गया है। इसके अन्तर्गत कृषि साख की आवश्यकता का अनुमान लगाते समय बकाया ऋण व अग्रिम का निर्धारण प्रत्येक वर्ष के अन्त मे किए जाने का प्रावधान रखा गया है । इसी मान्यता के आधार पर सस्थागत स्रोतो से वर्ष १९९४-९५ मे १५७३३ करोड रूपये और १९९९-२००० मे २३८८८ करोड़ रूपये कृषि साख की माँग होगी । इसके अतिरिक्त आगत वितरण के लिए कुल अल्पकालीन साख का दो प्रतिशत अनुमानित है । इसी प्रकार सावधि साख का वर्ष १९९४-९५ एव १९९९-२००० के लिए क्रमश ४९०३ करोड़ रूपये ७५९५ करोड रूपये का

---

[37] नेमा एम०एल०, कृषि आधारित उद्योगो मे वित्त की भूमिका, योजना, दिसम्बर १९९९, पृष्ठ सख्या १६ ।
[38] नेमा एम०एल०, कृषि आधारित उद्योगो मे वित्त की भूमिका, योजना, दिसम्बर १९९९, पृष्ठ सख्या १६ ।

अनुमान लगाया गया है।[39]

भारत मे विगत् चार दशको मे कृषि साख की पूर्ति मे व्यापक परिवर्तन आए है। जहाँ एक ओर ग्रामीण क्षेत्रो मे बैंकिग से सस्थागत ढाँचे का भौगोलिक दृष्टि से विस्तार हुआ है वहीं दूसरी ओर ऋण प्रवाह की मात्रा मे उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

फिर भी इन सस्थाओ को अपने वित्तीय ससाधनो को और अधिक बढाने की आवश्यकता है ताकि लघु एव सीमान्त कृषको की कृषि साख की माँग को पूरा किया जाए। कृषि साख सम्बधी अनेक कठिनाइयाँ, क्षेत्रीय विषमता, बेकारी और निम्न उत्पादकता आदि के कारण ये लोग कृषि वित्त सबधी सुविधाओ का लाभ नही उठा पाते है जबकि अधिकाशत बड़े किसान तथा राजनैतिक प्रमुख रखने वाले किसानो ने ही सस्थागत वित का अधिकतम लाभ उठाया है। ऋणो के भुगतान की समस्याओ ने जहाँ एक ओर गभीर सकट पैदा किया है वहीं बढते हुए भ्रष्टाचार ने भी कृषि साख के उत्पादक उपयोग मे विकट बाधा खड़ी की है। अत कृषि अर्थव्यवस्था के विकास मे जो वृद्धि परिलक्षित होनी चाहिए थी वह केवल सरकार की ऋण नीति की नियमावली मे ही फँसकर रह गई है। उक्त समस्याओ का स्थायी समाधान ढूढा जाना चाहिए ताकि ग्रामीण बेरोजगार युवा कृषि आधारित उद्योगो को अपनी इच्छानुसार अपनाकर रोजगार प्राप्त कर सके। यह तभी सभव है जब सरकार समाज सेवी सगठन एवं संस्थागत वित प्रदान करने वाली उक्त सस्थाएँ ऋण की सरल प्रक्रिया द्वारा कृषि साख (वित्त) सुलभ कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएँ, जिससे आगामी वर्षो मे देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था मे आर्थिक सामाजिक नैतिक विकास के साथ-साथ व्यक्तिगत विकास भी सुनिश्चित हो सके।

भारतीय कृषि का वर्तमान परिदृश्य एवं उर्वरक उपयोग :- वैसे तो विश्व का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल १३३९ करोड हेक्टेयर है किन्तु इसमे से मात्र १३७ करोड हेक्टेयर (लगभग १०%) कृषि के अन्तर्गत है।[40] जब हम भारत के सम्बन्ध मे बात करते है तो ज्ञात होता है कि हमारे यहाँ कुल भौगोलिक क्षेत्रफल ३२९ मिलियन (३२ ९ करोड़) हेक्टेयर है जो कि विश्व के क्षेत्रफल का मात्र २ ४ प्रतिशत

---

[39] नेमा एम०एल०, कृषि आधारित उद्योगो मे वित्त की भूमिका, योजना, दिसम्बर १९९९, पृष्ठ सख्या १६ ।

[40] डा० मणि दिनेश, भारतीय कृषि का वर्तमान परिदृश्य एव उर्वरक उपयोग, प्रतियोगिता दर्पण, पृष्ठ ७८, अगस्त १९९७ ।

है जो विश्व की १५ प्रतिशत मानव जनसंख्या को भोजन प्रदान करता है।[41] इस प्रकार हमारी भूमि मे कृषि उत्पादन बढाने के लिए काफी क्षमता तथा गुजाइश है जो हरित क्रान्ति अवधि (१९६८-८८) तक मे २ ३ प्रतिशत वर्षिक खाद्यान वृद्धि दर रही थी ,लेकिन आवश्यक है कि क्षमता का कुशल एव भरपूर उपयोग कैसे किया जाए ताकि बढ़ती हुई जनसख्या जो आज एक अरब को पार कर चुकी है, कि खाद्यान पूर्ति बिना कृषि क्षेत्रफल बढाए की जा सके, इसलिए किसानो को बेहतर जल, उर्वकर, मृदा प्रबध, एव उन्नत तकनीकी अपनाना जरूरी हो गया है। अत· इस सदी के अन्त तक अनुमानत· २२ ५ से २४.५ करोड़ टन खाद्यान्न वृद्धि के लिए तीन उपाय है।[42]

- ❖ खेती योग्य भूमि पर नई तकनीक द्वारा सघन, खेती करना जिसमे उर्वरकों का उपयोग मुख्य है। इस प्रकार सन् २००० ई० तक लगभग २ करोड़ टन उर्वरक का उपयोग करना पड़ेगा जबकि इस समय उर्वरको की वार्षिक खपत मात्र ० ९ करोड़ टन के लगभग है।[43]

सन् 2000 ई0 के लिए महत्वपूर्ण अनुमान

मद	अनुमान
जनसख्या (करोड मे)	1000
पशुधन (करोड़ मे)	700
खाद्यानो की आवश्यकता (करोड़ टन)	240
ईधन की आवश्यकता (करोड़ टन)	240
पशुचारा की आवश्यकता (करोड़ टन)	700
उर्वरक की आवश्यकता (करोड़ टन)	20

स्त्रोत :- स्वाभीनयन एम0 एस0, एग्रीकल्चर फॉर 21 सेन्चुरी किसान वर्ल्ड जनवरी 11-02-1995

---

41 डा० मणि दिनेश, भारतीय कृषि का वर्तमान परिदृश्य एव उर्वरक उपयोग, प्रतियोगिता दर्पण, पृष्ठ ७८, अगस्त १९९७ ।

42 वही पृष्ठ सं० ७८, प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त १९९७ ।

43 वही पृष्ठ सं० ७८, प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त १९९७ ।

यद्यपि भारत दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा उर्वरक उत्पादक देश है। फिर भी हमारे देश मे उर्वरक खपत बहुत ही कम है जो लगभग ६८ किलोग्राम प्रति हेक्टेयर कृषि भूमि एव ७३ किलोग्राम प्रति हेक्टेयर ऐरेबिल भूमि है यह दूसरे देशो की तुलना मे काफी कम है।[44] हमे यह भी मालूम है कि ५० प्रतिशत खाद्यान्न उत्पादन मे बढोत्तरी मात्र उर्वरक उपयोग से ही होती है इसलिए किसानो को उर्वरक उपयोग के सही तरीके बताना ही एक सही कदम होगा। उर्वरक के साथ-साथ गोबर की खाद्य या अन्य जैविक खाद्य का भी इस्तेमाल करना आवश्यक है।

- ❖ दियारा और कछारी भूमि मे उन्नत तरीको से खेती करना और ऊसर बजर व रेतीली मृदाओ को सुधारकर खेती करना खाद्यान्न वृद्धि मे अन्य आवश्यक सुझाव है। भारत में लगभग ० ७ करोड हेक्टेयर भूमि लवणीय व क्षारीय है।[45] ऐसी भूमि को खेती के योग्य बनाया जा सकता है। क्षारीय भूमि मे जिप्सम, पाइराइट जैसे मृदा सुधारको की आवश्यकता पडती है।
- ❖ अम्लीय भूमि का सुधार करके एव उसे कृषि योग्य बनाकर खाद्यान्न उतपादन मे वृद्धि की जा सकती है। अम्लीय भूमि को चूने के प्रयोग से कृषि योग्य बनाया जा सकता है। ऐसी भूमि में फास्फोरस के उपयोग का काफी महत्व है क्योकि अम्लीय मृदा मे फास्फोरस का स्थिरीकरण हो जाता है।
- ❖ शुष्क क्षेत्राो मे अनवर्ती फसलो की पद्धतियो को सुधारा जाए।

भारतीय मृदा मे औसत रूप से नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश की कमी है। सल्फर और जिक की भी कमी काफी मात्रा मे पायी जाती है। कहीं-कहीं लोहा ताँबा की भी कमी प्रकाश मे आयी है। अनुसधान से यह भी पता चलता है कि धान-गेहूँ पद्धति मे १० मिट्रीक टन फसलो की उपज के लिए लगभग ७०० किलोग्राम नाइट्रोजन, फास्फोरस एव पोटाश प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है।[46] इसी प्रकार गेहूँ आधारित अन्य फसल पद्धतियो में ५००-७०० किलोग्राम प्रति हेक्टेयर ग्रहण किए जाते है। जो जाने वाले उर्वरक तत्वो से कही अधिक है। जिसे केवल मृदा से पूर्ति कराना असम्भव हैं। यह कहना ठीक ही होगा कि

---

[44] डा० मणि दिनेश, भारतीय कृषि का वर्तमान परिदृश्य एवं उर्वरक उपयोग, प्रतियोगिता दर्पण, पृष्ठ ७८, अगस्त १९९७ ।

[45] वही पृष्ठ स० ७८, प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त १९९७ ।

[46] वही पृष्ठ स० ७८, प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त १९९७ ।

पृथ्वी पर शायंद ही कोई ऐसा मृदा हो जिसमें पर्याप्त मात्रा मे उर्वरक डाले बिना बहुत समय तक अधिक उपज ली जा सके। अत यह आवश्यक हो जाता है कि अधिक उपज लेने के लिए मृदा मे सतुलित मात्रा मे पोषक तत्व डाले जाएँ ऐसा न करने से मृदा तत्वहीन हो जाएगी और अपेक्षानुसार पैदावार नहीं मिल पाएगी।

उल्लेखनीय है कि सन् १९८१-९१ के मध्य जनसंख्या मे वार्षिक वृद्धि दर २ १ ३ प्रतिशत रहो जो भविष्य मे सन् २०००-०५ एव २०१० ई० तक १०२३, ११३७, एव १२६३ मिलियन होने का अनुमान है। अत सन् २००० तक देश की १०२३ मिलियन जनसख्या का भारण पोषण हेतु २४ करोड़ टन खाद्यान्न उत्पादन करना होगा, जबकि इसके विपरीत उर्वरको द्वारा २०६ लाख टन की पूर्ति सम्भावित है।[47] इस प्रकार स्पष्ट है कि उर्वरक उपयोग में वृद्धि के बावजूद फसल द्वारा लगभग ९५ लाख टन पोषक तत्वो का प्रतिवर्ष भूमि से दोहन होगा जिसका मिट्टी की प्राकृतिक अवश्यम्भावी है अर्थात् भूमि का खजाना समाप्त होकर नगी रह जाएगी। एक अनुमान के अनुसार भारत में ४६ प्रतिशत भूमि मे जिक की कमी, ५ प्रतिशत मैगनीज की कमी तथा ११ प्रतिशत लोहे की कमी है।[48] इन सूक्ष्म पोषक तत्वो की उन क्षेत्रो मे अधिक कमी है, जहाँ सघन खेती की जाती है। यह अनुभव किया जा रहा है कि अधिक उपज के लिए अधिकाश क्षेत्रो मे नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटैशियम का उपयोग आवश्यक है। यही नही इन प्रमुख पोषक तत्वो के साथ ही बहुफसली खेती वाले क्षेत्रो मे जिक व गधक जैसे सूक्ष्म व गौण तत्वों की कमी हो गई है। अब यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि खाद्यान्न उत्पादन के बढते लक्ष्य की पूर्ति हेतु भविष्य में कृषि उत्पादकता मे काफी वृद्धि करनी होगी। अत भूमि मे जिन तत्वो की कमी है उनकी पूर्ति के लिए इन सभी तत्वो का सतुलित मात्रा मे उपयोग किया जाना चाहिए। ताकि भूमि की प्राकृतिक उर्वरता मे कमी न हो और भूमि की उत्पादकता स्थायी रहे। इसके लिए नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश उर्वरको के साथ-साथ जैविक खाद्य कम्पोस्ट, गोबर की खाद, हरी खाद एव जैव उर्वरको के उपयोग के साथ-साथ सूक्ष्म व गौण तत्वों का इस्तेमाल किया जाए सामान्यत

---

[47] डा० मणि दिनेश, भारतीय कृषि का वर्तमान परिदृश्य एव उर्वरक उपयोग, प्रतियोगिता दर्पण, पृष्ठ ७९, अगस्त १९९७ ।

[48] वही पृष्ठ स० ७९, प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त १९९७ ।

२५ किलोग्राम जिक सल्फेट प्रति हेक्टेयर की सस्तुति की गई है। ताकि जिक एव गधक तत्वों की पूर्ति की जा सके।

आज जब हम अधिक उपज देने वाली प्रजातियो से धान और गेहू की अधिकाधिक उपज ले रहे हैं और जनसंख्या वृद्धि रूक नहीं पाई है। इतनी बडी जनसंख्या के लिए भोजन जुटाना हमारे लिए वास्तव मे एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। एक अनुमान के अनुसार चावल के उत्पादन की सन् २००० तक ७२ ६ मिलियन टन २००५ तक १०८ ८ मिलियन टन तथा २०१० ई० तक १२६ ५ मिलियन टन बढ़ाना होगा।[49] ठीक इसी प्रकार इन वर्षों में गेहूँ के उत्पादन को क्रमश ७०, ८१ ३, ९४ ५ मिलियन टन तक बढ़ाने की जरूरत होगी।[50] हम उर्वरको के उपयोग की अचानक बिल्कुल कम तो नहीं कर सकते किन्तु कृषि अवशेषो, हरी खादो तथा जैविक खादो के साथ-साथ पूरक रूप मे उर्वरकों का प्रयोग करना होगा। जिसके लिए पोषक तत्व प्रबन्ध सम्बन्धी निम्नलिखित तत्वो को भी ध्यान मे रखना होगा ।

- जहा पर एन० पी० के० तत्वो का असंतुलित मात्रा मे उपयोग दूर किया जाए तथा साथ ही गन्धक एव जिक की कमी वाले क्षेत्रो का भी पता लगाया जाए।
- असिचित क्षेत्रो में उर्वरको का उपयोग बढाना होगा।
- अम्लीय मिट्टीयो से अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए ३ से ४ कुतल प्रति हेक्टेयर की दर से चुने का प्रयोग करके एन० पी० के० की उपयोग क्षमता मे वृद्धि करनी चहिए।
- तत्वो के निक्षालन एव गैसीय हानि को रोक कर उर्वरक उपयोग क्षमता बढ़ाना होगा।
- जहाँ पर सिचाई की उत्तर व्यवस्था हो वहाँ पर हरी खाद एव कृषि अवशेषो का अधिक से अधिक उपयोग करना चाहिए।
- अनुसधान उपज एव किसानो के खेत की उपज मे व्याप्त अन्तर को समाप्त करना होगा।
- अनुसधान उपज एव किसानो के खेत की उपज मे व्याप्त अन्तर को समाप्त करना होगा।

---

[49] डॉ० मणि दिनेश, भारतीय कृषि का वर्तमान परिदृश्य एव उर्वरक उपयोग, प्रतियोगिता दर्पण, पृष्ठ ७९, अगस्त १९९७ ।

[50] वही पृष्ठ स० ७९, प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त १९९७ ।

कृषि उत्पादन के लाभों का समुचित उपयोग :- भारत ने पिछले ५० वर्षो के दौरान कृषि उत्पादन मे बहुत प्रगति की है। १९५०-५१ मे खाद्यान्न उत्पादन ५ ०८ करोड़ टन था जो १९९६-९७ मे बढ़कर १९ १० करोड टन तक पहुँच गया। इस तरह देश खाद्यान्न उत्पादन मे आत्म निर्भर हो गया है। १९५१-६१ के दौरान भारत की जनसख्या ४३ ९२ करोड थी जो १९९१ मे बढकर ८४ ६३ करोड तक पहुँच गई। अनुमान लगाया गया है कि १९९६-२००१ और २००१-२००६ मे जनसख्या क्रमश १०० ६२ करोड तथा १०८ ५९८ करोड़ तथा २००६-२०११ मे ११६ ४२५ करोड़ तक हो जाएगी। १९४१ से ५१ के दशक मे आबादी की स्वाभाविक वृद्धि दर मात्र १ २५ प्रतिशत वार्षिक थी लेकिन तत्पश्चात् इसमे पर्याप्त वृद्धि हुई और १९७१-८१ से ८१ के दशक मे यह वृद्धि सर्वाधिक यानी २.२२ प्रतिशत रही। १९९१ की जनगणना के अनुसार १९८० के समूचे दशक के दौरान जनसख्या वृद्धि दर २ १० प्रतिशत रही। भारत की जनगणना के संदर्भ तिथि १ मार्च २००१ को ०० ०० बजे के अनुसार भारत के महारजिस्ट्रार एव जनगणना आयुक्त ने देश की अन्तिम जनसंख्या १,०२,७०,१५,२४७ व्यक्ति घोषित की। पिछले दस वर्षो मे भारत की जनसख्या ८४ करोड ६३ लाख से बढकर अब १ अरब २ करोड़ ७० लाख हो गई है। जनसख्या मे वर्षिक वृद्धि दर २ १४ से घटकर १ ९३ प्रतिशत हो गई है। पिछले दशक मे (१९९१-२००१) में जनसख्या मे २१ ३४ प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस दशक में जितनी जनसंख्या बढ़ी वह दूनिया के पॉचवे सबसे बड़े देश ब्राजील की कुल जनसख्या से अधिक है।[51]

भारतीय अर्थव्यवस्था मुख्यत· कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है। इस समय फसल बुआई का वास्तविक क्षेत्र लगभग १४ करोड़ हेक्टेयर है और सकल बुआई क्षेत्र १७.८० करोड़ हेक्टेयर से १८ १० करोड हेक्टेयर तक है। करीब २ ४० करोड़ हेक्टेयर भूमि बंजर या परती रहती है। लगभग ५० प्रतिशत भूमि क्षेत्र मे किसी न किसी वजह से उत्पादन की दृष्टि से इस्तेमाल सीमित हो गया हैं। सकल घरेलू उत्पाद मे कृषि क्षेत्र का हिस्सा (१९९३-९४ मे) ३० ३ प्रतिशत था और जनसंख्या का ६० प्रतिशत भाग इस पर निर्भर था। देश के निर्यात का लगभग १९ प्रतिशत भाग इससे प्राप्त हुआ। भारत मे जोत का औसत आकार केवल १ ६९

---

[51] डॉ० पाटिल जयत, कृषि उत्पादन के लाभो का समूचित उपयोग, योजना, अगस्त १९९८, पृष्ठ सख्या ५७ ।

हेक्टेयर हैं। ७६ प्रतिशत से अधिक लोगो के पास २ हेक्टेयर से भी कम जोत (जमीन) हैं। दस हेक्टेयर से अधिक जोत भूमि केवल २ प्रतिशत है। ७६ प्रतिशत जोत वाले लोग केवल २९ प्रतिशत क्षेत्र मे कृषि करते हैं।[52]

भारत मे कृषि अब भी मानसून की दशा पर निर्भर करती है। उसकी मात्रा और स्थानिक वितरण के सबध में निकट भविष्य मे भी यही स्थिति जारी रहेगी। कृषि योग्य क्षेत्र का लगभग ६८ प्रतिशत वर्षा सिचित क्षेत्र है। भारत मे लगभग ४० करोड़ हेक्टेयर मीटर वार्षिक वर्षा होती है। इसके अलावा उसे हिमालय मे जल सभरण क्षेत्रो मे स्थित देशो से लगभग दो करोड हेक्टेयर मीटर जल प्राप्त होता है। भारत मे वार्षिक वर्षा लगभग ८८ सेमी॰ होती है जो विश्व मे सबसे अधिक है लेकिन इसके आकार की तुलना मे वर्षा का वितरण असमान है और वर्ष के ३ से ४ महीने के अंदर ही प्राय यह वर्षा हो जाती है। कुल वर्षा का लगभग ७३ ७ प्रतिशत जल जून से सितम्बर के बीच दक्षिण-पश्चिम मानसून से प्राप्त होता है। अक्टूबर से फरवरी के दौरान करीब १६ प्रतिशत वर्षा होती है। वर्षा की स्थिति और विभिन्न क्षेत्रो के अन्तर्गत पडने वाले इलाके को ध्यान मे रखते हुए मोटे तौर पर उसे निम्नलिखित समूहो मे रखा जा सकता है।

७५० मिमी से कम वर्षा क्षेत्र	-	कम वर्षा वाला प्रदेश ३३ प्रतिशत
७५० मिमी से ११२५ मिमी तक	-	मध्यम वर्षा वाला प्रदेश ३५ प्रतिशत
११२५ मिमी से २००० मिमी तक	-	अधिक वर्षा वाला प्रदेश २४ प्रतिशत
२००० मिमी से अधिक	-	अत्यधिक वर्षा वाला प्रदेश ८ प्रतिशत [53]

इस प्रकार ६८ प्रतिशत इलाका कम से लेकर मध्यम वर्षा वाले प्रदेशो मे पड़ता है।[54] इसके अलावा वर्षा मे भिन्नता, शीतोष्ण, उष्ण, अर्ध-उष्ण और आर्द्र आदि जलवायु वीय दशाओं और उर्वरा की व्यापक भिन्न-भिन्न दशाओ के अंतर्गत कई तरह की मिट्टियाँ पाई जाती हैं। ये सारी बाते चावल, तिल,

---

52 डॉ० पाटिल जयत, कृषि उत्पादन के लाभो का समूचित उपयोग, योजना, अगस्त १९९८, पृष्ठ सख्या ५७ ।

53 डॉ० पाटिल जयत, कृषि उत्पादन के लाभो का समूचित उपयोग, योजना, अगस्त १९९८, पृष्ठ सख्या ५७ ।

54 डॉ० पाटिल जयत, कृषि उत्पादन के लाभो का समूचित उपयोग, योजना, अगस्त १९९८, पृष्ठ सख्या ५७ ।

मक्का, बाजरा, ज्वार दाल, तिलहन, कपास जैसी वर्षा सिचित फसलों की उत्पादकता के निम्न स्तर के लिए काफी जैसी बागवानी फसलो और अनेक मसालो के संबध में भी लागू होती हैं।

तेजी से बढती आबादी एव उद्योंगो और शहरीकरण आदि के लिए ईंधन रेशो और खाद्य पदार्थों की तेजी से बढती मॉगो के कारण हमारे देश की जमीन पर दबाव लगातार बढता जा रहा है। इसके अलावा खनन पानी का जमाव, लवणता, झूम खेती और भूमि का कटाव आदि कारणो से भी भूमि के ससाधनो का ह्रास होता जा रहा है। कृषि के लिए अभी तक जिस भूमि का इस्तेमाल नहीं किया जा सका उसके दोहन का सीमित गुजाइश को देखते हुए मृदा और भूमि ससाधनो के सरक्षण की बहुत आवश्यकता है ताकि भावी पीढियॉ उपयुक्त वातावरण मे रह सके।

अनेक प्राकृतिक दबावो और सभार सत्र की समस्याओ के बावजूद योजनाबद्व कृषि के विकास स्वतत्र भारत की उपलब्धियो के इतिहास मे एक गौरवपूर्ण अध्याय हैं। ये उपलब्धियॉ हमारे किसानो, उत्पादको, मछुआरो की कठोर मेहनत तथा अनुसधान, प्रसार और निवेश एव सेवा एजेसियो के आवश्यक सहयोग के साथ-साथ योजना और उत्पादन कार्यक्रमों के कार्यान्वियन का परिणाम हैं।

यह बहुत सतोष की बात है कि १९५०-५१ के मात्र ५ ०८ करोड टन खाद्यान्न के मुकाबले १९९४-९५ मे १९ ११ करोड़ टन का रिकार्ड उत्पादन किया गया। इसी प्रकार गन्ना , तिलहन, कपास, दूध, अडा, चाय, रबर और मछली आदि का भी रिकार्ड उत्पादन किया गया।[55]

आठवीं पंचवर्षीय योजना मे कृषि विकास के लिए जो नीति निर्धारित की गई थी उसका उद्‌देश्य खाद्यान्न उत्पादन के मामले में न केवल आत्म निर्भरता हासिल करना था बल्कि निर्यात के लिए खास कृषि जिन्सो का अतिरिक्त उत्पादन भी करना था। हाल के वर्षो मे कृषि की प्रगति हालाकि बहुत सतोषजनक ही है लेकिन विभिन्न फसलो के उत्पादन एव उत्पादकता मे व्यापक क्षेत्रीय भिन्नताऍ भी रही हैं। पूर्वी और उत्तर पूर्वी क्षेत्रो पर जहॉ कृषि और विशेषकर बागवानी विकास के लिए अभी अत्यधिक अप्रयुक्त सभावनाऍ विद्यमान हैं खास तौर पर ध्यान देना होगा। चूंकि दो तिहाई अपेक्षाकृत अधिक सतुलित और टिकाऊ विकास के लिए

---

55 डॉ० पाटिल जयत, कृषि उत्पादन के लाभों का समूचित उपयोग, योजना, अगस्त १९९८, पृष्ठ संख्या ५८ ।

वर्षा सिचित कृषि और जल-सभरण विकास पर अधिक ध्यान देना होगा। आठवीं योजना के दौरान कृषि तथा अन्य सम्बद्व गतिविधियो के अतर्गत मुख्य जोर निम्नलिखित कार्यों पर देना होगा।

जल सभरण अवधारणा पर बारानी भूमि/वर्षा सिंचित क्षेत्रो का विकास पूर्वी, क्षेत्र मे त्वरित विकास मूल्य और रोजगार सृजन के लिए कृषि की विविधता बागवानी विकास तथा फूलो की खेती जिसमे मसाले और औषधि उपयोगी पौधे शामिल हैं समन्वित मत्स्यिकी विकास फसलो की कटाई के बाद बुनियादी ढॉचा तथा पिछली और अग्रिम स्थिति को ध्यान मे रखकर टेक्नोलाजी का स्तर उन्नत करना, किसानों को समय पर पर्याप्त ऋण और कृषि उपकरण उपलब्ध कराना, पशुपालन और डेरी विकास; विविधता और निर्यात के लिए कृषि उत्पादो की समर्थक प्रणाली का विकास; तिलहन और दलहन का उत्पाद बढ़ाना। कृषि क्षेत्र मे कुछ चुनौतियो को बहुत अधिक महसूस किया जाता है वे इस प्रकार हैं -

खाद्य सुरक्षा बनाए रखने मे देश की सक्षमता किसानों की आय मे वृद्वि से उनकी माँगो को पूरा करने की क्षमता, ग्रामीण क्षेत्रो मे बेरोजगारी और अल्प-रोजगार की समस्या और कृषि मे पूँजी निर्माण और निवेश की धीमी रफ्तार हमारे कृषक समुदाय के सामने पूर्ण और मौसमी बेरोजगारी तथा अल्प रोजगार अन्य चुनौतियाँ हैं जिनके लिए खेतो के भीतर तथा बाहर से सहयोग की आवश्यकता है। कृषि विकास और टिकाऊपन के मसले इस बात से अत्यंत गहराई से जुड़े है कि हम अपने प्राकृतिक ससाधनो का इस्तेमाल कितनी क्षमतापूर्वक करते हैं। संसाधनो की बर्बादी से न केवल वर्तमान पीढ़ी को हानि होती है बल्कि आगामी पीढी को भी नुकसान पहुँचता है। क्षमता मे सुधार से न केवल समाज के लिए अपेक्षाकृत अधिक धन अथवा दूसरे शब्दो मे निवेश पर अधिक लाभ प्राप्त होता है बल्कि हम दुर्लभ प्राकृतिक ससाधनो का इस्तेमाल भी समझदारी से करते हैं। पर्यावरण संरक्षण और पारिस्थितिकीय संतुलन की दृष्टि से ये सब बाते अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह बात न केवल अर्थव्यवस्था पर बल्कि समूचे कृषि क्षेत्र पर समान रूप से लागू होती है।

योजना का तात्पर्य है आम लोगो के जीवन स्तर मे सुधार लाने के लिए दुर्लभ ससाधनो का अधिकतम उपयोग। योजना लोकतात्रिक और विकेन्द्रित होनी चाहिए। विकेन्द्रीकृत योजना की प्रक्रिया मे शामिल है; समस्या की पहचान मूल्याकन विकल्प या मेनू उपलब्ध कराना, प्राथमिकता निर्धारण, डिजाइन का चयन तथा योजना नीतियों का स्वरूप तैयार करना, योजनाएँ बनाना तथा उन पर कार्यान्वियन । सातवी पचवर्षीय योजना के

मध्यावधि मूल्याकन ने प्राथमिक क्षेत्र के लिए सशोधित 'मैक्रो' और 'माइक्रो' स्तर की प्रणाली की आवश्यकता पर जोर दिया है। विशेषकर जल के कुशल उपयोग के अनुमान, योजना तथा प्रबधन, संसाधन आवश्यकता और यथार्थपरक आकलन परियोजना तैयार करने में जिला-स्तर पर अपेक्षाकृत अधिक तालमेल, वैकल्पिक कृषि प्रणाली के लिए ऋण प्रावधान की बेहतर नीतियॉ तथा वैकल्पिक सुपुर्दगी प्रणाली को अल्पकालिक आवश्यकताओ के रूप मे रेखाकित किया गया है। बाद मे प्रत्येक कृषि जलवायु क्षेत्र को टिकाऊ आधार पर कृषि उत्पादन मे अधिकतम वृद्धि के लिए योजना तैयार करनी होगी। इस समस्या के समाधान के लिए १९८८ मे कृषि योजना के प्रति एक नया दृष्टिकोण कृषि जलवायु क्षेत्रीय योजना के जरिए अपनाया गया। मृदा वर्षा और सिचित जैसे अन्य कई कृषि जलवायु कारको के आधार पर देश को मोटे तौर पर १५ कृषि जलवायुवीय मण्डलो मे विभाजित किया गया। यह विभाजन राष्ट्रीय कृषि आयोग तथा भारतीय कृषि अनुसधान परिषद् समेत देश के कई अन्य क्षेत्रीयकरण के पूर्व प्रयासो की जॉच के बाद किया गया। यह दृष्टिकोण अब तक देश मे प्रचलित कृषि योजना के क्षेत्रीय दृष्टिकोण से हटकर है और अपेक्षाकृत अधिक व्यापक है। विस्तृत संचालनात्मक योजना के लिए और समान क्षेत्रीय आधार पर अधिक एक जैसे सामान्य गुणो को ध्यान मे रखते हुए १५ मंडलो को ७३ उप-मण्डलों मे विभाजित किया गया।

देश के प्रमुख कृषि-जलवायु मडलो/क्षेत्रो तथा बाद में उप-मंडलो/क्षेत्रों के रूप में एक जैसी सामान्य बातो को ध्यान मे रखते हुए विभक्त करके परियोजना शुरू की गई। इस उपक्षेत्रीकरण के लिए जो सिद्धान्त अपनाए गए, वे मूलभूत कृषि अर्थव्यवस्था के स्वरूप से सम्बद्ध है जैसे मृदा की किस्म, जलवायु, तापमान और इसकी भिन्नताए, वर्षा तथा अन्य कृषि-मौसम सबधी विशेषताएँ, जल की मॉग तथा विमोचन दशाएँ आदि। प्रत्येक व्यापक क्षेत्र के लिए उस इलाके के राज्य कृषि विश्वविद्यालय के वरिष्ठ कुलपति की अध्यक्षता में एक मंडलीय योजना दल का गठन किया गया। इसका कार्य मण्डलीय योजना दलो की अधिकतम विकास नीति को आधार मानकर प्रत्येक क्षेत्र के लिए उपयुक्त कार्यक्रम तैयार करना उसके लिए सुझाव देना तथा कार्यान्वियन के लिए कार्यबिंदुओं को तय करना था। इस क्रम में क्षेत्रीय ससाधनो, दवाओं, आवश्यकताओं, प्राथमिकता क्षेत्रो आदि की जानकारी और रूप रेखा तैयार करना जिससे योजनावधि तथा संभावित काल दोनो ही समय कृषि के विकास के लिए स्थान की विशिष्टया योग्य नीतियों और कार्यक्रमो को चलाया जा सके। इन

नीतियों तथा कार्यक्रमो को बाद मे कृषि-जलवायु क्षेत्रो द्वारा राज्य योजनाओ मे शामिल किया गया। किसी क्षेत्र विशेष मे ससाधनों की उपलब्धता की स्थिति का अनुमान लगाने के लिए स्थापित आर्थिक संकेतको पर मूल सूचना, भूमि तथा जल ससाधन, फसले तथा फसल प्रणालियाँ, कृषि सहयोग प्रणालियाँ तथा बागवानी, मत्स्यिकी और कृषि प्रसस्करण जैसे सहयोगी क्षेत्रो से प्राय बुनियादी सूचना का सकलन तथा विश्लेषण किया गया। विश्लेषणात्मक चरण से किसी क्षेत्र के विकासात्मक मुद्दे निकलते हैं जिनसे उपयुक्त क्षेत्रीय विकास नीतियाँ तैयार की जाती है।

विगत दो दशको के दौरान उल्लेखनीय विकास देखा गया है। अतरिक्ष अनुसधान द्वारा विकसित प्रौद्योगिकीयो का इस्तेमाल निम्नलिखित क्षेत्रो मे किया जा रहा है।

- ✓ जल सभरण की पहचान और प्राथमिकीकरण
- ✓ जल सधाधनो का दोहन
- ✓ क्षेत्र का अनुमान तथा पहचान की गई कुछ फसलो का उत्पादन तथा
- ✓ समस्याग्रस्त मिट्टीयो का सीमा-निर्धारण आदि।

विभिन्न कृषि-जलवायु दशाओ आदि के लिए उपयुक्त पादप सामग्री के विकास मे जैव प्रौद्योगिकी और जैव अभियांत्रिकी के उपयोग के भविष्य मे प्रमुख भूमिका होगी। बागवानी-फलों, सब्जियो और फूलो की खेती के उभरते परिदृश्य से हमारे यहाँ के आम लोगों के पोषाहार मे सुधार आएगा तथा हमारे कृषि-निर्यात को पर्याप्त प्रोत्साहन मिलेगा। इसी तरह टिकाऊ और बढ़िया उत्पादन के लिए मिट्टी की उर्वराक शक्ति को बेहतर बनाने के वास्ते जैव तथा फर्टिलाइजरो का इस्तेमाल और कीटाणुओ तथा रोगो को नष्ट करने के लिए जैव-नियंत्रण के उपायो का इस्तेमाल बढ़ाने से कृषि में हमारा भरोसा और बढ़ेगा। पशुपालन के क्षेत्र मे भी (भ्रुण-हस्तातरण टेक्नोलॉजी) (एम्ब्रियो ट्रॉस्फर टेक्नोलॉजी) से दूध, माँस और ऊन के उत्पादन मे सुधार की पर्याप्त आशा मिल रही है। इस समय इस प्रौद्योगिकी मे कुछ दबाव तथा सीमाएँ है लेकिन त्वरित अनुसधानो प्रयासो से इन पर काबू पा लिया जाएगा। **"हरित क्रांति"** और **"श्वेत क्रांति"** के बाद समुद्री तथा खारे पानी सहित अतर्देशीय जल मे नई प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से मछलियो का उत्पादन बढ़ाकर **'नील**

क्रांति' लाने का प्रयास किया जा रहा हैं। कृषि तथा अन्य सम्बद्ध कार्यकलापो मे अनुसधान के ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जो कृषक समुदाय की आय बढ़ाने तथा उत्पादन मे सुधार लाने के लिए प्रौद्योगिकीयो की विविधता तथा उच्च स्तर बढाने मे बहुत मदद कर सकते हैं। वर्तमान अनुसधान टेक्नोलॉजी हस्तातरण के प्रति हमारा भरोसा भविष्य के कृषि विकास के लिए आधार है जो मुक्त अर्थव्यवस्था और भूमडलीकरण की किसी भी चुनौती का मुकाबला कर सकता है।

किसानो वैज्ञानिको तथा प्रसार कार्यकर्ताओ की कठोर मेहनत ने खाद्यान्न सुरक्षा की लक्ष्य को हासिल करने मे हमारी मदद की है और 'पोषाहार सुरक्षा' की ओर ध्यान देने के लिए अब उपर्युक्त समय आ पहुँचा है। बागवानी की फसले खास तौर पर फल और सब्जियाँ न केवल खनिजो और विटामिनो के समृद्ध भडार है बल्कि अत्यधिक पौष्टिक है और इनमे रोजगार उपलबध कराने की अत्यधिक सभावनाएँ हैं, इनसे और अधिक आमदनी तथा और अधिक खाद उपलब्ध हो सकती है। फलो-सब्जियो, मसालों, काजू तथा फूलो सहित इन सभी फसलो के निर्यात की अत्याधिक संभावनाएँ है जिससे देश के लिए बहुत जरूरी दुर्लभ विदेशी मुद्रा प्राप्त होती रहेगी।

'हरित क्रांति' और **'श्वेत क्रांति'** के बाद समुद्री तथा खारे पानी सहित अतर्देशीय जाल मे नई प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से मछलियों का उत्पादन बढ़ाकर **'नील क्रांति'** लाने का प्रयास किया जा रहा है। कृषि तथा अन्य सम्बद्ध कार्यकलापो मे अनुसधान के ऐसे अनेक क्षेत्र है जो कृषक समुदाय की आय बढ़ाने तथा उत्पादन मे सुधार लाने के लिए प्रौद्योगिकीयो की विविधता तथा उच्च-स्तर बढाने मे बहुत मदद कर सकते है।

बागवानी, फसलो, विशेषकर फलो-सब्जियो तथा फूलों की एक सबसे प्रमुख समस्या यह होती है कि देश के अधिकांश भाग में उष्ण कटिबधीय जलवायु होने तथा नमी की मात्रा ज्यादा होने के कारण उनके खराब या नष्ट होने की आशंका ज्यादा रहती है इससे फसल तैयार होने के बाद की स्थिति के लिए बुनियादी ढॉचे का विकास करने की अनिवार्यता और बढ़ जाती है। फलों और सब्जियो को जीवित प्राणियो की तरह हवादार जगह की आवश्यकता होती है। खेतो मे गर्मी कम करने और शीत भडारो की पर्याप्त व्यवस्था करने

फल उत्पादन क्षेत्रो मे पूर्व प्रशीतन और शीत भडारण सुविधाओ आदि के माध्यम से फसल तैयार होने के बाद की भारी क्षति से बचा जा सकता है तथा उत्पाद की गुणवत्ता को बनाए रखा जा सकता हैं। तथा सही समय पर उसे बगीचो तथा खेतो से बाहर से जाकर टर्मिनल मडियो पहुँचाया जा सकता है। प्रशीतित परिवहन व्यवस्था विकसित करने की तत्काल आवश्यकता है। उत्पाद शीघ्रता से और कुशलता से परिवहन के जरिए भेजना जरूरी होता है इसके लिए सड़क और रेल की प्रणालियों मे सुधार तथा सड़को की हालत मे पर्याप्त सुधार आवश्यक होता है।

बागवानी फसलो के महत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। विश्व मे ब्राजील और चीन को छोड़कर हमारा देश फलो और सब्जियो का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। हमारे देश मे आम और केले का सबसे अधिक उत्पादन होता है और प्याज, टमाटर तथा आलू आदि के उत्पादन मे हमारा बहुत बड़ा हिस्सा है। भारत मसालो और काजू का परपरागत् निर्यातक देश रहा है। हमारे यहाँ से फूलो की सम्पदा विशेषकर उष्ण कटिबधीय आर्किड और 'कट फ्लावर' के निर्यात की भारी सभावनाएँ है। इसके अलावा मशरूम, बटन, मार्सेला (गुच्छी), साइस्टर आदि के निर्यात की पर्याप्त गुजाइश है।

भारतीय फलो विशेषकर लीची, सपोटा और अनार जैसे स्वादिष्ट फलो के निर्यात को प्राथमिकता देकर भारतीय बागवानी समुदाय निर्यात की सभावनाओ का भली-भाँति उपयोग कर सकता है। कुछ इलाको मे ऐसी पट्टियाँ है जहां उत्कृष्ट किस्म के फलो का उत्पादन पहले ही किया जा रहा है और कटाई बाद की व्यवस्था तथा बिक्री के ढाँचे का विकास करके निर्यात मे भारी सफलता हासिल की जा सकती है। महाराष्ट्र का 'महाग्रेप' इसका शानदार उदाहरण है।

बागवानी उत्पादो का निर्यात कम मात्रा मे किया जाता है लेकिन इससे कृषि क्षेत्र को अधिक आमदनी और रोजगार उपलब्ध करने मे मदद मिलती है। हमारे यहाँ कृषि-जलवायु मे बडी विविधता है। जिसके फलस्वरूप हम निर्यात के लिए साल भर फलो-फूलो और सब्जियों का उत्पादन कर सकते है।

विकसित देशो मे फल-सब्जी का प्रसस्करण उद्योग फसलो की कटाई के समय मूल्यो को स्थिर रखने तथा अतिरिक्त उत्पाद के उपयोग के मामले मे उत्प्रेरक का कार्य करता है। लेकिन हमारे देश मे

यह उद्योग कई रूकावटो के कारण अभी ज्यादा विकसित नहीं हो पाया है और बाधाओ को दूर करके इसका सुव्यवस्थित विकास किया जाना बहुत आवश्यक है।

कृषि पदार्थों की विक्रय पद्धतियाँ :-

भारत मे कृषि वस्तुओ का विवणन मुख्यत निम्नलिखित पद्धतियो के द्वारा किया जाता है -

1. हत्था एवं गुप्त पद्धति :- इस पद्धति मे क्रेता अथवा उसका दलाल और कच्च आढतिया एक वस्त्र के नीचे हाथ मिलाते हैं। यह वस्त्र प्राय तौलिया अथवा धोती का भाग अथवा कुर्ता अथवा कमीज का अग्रभाग हो सकता है। मूल्य ऊँगलियो को दबाकर तय किये जाते हैं। उदाहरण के लिए यदि क्रेता वस्तु का भाव १६ रू० आठ आने मन लगाता है तो वस्त्र मे हाथ डालता है और आढतिये की ४ ऊँगलियों को चार बार दबाकर जोर से कहता है **"रूपए"**। अब वह ४ ऊँगलियो को दो बार दबाकर कहता है **"आने"**। इस प्रकार मोल भाव गुप्त रूप से तब तक चलता रहता है जब तक की मूल्य तय नही हो जाते अथवा आपस मे कोई मूल्य तय न होने से दोनो पक्ष पृथक हो जाते हैं। अढ़तिया विक्रेता को केवल अधिकतम् प्रस्तावित भाव ही बताता है अर्थात् अन्य क्रेताओं द्वारा प्रस्तावित भावो के बारे मे नहीं बताता। यदि इस अधिकतम् प्रस्तावित भाव पर विक्रेता अपनी उपज बेंचने की स्वीकृति देता है तो आढ़तिया वस्तुएँ बेच देता है अन्यथा अधिक ऊँचे मूल्यो की प्रतिक्षा की जाती है। किन्तु वास्तविक व्यवहार मे आढ़तिया जो अधिकतम मूल्य बताता है, उसी पर विक्रेता को अपनी उपज बेचनी होती है अन्यथा आढतिया उसके साथ सहयोग नहीं करता है।[56]

2. नीलामी द्वारा :- इन तरीके के बिक्री में आढ़तिया या दलाल बोली बोलने वाले को बुलाते हैं तथा जो सबसे अधिक बोली बोलता है उसे माल बेचते हैं। इस तरीके से बिक्री करने मे विक्रेता किसान को भी उपज के मूल्य के बारे मे पूरा ज्ञान होता है तथा उसके ठगने की सभावना कम होती है। नियंत्रित बाजारों मे अधिकतर इस तरीके से बिक्री होती है। बिक्री का यह तरीका साधारणतया चावल के लिए आंध्र, मद्रास, मैसूर व महाराष्ट्र के

---

[56] डॉ० सिह कुमार अशोक, भारत मे कृषि विपणन विजय प्रकाशन मन्दिर, सुडिया वाराणसी, पृष्ठ सख्या १६ ।

कुछ भागो मे तथा गेहूँ के लिए मध्य प्रदेश, राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा पूर्व व मध्य पजाब के भागो मे अपनाया जाता है।[57]

3. आपसी समझौते द्वारा :- इस तरीके के बिक्री में क्रेता स्वंय क्रेता के पास जाकर अपना तय किया हुआ भाव बता देता है। अगर विक्रता को यह भाव मान्य हो तो वह अपनी स्वीकृति शाम को सूचित कर देता है। इस प्रकार क्रेता और विक्रेता आपसी समझौते द्वारा यह मूल्य निर्धारित करके कृषि पदार्थों की बिक्री करते हैं। बिक्री का यह तरीका मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान, उत्तरी पजाब, देहली तथा उत्तर प्रदेश के आगरा, कानपुर, लखनऊ, वाराणसी, फैजाबाद, मुजफ्फरनगर आदि मडियो में अधिकतर प्रचलित है। इसके अतिरिक्त भारत मे कहीं-कहीं पर चिट निविदा पद्धति तथा कही-कही पर फसल तैयार न होने से पहले ही करने की पद्धतियॉ प्रचलित है।[58]

मध्यस्थो के अनुसार गुप्त पद्धति द्वारा विक्रय लाभप्रद है क्योंकि पक्के आढ़तिये (क्रेता) बाहर के मध्यस्थो के लिए कृषि वस्तुएँ क्रय करते है। बाहर की फर्म इन आढतियो को एक निश्चित दर पर क्रय का आदेश देती है। चूँकि एक पक्के आढ़तिये को यह ज्ञात नहीं होता कि दूसरे पक्के आढ़तिये ने क्या भाव लगाए हैं, अत· वह वही मूल्य लगा सकता है जो उसे बाहर के मध्यस्थ ने बताया है। इस प्रकार गुप्त पद्धति मे विक्रेता को उच्च्तम मूल्य प्राप्त हो सकते है। यदि इस तर्क को सही मान लिया जाए तो भी इस पद्धति मे विक्रेताओ के हितों के प्रति कुव्यवहार की यथेष्ट गुॅजाइस होती है। क्योंकि ये गुप्त मोल भाव विक्रेता के एजेट द्वारा किये जाते है। ऐसा भी सम्भव होता है कि वह विक्रेता को सही भाव न बताए और उस व्यक्ति को भाव अधिकतम बता दे जिसने कम भाव लगाया हो। वैसे अब इस पद्धति द्वारा विक्रय करना लगभग समाप्त हो गया है।

नीलामी द्वारा विक्रय पद्धति निश्चय ही गुप्त पद्धति से उत्तम है क्योंकि इससे क्रेताओ के मध्य प्रतिस्पर्द्धा को बढावा मिलता है। किन्तु इसमे समय अधिक लग जाता है क्योकि यदि विक्रेता अधिकतम बोली पर अपनी उपज नहीं बेचता तो बार-बार उसके लिए बोली लगाने की आवश्यकता होती है। ' **निजी**

---

[57] भालेराव एम०एम०, भारतीय कृषि अर्थशास्त्र, पृष्ठ संख्या ३९९ ।
[58] भालेराव एम०एम०, भारतीय कृषि अर्थशास्त्र, पृष्ठ सख्या ३९९ ।

मोल भाव पद्धति' एव धीमी पद्धति है और इसमें अधिक समय लग जाता है। इस पद्धति का अनुसरण करना उस समय कठिन होता है जब या तो बड़ी मात्रा मे उपज को बेचना होता है अथवा विक्रेताओं की सख्या अधिक होती है। इस पद्धति का लाभ यह है कि एक क्रेता के भाव दूसरे को ज्ञात नहीं होते।

कार्यवाहक मध्यस्थ :-

एक कृषि बाजार मे मुख्यत निम्नलिखित कार्यकर्ता होते है।

1. **अढ़तिया :-** अढ़तिया का तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जो कारोबार के सामान्य क्रम मे कृषि पदार्थो के स्वामी अथवा विक्रेता और क्रेता की ओर से आढ़त या कमीशन पर, कृषि पदार्थो का विक्रय या क्रय करता है। ये अढ़तिये दो प्रकार के होते है -

(क) कच्चा अढ़तिया :- इसका प्रमुख कार्य क्रेता (पक्के अढ़तिये) और विक्रेता (किसान, गॉव के बनिये महाजन आदि) के मध्य सम्बन्ध स्थापित करना होता है। कृषि उपज के बाद विक्रेता अपनी उपज को कच्चे अढतिये की दुकान पर लाते हैं और इसके माध्यम से उपज बेचते हैं। यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि बाजार मे उपज कच्चे अढ़तिये के माध्यम से ही बेची जाये किन्तु किसानो द्वारा इन बाजारो मे सीधी बिक्री शायद ही कभी होती हो। कच्चे अढतिया इस कार्य हेतु पारिश्रमिक लेते है जिसे 'आढ़त' या 'कमीशन' कहते हैं। ये कभी-कभी अपने लेखे मे भी कृषि उपज क्रय कर लेते है। कच्चे अढ़तियों की वित्तीय स्थिति खराब रहती है इसलिए वे पक्के अढ़तियो से ऋण सम्बन्धी सुविधाऍ अपनी साख पर अपने परिचित किसानों एवं स्थानीय व्यापारियो को प्रदान करवाते रहते हैं। कच्चे अढ़तिए अधिकतर किसानो एव स्थानीय व्यापारियो के पक्ष मे कार्य करते हैं।

(ख) पक्का अढ़तिया :- पक्के अढ़तियों की वितीय स्थिति प्राय. सुदृढ़ रहते है तथा उसकी निजी गोदाम में भी रहती है। पक्के अढ़तिये बिक्री हेतु प्रस्तुत किये गये कृषि पदार्थों की थोक व्यापारियों को बिकवा देते हैं तथा आढ़त प्राप्त कर लेते है। यदि बाजार में कीमत उचित नहीं है तो बिक्रेता पक्के अढ़तियो के यहाँ अपने कृषि पदार्थ को रख देता है तथा उचित कीमत आने पर बेचने का प्रस्ताव रखता है। पक्का अढ़तिया उस कृषि पदार्थ को उचित कीमत पर बेचकर अपनी आढ़त ले लेता है। यदि बाजार मे कीमत उचित नहीं है तथा

विक्रेता को तुरन्त पैसे की आवश्यकता है तो ऐसी स्थिति मे पक्का आढ़तिया विक्रेता के कृषि पदार्थ की वर्तमान कीमत दर से ७५ प्रतिशत कीमत, १ ५ प्रतिशत मासिक ब्याज की दर पर ऋण के रूप मे दे देता है।[59] जब विक्रेता का माल बिक जाता है तब अपनी आढ़त देय धन का ब्याज काट कर शेष पैसे का भुगतान कर देता है।

भिन्न भिन्न मण्डियों में कीमते भिन्न भिन्न होती है। इस विभिन्नता से लाभ उठाने के उद्‌देश्य से थोक व्यापारी अपने कृषि पदार्थ दूसरी मण्डी के पक्के अढ़तिये के द्वारा बिकवाने का भी प्रयास करते है। पक्का अढ़तिया उस कृषि पदार्थ को अपने गोदाम मे रख लेता है तथा उचित समय पर बिक्री कर देता है। बिकी के फलस्वरूप प्राप्त कीमत मे से आढ़त या विपणन खर्च काट कर शेष पैसे को कृषि पदार्थ के मालिक के पास देता है। बहुत से अढ़तिये थोक व्यापारी का भी कार्य करते हैं।[60]

2. दलाल :- यह कार्यकर्ता सभी बजारो मे कार्य करता है और क्रेता तथा बिक्रेता को साथ-साथ मिलाने का कार्य करता है। प्राय ये क्रेता की ओर से कार्य करते है और इनका अपना कोई व्यवसाय नहीं होता है। दलाल बाजार की सभी दूकानो पर जाते हैं, बोरो या ढेर मे से नमूना लेते हैं, इसे संभावित क्रेताओं को दिखाते है, और जो सौदे इनके माध्यम से होते हैं उनका विवरण लिखते हैं। अपने कार्य हेतु इन्हे जो पारिश्रमिक मिलता है उसे दलाली कहते हैं। दलाली की दर विभिन्न मण्डियो में अलग-अलग पायी जाती है। वैसे उ० प्र० कृषि उत्पादन मण्डी नियम १९६४ के अनुसार ०.५० प्रतिशत दलाली निर्धारित की गयी है।[61] अधिनियम में यह भी निर्दिष्ट किया गया है कि यह परिव्यय क्रेता द्वारा देय होगे। प्रतिबन्ध यह है कि निलाम के पूर्व तौलाई या मापने अथवा सँभालने के परिव्यय यदि कोई हो जो मण्डी समिति द्वारा अपनी उप-बंधियो मे निर्दिष्ट किये जाये, विक्रेता द्वारा देय होंगे। किन्तु चुनी गई मण्डियो के सर्वेक्षण में ऐसा पाया गया कि विक्रेता (कृषक) को भी दलाली देनी पड़ती है।

---

[59] मण्डियो मे किए गए स्वत सर्वेक्षण पर ।
[60] मण्डियो मे किए गए स्वत सर्वेक्षण पर ।
[61] उ०प्र० मे कृषि उत्पादन मण्डी अधिनियम १९६४ के अधीन बनायी गयी नियमावली, निदेशक कृषि विभाग, उ०प्र०, लखनऊ द्वारा प्रकाशित पृष्ठ सख्या ३३ ।

3. तौला :- ये उपज को तौलने का कार्य करते हैं। कही-कही इन्हे एक निश्चित वेतन पर आढ़तियो द्वारा नियुक्ति किया जाता है। प्राय सहकारी विपणन समिति पर तौले उसके कर्मचारी होते हैं। कही-कहीं कच्चे आढ़तिये भी तौला का कार्य करते हैं। इनकी सेवा हेतु प्राप्त धनराशि को तुलाई कहते है। तौलाई की दर भिन्न-भिन्न मण्डियो मे अलग-अलग पायी जाती है वैसे उ० प्र० कृषि उत्पादन मण्डी अधिनियम १९६४ के अनुसार तौलाई १० रू० प्रति क्विटल निर्धारित की गई। किन्तु उ० प्र० कृषि उत्पादन मण्डी (अमेन्डमेन्ट) रूल्स १९६८ के अनुसार यह दर १५ रू० प्रति क्विटल निर्धारित कर दी गयी।[62]

4. पल्लेदार :- ये लोग वस्तु की दुलाई का कार्य करते है, जैसे उपज को बैलगाड़ियो, ट्रको अथवा बैगनो पर से उतारना और लादना, उपज को साफ करना, बोरों में भरना और बोरो को सिलना आदि। ये या तो स्वतन्त्र मजदूर होते हैं अथवा कच्चे आढ़तियो के कर्मचारी होते है अथवा ठेकेदारों के साथ-साथ कार्य करते हैं। इन्हे अपने कार्य हेतु जो पारिश्रमिक मिलता है, उसे 'पल्लेदारी' कहते है। पल्लेदारी की दर विभिन्न मण्डियो मे अलग-अलग होती है। किन्तु उत्तर प्रदेश कृषि उत्पादन मण्डी अधिनियम १९६४ के अनुसार पल्लेदारी की दर १ ५० रू० प्रति कुतल है। किन्तु मण्डी अधिनियम में १९६८ में सशोधन करके यह दर २ रू० प्रति क्विटल निर्धारित कर दी गयी है।[63]

5. फूटकर व्यापारी :- फूटकर व्यापारी का कार्य प्रायः पक्के अढतियो या थोक व्यापारियो से कृषि पदार्थों की खरीद करना तथा उन्हे अतिम उपाभोक्ताओं को भेजना है। ऐसे व्यापारी शहर, बड़े कस्बो या ग्रामीण बस्तियो मे उपभोक्ताओ के समीप अपनी दुकाने रखते है। इस व्यवस्था को "**फूटकर मण्डी**" कहा जाता है। "फूटकर मण्डी से अभिप्राय ऐसी मण्डी से है जो अतिम उपभोक्ताओ को उनकी आवश्यकतानुसार खरीदने का अवसर देती है। कृषि पदार्थों की फूटकर मण्डियों सारे देश मे विभिन्न स्थानो पर फैली हुई है।

थोक मण्डी के अन्तर्गत भी फूटकर मण्डी पायी जाती है क्योंकि बहुत से फुटकर व्यापारी थोक मण्डी की सीमा के अन्तर्गत ही व्यापार करते हैं। मण्डी से दूर की फूटकर दूकानो की अपेक्षा थोक मण्डी

---

[62] उ०प्र० मे कृषि उत्पादन मण्डी अधिनियम १९६४ के अधीन बनायी गयी नियमावली, निदेशक कृषि विभाग, उ०प्र०, लखनऊ द्वारा प्रकाशित पृष्ठ संख्या ३३ ।

[63] उ०प्र० कृषि उत्पादन मण्डी अमेण्डमेन्ट रूल्स १९६८ निदेशक, कृषि विभाग, उ०प्र० लखनऊ द्वारा प्रकाशित ।

दूकानो की वस्तुएँ भी कुछ सस्ती प्राप्त होती है, क्योकि मण्डी के फूटकर विक्रेताओ की चुँगी, परिवहन तथा कुछ अन्य मण्डी मे होने वाले खर्चों को अधिक नहीं करना पड़ता है।

फूटकर व्यापारी प्राय कच्चे अढ़तियो अथवा थोक व्यापारियो से माल की खरीद करते है। किसी फूटकर व्यापारी को अगर उधार माल लेना पड़ता है तो वह पक्के अढ़तिया का सहारा लेता है। ऐसी खरीद पर अढ़तियो अपनी आढ़त के अलावा एक खरीद के कार्य मे दलालो का भी सहारा लेते हैं। ऐसा प्राय तब होता है जबकि किसी फूटकर व्यापारी को मण्डी में कृषि पदार्थ विशेष की उपलब्धि के बारे मे अनभिग्यता रहती है। फूटकर व्यापारी क्रय किये गए कृषि पदार्थों का प्रायः अपनी दुकान मे ही सग्रहण करता है तथा उपभोक्ताओ को ऐसी कीमत पर बेचने का प्रयास करता है जिससे स्वयं के द्वारा लगाई गई विपणन सम्बन्धी लागतो के अलावा उसे पर्याप्त लाभ की भी प्राप्ति हो।

कृषि विपणन व्यवस्था का मूल्यांकन :- हमारे देश मे कृषि विपणन व्यवस्था अभी पिछड़ी हुई अवस्था मे है। कृषि पदार्थो मे विपणन प्रक्रिया खेत से ही प्रारभ हो जाती है। इस प्रकार कृषि उपजो के विपणन मे मुख्य बात उत्पादन और बिक्री के बीच के श्रृखला से सम्बन्धित रहती है और इस श्रृखला की कई कडियाँ होती है। अतएव कृषक को उसकी उपज का सही मूल्य दिलवाने व्यवस्था, हेतु आवश्यक होती है। जैसे एकत्रीकरण एवं वितरण व्यवस्था, विपणन का समय, विपणन का स्थान, उपज की कीमत, परिवहन व्यवस्था, सग्रह व्यवस्था, प्रमापीकरण व श्रेणीकरण विपणन वित्त, ससार सुविधा आदि, एक अच्छे कृषि विपणन व्यवस्था हेतु समस्त आवश्यक शर्तो के आधार पर विपणन प्रक्रिया का मूल्याकन नीचे प्रस्तुत किया गया है।

कृषि पदार्थों का एकत्रीकरण एवं वितरण :- "एकत्रीकरण वह क्रिया है, जिसमे वस्तुएँ बहुत से उत्पादको से एक केन्द्रीय बिन्दु या बाजार की ओर बहती है"[64] और जब केन्द्रीय बिन्दु या बाजार से पदार्थो का वितरण उपभोक्ता या औद्योगिक उपभोक्ता की ओर होता है तो इस क्रिया को वितरण कहते है। कृषि पदार्थों मे एकत्रीकरण की विधि वस्तु के खेत के छोड़ते ही प्रारम्भ हो जाती है। किसान अपने वर्ष भर के खाने

---

[64] पाइल जे० एफ०, मार्केटिंग प्रिन्सपुल १९५६ पृष्ट सख्या ८९ ।

के लिए उपज को रोककर शेष भाग को प्राथमिक बाजारो मे बेच देते है। प्राथमिक बाजारो मे हाट, गाँव का बनिया, घुमता फिरता व्यापारी आदि आते हैं। ये व्यापारी अपना माल पास के थोक बाजार मे ले जाते हैं जहॉ इसको कच्चे अढतियो को बेच देते हैं। कच्चा अढ़तिया इसको पक्के अढ़तियो को बेचता है जो अन्य मध्यस्थो के माध्यम से उस माल को उपभोक्ता या निर्यातकर्त्ता तक पहुँचा देता है, इस प्रकार इन सभी के द्वारा एकत्रीकरण क्रिया की जाती है एकत्रीकरण उन पदार्थो मे विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जो प्राकृतिक रूप व अवस्था मे बेचे जाते है। इनमे कृषि पदार्थ, ऊन, रूई, अनाज, मछली उत्पादन, व खनिज आते हैं। इन सभी की उत्पादन विभिन्न स्थानो पर होता है और उचित वितरण के लिए आवश्यक है कि उनका एकत्रीकरण किया जाए।[65]

कृषि पदार्थो के संदर्भ मे एकत्रीकरण क्रिया जटिल है, क्योकि कृषि एक लघु पैमाने का व्यापार है और इसके उत्पादक बिखरे हुए होते है। एकत्रीकरण तथा वितरण की प्रक्रिया हर स्थिति मे एक सी नहीं पायी जाती है। कुछ किसान कृषि पदार्थों को सीधे थोक मण्डियो मे बिक्री कर देते हैं, फिर वहॉ से अंतिम उपभोक्ताओं की उनका वितरण होता है। कृषि पदार्थो का प्राय· छोटी-छोटी मण्डियों मे एकत्रीकरण होता है जहॉ से उन्हे बड़ी मण्डियो मे भेजा जाता है इन बड़ी मण्डियो को हम एकत्रीकरण का अन्तिम बिन्दू कह सकते हैं। कभी-कभी किसान कृषि पदार्थों को सीधे अंतिम उपभोक्ताओ के हाथ बेच देते हैं और इस प्रकार उत्पादनकर्ता के स्तर से ही थोड़ा बहुत वितरण प्रारम्भ हो जाता है। कृषि पदार्थों का अधिकाशतया वितरण केन्द्रीय बाजारो के थोक विक्रेता, फुटकर व्यापारियो मे करते है, ताकि फुटकर व्यापारी उनका वितरण करके अतिम उपभोक्ताओ तक भेज सके। खाद्यान्नो के राजकीय व्यापार के अतर्गत भी कृषि पदार्थो के एकत्रीकरण और वितरण की प्रक्रियाएँ अपनायी जाती है। समुचित वितरण के उद्देश्य से सरकारी खरीद के द्वारा कृषि पदार्थों के भण्डार बनाए जाते हैं और निर्धारित दुकानो के माध्यम से निर्धारित कीमत पर सरकार इन्हे वितरित करती हैं। इस एकत्रीकरण एवं वितरण के दो तरफा बहाव के मध्य एक तीसरी प्रक्रिया भी होती है जिसे समाजीकरण की क्रिया कहते है। समाजीकरण वह क्रिया है जिसके द्वारा बिक्री के लिए उपलब्ध वस्तु की पूर्ति एव उसकी मॉग के बीच सामजस्य स्थापित किया जाता है जिस स्थान पर जब जितनी मात्रा मे और जिस किस्म

---

[65] गुप्ता ए०पी० मार्केटिंग ऑफ एग्रीकल्चरल प्रोड्यूस इन इण्डिया १९७५ पृष्ठ सख्या ३ ।

की वस्तु की माँग होती है उसके अनुरूप बिक्री के लिए उपलब्ध वस्तुओ को वितरीत करके माँग और पूर्ति मे समानीकरण किया जाता है। समानीकरण का कार्य मुख्य रूप से थोक मण्डियो मे होता हैं। इन मण्डियो मे विभिन्न प्रकार के कृषि पदार्थ एकत्रित होते रहते हैं। कृषि पदार्थों को थोक विक्रेता तब तक रोके रहते हैं जब तक कि उपभोक्ता केन्द्रो मे उनकी माँग अथवा वितरण की आवश्यकता नहीं होती है। माँग के अनुरूप वितरण करना हो समानीकरण है जो एकत्रीकरण तथा वितरण की प्रक्रियाओ के मध्य एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया होती है।

इस प्रकार कृषि विपणन में एकत्रीकरण एवं वितरण एक महत्वपूर्ण क्रिया होती है कृषि पदार्थो के एकत्रीकरण की क्रिया विभिन्न सस्थाओ द्वारा की जाती है।

अत इससे स्पष्ट है कि किसानों द्वारा विभिन्न सस्थाओ को की गयी बिक्री का औसत इस प्रकार है। सीधे मण्डी को २९ ११ प्रतिशत, गाँव के बाजार के व्यापारी को ३३.१४ प्रतिशत, थोक व्यापारी को १७ ३१ प्रतिशत, घूमता-फिरता व्यापारी को १६ ४५ प्रतिशत, गाँव की घानी की ५ ४७ प्रतिशत मिल के प्रतिनिधि को ९ ५३ प्रतिशत, सहकारी समिति को ०.९४ प्रतिशत।[66] इस प्रकार किसान अपने विक्रय योग्य अधिक्य का सबसे अधिक भाग गाँव के व्यापारी को करते हैं। ऐसा प्राय इसलिए होता है कि हमारे देश मे छोटे किसानो का बाहुल्य है तथा उनमे सगठन के अभाव से किसान अपनी प्रत्येक छोटी सी विपणन योग्य बचत बाजार मे ले जाने मे असमर्थ रहते हैं तथा विपणन साख व सग्रह की सुविधा के अभाव से गाँव मे फसल काटने के तुरन्त पश्चात् ग्रामीण व्यापारी को बेंच देते हैं। कई किसान तो महाजन व्यापारियो के ऋण बन्धन मे रहते है उन्हे तो अनिवार्यत अपनी उपज इन महाजन व्यापारियो को ही गाँव में बेचनी पड़ती है। कुल बिक्री मे सहकारी समिति को की गयी बिक्री का प्रतिशत अति न्यून है। एकत्रीकरण एव वितरण की प्रक्रिया को उन्नत बनाने हेतु विनियमित मण्डियो की स्थापना की गई है। प्रत्येक गाँव को सड़क द्वारा मंडी स्थलो से जोड़ा जा रहा है, ताकि किसान अपनी उपज मण्डी में लाकर बेचे जिसमे उन्हें मण्डी विनियमन के लाभ मिल सके। विनियमित मण्डियो ने उत्पादक विक्रेताओ को मण्डियो मे शोषण से बचाकर न्यायोचित् व्यवहार दिलाने की दिशा मे महत्वपूर्ण कार्य किया है अपितु इसके कार्यो से भारी मात्रा मे निर्दिष्ट कृषि उत्पादो के उत्पादक

---

[66] सौजन्य से राज्य कृषि उत्पादन मण्डी परिषद उ०प्र० १६ ए०पी० सेन रोड , लखनऊ ।

विक्रेताओ ने विनियमित मण्डियों मे अपनी उपज को लाकर बेचना आरम्भ कर दिया है मण्डियों की आवक मे उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।

आशा है कि भविष्य मे भी वृद्धि की यह दर जारी रहेगी। इस प्रकार मण्डियो के विनियमन एव मण्डी स्थलो के निर्माण से कृषि पदार्थों के एकत्रीकरण एव वितरण की प्रक्रिया मे पर्याप्त सुधार हुए हैं।

विपणन का समय :- औद्योगिक वस्तुओ की विपणन व्यवस्था एव कृषि पदार्थो की विपणन व्यवस्था मे अन्तर है। चूँकि औद्योगिक वस्तुओ का उत्पादन एव उनका उपयोग पूरे वर्ष भर होता है। जबकि कृषि पदार्थो का एक निश्चित समयावधि में उत्पादन होता है किन्तु उपयोग पूरे वर्ष भर होता रहता है। अतएव कृषि पदार्थो को इस प्रकार पर्याप्त मात्रा मे सग्रहित कर लेना आवश्यक हो जाता है, ताकि उनकी पूर्ति मॉग के अनुरूप उचित ढग से होती रहे।उदाहरण-स्वरूप भारत मे तिलहन, गेहूँ का उत्पादन अप्रैल-मई मे होता है किन्तु उनकी मॉग पूरे वर्ष बनी रहती है। इसीलिए उचित समय पर इसे पर्याप्त मात्रा मे सग्रहित कर लिया जाता है। सग्रहण क्रिया, विपणन का वह पक्ष है जो समयानुसार वस्तुओ का स्थानान्तरण एव वितरण कर उसमे समय उपयोगिता की वृद्धि करती है।[67] इस प्रकार एक व्यवस्थित कृषि विपणन व्यवस्था में पदार्थो का प्रवाह अनवरत् बिना किसी बिलम्ब अथवा बाधा के होना आवश्यक है ताकि अन्तिम उपभोक्ताओ के पास उत्पादको का माल पहुँचता रहे।

भारतीय कृषक प्राय अनपढ़ एव गँवार होते हैं एव इनमे सगठन क्षमता का अभाव व विपणन सम्बन्धी मनोवृति की कमी पायी जाती है। जिससे इनके समक्ष अनेक विपणन सम्बन्धी विकट समस्याएँ तो रहती ही है साथ ही साथ फसल तैयार होते ही सरकारी ऋण की वसूली, लगान की वसूली तथा व्यापारियो महाजनों, साहूकारो, आदि के ऋणो की वसूली, सम्बन्धी समस्याओ से घिरे हुए किसानों मे स्वभावत· माल रोकने की क्षमता कम होती है। अतएव अधिकांश छोटे किसानो को अनिवार्य रूप से कम मूल्य पर कृषि उपज गॉव मे ही बेच देनी पड़ती है। यह प्रथा प्राय पूरे देश में लाचार बिक्री के रूप में पायी जाती है। मण्डियों मे किए गए सर्वेक्षण के अनुसार विभिन्न व्यावसायिक फसलों की कुल उपज में से गाँवों में बेची गई मात्रा का विवरण इस प्रकार है। गुड़ ३३ ३९ प्रतिशत, सरसो ४४ ६४ प्रतिशत, अलसी ३९ ७१ प्रतिशत, मूँगफली १४ ८३

---

[67] गुप्ता ए०पी० मार्केटिंग ऑफ एग्रीकल्चरल प्रोड्यूस इन इण्डिया १९७५ पृष्ठ सख्या ३ ।

प्रतिशत। ग्रामीण व्यापारी छोटे किसानों से प्राप्त कृषि उपज को एकत्रित करते हैं तथा अढ़तियों द्वारा स्वय पास के बडे बाजारो मे थोक व्यापारियो को बेच देते हैं। कभी-कभी फेरी वाले जिन्हे घूमता फिरता व्यापारी भी कहते है गॉव मे ही किसानो से माल खरीदते है व उसे एकत्रित करके बाजारो मे थोक व्यापारियो को बेचते है। मण्डियो मे किये गए सर्वेक्षण के अनुसार किसान अपनी कुल उपज का ९ ५३ प्रतिशत गुड़, ८ ०१ प्रतिशत सरसो, ३ ८९ प्रतिशत अलसी एव ११ ४८ प्रतिशत मूँगफली घूमते-फिरते व्यापारियो के हाथो बिक्री किये है। इस प्रकार कृषक तो तुरन्त फसल तैयार होने के बाद बिक्री कर देता है।[68] जिससे कृषि पदार्थो की पूर्ति मॉग की अपेक्षा अधिक बढ़ जाती है और किमतो मे भारी गिरावट आ जाती है। परिणामस्वरूप कृषको को अपनी उपज का कम ही मूल्य प्राप्त होता है। इस प्रकार हमारे देश मे किसान विपणन की दौड़ में पीछे रह जाता है और वह समय उपयोगिता से लाभान्वित नहीं हो पाता है। इन कठिनाइयो को सुलझाने हेतु सरकार संग्रह व्यवस्था गॉवो को मुख्य मण्डी स्थल से सड़को द्वारा जोड़ने की व्यवस्था, कृषको को वितीय सहायता आदि विपणन सम्बन्धी आवश्यक सुविधाओ के विकास हेतु प्रयासरत है।

विपणन का स्थान :- एक स्थान से दूसरे स्थानो पर कृषि पदार्थो के स्थानान्तरण से मानवीय आवश्यकताओ के आधार पर विक्रय एव वितरण सम्भव होता है। स्थान परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की उपयोगिता मे वृद्धि हो जाती है। स्थान उपयोगिता से तात्पर्य उपयोगिता के निर्माण के उस पहलू से है जो किसी वस्तु मे केवल स्थान परिवर्तन से विकासित होता है। यह उपयोगिता बढ़े हुए मूल्यों मे सहज ही परिलक्षित होती है। विपणन सस्थाओ द्वारा वस्तुओ को अधिक्य के स्थान से न्यूनता के स्थान पर लाकर उनकी उपयोगिता को बढ़ा दिया जाता है।[69]

यह निर्विवाद के रूप मे सत्य है कि विनियमित मण्डियो मे अन्य विक्रय स्थलो की तुलना मे अच्छी कीमते प्राप्त होती है परन्तु अधिकाश भारतीय कृषक प्राय· इन मण्डियो तक नहीं पहुँच पाते है। अत ये किसान कीमत सम्बन्धी जानकारी प्रायः बनियो, साहूकारो, महाजनों, एवं अन्य व्यक्तियो से बातचीत के द्वारा ही प्राप्त कर पाते है। इसलिए इन्हे गलत सूचना मिलना स्वाभाविक होता है। इस कीमत सम्बन्धी गलत सूचना

---

[68] स्वत· सर्वेक्षण पर आधारित ।

[69] भालेराव एम०एम०, भारतीय कृषि अर्थशास्त्र, ०९ पृष्ठ संख्या ४६६ ।

के कारण वे यह नहीं समझ पाते हैं कि किस स्थान पर बिक्री करने से उन्हे उचित कीमत प्राप्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त विक्रय योग्य अतिरेक की कमी एवं विपणन सम्बन्धी अनेक कठिनाईयो के कारण भी वे उचित स्थान पर बिक्री हेतु पहुँच पाने मे असमर्थ होते हैं। ऐसी स्थिति मे अधिकाश कृषको को अपनी उपज का बहुत बडा भाग गाँव मे ही बनियो, घूमते-फिरते व्यापारियो, महाजनो एवं साहूकारो के हाथो बिक्री कर देना पड़ता है।

उपर्युक्त समस्याओ के ध्यान मे रखते हुए भारत सरकार द्वारा यातायात साधनो, सग्रहण व्यवस्था एव कीमत सम्बन्धी सूचनाओ के प्रसारण हेतु अनेक प्रयास जारी है। इसके अतिरिक्त सहकारी विपणन समितियाँ ग्रामीण अचलो मे अपने सदस्यो के कृषि पदार्थो को एक बड़ी मात्रा में खरीद कर स्थान उपयोगिता के लाभ दिलाने का कार्य कर रही है। इसके अतिरिक्त क्रय विक्रय को विनियमित करने हेतु विभिन्न राज्यो मे मण्डियो का विनियमन किया गया है। नवनिर्मित मण्डी स्थल तथा उपमण्डी स्थल हेतु मण्डी समिति के प्रस्ताव के आधार पर जिन निर्दिष्ट कृषि उत्पादो के थोक व्यापार के लिए निर्माण कराया जा रहा है उनके लिए राज्य सरकार के द्वारा धारा ७ (२) ख के अन्तर्गत अधिसूचना जारी की जाती है। इस अधिसूचना व अन्य स्थानीय परिस्थितियो के अन्तर्गत जिला प्रशासन के द्वारा अधिसूचना मे उल्लिखित निर्दिष्ट कृषि उत्पादो का थोक व्यापार नवीन मडी स्थल उपमण्डी स्थल मे स्थानान्तरित कराया जाता है।[70]

उपज की कीमत :- हमारे देश मे कृषक को अपनी उपज का सही मूल्य नहीं प्राप्त हो पाता है। प्राय कृषि उपजो की कीमत का निर्धारण मध्यस्थो एव अढ़तियों एवं साहूकारो द्वारा मनमाने तौर पर तैयार किया जाता है। जिसमे किसानो का शोषण निहित रहता है। अत· किसान को उचित कीमत दिलाने के लिए उन्नत कृषि विपणन की पर्याप्त दशाओ का विकास होना आवश्यक है, साथ ही साथ किसानो को शिक्षित एव विपणन कला मे दक्ष होना आवश्यक होता है। हमारे देश मे किसानों के पास विक्रय योग्य अतिरेक का अभाव रहता है। जिसके कारण वे अपनी उपज को मण्डी स्थल तक नहीं ले जाना चाहते हैं। क्योंकि यह महँगा पड़ता है, उसे गाँव मे ही बेच देना आसान समझते हैं। जिससे उन्हे उचित कीमत नहीं मिल पाती है। इसके अतिरिक्त भारतीय किसान अनेक अन्य समस्याओं से भी ग्रसित है जैसे, यातायात की असुविधा, सग्रह व प्रक्रिया की

---

70 सौजन्य से राज्य कृषि उत्पादन मण्डी परिषद उ०प्र०, १६ ए०पी० सेन रोड, लखनऊ ।

सुविधाओ का अभाव, श्रेणीकरण व प्रमापीकरण आदि की असुविधा, वित्तीय संकट आदि। इसके अतिरिक्त जब किसान अपनी उपज को विनियमित मण्डी के बजाए अन्य स्थानो पर बेचता है तो अनेक अवैध कटौतियाँ उसकी उपज से होती है जिसके कारण उन्हे अपनी उपज का कम ही मूल्य प्राप्त हो पाता है। सर्वेक्षण के अनुसार सन् १९५९-६० मे चावल के सन्दर्भ मे उपभोक्ता के रूपये मे उत्पादक का हिस्सा पजाब, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, पश्चिम बगाल, आन्ध्रप्रदेश, मद्रास, मैसूर, बिहार तथा आसाम मे क्रमश ७० ९ प्रतिशत, ६९ २० प्रतिशत, ७८ ०० प्रतिशत, ७२ ०० प्रतिशत, ८५ ५० प्रतिशत, ७८ ७० प्रतिशत, ८३ ३० प्रतिशत, ७४ ७० प्रतिशत तथा ७३ ४० प्रतिशत था। पूरे भारत का औसत ७६ ०० प्रतिशत था।[71] एक दूसरे सर्वेक्षण के अनुसार गेहूँ तथा चावल के सदर्भ मे उपभोक्ता मूल्य मे किसान का हिस्सा ६८ ५० प्रतिशत तथा ६६ ८० प्रतिशत था। चुनी गयी मण्डियो मे किये गये सर्वेक्षण के आधार पर विभिन्न फसलों मे उपभोक्ता मूल्य उत्पादक का हिस्सा गुड मे ८५.९६ प्रतिशत एवं सरसो मे ६४ ६३ प्रतिशत हैं।[72] इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय कृषक को अपनी उपज की कम ही कीमत प्राप्त हो पाती है।

किसानो को अपनी उपज का सही मूल्य प्राप्त हो सके इस सदर्भ मे सन् १९३० के आर्थिक मदी काल से ही मूल्य नीति तथा कृषि मूल्य स्थिरीकरण की दिशा में प्रयास जारी है। सन् १९३४ के बाद जूट, कपास, गन्ना, खाद्यान्न आदि के मूल्य स्थिरीकरण के कुछ प्रयत्न किये गये हैं। सन् १९३५ में गन्ना कानून पास किया गया जिसके अतर्गत राज्य सरकारो को किसानो द्वारा चीनी मिलो को बेचकर गन्ने के न्यूनतम मूल्य निर्धारित करने का अधिकार दिया गया। उत्तर प्रदेश गन्ना कानून सन् १९६३ मे पास किया गया जिसके अनुसार सहकारी समितियो द्वारा चीनी कारखानों को बेचा जाता है। मध्यस्थो द्वारा गन्ना बेचने पर प्रतिबध लगाये गये है। सन् १९६५ मे भारत सरकार ने प्रो० दाँतवाला की अध्यक्षता मे एक कृषि मूल्य आयोग नियुक्ति किया। जिसके निम्नाकित मुख्य कार्य रखे गये थे।[73]

---

[71] प्राइम स्प्रेड ऑफ राइस-स्टडीज़ इन कास्ट्स एण्ड मार्जिन्स, मिनिस्ट्री ऑफ फूड एण्ड एग्रीकल्चर, डाइरेक्टरेट ऑफ मार्केटिंग एण्ड इन्सपेक्शन, गवर्नमेट ऑफ इण्डिया, पृष्ठ सख्या १७ ।

[72] कुलकर्णी के० आर०, एग्रीकल्चरल मार्केटिंग इन इण्डिया, वा-१ दि कोआपरेटिव बुक डिपाट, बेक हाउस लेल, फोर्ट बम्बई। १९५९ पृष्ठ सख्या ४२६ ।

[73] भालेराव एम०एम०, भारतीय कृषि अर्थशास्त्र, १९७७, पृष्ठ सख्या ४६६ ।

- ❖ गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का, चना, गन्ना, तिलहन,कपास, जूट तथा अन्य दाले आदि कृषि वस्तुओं के मूल्य नीति के बारे मे सरकार को सलाह देना ताकि एक सतुलित व एकीकृत मूल्य के ढॉचे का अर्थव्यवस्था के आवश्यकतानुसार निर्माण हो सके। जिससे उत्पादक व उपभोक्ता दोनो के हितो की रक्षा हो सके।
- ❖ एक निर्धारित मूल्य नीति के अतर्गत समय-समय पर मूल्य परिवर्तनो की समीक्षा करना तथा आवश्यकतानुसार सुझाव देना।
- ❖ कृषि मूल्य नीति को प्रभावशाली करने के लिए समय-समय पर सुझाव देना।
- ❖ कृषि मूल्यों से सम्बन्धित ऑकड़े तथा अन्य जानकारी इकट्ठा करने का जो प्रबन्ध किया गया है। उसकी तथा कृषि मूल्य सबधी किए जाने वाले अध्ययनो की समय-समय पर समीक्षा करना तथा उनमे आवश्यकतानुसार सुधार के लिए सुझाव देना।
- ❖ देश के विभिन्न क्षेत्रो मे विभिन्न वस्तुओं के विपणन की पद्धतियाँ तथा विपणन लागत की जाँच करना तथा विपणन लागत कम करने के लिए उपाय बताना व विपणन के विभिन्न अवस्थाओ मे विपणन कार्यकर्ताओं के उचित हिस्से को निर्धारित करना।
- ❖ कृषि मूल्य व कृषि उत्पादन से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओ के बारे मे सरकार को आवश्यकतानुसार समय-समय पर सलाह देना।

इसके अतिरिक्त मार्च सन् १९६६ में **भारत सरकार ने श्री० बी० वैंकटैया की अध्यक्षता** मे खाद्यान्न नीति समिति नियुक्त की जिसके मुख्य उद्देश्य प्रचलित खाद्य क्षेत्र की व्यवस्था व खाद्यान्न वसूली व वितरण व्यवस्था की जांच करना तथा देश के विभिन्न राज्यो व वर्गो के बीच उचित मूल्यो पर खाद्यान्न वितरण के उचित प्रबध के लिए आवश्यक सुझाव देना था।[74] इसके अतिरिक्त बफर स्टाक बनाने एव राशनिंग व्यवस्था को चालू रखने के लिए सरकार द्वारा उन राज्यो मे जहाँ उत्पादन अधिक होता है खाद्यान्नो की खरीद की जाती है। इस खरीददरी को सरकारी खरीद कहते है। यह सरकारी खरीद १९७० मे

---

[74] भालेराव एम०एम०, भारतीय कृषि अर्थशास्त्र, १९७७, पृष्ठ संख्या ४६६ ।

६७ लाख टन, १९८० मे ११२ लाख टन व १९८३ मे १५७ लाख टन मे रही।[75] इसके अतिरिक्त उपभोक्ता को उचित मूल्य पर खाद्यान्नो को उपलब्ध कराने के लिए सरकार ने, खाद्यान्नो के वितरण की व्यवस्था कर रही है। इसको राशनिंग कहते हैं। इस समय पूरे देश मे तीन लाख सरकार द्वारा उचित मूल्य की निर्धारित दुकाने है जो खाद्यान्नो का विक्रय करती है व सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अतर्गत पूरे देश मे १९७० मे ८८ लाख टन, १९८० मे १०० लाख टन तथा १९८२ में १६२ लाख टन खाद्यान्नों का वितरण किया गया था।[76] इन दुकानो को उचित मूल्य की दुकाने कहते हैं। इन दूकानों से शहरी एव ग्रामीण क्षेत्र की जनता को उचित मूल्य पर खाद्यान्न मिलते रहते हैं। इससे मूल्यो मे स्थायित्व बना रहता हैं। इसके अतिरिक्त हमारे देश मे प्रतिवर्ष कृषि मूल्य आयोग द्वारा समर्थन कीमते घोषित की जाती है जिसका अर्थ है कि सरकार इन कीमतो से कम कीमते यदि बाजार मे प्रचलित हो तो स्वय क्रय करेगी। इससे कृषको को एक न्यूनतम कीमत उपलब्ध हो जाती है, परन्तु दुर्भाग्य से ये समर्थन कीमते, बाजार कीमतो पर तय नहीं होती है, जबकि बाजार भाव समर्थन कीमतो पर तय होते रहते है।[77] इस प्रकार भारत सरकार द्वारा कृषको को उनकी उपज का सही मूल्य दिलवाने एव उपभोक्ता को उचित मूल्य पर वस्तु उपलब्ध कराने हेतु अनेक प्रयास किये गए है।

परिवहन व्यवस्था :- परिवहन एक अर्थिक क्रिया है क्योंकि इससे स्थान-उपयोगिता का सृजन होता है। **प्रो० टाउसले, क्लार्क एवं क्लार्क** के अनुसार, "भौतिक पूर्ति सबधी कार्यो मे स्थान उपयोगिता का सृजन परिवहन के माध्यम से और समय उपयोगिता का सृजन सग्रह या भण्डार के माध्यम से किया जाता है।[78] आधुनिक विपणन में यह दोनो कार्य पूरक है। एक विपणन प्रबधक को इन दोनो कार्यों का अध्ययन करना पड़ता है। चूकि प्रत्येक उत्पादन उपभोग के लिए किया जाता है। अत· वस्तुओ के उत्पादन के स्थान से उपभोग के स्थान तक ले जाने की आवश्यकता पड़ती है। इससे वस्तुओं को ले जाने मे समय की बचत होती है।

---

[75] इकोनोमिक सर्वे १९८३-८४, पृष्ठ सख्या २४ ।

[76] इकोनोमिक सर्वे १९८३-८४, पृष्ठ सख्या २४ ।

[77] टाउसले क्लार्क एण्ड क्लार्क, प्रिन्सीपुल ऑफ मार्केटिंग पृष्ठ सख्या ४०७

[78] करतार सिंह गिल, मोड्स, कास्टस एण्ड प्राब्लम्स ऑफ ट्रासपोर्टिंग फार्म प्रोड्यूस इन पजाब, एग्रीकल्चरल मार्केटिंग १९९९ पृष्ठ सख्या ०९ ।

हमारे देश मे गाँव से मण्डी तक कृषि पदार्थों को ले जाने मे प्राय. बैल गाडियो, ट्रैक्टरों, जानवरो एव ट्रको की सहायता ली जाती है। फिरोजपुर (पंजाब) के बारह मण्डियों के एक सर्वेक्षण मे गांव से प्राथमिक बाजार मे विक्रय हेतु लाये गए कृषि पदार्थो मे विभिन्न साधनो का प्रतिशत भाग इस प्रकार है –

✓ बैलगाडी	७० प्रतिशत
✓ ट्रैक्टर	१८ २ प्रतिशत
✓ लददू गदहे	५ १ प्रतिशत
✓ ट्रक	३ ७ प्रतिशत
✓ ऊँट-गाड़ी	२ ५ प्रतिशत
✓ घोडा-गाड़ी	० ५ प्रतिशत [79]

एक अनुमान के अनुसार भारत मे बैलगाड़ीयों की संख्या १२ मिलियन है जिससे ७० से ८० मिलियन जानवर लगे हुए है। बैलगाड़ी की क्षमता को देखने से ज्ञात होता है कि पश्चिम बगाल मे ० ४ टन तथा पजाब ० ९ टन कृषि पदार्थ प्रति बैलगाड़ी रखा जाता है। इन गाडियो की गति उत्तर प्रदेश तथा तमिलनाडु मे क्रमश २ से २ ५ तथा ५ से ६ किलोमीटर प्रति घण्टा है।[80] ऐसी स्थिति मे समय का अपव्यय स्वाभाविक ही हैं। अब हमारे देश में परिवहन के रूप मे ट्रैक्टर ट्रालियो का महत्व तेजी से बढ़ रहा हैं। भारत सरकार के एक अनुमान के अनुसार सन् १९७० तक हमारे देश मे ९० हजार ट्रैक्टर, ट्रालियाँ थी।[81]

सड़क परिवहन, सड़क एव सचार सुविधाओं की उपलब्धता से देश एव प्रदेश की आर्थिक एव सामजिक समृद्धि का बोध होता है। सड़कों के माध्यम से ही विज्ञान, तकनीकी की नवीनतम उपलब्धियाँ सुदूर अचलो मे प्रवेश पाती है तथा कम खर्च एवं समय मे विभिन्न जिवनोपयोगी वस्तुएँ, कृषि जन्य उपज, कच्ची एवं उद्योग जनित तैयार सामग्री सुगमतापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान तथा बाजारों में पहुचती है और

---

[79] मूरे जान आर० सरदार एस० जोल एण्ड अली एम० खुसरो - इण्डियन, फूडग्रेशन मार्केटिंग न्यू डेल्ही १९७३ पृष्ठ संख्या १०८

[80] मूरे जान आर० सरदार एस० जोल एण्ड अली एम० खुसरो - इण्डियन, फूडग्रेशन मार्केटिंग न्यू डेल्ही १९७३ पृष्ठ सख्या ११० ।

[81] सौजन्य से सार्वजनिक निर्माण विभाग, उ०प्र० लखनऊ (मुख्यालय) ।

आम जनता को दैनिक उपभोग की आवश्यक वस्तुएँ आसानी से सुलभ हो जाती है। इसके अतिरिक्त रोजगार के उपयुक्त अवसर उपलब्ध कराने मे भी सड़को की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

उत्तर प्रदेश की अधिकाश जनसंख्या ग्रामीण अचलों मे निवास करती है, इसलिए प्रदेश के सर्वागीण विकास हेतु ग्रामीण मार्गो का विस्तार किया जाना आवश्यक है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण मार्गो के निर्माण कार्यक्रम को प्राथमिकता दी जा रही है। इसकी पुष्टि इस तथ्य से हो जाएगी कि प्रदेश मे छठी योजना काल के लिए मार्ग एव सेतु कार्य हेतु निर्धारित ४१५ करोड रूपये की योजना परिव्यय मे ३१५ करोड़ रूपये (७५ ९) प्रतिशत की धनराशि न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम हेतु आवटित की गयी है।[82]

इस प्रकार हमारे देश एव प्रदेश में यातायात के साधनो के विस्तार हेतु सरकार सतत प्रयास कर रही है एव इसमें सरकार को पर्याप्त सहायता भी मिली है।

संग्रह व्यवस्था :- सग्रहण की आवश्यकता कृषि वस्तुओ के लिए अधिक होती है क्योकि जिस समय उनकी उत्पादन होता है, उस समय अनकी माँग कम होती है। दूसरी ओर किसान को धन की तीव्र आवश्यकता होती है क्योकि उत्पादन की आशा मे वह अपने तथा अपने परिवार की अनेकों आवश्यकताएँ स्थगित कर देते हैं। फलस्वरूप जैसे ही कृषि वस्तुएॅ तैयार होती है, उन्हें विक्रय हेतु सभी किसान बाजार मे लाते है। चूँकि क्रेताओं की मॉग कम होती है, अत उनके भाव गिर जाते हैं। यही नहीं कभी- कभी तो कृषको को लागत से कम मूल्य पर भी अपने उत्पादन को बेचना पड़ता है। यही कारण है कि सरकार समय समय पर महत्वपूर्ण कृषि वस्तुओ के स्वय मूल्य निर्धारित और घोषित करती रहती है।

अच्छे कृषि विपणन के लिए अच्छी सग्रह व्यवस्था का होना आवश्यक "संग्रह की आवश्यकता मौलिक रूप से माल के उत्पादन समयों पर है। उपभोग समयों मे अन्तर को ठीक बिठाने के कारण होती है"। सग्रह समय उपयोगिता प्रदान करता है। तथा वस्तुओ के एक समय या ऋतु में उत्पन्न होने और दूसरे समय मे

---

[82] क्लार्क एण्ड क्लार्क : प्रिन्सिपुल ऑफ मार्केटिंग (१९४७) पृष्ठ सख्या ४३२-३३ ।

उपयोग किये जाने के मध्य मे जो समय का असन्तुलन उत्पन्न होता है उसको ठीक करता है।[83]

दुर्भाग्यवश भारत जैसे कृषि प्रधान देश के मण्डियो एव गॉवो मे उपज को सुरक्षित रखने के लिए उचित ढग के गोदामो की कमी है। भारतीय गॉव में उपज प्राय मिट्टी के बने बर्तन, कोठिला, कोठो, बखारो या खत्रियो मे रखी जाती है। सुरक्षा की दृष्टि से यह सग्रह व्यवस्था अत्यन्त गलत होती है। इसमे अनाजो की भारी क्षति होती है। गोविल के मतानुसार, २० लाख टन अनाज इन त्रुटिपूर्ण भण्डारों के कारण नष्ट हो जाता है।[84]

उपर्युक्त तथ्यो से स्पष्ट है कि हमारे गॉवों में सग्रह व्यवस्था अत्यन्त पिछडी अवस्था मे है जिससे अनाजो मे भारी क्षति होती है। इसे रोकने हेतु अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति के सुझा वो पर सरकार ने एक अगस्त 1956 से कृषि उपज (विकास व गोदाम) निगम अधिनियम पास किया। इसके अन्तर्गत ही दिसम्बर 1956 में राष्ट्रीय सहकारी विकास व गोदाम परिषद् की स्थापना की गई। इसका मुख्य कार्य सहकारी आन्दोलन को प्रोत्साहित करना व गोदामों का निर्माण व प्रबन्ध करना है। इस प्रकार सन् १९५७ मे केन्द्रीय गोदाम निगम की स्थापना हुई। वर्ष १९७५ मे बिहार राज्य गोदाम निगम स्थापित किया गया। १९६० ई० तक इस प्रकार के गोदाम निगम सभी प्रान्तो में स्थापित किये गये। तीसरी योजना के अन्तिम वर्ष तक केन्द्रीय गोदाम निगम के अन्तर्गत सौ गोदाम बन चुके थे जिसकी क्षमता लगभग ५ ९ लाख टन की थी तथा १४ राज्य गोदाम निगमो के अन्तर्गत ४४४ गोदाम व ९३ उप गोदाम बन चुके थे जिसकी क्षमता ५ ६ लाख टन थी। इसके अतिरिक्त सन् १९६७ तक ग्रामीण समितियों ने लगभग १४८०० ग्रामीण गोदाम बनाये थे तथा सहकारी विपणन समितियों ने ३५०० मण्डी गोदाम बनाए थे। चौथी योजना के अन्त तक ५० लाख टन क्षमता का लक्ष्य था जिसके लिए २० हजार अतिरिक्त ग्रामीण गोदाम तथा तीन हजार मण्डी गोदाम बनवाने का लक्ष्य था।[85] राष्ट्रीय सहकारी विकास व गोदाम परिषद ने दो कोष स्थापित किए। पहला राष्ट्रीय सहकारी विकास कोष दूसरा राष्ट्रीय गोदाम विकास कोष। पहले कोष से राज्य सरकारों को ऋण

---

[83] गोविल के० एल०, मार्केटिंग इन इण्डिया, रिवाइज्ड बाई ओम प्रकाश गौतम ब्रदर्स एण्ड कम्पनी लि०, कानपुर ।

[84] इण्डियन कोआपरेटिव रिव्यू, जुलाई १९६८, पृष्ठ सख्या ४८८ ।

[85] २४ वीं वार्षिक रिपोर्ट एव लेखा विवरण, उ० प्र० राज्य भण्डारागार निगम १९८१-८२ ।

तथा वितीय सहायता देने का प्रबन्ध किया गया था ताकि राज्य सरकार सहकारी समितियों के हिस्से-पूँजी मे अँशदान दे सके। दूसरे कोष का उपयोग निम्न प्रकार से करने का प्रबन्ध था।

- ❖ केन्द्रीय गोदाम निगम के हिस्सा पूँजी मे अशदान।
- ❖ राज्य सरकारो को ऋण प्रदपन करना ताकि वे राज्य गोदाम निगमो के हिस्सा पूँजी मे अशदान करे।
- ❖ गोदाम निगम या राज्य सरकारो को कृषि उपज के सग्रह सुविधा व गोदाम निर्माण के कार्य के विकास के लिए ऋण व वितीय सहायता।

सन् १९६३ मे इस परिषद् के स्थान पर राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम की स्थापना हुई तथा राष्ट्रीय गोदाम विकास कोष, केन्द्रीय गोदाम निगम के प्रबंन्ध मे हस्तान्तरित किया गया[86] मुख्य तथा राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम, सहकारी उत्पादन, प्रक्रिया, विपणन, सग्रह आदि के विकास के लिए स्थापित किया गया। केन्द्रीय गोदाम निगम की प्रदत पूँजी लगभग १० करोड़ रूपये की थी तथा इसका मुख्य कार्य बन्दरगाह रेलवे केन्द्रो तथा अन्य बडे बाजारो में गोदामो का निर्माण व प्रबन्ध करना था[87] निगम का सदैव यह प्रयास रहा है कि अधिक से अधिक वैज्ञानिक भण्डारण क्षमता का निर्माण करके कृषि उपज एवं अन्य जिसो की भण्डारण से होने वाली क्षति को कम किया जा सके। इस कार्य हेतु निगम ने अपने स्वयं के गोदामों गतिशील ढग से बनाकर देश एव प्रदेश को वैज्ञानिक भण्डारण के क्षेत्र मे आत्मनिर्भर बनाने हेतु सक्रिय योगदान दे रहा है।

उत्तर प्रदेश राज्य भण्डारागार निगम की स्थापना २० मार्च १९५८ को हुई थी। वर्ष १९८१-८२ मे इस निगम के भण्डार गृहों की सख्या १४४ थी। उस समय निगम की कुल भण्डारण क्षमता १२ ७१ लाख मीटरी टन थी। इसी वर्ष के अत तक निगम की निर्मित क्षमता ८ ३९ लाख मीटरी टन से बढ़कर ६ ०३ लाख मीटरी टन हो गयी थी जो देश में कार्यरत् अन्य राज्य भण्डारागार निगमों द्वारा निर्मित की गयां कुल क्षमता १/३ था । [88] इस निगम द्वारा जिन्सवार सग्रहित माल का विवरण एवं विभिन्न वर्ग के

---

86 २४ वीं वार्षिक रिपोर्ट एव लेखा विवरण, उ०प्र० राज्य भण्डारागार निगम १९८१-८२ ।
87 २४ वीं वार्षिक रिपोर्ट एवं लेखा विवरण, उ०प्र० राज्य भण्डारागार निगम १९८१-८२ ।
88 उत्तर प्रदेश मे सहकारिता १९८४ पृष्ठ सख्या ७२ ।

जमाकर्ताओ द्वारा सग्रहित माल के विवरण इसमे किया गया है।

भण्डार गृहो के कार्यों को सुचारू रूप से चलाने तथा उन पर प्रभावी नियंत्रण हेतु निगम के ५ क्षेत्रीय कार्यालय भी है। यह निगम लाभकारिता मे ही नहीं बल्कि स्वनिर्मित ..., वैज्ञानिक भण्डारण क्षमता के सृजन मे भी देश के समस्त राज्य भण्डारागार निगमो मे अग्रणी है। इस निगम ने प्रदेश मे वैज्ञानिक भण्डारण क्षमता की आवश्यकता को देखते हुए शासन के निर्देशो के अतर्गत बड़े पैमाने पर वैज्ञानिक भण्डार गृहो का निर्माण कराया है।[89]

प्रमापीकरण तथा श्रेणीकरण :- कृषि उपज की किस्म का उसकी कीमत पर अत्यधिक प्रभाव पडता है। उपज की किस्म जितनी ही अधिक अच्छी होती है, उतनी ही ऊँची कीमत किसान को प्राप्त होती है। कृषि पदार्थो की किस्मो की विविधता विपणन की एक जटिल समस्या है। अच्छे किस्म के कृषि पदार्थ जहाँ कृषको को आय प्रदान कराने की दृष्टि से उचित कीमत प्राप्त कराने मे सहायक होते है, वहीं पर उन वस्तुओ की माँग को स्थायित्व प्रदान कर भावी माँग को निश्चितता प्रदान करता है। विशेष रूप से कृषिगत कच्चे माल के सम्बन्ध में तो यह बात अत्यधिक ध्यान देने योग्य है। एक बात ध्यान देने की है कि कृषि और खनिज पदार्थो मे प्रमाप निर्धारित नहीं किये जाते हैं, बल्कि उत्पति का श्रेणीकरण किया जाता है। इसका कारण यह है कि माल बनाते समय मानवीय इच्छा सर्वोपरि होती है। अर्थात् उत्पादन को इच्छा के अनुसार समायोजित किया जा सकता है, लेकिन कृषि व खनिज पदार्थों की उत्पति मे प्रकृति की व्यवस्था सर्वोपरि है। अर्थात् इनमे उत्पादन प्रमापो के अनुसार नहीं किया जा सकता है। अत इन परिस्थितियो मे श्रेणीकरण के अनुसार ही उत्पति को छाँटा जाता है।

भारत मे कृषि उपज (श्रेणीकरण व चिन्हीकरण) कानून सन् १९३५ मे पास किया गया। इस अधिनियम के बन जाने के कारण सरकार को प्रमाप व वर्ग स्थापित करने का अधिकार मिल गया।[90] इस अधिनियम के अतर्गत भारत सरकार के कृषि विपणन सलाहकार को नियमानुसार विभिन्न व्यक्तियो को अधिकार प्रमाण पत्र निर्गमित करने का अधिकार प्रदान किया गया है। मार्च १९८४ तक पूरे देश में विनियमित बाजारो,

---

[89] भालेराव एम०एम०, भारतीय कृषि अर्थशास्त्र १९७७, पृष्ठ संख्या ४०० ।

[90] गुप्ता, ए० पी० · मार्केटिंग ऑफ एग्रीकल्चरल प्रोड्यूस इन इण्डियन १९७५, पृष्ठ संख्या ९६ ।

सहकारी समितियो एव भण्डारागार निगमो मे कुल ८०८ वर्गीकरण इकाइयाँ कार्यरत थी। कृषक स्तर पर वर्ष १९८३-८४ से पूरे देश में ५६२ ६६ करोड़ मूल्य के कृषि पदार्थो को वर्गीकृत किया था।[91] भारत सरकार के कृषि उत्पादन (वर्गीकरण एव चिन्हाकन) अधिनियम १९३७ के प्राविधानों के अधिन एव पशुजन्य उत्पादो का विश्लेषण, वर्गीकरण, पैकिग एव चिन्हांकन का कार्य उत्तर प्रदेश मे कार्यरत् ५ एगमार्क के वर्गीकरण प्रयोगशालाओ के द्वारा मुख्य रूप से किया जा रहा है। यह प्रयोगशालाएँ लखनऊ, हल्द्वानी (नैनीताल), मेरठ, आगरा एव वाराणसी में स्थित है। इस योजना के अंतर्गत मुख्य रूप से खाद्य तेलो, मसालो, घी, मक्खन, शहद आदि का वर्गीकरण किया जाता है।[92]

इसके अतिरिक्त कृषि उपज के वर्गीकरण का लाभ उत्तर प्रदेश के उत्पादकों को पहुचाने की दृष्टि से प्रदेश के नवनिर्मित मण्डी स्थलो मे कृषि विपणन विभाग द्वारा स्थापित ५० प्राथमिक वर्गीकरण इकाइयाँ कार्यरत है। इनके द्वारा उत्पादक स्तर पर १९ कृषि उत्पादो के वाणिज्यात्मक वर्गीकरण का कार्य भारत सरकार के विपणन एव निरीक्षण निर्देशालय द्वारा दिये गये निर्देशों के अनुरूप गुण निर्दिष्टियो के आधार पर दृष्टि परीक्षण से किया जाता है। कृषि वर्ष १९८३-८४ मे ८ ४४ लाख मेट्रिक टन उत्पादो का वर्गीकरण किया गया है।[93]

सरकार द्वारा किये गये उपर्युक्त प्रयत्नों से कृषि उपजो के वर्गीकरण एवं श्रेणीकरण से पर्याप्त सुधार हुए है। परन्तु अभी यह प्रगति संतोषजनक नहीं है, क्योंकि यह सुविधा अभी सीमित क्षेत्रो तक ही उपलब्ध है। बहुत अधिक किसान आज भी वर्गीकरण एव श्रेणीकरण की सुविधा के अभाव में ककड, धूल, कटे, सड़े एव अन्य बेकार अनाजों के मिश्रण से युक्त अनाजो को बिना श्रेणीकरण व प्रमापीकरण कराये ही बिक्री कर देते है जिससे उन्हे अपनी उपज का सही मूल्य नहीं मिल पाता है।

विपणन वित :- वैसे तो समस्त व्यावसायिक कार्यों मे वित प्रबन्धन एक सामान्य कार्य है किन्तु विपणन मे इसका विशेष महत्व होता हैं। इसके अभाव मे विपणन क्रियाओ को सूचारू रूप से नहीं सम्पन्न किया जा

---

91 " प्रगति के बारह वर्ष " १९८४ राज्य कृषि उत्पादन मण्डी परिषद उ० प्र०, लखनऊ, पृष्ठ सख्या १४ ।

92 " प्रगति के बारह वर्ष " १९८४ राज्य कृषि उत्पादन मण्डी परिषद उ० प्र०, लखनऊ, पृष्ठ सख्या १४ ।

93 सी० वी० मामोरिया एग्रीकल्चरल प्राब्लम् ऑफ इण्डिया, १९६६ पृष्ठ सख्या ६७२ ।

सकता है। विपणन वित्त से अर्थ उन साधनो से होता है। जिनके माध्यम से उत्पादक व उपभोक्ता दोनो को वितीय सुविधाएँ मिलती है ताकि उत्पादक अपना उत्पादन कार्य सुविधापूर्वक चलाता रहे तथा उपभोक्ता भी उन वस्तुओ के उपभोग से वित्त के अभाव मे वचित न रहे और उसको भी वितीय सुविधाएँ प्राप्त होती रहे। इस प्रकार विपणन वित के दो महत्वपूर्ण कार्य होते है।

- व्यापार का अर्थ प्रबधन
- उपभोक्ताओ का अर्थ प्रबंधन

कृषि उपजो को उत्पादन के बाद उपभोक्ता तक पहुँचने मे अनेक विपणन कार्य सम्पन्न होते है, जिसके लिए साख की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त हमारे देश मे किसानो के पास विक्रय योग्य अतिरेक की कमी है एव उसकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। ऐसी परिस्थिति में किसानों को ऋण का सहारा लेना पड़ता है। ये किसान प्राय· अपने गॉव के बड़े किसानों, साहुकारो से ऋण लेते हैं। ये ऋणदाता इस ऋण पर २५ से ५० प्रतिशत तक ब्याज लेते है[94] किन्ही-किन्ही स्थानो पर साहुकार ब्याज के बदले किसान की फसल का एक हिस्सा मँगवा लेते हैं।

भारतीय कृषि के साख स्रोतों को मोटे तौर पर दो कोटियों मे विभाजित किया गया है:—

- सस्थागत स्रोत
- निजी स्रोत

सस्थागत स्रोत मे सरकार, बैंक तथा सहकारी समितियाँ सम्मिलित होती है। और स्रोतो मे महाजन, व्यापारी, दलाल, रिश्तेदार, भू-स्वामी आदि सम्मिलित होते है ।

भारतीय कृषि साख की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु 26 दिसम्बर 1975 को एक अध्यादेश जारी किया गया, जिसके अतर्गत ५० क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको की स्थापना की जानी थी, जिसके अनुसार 2 अक्टूबर 1975 को उत्तरप्रदेश में २, राजस्थान में १, हरियाण मे १, पश्चिम बगाल में १, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की स्थापना की जा चुकी है। जिनकी ६४१६ शाखाएँ २४७ जिलो में कार्यरत है। 19 जुलाई

---

[94] रिपोर्ट आन दि ट्रेण्ड एण्ड प्रोग्रेस ऑफ बैंकिग इन इण्डिया, १९८२-८३, पृष्ठ सख्या ६४ ।

1996 को १४ व्यापारिक बैंको का एव 5 अप्रैल 1980 को ६ व्यापारिक बैंको का राष्ट्रीकरण हो जाने के पश्चात् व्यावहारिक बैंको द्वारा कृषि वित मे महत्वपूर्ण योगदान दिया जाने लगा है।[95] इसके अतिरिक्त अन्य व्यापारिक बैंके भी इस सदर्भ मे नरम नीति का अनुसरण कर कृषि वित सुलभ करा रही है। यह बैंके अल्पकालीन व मध्यकालीन, दोनो प्रकार के ऋण प्रदान करती है। इन बैंको ने १९६७-६८ मे कृषि क्षेत्र मे केवल ६७ करोड रूपये के ऋण प्रदान किये थे, जबकि १९८२-८३ के अत मे इन बैंकों का कृषि के क्षेत्र मे ५२६९ करोड रूपया बकाया था। इससे यह स्पष्ट होता है कि कृषि के क्षेत्र मे इन बैंको का योगदान पर्याप्त बढा है।[96]

इसके अतिरिक्त सहकारी क्षेत्र मे भी कृषि साख उपलब्ध कराने की दिशा मे उत्तर प्रदेश मे महत्वपूर्ण कार्य किये जा रहे हैं। सहकारी ऋण एव अधिकोषण योजना के अतर्गत प्रदेश के कृषक परिवारो को सहकारिता की परिधि मे लाना है। तथा कृषि कार्यो की पूर्ति हेतु अल्पकालीन मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण की सम्पूर्ण आवश्यकताओ की यथा समय उचित ब्याज दरो पर आपूर्ति कर उनकी समाजार्थिक समृद्धि सुनिश्चित करते हुए देश के कृषि उत्पादन एव समग्र विकास मे वृद्धि करना है।

प्रारभिक कृषि ऋण समितियों को अल्प एव मध्यकालीन ऋण के रूप में आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए जिला स्तर पर जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक स्थापित है। इन ५५ बैंको की १०९० शाखाएँ प्रदेश के विकास खण्ड स्तर पर कार्यरत है। दीर्घकालीन ऋण व्यवस्था प्रदेश मे उत्तर प्रदेश राज्य सरकारी भूमि विकास बैंक द्वारा की जाती है। जिसकी २५० शाखाएँ प्रदेश की तहसील स्तर पर कार्यरत है।[97]

उत्तर प्रदेश राज्य सरकारी भूमि विकास बैंक अपनी २५० शाखाओं के माध्यम से दीर्घकालीन ऋण सिंचाई, कूप, बोरिंग, रहट, विद्युत, डीजल नलकूप, पम्पसेट, नलकूप बोरिंग, आर्टीजन बोरिंग तथा पक्की नालियाँ, बन्धो के निर्माण, पावर टिलर, ट्रैक्टर तथा भूमि संरक्षण योजनाओ हेतु वितरित करता है। ''वितीय वर्ष 1983-84'' मे ७० करोड़ रूपये के निर्धारित लक्ष्य के विरूद्ध दिनाक १-४-८३ से

---

[95] इकोनोमिक सर्वे १९८३-८४ पृष्ठ संख्या १२८ ।

[96] उ० प्र० मे सहकारिता १९८४, पृष्ठ सख्या १ ।

[97] उ० प्र० मे सहकारिता १९८४, पृष्ठ सख्या ६ ।

दिनाक ३१-१२-८३ तक अनुमानतया ३५ से ४२ करोड रूपया दीर्घकालीन ऋण को वितरित किया गया। जबकि १९८२-८३ मे अनुमानतया ३२-६५ करोड़ वितरित किया गया था। वर्ष १९८४-८५ मे अस्थायी रूप से कम से कम ७५ करोड़ रूपया दीर्घकालीन ऋण वितरित करना प्रस्तावित है।[98] इस प्रकार कृषि सम्बधी सुविधा प्रदान करने हेतु सरकार द्वारा अनेको प्रयास जारी है।

संचार सुविधा :- भारतीय किसान प्राय अशिक्षित तथा विपणन कला से अनभिज्ञ होता है इसलिए सचार सम्बन्धी जो भी सुविधाएँ उपलब्ध रहती है, उनका समुचित उपयोग नहीं कर पाता है। इन किसानो को कृषि पदार्थ के विपणन मे विपणन सम्बधी सूचनाऍ प्राय निम्न माध्यमों से प्राप्त होती है।

- ✓ अन्य किसान जो शहर आते हैं;
- ✓ घुमते फिरते व्यापारी या उसके प्रतिनिधि;
- ✓ गॉव के महाजन व साहूकार,
- ✓ रेडियों-देहाती प्रोग्राम,
- ✓ सरकारी दफ्तर-क्षेत्रीय विकास अधिकारी,
- ✓ ग्राम सेवक,
- ✓ गॉव के पुस्तकालय व अखबार;
- ✓ मण्डी समिति व आढ़तियों के पत्र व्यवहार;
- ✓ मण्डी मे व्यक्तिगत साक्षात्कार

प्रथम तीन साधनो से प्राप्त सूचनाएँ सही नहीं होती है क्योंकि सही सूचना देने से सूचना देने वालों को हानि होती है। चौथा साधन रेडियों का है। दिल्ली तथा अन्य प्रदेशों की राजधानियों से प्रादेशिक भाषाओ मे रेडियो से देहाती कार्यक्रम के अंतर्गत कुछ सूचनाएँ प्रसारित की जाती है। जिन गाँवों मे सरकारी दफ्तर होते हैं, वहाँ उन दफ्तरो के नोटिस बोर्डो पर पास के बाजार के भाव लिख दिये जाते है। गाँवो मे पुस्तकालय तो होते ही नहीं है। लेकिन जो पुस्तकालय सामुदायिक विकास योजना के अंतर्गत खोले गये हैं

---

[98] प्रगति के बारह वर्ष १९८५, राज्य कृषि उत्पादन मण्डी परिषद उ०प्र०, लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ सख्या १३।

वहाँ समाचार पत्र व पत्रिकाएँ रखी रहती है और किसान स्वय जाकर पढ़ सकता है या किसी पढ़े लिखे व्यक्ति के माध्यम से सूचना प्राप्त कर सकता है।

"उत्तर प्रदेश कृषि विपणन विभाग द्वारा प्रदेश की २५३ मुख्य मण्डियो व उसकी सहायक मण्डियो से दैनिक आधार पर कृषि पदार्थों की प्राथमिक तथा द्वितीयक आवक, औसत थोक भाव, आयात निर्यात, मण्डी परिव्यय, खाद्यान्नो का मडी में स्टाक, विपणन प्रजातियाँ, फसलो की दशा, भविष्य की सम्भावनाओ आदि की कृषि पदार्थों से सम्बन्धित सूचनाओ एव आकडो को एकत्रित एव सकलित कर विभिन्न सगठनों तथा राज्य व भारत सरकार के विभिन्न विभागो के उपयोग हेतु डाक-तार, दूरभाष से आवश्यकता के अनुसार प्रेषित किया जाता है। उत्तर प्रदेश की प्रमुख मडियो के मुख्य कृषि उत्पादकों के थोक भाव एवं आमद की सूचना को प्रतिदिन आकाशवाणी के लखनऊ, रामपुर तथा वाराणसी केन्द्रो द्वारा देहाती रेडियो-गोष्ठी कार्यक्रम के अतर्गत प्रसारित किया जाता है।"[99]

विनियमित बाजार :- बाजारो एव मण्डियो मे प्रचलित कुप्रथाओ एव भारतीय किसान की अशिक्षा और उसके भोलेपन को देखते हुए अच्छे कृषि विपणन के लिए विनियमित बाजारो का होना आवश्यक है। विनियमित बाजारो के अभाव मे किसानो की रक्षा कर पाना अत्यन्त कठिन है। भारत में सन् १९३८ मे केन्द्रीय कृषि विपणन विभाग (अब विपणन एव निरीक्षण निदेशालय) ने आदर्श विधेयक कृषि बाजारों को विनियमित करने हेतु तैयार किया, जिससे विभिन्न प्रांतीय सरकारों को इस संबन्ध मे सही दिशा प्राप्त हो सके। किन्तु दुर्भाग्यवश द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ हो जाने के कारण बाजार विनियमन की क्रियाओं में बाधा पड़ गयी। स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् ही बाजार विनियमन की सही प्रगति हुई है। कृषि वस्तुओ के विनियमन कार्यक्रम की विभिन्न पचवर्षीय योजनाओं मे स्थान दिया गया।[100]

******

---

99 गुप्ता ए०पी० · मार्केटिंग ऑफ एग्रीकल्चरल प्रोड्यूस इन इण्डिया " १९७५ पृष्ठ संख्या २२६-२७ ।

100 " फिफ्टी इयर्स ऑफ सर्विस टू दि नेशन " १९३५-९५ डाइरेक्टर ऑफ मार्केटिंग एण्ड इन्सपेक्शन, गवर्नमेंट आफ इण्डिया फरीदाबाद वर्ष १९९५ पृष्ठ संख्या १३ ।

तृतीय अध्याय

भारत में फसलोत्पादन एवं उत्तर प्रदेश में विनियमित बाजार

विगत् चार दशक के बाद (वर्ष १९५०-५१ की तुलना में) खाद्यान्न उत्पादन मे चार गुणा वृद्धि हुई है और इस क्षेत्र मे अभी भी अपार सभावनायें हैं। अभी हाल ही मे सम्पन्न भारत कृषि अनुसधान परिषद् और मैक्सिको स्थित सिमिट नामक सस्था की सम्मिलित गोष्ठी मे यह तथ्य स्पष्ट रूप से उभरा कि भारतीय वैज्ञानिको मे गेहूँ कि ऐसी किस्में विकसित करने की क्षमता है जिससे गेहूँ का कुल उत्पादन कई गुना बढाया जा सकता है।[1] यह स्थिति अन्य फसलों के लिए भी संभव है। कृषि आधारित अर्थव्यवस्था मे पशुपालन का महत्वपूर्ण योगदान है। भूमि कि उर्वरा शक्ति को बढ़ाने में पशुओ के मल-मूत्र से प्राप्त जैविक खाद्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। दूसरी तरफ प्राय सभी प्रकार के पशुओ को अपने भरण-पोषण के लिए कृषि उत्पादो पर निर्भर करना पड़ता है। चाहे वह हरा चारा हो, सूखा चारा हो या खली दाना, चूनी आदि हो। स्पष्टत कृषि और पशुपालन का सम्बन्ध इतना घनिष्ठ है कि उन्हे एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। दुधारू जानवरो विशेषकर गाय और भैंस से प्राप्त होने वाले दूध की मात्रा एव गुणवत्ता उत्तम प्रकार के चारे पर निर्भर करती है। भारत मे ऑपरेशन फ्लड के तहत जो श्वेत क्रांति आई है उसमें अन्य बातो के साथ-साथ कृषि उत्पादो की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

आज मानवीय जीवन का हर पहलू व्यावसायिक सोच से प्रेरित होता जा रहा है। किसी भी तरह के कार्य को करने से पूर्व उसमें से होने वाले लाभ का मूल्याकन पहले किया जाता है। कृषि कार्य से जुडे किसान इस बात की शिकायत बहुत करते हैं कि उन्हे इतनी आमदनी नहीं मिलती कि वे अपने जीवन स्तर मे गुणात्मक सुधार कर सके। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि किसान कृषि के साथ पशुपालन का सामंजस्य स्थापित

---

[1] प्रसाद कुमार ललन, भारत मे फसलोंत्पादन, प्रतियोगिता किरण दिसम्बर १९९६, पेज न० २५ ।

कर अच्छी आय प्राप्त कर सकते हैं जैसा कि विकसित देशो मे होता है। लेकिन इस प्रकार का लाभ उठाने के लिए पशुओ से प्राप्त होने वाले दूध के अलावा अन्य प्रकार के पदार्थों का भी लाभ लेना चाहिए। मसलन मछली पालन से मछली, मुर्गीपालन से अण्डे और मॉस, भेड और बकरी पालन से दूध, मॉस और ऊन, सुअर पालन से मॉस आदि का लाभ उठाना आवश्यक है। तात्पर्य यह है कि परिस्थिति के अनुसार जो भी पशु उपयुक्त हो उसके ही रख-रखाव के व्यवस्था कर लाभ उठाया जाना चाहिए।

वर्तमान स्थिति मे ऐसा नहीं है कि किसान जानवर नहीं रखते हैं। आज भी उनके पास जानवर तो हैं लेकिन दुधारू किस्म के आभाव के कारण उतनी ही मेहनत और चारा के खर्च के बावजूद पर्याप्त दूध प्राप्त करने मे असफल रहते हैं। फलत· होने वाले आर्थिक लाभ से वचित रह जाते हैं। इसके होने वाले आर्थिक लाभ से वचित रह जाते हैं। इसके लिए जरूरी है फसल और पशुपालन को व्यावसायिक रूप देने की। यदि किसान मिश्रित खेती व्यवसाय के रूप मे अपना ले तो फसलो की उपज अपने आप बढ़ेगी और जानवरो के उत्पादन मे भी गुणात्मक सुधार होगा। दुनिया मे दुग्ध उत्पादन मे पहले स्थान पर होने के बावजूद विकसित देशो की तुलना में देश मे प्रति व्यक्ति दुग्ध की खपत मात्र ३७ किलो ग्राम प्रतिवर्ष है। यदि दुग्ध उत्पादन मे लगातार वृद्धि होती गई तो वह दिन दूर नहीं जब भारत वर्ष में भी प्रति व्यक्ति दूध की खपत १५०-२०० किलोग्राम प्रति वर्ष होगी।[2] जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव लोगो के स्वास्थ्य पर अवश्य पड़ेगा। लेकिन इसके लिए जरूरी होगा कृषि मे चारा उत्पादन पर विशेष ध्यान देना। साथ ही दूध देने वाले जानवरो के नस्ल सुधार पर और उनके स्वास्थ्य पर भी विशेष ध्यान देना।

पशुपालन मे चारे की भूमिका महत्वपूर्ण है। सामान्यत· किसान कृषि फसलो से प्राप्त होने वाले भूॅसे को ही चारे के रूप मे प्रयोग करते हैं जिससे पेट तो भरा जा सकता है लेकिन दुग्ध उत्पादन को लगातार स्तरीय नहीं रखा जा सकता। हरे चारे का योगदान दुग्ध बढाने की दिशा मे बहुत ही आवश्यक है। इसके लिए किसानो को हरे चारे की ऐसी फसल चक्र अपनानी होगी ताकि पशुओ को वर्ष पर्यन्त पर्याप्त हरा चारा मिलता रहे। इस क्रम मे उत्तर भारत मे बरसीम की खेती प्रचलित हुई है लेकिन इसे सालो भर प्राप्त नहीं किया जा

---

[2] प्रसाद कुमार ललन, भारत मे फसलोत्पादन, प्रतियोगिता किरण दिसम्बर १९९६, पेज न० २५ ।

सकता। गर्मी के मौसम मे बरसीम से हरा चारा मिलना बद हो जाता है। इसके लिए अप्रैल - मई के महीने मे मक्का के साथ लोबिया और जुलाई मे चरी की खेती और उसके बाद बरसीम की खेती की जा सकती है । यहाँ उल्लेखनीय है कि हरे चारे के लिए उत्तम बीज का ही प्रयोग किया जाना चाहिए। इस प्रकार के बीज के लिए शासकीय अधिकारियो से सहयोग लेने का प्रयास करना चाहिए या फिर कृषि कॉलेजो से सम्पर्क किया जा सकता है। हरे चारे के उत्पादन को व्यावसायिक रूप भी दिया जा सकता है इससे दोहरे लाभ लिये जा सकते हैं। एक तो अच्छी आमदनी मिलेगी और दूसरे उन किसानो को जो समय से हरा चारा आवश्यक मात्रा मे नहीं लगा सके उन्हे इसके लिए परेशान नहीं होना पड़ेगा।

इसी से जुड़ा दूसरा पक्ष अच्छी नस्ल के जानवरो को पालना है। ऑपरेशन फ्लड की सफलता के बाद लगभग सभी विकास खण्डो मे कृत्रिम गर्भाधान की व्यवस्था उपलब्ध है जहाँ से दूसरे नस्ल के पशुओ से कृत्रिम गर्भधान कराया जा सकता है। अच्छी नस्ल की गाय या भैंस को खरीदना अब किसानो के लिए मँहगा हो गया है ऐसे मे कृत्रिम गर्भाधान के माध्यम से धीरे-धीरे किसान अपनी पशुओ के नस्ल को सुधार सकते हैं।

भारत की आत्मा गाँवो मे बसती है। गाँवों में आज भी कृषि मुख्य कार्य है। अगर हमे गाँवो को समृद्ध बनाना है तो इसके लिए कृषि पशुपालन चक्र को प्रोत्साहित करना होगा। यहाँ शासन का दायित्व काफी बढ जाता है। शासकीय सेवक ग्रामीणो को कृषि पशुपालन चक्र के लाभ को बताने के साथ-साथ उन्नत बीज और अच्छे नस्ल की पशुओ को उपलब्ध करवाने मे सहायक हो सकते हैं। इस कदम की सफलता गाँवो मे लाभकारी सभावनाओ का द्वार खोल सकती है।

कृषि की एक लाभकारी पद्धति : कृषि वानिकी [3]

तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या, तेज औद्योगिकीकरण, विकसित होने की ललक तथा घटती कृषि योग्य भूमि के कारण आज मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बड़े पैमाने पर वृक्षों (वन) काविनाश करता जा रहा है। परिणामस्वरूप वृक्षो के लगातार कटने से देश की सामाजिक, भौगोलिक एव

---

[3] श्रीवास्तव अजय, कृषि एक लाभकारी पद्धति, प्रतियोगिता दर्पण जून १९९४, पृष्ठ सख्या १४८७ ।

आर्थिक स्थिति ही नहीं चरमराई बल्कि वायुमण्डलीय प्रदूषण भी बढ़ता गया। स्वार्थपूर्ति के लिए वृक्षो के निरन्तर कटाव ने जहाँ एक तरफ पर्यावरण को खतरा उत्पन्न किया तथा प्रदूषण चरम सीमा तक जा पहुँचा वहीं दूसरी तरफ ईंधन तथा अन्य ससाधनो की समस्या को भी जन्म दिया। अपने देश मे कृषि के अन्तर्गत लगभग १४३ लाख हेक्टेयर तथा वानिकी के अन्तर्गत लगभग ७५ लाख हेक्टेयर भूमि है। इतने कम क्षेत्रफल पर वृक्षारोपण होने तथा इनके भी लगातार कटाव से जो वातावरणीय असन्तुलन तथा समस्या उत्पन्न हुई उससे कृषि वैज्ञानिक चिन्तित हुए तथ समस्या के समाधान के लिए प्रयास करके कृषि के साथ-साथ फसलो को भी उगाने का एक नवीन क्षेत्र विकसित किया और उसे कृषि वानिकी नाम दिया। कृषि वानिकी के अन्तर्गत एक ही भूमि पर वृक्षो के साथ-साथ फसलों का भी उत्पादन किया जाता है। इन फसलों में कोई भी फसल (जैसे- खाद्यान, तिलहन, दलहन एवं चारे की) हो सकती है।

कृषि वानिकीकरण पद्धति शुष्क भूमि कृषको के लिए एक लाभकारी पद्धति हो सकती है, क्योकि इस भूमि पर फसल का उत्पादन पूर्णत प्राकृतिक वर्षा पर निर्भर करता है। यह पद्धति सूखे के कारण फसल को पूरी तरह नष्ट होने से बचाने के लिए संसाधनहीन शुष्क भूमि कृषको की सहायता करती है। भूमि तथा जल के अपक्षय को कम करती अथवा रोकती है। यह बिना मौसम के (असमय) हुए वर्षा के पानी का उपयोग करने, ईंधन, लकडी, फल, चारा, खाद्य पदार्थ, उत्पादन आदि की आवश्यकता को पूरा करती है। इस पद्धति द्वारा पेड़ो से पूरी फसल प्रणाली के सूक्ष्म वातावरण में सुधार होता है और कृषको की आय मे बढ़ोत्तरी होती है।

कृषि वानिकी के उद्देश्यों, सिद्धातों तथा आवश्यकताओ के आधार पर इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है - " **भूमि की उपयोग प्रणालियों और प्रौद्योगिकियों के लिए एक नाम जिसमें बहुवर्षीय वृक्ष (फल, वृक्ष, वन, झाड़ियाँ आदि) उसी भूमि प्रबन्ध इकाई पर शाकीय फसलों और/या पशुओं के साथ उसी प्राकृतिक अवस्था में जानबूझकर जोड़ दिए जाते है।"**

उद्देश्य :- कृषि वानिकी पद्धति अपनाने के निम्नलिखित उद्देश्य हैं –

❖ अनुपयोगी भूमि का समुचित उपयोग करना।

- सीमित भूमि का अधिकतम उपयोग करके कृषि उपज बढाना।
- भूमि कटाव को रोकना तथा नमी का सरक्षण करना।
- वायुमण्डलीय पर्यावरण को स्वच्छ एवं सतुलित रखना।
- कृषको की अतिरिक्त आय मे वृद्धि करना।
- भूमि की उत्पादकता शक्ति को बढ़ाना।
- विभिन्न अन्न फसलो के साथ ही अनेक वन उत्पाद भी प्राप्त करना।
- ग्रामीणो को अतिरिक्त रोजगार प्रदान करना।

कृषि वानिकी प्रणाली के दो सम्बन्धित लक्ष्य है।

> - प्रणाली द्वारा स्थल का सरक्षण एव सुधार करना और
> - फल तथा कृषि फसलो सहित वृक्ष फसलो के सम्मिलित उत्पादन को अधिक से अधिक सीमा तक बढ़ाना।

प्रकार :- कृषि वानिकी पद्धति के अन्तर्गत इसके विभिन्न स्वरूप निम्नलिखित प्रकार है।

1. कृषि वन वर्धन - (फसल +वन्न वृक्ष) :- यह पद्धति पेड़ उगाने और खाद्य फसलों की खेती तथा पेडो के बीच उपलब्ध स्थान पर चारा फसल उगाने से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार ऐसी प्रणाली अपनाने से किसान अपनी सीमित भूमि से लकड़ी, भोजन, चारा आदि प्राप्त कर लेता है।

2. उद्यान कृषि प्रणाली - (फसल + फल वृक्ष) :- कृषि वानिकी के इस स्वरूप मे केवल फल वृक्ष ही लगाए जाते हैं, अत इस पद्धति से, प्रतिक्षेत्र इकाई से अधिक आय (लाभ) प्राप्त होता है।

3. वन उद्यान कृषि प्रणाली - (फसल + फल वृक्ष + बहुउद्देशीय वृक्ष) :- यह प्रणाली अनोखी तथा स्थानपरक होती है, क्योंकि विभिन्न प्रकार के वन वृक्ष मुख्य रूप से भूमि पर उगाए जाते है तथा उनके बीच उपलब्ध भूमि पर फल वृक्ष लगाए जाते हैं, इसमे फल उत्पादको को पैकिग के लिए कच्चा माल भी मिल जाता है जो इससे अतिरिक्त लाभ के रूप मे प्राप्त होता है।

4. वन चारागाही प्रणाली - (वन वृक्ष + चारागाह + पशु) :- इस प्रणली के अन्तर्गत लकड़ी के उत्पादन के लिए सीमित भूमि पर वृक्ष उगाए जाते हैं तथा पशुओ को पालने के लिए पेड़ो के बीच मे उपलब्ध स्थान पर घासे उगाई जाती हैं।

5. कृषि वन चारागाही प्रणाली - (फल वृक्ष + चारागाह + पशु) :- यह प्रणली कृषि वन वर्धन तथा कृषि वन चारागाही प्रणालियो का मिश्रण होता है। इस पद्धति के अन्तर्गत शुष्क भूमि के किसान फ़सल तथा पेड एक विशेष स्थिति तक एक साथ उगाते हैं, परन्तु बाद मे वन वृक्षो के बीच की भूमि पर फसल के स्थान पर घास उगाते हैं, जिसका चारागाही के रूप मे प्रयोग होता है। इस प्रकार किसान एक साथ तीन प्रकार का उत्पादन, लकडी, कृषि उत्पाद तथा घास प्राप्त करता है।

6. बहुउद्देशीय वन वृक्ष उत्पादन प्रणाली :- इस पद्धति मे खेत में खाद्य फसले या चारा फसले या चारा फसले नहीं उगाई जाती, बल्कि इसमें विभिन्न प्रकार के वृक्ष लगाए जाते हैं जो लकड़ी, पत्तियाँ, फल, चारा तथा अन्य उत्पाद उपलब्ध कराते हैं। ये अत्यधिक मूल्यवान उत्पाद प्रदान करते हैं जिससे किसानों को अधिक लाभ होता है और यह लाभ अन्न या चारे की फसल से कहीं अधिक होता है।

कृषि, वानिकीकरण हेतु उपर्युक्त वृक्षों एवं फसलों का चुनाव :- इन प्रणाली के अन्तर्गत ऐसे पौधो का चुनाव होना चाहिए, जो अग्रलिखित गुण धारण करते हो –

- शीघ्र बढने वाली जातियों का चयन किया जाना चाहिए और पौधे सीधे ऊपर की ओर वृद्धि करते हो तथा उनका फैलाव कम से कम हो।
- कम से कम शाखाएँ निकले अर्थात् जमीन पर से ही अधिक घनी न हो जाए।
- साथ मे लगी अन्य फसलों से प्रतिस्पर्धा न करे।
- कम से कम पोषक तत्व, सिंचाई व देखभाल की आवश्यकता पड़े।
- प्रतिकूल दशाओ मे भी सफलतापूर्वक वृद्धि कर सके।
- रोगों के प्रति रोगरोधी हो, छाया से सहनशील होना चाहिए।
- कम से कम काट - छाँट की आवश्यकता हो तथा काट - छाँट सहने की अत्यधिक क्षमता हो।

❖ पौधे उत्तम जाति के तथा अच्छे गुणो वाले हो।

❖ कृषको के लिए उसकी पत्तियाँ, लकड़ियाँ आदि लाभकारी हो।

❖ पौधो के प्रत्येक भाग कृषको के लिए उपयोगी हो।

❖ पोषक तत्वो की पर्याप्त मात्रा प्रदान कर सके।

❖ चिड़ियो एव कीटो के लिए हानिकारक हो, लेकिन फसल के लिए लाभप्रद हो।

❖ वृक्ष मे पत्तियो एव तनो का व्यवस्थापन ऐसा होना चाहिए जिसमें प्रकाश सीधे भूमि पर पड़े, पत्तियो एव तनो का फैलाव कम से कम हो।

❖ जड़े एव उसके वृद्धि की विशेषता ऐसी होनी चाहिए जिससे भूमि के विभिन्न सतहो पर कृषि फसल प्रभावित न हो।

हमारे देश मे लगभग १५००० विभिन्न जातियों के पौधे हैं । लेकिन वानिकीकरण पद्धति मे अमरूद, शरीफा, बर, फालसा, जामुन, बेल, कैथ, आम, पपीता, लोबिया (चारे के लिए), सरसो, सूरजमुखी, पोपलर, ज्वार, धान, जौ, अरहर, मूँग, चना, काजू, सिरस, केसिया, अनार, नीबू, प्रजाति, कचनार, यूकेलिप्टस, इमली, अर्जून, पलाश, इत्यादि लगाए जाते हैं।

वृक्ष कहाँ - कहाँ लगें :- इस पद्धति में वृक्ष सड़क के दोनो किनारों पर नहरों की पटरियो पर, रेलवे लाइन के किनारे, बेकार अनुपयोगी भूमि पर, ग्राम समाज के अधिकार क्षेत्र में आने वाली भूमि पर तथा अन्य कृषि योग्य भूमियो पर वृक्षा-रोपण किया जा सकता है। ऐसी भूमियों मे जहाँ ककड़ की तह लगभग १ मीटर नीचे होती है वहाँ ट्रैक्टर चालित औजार से उस कंकड़ परत को तोड़कर फिर वृक्ष लगाए जाएँ ताकि वृक्ष की जडो का विकास समुचित हो सके।

लाभ :- कृषि वानिकीकरण पद्धति के लाभ को देखते हुए इस प्रणाली को काफी महत्व दिया जा रहा है। विशेषकर शुष्क भूमि वाले किसानो के लिए यह काफी फायदेमन्द सिद्ध हो रही है। इस पद्धति के निम्नलिखित लाभ है –

1. रोजगार के अतिरिक्त अवसर उपलब्ध होना :- ऐसी पद्धति प्रयोग करने पर कृषको को रोजगार के अतिरिक्त अवसर प्रदान किए जा सकते है और आय बढ़ाने के साथ-साथ स्थिरता भी प्रदान की जा सकती है। इस पद्धति मे किसानो को दो प्रकार का रोजगार प्राप्त होता है एक तो वृक्ष के उत्पादन एवं देख - भाल मे तथा दूसरा खाद्यान्न फसलो के उत्पादन एव उसके देखभाल मे। इसमे पूरे वर्ष खेत मे कुछ न कुछ कार्य करना पडता है जिससे किसानो को वर्ष भर कार्य मिलता रहता है।

2. अतिरिक्त आय में वृद्धि :- इस पद्धति मे वृक्ष के साथ ही अन्न फसलो का भी उत्पादन साथ -साथ होता है जिससे उसी भूमि से कुल उपज दोहरा प्राप्त होता है जिससे अतिरिक्त उपज बढ़ती हैं। इसकी बिक्री से कृषको को अतिरिक्त आय मिल जाती है।

3. भूमि सुधार :- इस प्रकार की पद्धति अपनाकर बंजर ऊसर एवं कृषि की दृष्टि से बेकार भूमि को उर्वर बनाया जा सकता है। ऐसी भूमियो मे लगातार कृषि क्रियाएँ होते रहने से वायुमण्डलीय नत्रजन का स्थरीकरण तथा पर्याप्त वायु संचार होता रहता है।

4. पर्यावरण की प्रदूषण से रक्षा :- अधिकाधिक वृक्षों के रोपण से वातावरण में आक्सीजन की मात्रा में वृद्धि तथा कार्बन डाईआक्साइड की सान्द्रता कम होती है और अवशिष्ट पदार्थों का समुचित उपयोग होता है, जो पर्यावरण प्रदूषण की सुरक्षा करने मे सहायता करती है।

5. मृदा एवं नमी का संरक्षण :- कृषि वानिकी पद्धति मे समय - समय पर विभिन्न कृषि क्रियाएँ होते रहने से मृदा की नमी बनी रहती है तथा मृदा कटाव भी नहीं होता है। अत मृदा एव नमी का संरक्षण होता है तथा बाढ़ एवं सूखे का प्रकोप भी कम होता है।

- यह मिट्टी के ताप को बढ़ने से रोकती है विशेषकर गर्मी में,
- लगे हुए वृक्ष मृदा की निचली सतह से पोषक तत्व पुनर्निशित करते हैं।
- यह मिट्टी की सूक्ष्म जैविकता की रक्षा करती है।
- बिना मौसम के वर्षा होने पर उस पानी का सदुपयोग हो जाता है। लगे हुए वृक्ष इस पानी का सुचारू रूप से उपयोग कर लेते है।

❖ ग्रामीण क्षेत्रो मे जलाने के लिए ईंधन लकड़ी तथा किसानो को इमारती लकडी मिल जाती है। पशुओ को चारा प्राप्त होता है, खाद्य पदार्थ फल - फूल एव सब्जी आदि की उपज बढ़ जाती है।

❖ लघु एव कुटीर उद्योग धन्धे विकसित किए जा सकते हैं। इसके अन्तर्गत वन वृक्ष लगाने से अनेक वन उत्पाद जैसे ईंधन, प्लाई, चारकोल, गोद, पेपर, रेआन आदि का उत्पादन करके लघु उद्योग धन्धे विकसित किए जा सकते है।

अनुसंधान अनुभव :- कृषि वानिकी के महत्व एव गुणो को देखते हुए अपने देश में अनेक अनुसधान कार्य हुए और अभी भी चल रहे हैं, उनके फलस्वरूप कुछ अनुभव प्राप्त हुए है जो निम्नवत् हैं:–

➢ यूकेलिप्टस के साथ लोबिया चारे के लिए बोने से लगभग १५० क्विटल प्रति हेक्टेयर लोबिया का चारा प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन यूकेलिप्टस की लकड़ी से अतिरिक्त आय प्राप्त होती है।[4]

➢ सरसो भी यूकेलिप्टस के बीज बोने पर अतिरिक्त लाभ दे देती है।

➢ पोपलर के साथ सूरजमुखी लगभग १८ क्विटल/हेक्टेयर अथवा ज्वार चारे के लिए लगभग १२५ क्विटल/हेक्टेयर भी प्राप्त हो जाती है।

➢ सुबबूल के साथ धान, जौ, अरहर, मूँग एव चना सफलता पूर्वक लिए जा सकते है। यद्यपि सुबबूल की दूसरे वर्ष उपज मे २०प्रतिशत की घटोत्तरी देखी गई है, जबकि प्रथम वर्ष में नहीं परन्तु क्षतिपूर्ति साथ में ली गई फसल के साथ-साथ सुबबूल से प्राप्त चारे और ईंधन के लिए लकड़ी की प्राप्ति से हो जाती है।

➢ शहर के गंदे पानी का उपयोग कृषि वानिकी मे बहुत लाभदायक है। गदे पानी से जहाँ पौधो की तीव्र वृद्धि होती है वहीं फसल उत्पादन भी बढ़ता है।

➢ प्रारम्भिक अवस्था में सुबबूल की पत्तियाँ खाने में स्वादिष्ट होती है। अतः उन्हें खरगोश से बचाना चाहिए।

---

[4] श्रीवास्तव अजय, कृषि एक लाभकारी पद्धति, प्रतियोगिता दर्पण जून १९९४, पृष्ठ सख्या १४८८ ।

- गदे पानी का उपयोग कृषि वानिकी में होने से आसपास का पर्यावरण (वातावरण) प्रदूषण से मुक्त हो जाता है एव बेकार पडी भूमि मे पौधे लगाने से गर्मी में 'लू ' प्रकोप से काफी राहत मिलती है और सूक्ष्म जलवायु का अनुभव होता है।
- सुबबूल को वर्षो मे कभी भी लगाया जा सकता है और नर्सरी मे इसके पौधे तैयार करने मे कोई परेशानी नहीं होती है।
- यूकेलिप्टस के साथ बोई गई फसल को अधिक पानी की आवश्यकता होती है, जबकि सुबबूल के साथ ऐसा नहीं है। इसी कारण अब यूकेलिप्टस के पौधो की तरफ रूझान कम हुआ है।

भूमि की उर्वरा शक्ति का ह्रास कम उत्पादन और कृषि की लागत मे लगातार वृद्धि होने से फसल उत्पादन अब लाभकारी होने के बजाय हानिकारक होता जा रहा है इसलिए कृषि की पुरानी पद्धतियो को छोड़कर हमे नई शस्य पद्धतियो को अपनाना होगा जिससे कृषि एक लाभकारी क्षेत्र बन सके, इसके लिए लगातार प्रयासो के द्वारा विकसित कृषि पद्धति (कृषि वानिकी) एक महत्वपूर्ण शस्य पद्धति सिद्ध हो सकती है।

विनियमित बाजार का अर्थ :- जब कोई राज्य सरकार अथवा स्थानीय सरकार किसी अधिनियम के अन्तर्गत बाजार को स्थापित करती है तथा ऐसे बाजारों मे व्यवसाय के संचालन हेतु नियमो तथा विनियमो का निर्माण करती है, तो उसे विनियमित बाजार कहते है। विनियमित बाजारो मे सरकार का हस्तक्षेप आवश्यक होता है। इन बाजारो को कृषि विपणन सम्बन्धी, विशेषत· एकत्रीकरण के स्तर पर, अनेक समस्याओ को हल करने के साधन के रूप मे प्रयोग किया जाता है। साथ ही साथ कृषि बाजारों को अधिक सुव्यवस्थित और कुशल बनाना होता है। इनका मुख्य उद्देश्य कृषि उपज के क्रय-विक्रय को विनियमित करना, शुद्ध प्रतिस्पर्धा की दशाएँ उत्पन्न करना और इस प्रकार उत्पादक विक्रेताओं के लिए सही व्यवहार सुनिश्चित करना होता है।[5] एक नियमित बाजार वह है जिसकी कार्यवाही और व्यवहार रीति किसी उपयुक्त विधान से नियमित होती है।[6] नियत्रित बाजार की सीमा मुख्यतया किसी भी नगर या गाँव के नगरपालिका की सीमाओं से मिली रहती है। बाजार के स्थान का तात्पर्य नियंत्रित बाजार के उस स्थान से है जिसे चारो ओर से दीवार या तार से घेर दिया

---

[5] गुप्ता ए०पी० मार्केटिंग ऑफ एग्रीकल्चरल प्रोड्यूस इन इण्डिया, १९७५, पृष्ठ संख्या २२६ ।

[6] मामेरिया एण्ड जोशी प्रिन्सिपुल्स एण्ड प्रैक्टिस ऑफ मार्केटिंग इन इण्डिया, १९६३, पृष्ठ संख्या १३ ।

जाता है तथा जहाँ कृषि उपज एकत्रित करके बेची जाती है। नियत्रित बाजार में जो कृषि नियंत्रित करनी होती है, उसका नाम घोषित किया जाता है।[7] नियत्रित बाजार का प्रबन्ध " **कृषि उपज बाजार समिति** " की देखभाल मे होता है जिसमे उत्पादक, व्यापारी, स्थानीय सस्था, सरकार व सहकारी समितियों के प्रतिनिधि होते हैं। इस समिति के १२ से १६ सदस्य होते हैं, जिनमे आधे से अधिक उत्पादक होते हैं। यह समिति नियत्रित बाजार मे काम करने वाले अढ़तिया, दलाल, तौला, पल्लेदार आदि विपणन कार्यकर्ताओं को अनुज्ञा पत्र प्रदान करती है तथा विभिन्न कार्यकर्ताओ के दर व अन्य बाजार खर्चों के दर का निर्धारण करती है। यह समिति स्थानीय विपणन पद्धतियो के अनुसार नियत्रित बाजार के लिए आवश्यक नियम भी बनाती है।[8]

संक्षिप्त इतिहास :- [9] भारत मे विनियमित बाजारो की स्थापना उस समय आरम्भ हुई जब ब्रिटिश सरकार ने मैनचेस्टर की सूती वस्त्र मिलो को उचित मूल्य पर शुद्ध कपास के सभरण की आवश्यकता अनुभव की। १९८६ मे हैदराबाद रेजीडेसी के आदेश के अतर्गत करंजा कपास बाजार को विनियमित किया गया। इस सम्बन्ध मे प्रथम अधिनियम १९९७ का बरार कपास और गल्ला बाजार अधिनियम है। १९२७ मे उस समय की बम्बई प्रान्त की सरकार ने बम्बई कपास मंडी अधिनियम पारित किया। १९२८ मे कृषि पर शाही आयोग ने तथा १९९३ मे केन्द्रीय बैंकिग जॉच समिति ने भी ऐसी बाजारो की स्थापना की सिफारिश की। फलस्वरूप केन्द्रीय प्रातों और मद्रास में भी इस प्रकार के अधिनियम पारित किये गये।

१९३८ में केन्द्रीय कृषि विपणन विभाग (अब विपणन तथा निरीक्षण निदेशालय) ने एक आदर्श विधेयक कृषि बाजारो को विनियमित करने हेतु तैयार किया जिससे विभिन्न प्रान्तीय सरकारो को इस सम्बन्ध मे सही दिशाा प्राप्त हो सके किन्तु दुर्भाग्यवश इसके शीघ्र बाद ही द्वितीय महायुद्ध प्रारभ हो गया और बाजार विनियमन - क्रियाओ की प्रगति में बाधा पड़ गई।[10] वास्तव मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त ही बाजार

---

[7] भालेराव, एम० एम० भारतीय कृषि अर्थशास्त्र १९७७, पृष्ठ सख्या ४१४ ।

[8] भालेराव, एम० एम० भारतीय कृषि अर्थशास्त्र १९७७, पृष्ठ सख्या ४१४ ।

[9] गुप्ता ए०पी०. पूर्वोदुत पृष्ठ सख्या २२६-२७ ।

[10] इण्डिया १९८३, पृष्ठ सख्या २७५ ।

विनियमन की सही प्रगति हुई जब योजना आयोग ने इस पहलू पर जोर दिया और कृषि वस्तुओ के विनियमन कार्यक्रम को अपनी पचवर्षीय योजनाओं मे स्थान दिया।

उत्तर प्रदेश में कृषि विनियमित बाजार :- कृषि विपणन व्यवस्था में व्याप्त दोषो एव कुरीतियो को दूर करने हेतु उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रथम प्रयास सन् १९३८ में किया गया था, किन्तु १९३९ मे युद्ध सम्बन्धी मसले पर काग्रेस मत्रिमण्डल द्वारा त्याग पत्र दे देने के कारण इस विधेयक पर विचार नही हो सका। पुन. सन् १९४६ - ४७ में इस सम्बध मे प्रयास हुए किन्तु कोई सफलता प्राप्त नहीं हो सकी । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् योजना आयोग ने कृषि मण्डियो के विनियमन पर जोर दिया। सितम्बर १९५३ मे राज्य कृषि मत्रियो के अधिवेशन ने भी इस सम्बन्ध मे भी सस्तुति की। इन सबके परिणाम स्वरूप १९६० मे इस विषय पर एक विधेयक बनाने का प्रयास प्रारम्भ किया गया और दिसम्बर १९६३ मे उत्तर प्रदेश कृषि उत्पादन मण्डी विधेयक विधान सभा के सम्मुख पेश किया गया। अन्तत १९६४ में इस विधेयक को विधान सभा व विधान परिषद द्वारा पारित कर दिया गया। १० नवम्बर, १९६४ से राज्य मे कृषि उत्पादन मण्डी अधिनियम लागू हुआ। वर्ष १९६४ मे नियमावली बनी ताकि उत्पादको को उनकी उपज का उचित मूल्य, व्यापारियो को अपने परिश्रम का उचित प्रतिफल तथा उपभोक्ता की इच्छित वस्तु प्राप्त हो। इस अधिनियम के अन्तर्गत अब तक प्रदेश की २५३ मण्डियो का विनियमन किया गया है जिसके साथ ३७५ उपमण्डी स्थल भी है।[11] उ०प्र० कृषि उत्पादन मण्डी अधिनियम १९८४ की मुख्य बाते ये रही हैं।[12]

1. मण्डी क्षेत्र तथा मण्डी स्थल (बाड़ा) :- यदि राज्य सरकार किसी क्षेत्र में किसी कृषि उत्पादन के क्रय-विक्रय का विनियमन लोकहित मे आवश्यक समझती है तो वह गजट मे विज्ञाप्ति द्वारा अपने इस अधिनियम की घोषणा कर सकती है इस सम्बन्ध मे जनता के लिए एक निश्चित अवधि के अन्दर प्रस्तावित घोषणा के विरूद्ध आपत्तियाँ आमंत्रित कर सकती है। इस निश्चित अवधि के व्यतीत होने के उपरान्त राज्य सरकार मण्डी क्षेत्र के किसी ऐसे निर्दिष्ट भाग को जहाँ किसी निर्दिष्ट कृषि उत्पादन का विक्रय, क्रय या सग्रह

---

11 सौजन्य से राज्य कृषि उत्पादन मण्डी परिषद्, उ०प्र० १६ ए० पी० सेन रोड, लखनऊ ।

12 उत्तर प्रदेश कृषि उत्पादन मण्डी अधिनियम १९६४ के अधीन बनायी गयी नियमावली, निदेशक कृषि विभाग, उ०प्र० लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ सं० ३२ ।

या उस पर प्रक्रिया करने का कार्य होता है, प्रधान मण्डी के रूप मे और उपर्युक्त ऐसे अन्य भागो को, जो आवश्यक समझे जाएँ, उपमण्डी स्थलों के रूप मे घोषित कर सकती है। किसी क्षेत्र का मण्डी क्षेत्र घोषित किये जाने के दिनाक से कोई स्थानीय निकाय या अन्य व्यक्ति सम्बद्ध समिति द्वारा दिये गए अनुज्ञापन के बिना मण्डी क्षेत्र के भीतर निर्दिष्ट कृषि उपज के विक्रय, क्रय या सग्रह करने या लौटने या उस पर प्रक्रिया करने का कार्य नहीं कर सकते है। ऐसे मण्डी क्षेत्र मे बिना अनुज्ञा पत्र के व्यापारी, दलाल, आढतिया, भण्डारागार, परिचालक, तौलक पल्लेदार आदि कारोबार नहीं कर सकते हैं।

2. **मण्डी खर्चे :-** ऐसे मण्डी क्षेत्रो में जहाँ पर सामान्यत इस प्रकार के सौदे किये जाते हैं, निर्दिष्ट कृषि उत्पादन के विक्रय या क्रय के किसी सौदे के सम्बन्ध मे इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमो या उपनियमों द्वारा नियत खर्चो से भिन्न व्यय नहीं लिये जा सकते है।

मण्डी समिति अपनी उपविधियों में वह व्यापारिक परिव्यय निर्दिष्ट करेगी जो इन नियमो के अधीन लाइसेन्स रखने वाले किसी व्यापारी या अढ़तिया या दलाल अथवा किसी तोलक या मापक अथवा पल्लेदार द्वारा लिये या वसूल किये जा सकते हैं किन्तु नीचे निर्धारित सीमा से अधिक न होंगे।[13]

- ✓ कमीशन - १ ५० प्रतिशत
- ✓ दलाली - १ ०० प्रतिशत
- ✓ तौलाई - ५० पैसा प्रति क्विंटल [14]
- ✓ पल्लेदारी - ७५ पैसा प्रति क्विटल [15]

सभी परिव्यय क्रेता द्वारा होगे। प्रतिबन्ध यह है कि नीलाम के पूर्व तौलाई या मापने अथवा सभालने के परिव्यय यदि कोई हों जो मण्डी समिति द्वारा अपनी उपलब्धियों मे निर्दिष्ट किये जाये, विक्रेता

---

[13] उत्तर प्रदेश कृषि उत्पादन मण्डी अधिनियम १९६४ के अधीन बनायी गयी नियमावली, निदेषक कृषि विभाग, उ०प्र० लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ सख्या ३३ ।

[14] उत्तर प्रदेश कृषि उत्पादन मण्डी (अमेन्डमेन्ट) रूल्स १९६८ के अनुसार अब तौलाई ५० पैसे प्रति क्विटल निर्धारित की गई है ।

[15] उपर्युक्त अमेन्डमेन्ट रूल्स १९६८ के अनुसार ही पल्लेदारी ७५ पैसा प्रति क्विटल निर्धारित की गई है ।

द्वारा देय होगे।[16] प्रदेश की मण्डी समितियो के द्वारा ११४ निर्दिष्ट कृषि उत्पादों की बिक्री पर एक प्रतिशत की दर से मण्डी शुल्क क्रेताओ पर लगाया एव वसूल किया जाएगा। उपभोक्ताओ को दी जाने वाली फुटकर बिक्री मण्डी शुल्क की देयता से मुक्त होगी।[17]

3. **मण्डी समिति :-** प्रत्येक मण्डी क्षेत्र के लिए एक मण्डी समिति होती है। इस समिति का गठन इस प्रकार हो सकता है।[18]

- प्रत्येक स्थानीय निकायो का एक-एक प्रतिनिधि।
- मण्डी क्षेत्र में कार्य करने के लिए लाइसेस प्राप्त सहकारी क्रय विक्रय समितियो का एक प्रतिनिधि।
- केन्द्रीय गोदाम निगम व राज्य गोदाम निगम का एक-एक प्रतिनिधि यदि मण्डी क्षेत्र में उनका गोदाम हो तो।
- लाइसेस प्राप्त व्यापारियो, दलालो और आढ़तियो के तीन प्रतिनिधि।
- मण्डी क्षेत्र के गॉव सभाओं के प्रधानों द्वारा निवाचित मण्डी क्षेत्र के १० उत्पादक।
- राज्य सरकार द्वारा नाम निर्दिष्ट एक सरकारी अधिकारी।

समिति का कार्य मण्डी क्षेत्र में इस अधिनियम तथा इस अधिनियम के अधीन बनाये गए नियमों तथा उपनियमो के अनुसार विपणन कार्यो का विनिमय करना होता है तथा उन सभी कार्यो को करना होता है जो इसके दक्ष कार्य सचालन के लिए आवश्यक हो।

4. **मण्ड़ी समिति निधि और उसका उपयोग :-** प्रत्येक समिति के लिए एक कोष स्थापित किया जाता है जिसमें समिति द्वारा प्राप्त सभी धनराशियो, ऋण, अग्रिम तथा अनुदान जमा किये जाते हैं तथा समिति के परिचालन, अनुरक्षण तथा प्रबन्ध सम्बन्धी व्यय किये जाते हैं।

---

[16] मण्डी अधिनियम १९६४, पृष्ठ संख्या १३ ।

[17] राज्य कृषि उत्पादन मण्डी प्ररिषद् उत्तर प्रदेश लखनऊ से प्राप्त ।

[18] राज्य कृषि उत्पादन मण्डी प्ररिषद् उत्तर प्रदेश लखनऊ से प्राप्त धारा १३ ।

कोई भी व्यय जिसके लिए बजट मे वयवस्था न हो तब तक न किया जाय जब तक कि वह अन्य शीर्षको के अन्तर्गत बचतो से पुर्नविनियोग द्वारा अथवा उपलब्ध अपरक्षित निधि से ऐसे अनुपूरक अनुदान द्वारा न किया जा सकता हो जो समिति द्वारा यथाविधि स्वीकृत किया गया हो, और जिसके लिए निदेशक का अनुमोदन प्राप्त कर लिया गया हो। समिति द्वारा अनुमोदित बजट प्रत्येक वर्ष ३० अप्रैल के पूर्व अनुमोदन के लिए निदेशक को प्रस्तुत किया जायेगा। पूर्व आगामी कृषि वर्ष की प्राप्तियाँ तथा व्यय के लेखो का एक सारपत्र, प्रत्येक वर्ष ३० सितम्बर के पूर्व निदेशक को प्रस्तुत किया जाएगा।[19]

5. समिति के अधिकारी तथा कर्मचारी :- समिति का एक सभापति तथा एक उप सभापति होता है तथा दैनिक कार्य सचालन हेतु एक मण्डी सचिव भी होता है। सचिव की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है। इसके अतिरिक्त समिति मे विभिन्न कार्यो के लिए कर्मचारियों की नियुक्ति की जा सकती है।

सचिव, मंडी समिति का मुख्य कार्याधिकारी होगा और मडी समिति के संकल्पो को कार्यान्वित करेगा। सचिव प्रत्येक वर्ष ३० अप्रैल तक सभापति को, समिति द्वारा नियुक्त पदाधिकारियों तथा कर्मचारियो के कार्य तथा योग्यता के सबंध में अपना वार्षिक गोपनीय मन्तव्य प्रस्तुत करेगा।[20]

6. शुल्क लगाना तथा उन्हें वसूल करना :- मडी समिति को मडी स्थलो मे लाये गए और बेचे गए निर्दिष्ट कृषि उत्पादन पर, ऐसी दरो पर जो उपविधियो मे निर्दिष्ट किये जाय, शुल्क लगाने उन्हे वसूल करने का अधिकार होगा, किन्तु वह दर निर्दिष्ट कृषि उत्पादन के मूल्य के एक प्रतिशत से अधिक न होगी। प्रतिबन्ध यह है कि मंडी शुल्क विक्रेता द्वारा देय होगा।

लाइसेन्स शुल्क :-

अधिनियम के अधीन लाइसेन्स जारी तथा नवीनीकृत करने के लिए शुल्क वही होगा। प्रतिबन्ध यह है कि निदेशक ऐसे लाइसेन्स शुल्कों के प्रयोजनार्थ प्रत्येक मंडी स्थल का वर्ग अवधारित करेगा।[21]

---

[19] उ०प्र० कृषि उत्पादन मण्डी अधिनियम १९६४ के अधीन बनायी गयी नियमावली से, अध्याय ८ पृ०स० ३६-३७ ।

[20] वही, निदेशक कृषि विभाग, उ०प्र० लखनऊ द्वारा प्रकाशित अध्याय ५ पृ०स० २४-२५ ।

[21] मण्डी अधिनियम १९६४ पृ० स० २४ धारा १७ (३) अध्याय ६ ।

केन्द्रीय मंडी परामर्श समिति :-[22]

राज्य के मुख्यालय मे एक शीर्ष परामर्श निकाय होगा, जो केन्द्रीय मडी परामर्श समिति कहलाएगी। केन्द्रीय मंडी परामर्श समिति में निम्न होगे –

- कृषि मत्री, जो पदेन सभापति भी होगा।
- कृषि उपमत्री, जो पदेन उपसभापति भी होगा।
- सदस्य समितियों मे से पॉच उत्पादक।
- सदस्य समितियों मे से पॉच व्यापारी।
- राज्य सरकार द्वारा नाम निर्दिष्ट किए जाने वाले निम्नलिखित दो व्यक्ति
    - एक अर्थशास्त्री
    - एक उद्योगपति
- सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार, जो कृषि का प्रभारी हों
- पशुपालन निदेशक
- निबन्धक सहकारी समिति
- कृषि निदेशक, जो केन्द्रीय मडी परामर्श समिति का पदेन सचिव भी होगा और
- राज्य कृषि विपणन अधिकारी निदेशक, जो केन्द्रीय मंडी परामर्श समिति का पदेन संयुक्त सचिव भी होगा।

7. विविध :-[23]

मडी समिति का सचिव या समिति द्वारा अधिकृत अन्य अधिकारी कर्तव्यो के पालन मे सभी उचित समय पर किसी भी स्थान, भू-गृहादि या वाहन (वेहकिल) मे प्रवेश कर सकता है और तलाशी ले सकता है। (धारा ३०)

---

[22] मण्डी अधिनियम १९६४, अध्याय - ९ पृष्ठ - ४१, धारा ४० ।

[23] उत्तर प्रदेश कृषि उत्पादन मडी अधिनियम १९६४ के अधीन बनायी गयी नियमावली से ।

यदि कोई व्यक्ति धारा ९ एव १० की किन्ही भी उपधाराओ या उनके अधीन बनाये गए नियमो या उपविधियो का उल्लघन करता है तो उसे ९० दिन का साधारण कारावास या ५०० रूपये तक का अर्थ दड या दोनो दिए जा सकते हैं। (धारा ३७)

मडी समिति अपनी उपविधियाँ (बाइ-लाज), अपने कार्य का विनियमन करने उपसमितियो की नियुक्ति, अधिकार, कर्तव्य और कार्यो को करने, व्यापारियो, आढतियो, दलालो, तोलको, और पल्लेदारो के कर्तव्यो को निश्चित करने के लिए बना सकती है।

राज्य मुख्यालय पर कृषि मन्त्री के सभापतित्व में एक " **केन्द्रीय मंडी सलाहकार समिति**" होगी जो राज्य की विभिन्न मडी समितियों की उन्नति पर सलाह दिया करेगी।

उत्तर प्रदेश मे कृषि उत्पादन के क्रय-विक्रय को विनियमित करने तथा मडियो की स्थापना के उद्देश्य से वर्ष १९६९ में कृषि उत्पादन मडी अधिनियम पारित किया गया तथा वर्ष १९६४ में नियमावली बनी, यह नियमावली उत्तर प्रदेश मे कृषि उत्पादन मडी नियमावली १९६५ कही जाती है।[24] इस अधिनियम के अन्तर्गत अब तक प्रदेश की २५३ मंडियो का विनियमन किया गया है, जिनके साथ ३७५ उपमडी स्थान है।[25]

आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी न होने के कारण अभी तक ५ पहाड़ी जनपदों यथा चमोली, उत्तरकाशी, पिथौरागढ़, टेहरी गढ़वाल तथा अल्मोड़ा के क्षेत्रो को मण्डी विनियमन की परिधि में नही लिया जा सका है तथा विनियमन के लाभो को इन क्षेत्रों के उत्पादकों-विक्रेताओं तक पहुँचाने के लिए सर्वेक्षण कराया जा रहा है। ऐसी आशा है कि शीघ्र ही इन क्षेत्रो मे भी मडी समितियाँ स्थापित हो जाएगी।[26]

प्रदेश को विभिन्न मंडी क्षेत्रों में विभाजित करके मंडी अधिनियम के अन्तर्गत सतत् अनुक्रम वाली निर्गमित निकाय के रूप मे प्रत्येक मंडी क्षेत्र के लिए एक मडी क्षेत्र की स्थापना की गई है। " **उ0प्र0 कृषि उत्पादन मंडी समिति अधिनियम 1972**" के द्वारा प्रथम मंडी समितियों के सदस्यो एव

---

[24] उत्तर प्रदेश कृषि उत्पादन मंडी अधिनियम १९६४ के अधीन बनायी गयी नियमावली अध्याय १ पृ०स० १
[25] सौजन्य से मुख्यालय, राज्य कृषि उत्पादन मंडी परिषद् उत्तर प्रदेश लखनऊ ।
[26] राज्य कृषि उत्पादन मडी परिषद् उ०प्र० लखनऊ ।

पदाधिकारियो के कार्य काल को समाप्त करके मंडी समिति तथा इसके सभापति एव उपसभापतियो के समस्त अधिकार, कृत्य एव कर्तव्य जिलाधिकारियो मे निहित कर दिये गए थे। तत्पश्चात " **उ0प्र0 कृषि उत्पादन अधिनियम 1978**" के द्वारा शासन ने मडी समिति तथा उनके सभापति एवं उप-सभापति के समस्त अधिकार, कृत्य एव कर्तव्यो के प्रयोग एवं निर्वहन हेतु मंडी समिति के लिए शासन द्वारा नामाकित सात सदस्यीय तदर्थ समिति के गठन की व्यवस्था की। तत्पश्चात् पुन ६ मार्च, १९८० से अल्पकालिक व्यवस्था अधिनियम मे सशोधन करके मडी समिति का कार्य पूर्ववत् जिलाधिकारियो को सौंप दिया गया जो ५ जून १९८३ तक की अवधि के लिए वैध रहा।[27]

वर्तमान समय में राज्य सरकार के द्वारा उ०प्र० कृषि उत्पादन मंडी समिति अधिनियम १९८४ पारित किया गया है। जिसके अन्तर्गत मडी समिति के समस्त अधिकारो का प्रयोग, कृत्यो का सपादन और कर्तव्यो का पालन राज्य सरकारो के द्वारा नामित की जाने वाली ग्यारह सदस्यीय तदर्थ समिति के द्वारा किए जाने की व्यवस्था है। जिसमे एक सदस्य को सभापति पदाविधिक किया जाएगा। सदस्यों में से एक-एक सदस्य मडी क्षेत्र मे कार्यरत आढ़तियो और व्यापारियों मे से होगे और पॉच सदस्य मडी क्षेत्र के उत्पादक सदस्यों मे से होगे। यह भी प्रावधान है कि जब तक राज्य सरकार द्वारा तदर्थ समिति नामित नहीं की जाती है, मडी समिति से सम्बन्धित शक्तियो जिलाधिकारियो मे पूर्ववत बनी रहेगी। अभी तक शासन के द्वारा किसी मडी समिति की नामाकित समिति गठित नहीं की गयी है।[28]

प्रदेश की मंडी समितियों का मुख्य दायित्व निम्नलिखित कार्यो का सम्पादन करना है।[29]

❖ निर्दिष्ट कृषि उत्पादन के उत्पादको और उसके क्रय-विक्रय में लगे हुए व्यक्तियो के बीच न्यायपूर्ण व्यवहार सुनिश्चित करना।

❖ प्रधान मंडी स्थल तथा उपमडी स्थलो में विक्रेताओं द्वारा किए गए निर्दिष्ट कृषि उत्पादों का तत्काल भुगतान किया जाना सुनिश्चित करना।

---

[27] राज्य कृषि उत्पादन मंडी परिषद् उ०प्र० लखनऊ ।

[28] राज्य कृषि उत्पादन मडी परिषद् उ०प्र० लखनऊ ।

[29] "प्रगति के बारह वर्ष" १९८५ राज्य कृषि उत्पादन मंडी परिषद् उ०प्र० द्वारा प्रकाशित पृष्ठ सख्या २ ।

❖ निर्दिष्ट कृषि उत्पादन का वर्गीकरण तथा मान स्थापन करना।

❖ मडी क्षेत्र मे प्रयुक्त होने वाले बाटो मापो और तौलने तथा मापने के यत्रो की जाच और सत्यापन करना तथा बाट व माप अधिनियम के प्राविधानो के उल्लघन की सूचना सम्बन्धित अधिकारियो को देना।

❖ ऐसी समस्त सूचना का सग्रह एव प्रचार करना जो निर्दिष्ट कृषि उत्पादन के उत्पादको और उसके क्रय-विक्रय मे लगे हुए व्यक्तियों के लिए लाभप्रद हो।

❖ व्यापारिक परिव्ययो, मडी परिपाटियो और निर्दिष्ट कृषि उत्पादन के क्रय-विक्रय की प्रथाओ तथा रूढियो को स्थिर तथा विनियमित करना।

❖ प्रधान मडी स्थल और उपमडी स्थलों मे उत्पादकों और वहाँ पर क्रय-विक्रय में लगे हुए व्यक्तियो के लिए उचित सुख-सुविधा की व्यवस्था करना।

❖ प्रधान मंडी स्थल या उपमंडी स्थलो मे लाइसेस धारको मे आपस मे अथवा लाइसेस धारियों एव उन व्यक्तियो के बीच जो क्रय-विक्रय के सौदे करे, मतभेदो या विवादो के सभी मामलों मे मध्यस्थ या विचारक के रूप में कार्य करना।

प्रदेश की मडी समितियो के द्वारा ११४ निर्दिष्ट कृषि-उत्पादो की बिक्री पर एक प्रतिशत की दर से मडी शुल्क क्रेताओं पर लगाया एव वसूल किया जा रहा है। उपभोक्ताओं को की जाने वाली फुटकर बिक्री मंडी शुल्क की देयता से मुक्त है।[30]

(क) – कृषि :-

1. अन्न :-

१. गेहूँ, २. जौ, ३ धान, ४ चावल, ५. ज्वार,

६ बाजरा, ७ मक्का, ८. बेझर, ९. जई ।

2. द्विदलीय उत्पादन :-

१ चना, २ मटर, ३. अरहर, ४. उरद, ५ मूँग,

[30] राज्य कृषि उत्पादन मडी परिषद् उ०प्र० लखनऊ से प्राप्त ।

६ मसूर, ७ लोबिया, ८ सोयाबीन, ९ सनई (बीज),

१० ढेचा (बीज), ११ ग्वार

3. तिलहन :-

१ सभी प्रकार के सरसो तथा लाही (जिसमे राई, दुबा, तारामीरा और तोरिया भी सम्मिलित हैं), २ सेहुवा (बीज), ३ अलसी, ४ अन्डी, ५ मूँगफली,

६ तिल, ७ महुवा की गुठली, ८. खुल्लू, ९ बिनैला,

१० बर्रे अथवा कुसुम (बीज)।

4. रेशे :-

१ जूट, २. सनई का रेशा, ३ रूई (ओट और बिना औटी हुई),

४ पटसन, ५ ढेचा, ६ रामबांस, ७. मेसुट ।

5. स्वापक :-

१ तम्बाकू

6. मसाले :-

१. धनिया, २ पकी मिर्च, ३ मेथी (बीज), ४ सोंठ,

५ सौंफ, ६ हल्दी, ७. खटाई अमचूर, ८ जीरा ।

7. घास तथा चारा :-

१ भूसा

8. विविध :-

१ पोस्ता २ रामदाना, ३ बान, ४ निमकौनी,

५ महुआ का फूल (सूखा), ६ गुड़, ७. राब, ८. शक्कर,

९. खांडसारी, १० जगरी, ११. अखरोट, १२. चिरौंजी, १३. मखाना।

(ख) - उद्यानकर्म :-

1. शाक :-

१ आलू, २ प्याज, ३ लहसुन, ४ अरबी, ५ अदरख-टहरी,
६ मिर्च, ७ टमाटर, ८. बन्द गोभी, ९ टिण्डा, १० लौकी,
११ हरी मटर, १२ परवल, १३. कटहल (कच्चा), १४ ककड़ी - खीरा,
१५ पेठा, १६ भिण्डी, १७ कद्दू ।

2. फल :-

१ नींबू, २ नारगी, ३ मुसम्मी, ४ माल्टा, ५ ग्रेफ फ्रूट,
६ केला, ७ अनार, ६ स्ट्राबेरी, ९ खरबूजा, १० तरबूज,
११. पपीता, १२. सेब, १३. अमरूद, १४ बेर, १५ आँवला,
१६ लीची, १७. चीकू, १८ आडू लोकाटा १९ आम,
२० कटहल (पक्का), २१. खुबानी, २२ नाशपाती बनास, २३ चकोतरा ।

(ग) - द्राक्षा कृषि :-

१ अगूर

(घ) - पशुपालन उत्पाद :-

१ घी, २. खोवा, ३. चमड़ा और खाल, ४ ऊन

(ङ) - वन उत्पाद :-

१ गोंद, २ लकड़ी, ३. तेदू की पत्ती, ४ कत्था, ५ लाख

राज्य कृषि उत्पादन मण्डी परिषद उत्तर प्रदेश :-

उत्तर प्रदेश में कृषि मण्डियो के विनियमन एवं मंडी विकास के कार्यों में तीव्रता एव कुशलता लाने तथा प्रदेश की मण्डी समितियो के कार्यों का पर्यवेक्षण, नियत्रण एवं मार्गदर्शन् करने हेतु प्रदेश स्तर पर राज्य सरकार द्वारा २७ जून १९७३ से राज्य कृषि उत्पादन मण्डी परिषद् की स्थापना की गई है।

मण्डी परिषद् मे राज्य सरकार द्वारा नियुक्ति अध्यक्ष के अतिरिक्त निम्नलिखित शासकीय सदस्यों का प्राविधान है।[31]

- ✓ कृषि उत्पादन आयुक्त, उ०प्र० शासन यदि वह अध्यक्ष न हो।
- ✓ वित्त सचिव उ०प्र० शासन।
- ✓ खाद्य तथा रसद सचिव, उ०प्र० शासन।
- ✓ कृषि सचिव, उ०प्र० शासन।

मण्डी परिषद् की शक्तियाँ एवं कृत्य :-[32]

मण्डी अधिनियम के प्राविधानों के अधीन रहते हुए मंडी परिषद् के निम्न कृत्य हैं और इसे ऐसे कार्य करने की शक्ति है जो इन कृत्यों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक अथवा इष्ट कर है।

- ❖ मण्डी समितियों के कार्य संचालन तथा उनके अन्य कार्य कलापों जिनके अन्तर्गत ऐसी समितियो द्वारा नये मण्डी स्थलो के निर्माण, वर्तमान मण्डियो तथा मण्डी क्षेत्रो के विकास के लिए व्यवसायी कार्यक्रम भी है, का पर्यवेक्षण और नियत्रण
- ❖ समितियो को सामान्य रूप से अथवा किसी समिति को विशेषत· उसकी दक्षता को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से निर्देश देना।
- ❖ कोई अन्य कृत्य जो उसे अधिनियम द्वारा सौंपे जाये।
- ❖ ऐसे अन्य कृत्य जो राज्य सरकार द्वारा गजट में अधिसूचना द्वारा परिषद को सौंपा जाय।

मण्डी परिषद् की प्रगति :-

मण्डी परिषद् के कुशल अधीक्षण एव नियंत्रण में प्रदेश की मण्डी समितियो ने न केवल अधिनियम के प्राविधानों को प्रभावी ढग से लागू करने, प्रधान मण्डी स्थल एवं उपमण्डी स्थलों मे आवश्यक सुख- सुविधा दिलाने तथा उत्पादक विक्रेताओं को मण्डियों मे शोषण से बचाकर न्यायोचित व्यवहार दिलाने की

---

31 "प्रगति के बारह वर्ष" १९८५ राज्य कृषि उत्पादन मडी परिषद् उ०प्र० द्वारा प्रकाशित पृष्ठ सख्या ३ ।

32 "प्रगति के बारह वर्ष" १९८५ राज्य कृषि उत्पादन मडी परिषद् उ०प्र० द्वारा प्रकाशित पृष्ठ सख्या ३ ।

दिशा मे महत्वपूर्ण कार्य किया है अपितु इसके कार्यो मे भरी मात्रा मे निर्दिष्ट कृषि उत्पादो के उत्पादक विक्रेताओ मे विनियमित मण्डियो में अपनी उपज को लाकर बेचना आरम्भ कर दिया है जिससे प्रदेश की विनियमित मण्डियो को आवक मे उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।

कृषि उत्पादों का वर्गीकरण :-

कृषि उपज के वर्गीकरण का लाभ प्रदेश के उत्पादको को पहुँचाने की दृष्टि से प्रदेश के नवनिर्मित मण्डी स्थलो मे कृषि विपणन विभाग द्वारा स्थापित ५० प्राथमिक वर्गीकरण इकाइयाँ कार्यरत हैं। प्रत्येक वर्गीकरण इकाई मे वर्गीकरण निरीक्षक व एक कामदार का प्राविधान है तथा प्रत्येक इकाई के पास एक सुसज्जित वर्गीकरण प्रयोगशाला है। वर्गीकरण इकाई के कर्मचारियों के द्वारा मण्डी मे आने वाले उत्पादक विक्रेताओं को वर्गीकरण योजना की जानकारी दी जाती है ताकि इनमें वर्गीकरण के प्रति जागृति पैदा हो साथ ही साथ उनके द्वारा लायी गई कृषि उपज का दृष्टि परीक्षण कर उस पर वर्गीकरण तख्तियाँ लगाने का कार्य भी किया जाता है ताकि उनकी नीलामी के द्वारा बिक्री हो जाए और उत्पादक को अपनी उपज का उचित मूल्य प्राप्त हो सके।

उपर्युक्त वाणिज्यात्मक वर्गीकरण भारत सरकार के विपणन एव निरीक्षण निदेशालय के द्वारा निर्धारित गुण निर्दिष्टियो के अनुसार किया जाता है तथा वर्गीकरण निरीक्षको को भारत सरकार के निदेशालय द्वारा निर्धारित ग्रेडर कोर्स का प्रशिक्षण भी दिलाया जाता है।

मण्डियों में खर्चे :- (अध्ययनार्थ चुनी गई मण्डियों के संदर्भ में)

मण्डी के अन्तर्गत विक्रेता अथवा क्रेता द्वारा क्रय - विक्रय की प्रक्रिया मे किये जाने वाले खर्चे को मण्डी खर्च कहते हैं। मण्डी खर्च के अन्तर्गत अढ़तिया की आढ़त, दलाल की दलाली, तौलने के लिए तौलाई, पल्लेदार की पल्लेदारी, मण्डी शुल्क, बाजार शुल्क आदि के अतिरिक्त किसान को मिलावट के लिए गर्दा, उपज सूखने से उसका वजन घट जाता है इसलिए दलाल, मेहतर, पानीवाला आदि के लिए दाना तथा अस्पताल, गोशाला, मदिर आदि के लिए धर्मादा आदि देने पड़ते हैं। इन विभिन्न कटौतियों के कारण उपभोक्ता के रूपये में किसान का हिस्सा बहुत ही कम हो जाता है। एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत मे

उपभोक्ता के रूप मे किसान का हिस्सा चीनी मे ६५ १७ प्रतिशत, अलसी मे ७९ ३५ प्रतिशत, आलू में ५६ ३० प्रतिशत, गेहूँ मे ६८ ०० प्रतिशत पाया गया है।[33] कुल विपणन व्यय मे मध्यस्थो का प्रतिशत हिस्सा सबसे अधिक महाराष्ट्र मे व सबसे कम आध्र प्रदेश में पाया गया है।[34] अध्ययनार्थ चुनी गई मण्डियो मे उपभोक्ता मूल्य मे उत्पादक का हिस्सा गुड़ मे ८५ ९६ प्रतिशत, सरसो मे ६४ ७३ प्रतिशत, कच्ची हुक्का तम्बाकू ३३ ३ प्रतिशत रहा है।

मण्डियो के विनियमन के पश्चात् विनियमित बाजारो मे मण्डी समिति द्वारा विभिन्न कार्यकर्ताओ के लिए मण्डी खर्चों का निर्धारण किया गया है तथा अनाधिकृत खर्चों और कटौतियों की वसूली पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। भारत सरकार के विपणन एव निरीक्षण निदेशालय द्वारा किये गये एक अध्ययन के अनुसार औसत रूप से प्रचलित मूल्यों के आधार पर एक किसान को विनियमित बाजार मे १०० रू० मूल्य की उपज बेचने पर २.५० रू० मण्डी खर्चे देने पड़ते हैं इसके विपरीत, पूर्व विनियमन काल मे उसे ३ ९९ रू० देने पड़ते थे। इस प्रकार उत्पादक विक्रेता द्वारा दिये जाने वाले कुल मण्डी खर्चों में लगभग ५० प्रतिशत की शुद्ध बचत हुई है। इसके अतिरिक्त जब उत्पादक खुली नीलामी द्वारा अपनी वस्तुओ को बेचता है तो ऐसा अनुमान लगाया गया कि उसे १०० रू० मूल्य की वस्तु बेचने पर ३ से ५ रू० के उच्च भाव प्राप्त हो जाते है।

अत· अलग-अलग मण्डियो मे किए जाने वाले खर्चों में कुछ विभिन्नता है। मण्डी विनियमन के उपरान्त सारे परिव्यय क्रेता को देने की बात कही गई। किन्तु इसमें प्रतिबन्ध यह रहा कि नीलाम के पूर्व तौलाई या मापने अथवा सम्भालने के परिव्यय यदि कोई हो, जो मण्डी समिति द्वारा अपनी उपबंधियो मे निर्दिष्ट किये जाये, विक्रेता को देय होगे। इस प्रकार मण्डी में किसान से किसी भी प्रकार की कटौती को अवैध बताया गया। लेकिन विनियमित मण्डियों का प्रभाव मण्डी बाड़ा (बाउन्डरी) के अन्तर्गत ही रहता है, इसलिए अभी भी कुछ कटौतियों मण्डियो में किसानों द्वारा चोरी-छिपे पायी जाती है। चुनी गई मण्डियो में सर्वेक्षण के

---

[33] कुलकर्णी के० आर०   एग्रीकल्चरल मार्केटिंग इन इडिया वाल्यूम १ दि कोआपरेटर्स बुक डिपाट, बाम्बे वर्ष १९६४, पृष्ठ सख्या ४३१-४३२ ।

[34] भालेराव एम० एम० . भारतीय कृषि अर्थशास्त्र १९७९, पृष्ठ संख्या ४०९ ।

द्वारा तो अधिकांश मण्डी कार्यकर्ता एव व्यापारी यही बताते पाए गए कि मण्डी समिति द्वारा निर्दिष्ट परिव्यय से अधिक किसी प्रकार की वसूली नहीं होती है और किसान से कोई मण्डी खर्च नहीं लिया जाता है, लेकिन अधिकांश किसानो ने इस बात की पुष्टि की है कि अभी भी हमे नमूने के लिए कि०ग्रा० से ढेड़ कि०ग्रा० तक प्रति गाड़ी उपज देनी पड़ती है। दलाली, पल्लेदारी, गर्दा, नमी, आदि कटौतियाँ की जाती है। इसके पीछे एक महत्वपूर्ण कारण यह भी रहा है कि अधिकाश किसान अपनी उपज मण्डी बाड़ा मे बेचने के बजाय अढ़तिये के आढ़त एव पुराने बाजारो मे बेचते हैं जहाँ अभी मण्डी के कर्मचारियो का प्रभाव बहुत कम है। मण्डी बाडा मे अभी बहुत कम क्रय-विक्रय हो रहा है। इसके अतिरिक्त किसान जब गाँव से मण्डी आता है तो वहीं अपनी उपज तुरन्त बेचकर गाँव पहुँचने की बात सोचता है इसलिए वह इन छोटी-छोटी कटौतियों को कोई विशेष महत्व नहीं होता है।[35]

कायमगंज, बिल्थरा रोड़ और वाराणसी मण्डी मे अभी भी किसान से क्रमशः ५० पैसा प्रति सैकड़ा ५० से १ रू० प्रति कुन्तल की दर से दलाली ली जाती है। इसी प्रकार प्राय· सभी मण्डियो मे किसानो से ५०से ७५ पैसा प्रति बोरा तक पललेदारी एवं ७५० ग्राम नमूना प्रति गाडी वसूल होता है, जबकि मडी समिति के नियमानुसार यह खर्चे किसान से नहीं लिए जाने चाहिये। मडी समिति एव मडी के आढ़तिया व्यापारी के बाउचर मे इन खर्चों का उल्लेख भी नहीं किया जाता है, ये अपने रिकार्ड पर केवल मडी समिति द्वारा निर्धारित परिव्यय का उल्लेख करते हैं।

मडी मे यह प्राविधान तो है कि उत्पादक द्वारा किसी भी प्रकार का मण्डी खर्च नहीं लिया जाएगा किन्तु जो व्यापारिक परिव्यय हैं वह क्रेता से ही वसूल किया जाएगा। यहाँ क्रेता से तात्पर्य आढ़तिया या थोक व्यापारी एवं फुटकर व्यापारी से है। मंडी सचिवो के साक्षातकार से यह ज्ञात हुआ कि मंडी शुल्क मंडी के प्रथम क्रेता से वसूल किया जाता है जो प्राय· थोक व्यापारी या अढ़तिया होते हैं। किन्तु यह थोक व्यापारी इसका हस्तान्तरण फुटकर व्यापारी पर कर देता है। इस प्रकार इसका वास्तविक भार फुटकर व्यापारी पर पड़ता है। इसी प्रकार आढ़त, दलाली, पल्लेदारी, तौलाई आदि सभी खर्चे यदि थोक व्यापारी अथवा अढ़तिया वहन

---

[35] गुप्ता ए० पी० . मार्केटिंग ऑफ एग्रीकल्चरल प्रोड्यूस इन इण्डिया १९७५, पृष्ठ संख्या २३० ।

करता है तो वह उपज के मूल्य मे इन सारे खर्चों को जोड़कर ट्रक समेत माल की बिक्री कर देता है और कभी-कभी जब फुटकर व्यापारी दलाल के माध्यम से खरीद करता है तो उसे इन खर्चों को अलग से देना पडता है। इस प्रकार से यह सपूर्ण मडी खर्च सम्मिलित रूप से थोक व्यापारी एव फुटकर व्यापारी द्वारा वहन किये जाते हैं जो अन्त मे उपभोक्ता मूल्य मे जुट जाता है।

अत "प्रत्येक मडी मे कमीशन अधिकतम १.५० प्रतिशत तक ही वसूल किया जाता है। दलाली अधिकाश मंडियो मे ५० से १ रू० प्रति सैकड़ा तक है। दलाली विभिन्न उपजो के अनुसार अलग-अलग पायी जाती है। वाराणसी मे सरसों तेल के लिए १२ आना प्रति सैकड़ा तक दलाली पायी जाती है जिसमे ४ आना प्रति सैंकड़ा क्रेता को एवं ८ आना प्रति सैकड़ा विक्रेता को वहन करना पड़ता है। तौलाई मे भी विभिन्न मडियो में कुछ भिन्नता है सर्वाधिक ५० से ७५ पैसा प्रति बोरा ली जाती है। अन्य मडियो मे यह २५ से ५० पैसा प्रति बोरा के मध्य है। इसी तराह पललेदारी बिल्थरा रोड में ४० से ७० पैसा प्रति क्विंटल, वाराणसी मे ४५ से ५५ पैसा प्रति क्विटल, कायमगज मे ४० से ५५ पैसा प्रति क्विटल, गोन्डा मे २५ से ३५ पैसा प्रति प्रति क्विटल, देवरिया मे ६० पैसा प्रति बोरा, कानपुर में २५ से ५० पैसा प्रति क्विंटल, मुजफ्फर नगर में ५० पैसा प्रति क्विंटल पायी गयी। मंडी शुल्क प्रत्येक मंडी मे १ प्रतिशत की दर से निर्धारित है एव वसूल किया जाता है।[36]

मंडी शुल्क व्यापारी से निम्नलिखित रीति से वसूल किया जाता है।[37]

- यदि निर्दिष्ट कृषि उत्पादन अढ़तिया के माध्यम से अथवा सीधे व्यापारी को बेचा जाय, तो यथास्थिति आढतिया या व्यापारी बिक्री बाउचर मे विक्रेता से मडी शुल्क लेगा और इस प्रकार वसूली की गई मडी शुल्क की धनराशि को समिति द्वारा तदर्थ जारी किए गए निर्देशों के अनुसार मडी समिति के पास जमा करा देगा।
- यदि निर्दिष्ट कृषि उत्पादन विक्रेता द्वारा सीधे उपभोक्ता को बेचा जाय तो मडी समिति द्वारा तदर्थ प्राधिकृत उसके कर्मचारी द्वारा वसूल किया जाएगा।

---

[36] उ०प्र० कृषि उत्पादन मडी अधिनियम १९९४ के अधीन बनाई गई नियमावली, पृष्ठ सख्या २८ ।
[37] उत्तर प्रदेश कृषि उत्पादन मण्डी (अमेन्डमेन्ट) रूल्स, १९६८ के अनुसार निर्धारित है ।

- लाइसेन्स शुल्क का भुगतान लाइसेन्स के लिए प्रार्थना पत्र के साथ किया जाएगा।
- मडी शुल्क तथा लाइसेन्स शुल्क का भुगतान मडी- समिति को नकदी में किया जायेगा।

मडियो मे विनयमन से पूर्व अनियत्रित बाजारो मे किसानो से अनेक प्रकार की कटौतियॉ व्यापारी वसूल करते थे। फलत उपभोक्ता के रूपये मे किसान का हिस्सा बहुत ही कम हो जाता था। किन्तु अब मण्डी मे वसूल किये जाने वाले खर्च स्पष्ट एव पूर्व निश्चित है। नियमित मडियो मे अनियमित मडियो की अपेक्षा खर्चे कम लिए जाते हैं और किसानो एव विक्रेताओ से मध्यस्थ मनमाने खर्चे नहीं वसूल सकते हैं। यह सत्य है कि मडी अधिनियम द्वारा निर्धारित व्यापारिक परिव्यय से अधिक वसूली चोरी छिपे मध्यस्थ किसानो से कर लेते है, किन्तु विनियमन से पूर्व होने वाली वसूली की तुलना मे यह काफी कम है। विनियमित मडियो मे विपणन प्रणाली तथा व्यवहार वैज्ञानिक एवं सुसगठित होते हैं। इनमे एकरूपता पायी जाती है। विनियमित मडियों मे तौल मे कोई गड़बड़ी नही पायी जाती है, क्योकि तौल मडी के कर्मचारियों के सामने होती है। किसानो को भुगतान हेतु इन्तजार नहीं करना पड़ता है। भुगतान माल की बिक्री के तुरन्त बाद कर दिया जाता हैं। विनियमित मडियो मे प्रभावीकरण एवं वर्गीकरण की सुविधाये भी प्रदान की जाती है जिससे कृषको को उत्पादन का सही मूल्य प्राप्त हो जाता है। विनियमित मंडियों की आमदनी का कुछ हिस्सा कृषको की सुख सुविधा तथा आराम के लिए व्यय किया जाता है ताकि पशुओं एवं मालो को धूप एवं पानी से सुरक्षित रखा जा सके। सड़को को पक्का कराया जाता है ताकि किसान को अपना माल मण्डी तक लाने में असुविधा न हो। विनियमित मंडियो मे जितने भी मध्यस्थ कार्य करते हैं उनको मंडी समिति से अनुज्ञा पत्र लेना पड़ता है। यदि मध्यस्थ किसी प्रकार की अनियमितता करने से कतराते हैं, जिससे इन मडियों मे अनियमितताओं की कमी पायी जाती है। विनियमित मंडियों से उपभोक्ताओ को भी लाभ होता है।,क्योंकि उनको उचित मूल्य पर वर्गीकृत एवं श्रेणीकृत वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। स्पष्ट है कि विनियमित मण्डियों से किसान, विक्रेता एवं उपभोक्ता तीनो को लाभ हुआ है।

कृषि में जैव उर्वरकों का उपयोग :-[38]

सन् १९६४-६५ के दौरान कृषि में जो हरित क्रान्ति आई थी उसमे रासायनिक उर्वरको का लगभग ५० प्रतिशत योगदान था। इससे साफ जाहिर है कि कृषि मे रासायनिक उर्वरको का समूचित उपयोग कर प्रति इकाई क्षेत्र उपज बढाई जा सकती है किन्तु इनके मँहगा होने एव निरंन्तर बढ़ रही कीमतो के कारण अधिकाश किसान सब्जियो की खेती में उर्वरकों का उपयोग प्रस्तावित मात्रा के अनुसार नहीं कर पाते, दूसरी ओर अपने देश मे उर्वरको की आन्तरिक माँग को पूरा करने के लिए प्रति वर्ष भारी मात्रा मे इनका आयात करना पड़ता है जिस पर देश की काफी मुद्रा खर्च होती है। ऐसी स्थिति में जैव उर्वरकों का उपयोग कृषि उत्पादन के लिए वरदान साबित हुआ है। जैव उर्वरक रासायनिक उर्वरकों की तुलना मे अधिक असरकारक, सन्तुलित एव सस्ते होते हैं जिन्हे गरीब से गरीब किसान उपयोग में ला सकता है। इनके उपयोग से पौधों के लिए नत्रजन एव फास्फोरस तत्व की उपलब्धता बढ़ जाती है साथ ही कुछ विशेष हार्मोन्स एवं विटामिन्स भी पौधो को मिलते हैं। जिससे बीजो का अकुरण, जड़ों का विकास एव पौधों की वृद्धि अच्छी होती है।

जैव उर्वरक क्या है ?[39]

वैज्ञानिकों ने कुछ ऐसे जीवाणुओं की खोज की है जो पौधों के साथ असहजीवी रूप मे रहकर वायुमण्डलीय नाइट्रोजन की भूमिका मे स्थिर करने एव भूमि मे मौजूद अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील बनाने का काम करते हैं इससे पौधो के लिए भूमि मे नाइट्रोजन एव फास्फोरस तत्व की उपलब्धता बढ जाती है ऐसे जीवाणुओ को किसानो तक पहुँचाने के लिए किसी उचित माध्यम की आवश्यकता होती है जिसे तैयार करने के लिए कोयले के चूर्ण, लिग्नाइट, मिट्टी तथा रासायनिक पोषक तत्वों की निश्चित मात्रा को १० प्रतिशत पानी में नम करके मशीनो मे अनावश्यक जीवाणुओं का हनन किया जाता है। इस तरह बने जीवाणु रहित माध्यम को ४८ घण्टे तक ठण्डा कर लिया जाता है। इसके बाद इस माध्यम मे फसलो के लिए उपयोगी जीवाणुओ को मिलाकर पैकेट तैयार किए जाते हैं, जिन्हे हम जैव उर्वरक कहते हैं। पैकटो को तैयार करने के

---

[38] डॉ० सिंह धर्म, कृषि में जैव उर्वरको का उपयोग प्रतियोगिता दर्पण, अप्रैल, १९९४, पृष्ठ संख्या १२०६ ।
[39] डॉ० सिंह धर्म, कृषि में जैव उर्वरकों का उपयोग प्रतियोगिता दर्पण, अप्रैल, १९९४, पृष्ठ सख्या १२०६ ।

बाद उचित तापमान पर रखा जाता है। लगभग एक सप्ताह में जीवाणुओ की सख्या और बढ़ जाती है ये पैकेट किसानो को वितरित किए जाते हैं ।

जैव उर्वरकों का वर्गीकरण :-

कृषि के लिए उपयुक्त एवं प्रस्तावित कुछ जैव उर्वरक निम्नलिखित हैं –

(अ) माइक्रोफॉस जैव उर्वरक :- इस वर्ग की खादों मे ऐसे जीवाणुओं का समावेश किया जाता है जो रॉक फास्फेट एव मिट्टी मे पाए जाने वाले अघुलनशील, फॉस्फोरस को घुलनशील बना देते हैं जिससे पौधो मे फॉस्फोरस तत्व की उपलब्धता बढ़ जाती है। ऐसे जीवाणुओ मे स्यूडोमोनास स्ट्रिएटा एव वैसीलस पौलीमिक्सा मुख्य है। इन जीवाणुओ के अलावा माइक्रोफॉस खाद मे एस्परजिलस अवामोरी नामक फफूँद का भी समावेश किया जाता है। यहाँ यह बात उललेखनीय है कि पौधो को दिए जाने वाले फास्फेट उर्वरको की उपयोग क्षमता मात्रा १५ से २० प्रतिशत होती है। शेष फास्फोरस अचल होने एव अघुलनशील रूप मे रहने के कारण पौधो को प्राप्त नहीं होता। अतः माइक्रोफॉस जैव उर्वरक का उपयोग कर फॉस्फेट उर्वरको की उपयोग क्षमता बढाई जा सकती है।[40]

(ब) अजोटोबेक्टर जैव उर्वरक :- इस खाद में ऐसे जीवाणुओ का समावेश किया जाता है जो वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का भूमि मे स्थिरिकरण कर पौधो को नाइट्रोजन उपलब्ध कराते हैं। हमारे चारो ओर वायुमण्डल में प्रति हेक्टेयर भूमि के ऊपर लगभग ८०,००० टन नाइट्रोजन मौजूद रहती है जिसे पौधे प्रत्यक्ष रूप से ग्रहण नहीं कर पाते। इस वर्ग की खाद में पाए जाने वाले जीवाणुओं पौधों के साथ असहजीवी रूप मे रहकर वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को उपलब्ध कराते हैं।

हाल ही में ऐसे जीवाणुओं की खोज की गई है जिनके द्वारा भूमि में कम्पोस्ट खाद्य तैयार की जा सकती है। ऐसे जीवाणुओ से जैव उर्वरक तैयार करने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के सूक्ष्म जीव-विज्ञान सम्भाग मे तेजी से कार्य हो रहा है। आशा है कि कम्पोस्ट तैयार करने वाला जैव उर्वरक शीघ्र ही किसानो को उपलब्ध हो जाएगा।

---

[40] डॉ० सिह धर्म, कृषि मे जैव उर्वरको का उपयोग प्रतियोगिता दर्पण, अप्रैल, १९९४, पृष्ठ संख्या १२०६ ।

(स) राइजोबियम जैव उर्वरक :- मुख्य रूप से दलहनी और कुछ तिलहनी फसलो के अति लाभकारी है। राइजोबियम जैव उर्वरक में उपस्थित राइजोबियम जीवाणु वायु से नाइट्रोजन लेकर भोजन के रूप मे पौधो को देते हैं। विभिन्न फसलो मे अलग-अलग तरह के राइजोबियम जीवाणु पाए जाते है और उनके द्वारा नाइट्रोजन अनुबन्ध की क्षमता भी अलग-अलग होती है। यदि किसी फसल के लिए सस्तुत राइजोबियम जीवाणु का उपयोग दूसरी फसल के साथ कर दिया जाए तो उन जीवाणुओ द्वारा नाइट्रोजन अनुबन्धन सम्भव नहीं होता है। राइजोबियम कल्चर दलहनीय फसलो के अनुसार अलग-अलग होता है। अतएव अभीष्ट परिणामो के लिए प्रत्येक फसल के लिए निर्धारित कल्चर ही उपयोग किया जाता है, दूसरा नहीं।

(द) नील हरित शैवाल (जैव उर्वरक) :- प्राकृतिक नाइट्रोजन प्राप्त करने का प्रमुख साधन है जो वायुमण्डल से नाइट्रोजन लेकर भूमि मे सचित करता है। मुख्य रूप से धान का खेत नील हरित शैवाल की वृद्धि के लिए उपयुक्त होता है, क्योंकि इसकी वृद्धि के लिए आवश्यक ताप, प्रकाश, नमी और पोषक तत्वो की मात्रा और दशाएँ उसमे मौजूद रहती है। नील हरित शैवाल और एजोला मे सहजीवी सम्बन्ध पाया जाता है।

फसलों में जैव उर्वरक का उपयोग कैसे करें ?

विशेषकर सब्जियो और दलहनी फसलो मे जीव उर्वरको का समुचित प्रयोग करने के लिए विधियो प्रस्तावित की गई हैं जो इस प्रकार हैं:-

(क) बीज उपचार विधि :- [41] यह विधि भिण्डी, आलू, करेला, लौकी, टिण्डा, तोरई, लहसुन, आदि उन फसलो मे प्रयोग की जाती है जिनके बीज बिना पौध तैयार किए सीधे खेत में बोए जाते हैं ऐसी फसलो मे जैव उर्वरको से बीज उपचार हेतु पहले एक लीटर पानी में १०० ग्राम गुड़ या शक्कर मिलाकर उबाला जाता है इसके बाद घोल को अच्छी तरह ठण्डा करके उसमे जीवाणु खाद का एक पैकेट घोल कर अच्छी तरह मिला देते हैं इस तरह तैयार घोल को बीजों के ऊपर छिडक कर इस प्रकार मिलाते हैं कि सभी बीजो के ऊपर घोल की समान परत चढ़ जाए। घोल की मात्रा बीजों की आकृति, आकार एवं उनके वजन के अनुसार

---

[41] डॉ० सिह धर्म, कृषि मे जैव उर्वरकों का उपयोग प्रतियोगिता दर्पण, अप्रैल, १९९४, पृष्ठ सख्या १२०६ ।

निर्धारित की जाती है। बडे आकार के बीजो के लिए अधिक घोल और छोटे बीजो के लिए कम घोल तैयार किया जाता है। उपचारित बीजो को छाया मे सुखाकर बोया जाता है। उपचार के २४ घंटे बाद तक बोआई सम्भव न हो पाने पर बीजो को पुन: उपचारित करना चाहिए। यदि बीजो का उपचार फफूँद नाशक एव कीटनाशी रसायनों से भी करना आवश्यक है तो पहले कीटनाशी दवाओ से और बाद मे फफूँदनाशक दवाओ से उपचार करना चाहिए। इन दवाओ से उपचार करने के एक सप्ताह बाद जैव उर्वरक से उपचार करना चाहिए।

(ख) जड़ों को घोल में डुबोकर :- टमाटर, बैगन, मिर्च, प्याज, आदि उन शाकीय फसलों मे इस विधि का उपयोग किया जाता है जिनकी नर्सरी से पहले पौध बनाई जाती है। ऐसी फसलो मे जैव उर्वरक का उपयोग करने के लिए ५ लीटर पानी मे जीवाणु खाद की एक पैकेट मिलाकर घोल बनाते हैं। इस घोल मे नर्सरी से उखाड़े गए पौधों की जड़ों को २-३ मिनट तक डुबोकर रोपा जाता है।

(ग) भूमि में छिड़ककर :- इस विधि मे जैव उर्वरक के १० पैकेट लेकर २५ कि०ग्रा० गोबर की पूर्णत: सड़ी खाद एव २५ कि०ग्रा० नम मिट्टी के साथ मिलाकर मिश्रण को पौध रोपने से कुछ समय पूर्व छिड़ककर मिट्टी मे मिला देते हैं। इस विधि का उपयोग उसी समय करना चाहिए जब पूर्व दोनो विधियो का उपयोग असम्भव हो, क्योकि इस विधि मे जैव उर्वरको की क्षमता घट जाती है साथ ही प्रस्तावित मात्रा से ४ गुणा जीवाणु खाद प्रयोग मे लाना पड़ता है।

जैव उर्वरक की उपयोग की जाने वाली मात्रा विभिन्न फसलों के अनुसार अलग-अलग होती है। सामान्य तौर पर ढाई पैकेट (५०० ग्राम) जैव उर्वरक एक हेक्टेयर क्षेत्र में बोये जाने वाली बीज एवं रोपे जाने वाली पौध के उपचार हेतु पर्याप्त होता है।

जैव उर्वरकों को सुरक्षित कैसे रखें ?

जीवाणु खादो खरीदने के बाद किसी कारणवश उपयोग मे नहीं लाया गया है तब उन्हे सुरक्षापूर्वक भण्डारित करने की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए शुष्क, अंधेरे एव छायादार स्थान का चुनाव करना चाहिए। ऐसे स्थान पर गड्ढा खोदकर मिट्टी के घड़े को इस प्रकार दवाएँ कि उसके चारो तरफ से ६ से

८ इच मोटी बालू की परत लग जाए। घड़े के मुँह को जमीन की सतह से ऊपर रखा जाता है। घड़े मे जीवाणु खाद के पैकेट रखकर मुँह बद कर देते हैं। समय-समय पर बालू को पानी से नम किया जाता है।

जैव उर्वरक से लाभ :-

- अजोटो बेक्टर एव माइक्रोफॉस जीवाणु खादो से उपचारित शाकीय फसलों मे क्रमश १५ से ३७ एव १२ से २७ प्रतिशत अतिरिक्त उपज मिलती है।
- जीवाणु खादो के उपयोग से मुख्य तत्व नाइट्रोजन एव फास्फोरस के अलावा विशेष प्रकार के हार्मोन्स एव विटामिन्स भी पाधो को उपलब्ध होते हैं जिससे बीजो की अकुरण क्षमता एव पौधो की वृद्धि बढ़ जाती हैं।
- शुष्क एव वर्षा आधारित खेती मे रासायनिक उर्वरको से वाछित लाभ नही मिल पाता जबकि ऐसी परिस्थिति मे जैव उर्वरक का उपयोग कर भरपूर उपज भी ली जा सकती है।
- जैव उर्वरकों के उपयोग से वायुमण्डलीय प्रदूषण नही होता और न इनका विषैला प्रभाव जमीन एव मानव स्वास्थ्य पर पड़ता है।
- जीवाणु खाद बहुत ही सस्ते होते हैं अतःहर गरीब किसान इनका उपयोग कर सकता हैं।
- जैव उर्वरक एन्टीबायोटिक्स का श्रावण करते हैं अतः ये बायो - पेस्टीसाइड का काम करते हैं।
- जैव उर्वरक द्वारा वायुमण्डलीय अप्राप्य नाइट्रोजन से प्रतिवर्ष ५० से २०० कि०ग्रा० प्राप्य नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर भूमि मे स्थिर कर दी जाती है जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है साथ ही फसलों को दिए जाने वाले नाइट्रोजन धारी उर्वरकों की मात्रा मे १० से २० कि०ग्रा० प्रति हेक्टेयर की कमी करके फसलोत्पादन लागत भी घटाई जा सकती है।
- जैव उर्वरको के उपयोग से भूमि की भौतिक सरचना एवं रासायनिक गुणों मे पर्याप्त सुधार होता है।

जैव उर्वरक के प्रयोग में सावधानियाँ :-

जैव उर्वरकों से भरपूर लाभ लेने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना अनिवार्य है।

- जैव उर्वरक के पैकेटो का इस्तेमाल उसी फसल के लिए करें जिसके लिए वह प्रस्तावित किए गए हैं।

- पैकेट खरीदते समय उसका नाम तथा उपयोग मे लाने की अन्तिम तिथि अवश्य देखे और अन्तिम तिथि से पहले ही टीके का प्रयोग कर ले।
- पैकेट खरीदने के बाद कीटाणुनाशक दवाओ, धूप एवं गर्मी से बचाकर सुरक्षित रखे और केवल इस्तेमाल के समय ही उन्हे खोलें।
- जीवाणु टीको को रासायनिक उर्वरको के साथ न मिलाएँ, खासतौर पर यूरिया फसल की बोआई एव पौध रोपनी के समय न दे।
- कीटनाशक दवाएँ जैव उर्वरक के साथ न मिलाएँ, यदि कीटनाशको से बीज उपचार करना हो तो पहले कीटनाशकों से और इसके एक सप्ताह बाद जैव उर्वरक से उपचार करें, पारायुक्त रसायनो से बीज उपचार करने पर जैव उर्वरकों की दोगुनी मात्रा व्यवहार मे लाएँ।
- मिट्टी की जाँच अवश्य कराएँ। यदि मिट्टी अम्लीय हो तो जैव उर्वरक से उपचारित बीजों पर तुरन्त कैल्सियम कार्बोनेट पाउडर और क्षारीय हो तो बारीक जिप्सम पाउडर की परत चढ़ा दे।
- बीज उपचार की पूरी प्रक्रिया सुबह एवं छायादार स्थान पर करे और बीजो को छाया में सुखाकर तुरन्त बोआई कर दें। उपचार के २४ घण्टे बाद तक बोआई सम्भव न होने पर पुनः जैव उर्वरक से उपचार करे।
- जीवाणु टीको के उपयोग में कोई बात समझ में न आने पर कृषि विशेषज्ञों से सलाह लें।

वर्तमान दशाओ में जैव उर्वरकों का उपयोग सम्भावित लक्ष्य को प्राप्त करने मे अत्यन्त लाभकारी होगा और देश की कृषि विकास सम्बन्धित आर्थिक नीति को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण सहयोग मिलेगा। जैव उर्वरकों के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए कृषकों, प्रसार कार्यकर्ताओ और वैज्ञानिकों को विशेष प्रयास करने चाहिए इसके साथ ही साथ भारत सरकार और कृषि विभाग को जैव उर्वरको के कल्चर उपलब्धता और उपयोग को बढ़ाने हेतु कृषकों के लिए प्रोत्साहन योजना बनानी चाहिए।

भारत में श्वेत क्रांति :-

भारतीय कृषि एव पशुपालन एक दूसरे के अभिन्न अग हैं और रहे हैं यदि कृषि मे विकास होगा तो पशुपालन मे भी विकास होगा। अत एक नजर कृषि के वर्तमान विकास, समस्याओं आदि पर डालना आवश्यक है।

भारतीय कृषि की उत्पादकता विगत दशको मे बहुत नाटकीय ढंग से बढ़ी, विशेष रूप से सिचित दशाओ मे धान्य उत्पादन की उल्लेखनीय प्रगति जिसे कृषि में हरित क्राति कहा गया। लेकिन इसी से सतुष्ट नहीं होना चाहिए, क्योकि विगत ५-६ वर्षों मे फसलों के उत्पादन एव उत्पादकता में अनुपातिक गिरावट ही नहीं देखी गई, बल्कि कुछ ठहराव भी देखने मे आया है ऐसी स्थिति मे जनसंख्या वृद्धि को देखते हुए चिन्ता अवश्य हुई है, अत कृषि वैज्ञानिको के लिए यह एक चुनौती भरा प्रश्न है। दूसरी ओर खेती योग्य भूमि शहरीकरण के अन्तर्गत आती जा रही है , जहाँ बहुमजिलीय इमारते देखने को मिल रही है और कृषि को उबड़-खाबड़ एव कम उपजाऊ वाली भूमियों की तरफ धकेला जा रहा है। सिचाई की क्षमता (नहरो, नलकूपो, कुओ) मे भी अब वृद्धि नहीं प्रतीत हो रही है। जहाँ नहर से सिंचाई की जा रही है। वहाँ भूमि में लगातार लवणीयता विकसित हो रही है तथा बिना जीवाणु के अकार्बनिक उर्वरको एवं रसायनो के लगातार प्रयोग ने भी प्रतिकूल असर डाला है। साथ ही किसान के खेत की उपज एव अनुसधान केन्द्र की उपज मे काफी गहरी खाई (अन्तर) है, जिसे पाटना होगा।

भविष्य मे खाद्यान्न उत्पादक का यह स्वरूप अधिक आशावान दिखाई नहीं पड़ रहा है, अत· अधिकतम उत्पादन में ससाधन और पर्यावरण कारण चुनौती दे रहे हैं, उनके महत्व को प्राथमिकता देनी होगी। प्राकृतिक साधनो मे कमी का आना, अधिक लागत एव ऊर्जा उपयोग । वर्षा की कमी से एव निरन्तर प्रतिवर्ष घटोत्तरी से भूमि के जल स्तर में गिरावट का आना एवं भूमिगत पानी का रीचार्ज न होना पर्यावरण में ह्रास आदि पर ध्यान देना होगा। यदि इन विषमताओं को भविष्य मे दूर कर दिया जाए, तभी खाद्यान्न उत्पादन की गति और जनसंख्या वृद्धि में अनुरूपता लाई जा सकेगी। फलस्वरूप समगतिशील खेती भी इन परिस्थितियो मे सम्भव होगी, वास्तव में समगतिशील खेती है - " **मानव की बदलती हुई आवश्यकताओं की**

आपूर्ति हेतु कृषि में लगने वाले संसाधनो का इस प्रकार सफल व्यवस्थित उपयोग किया जाना ताकि प्राकृतिक साधनों का ह्रास न होने पाए और पर्यावरण भी सुरक्षित रहे, जो आज की अत्यन्त आवश्यकता है।"

कृषि एवं डेयरी उद्योग का आपसी सम्बन्ध :-

ठीक कृषि से जुड़ा एक डेयरी व्यवसाय (उद्योग) भी है, जिन्हें (दोनो को) साथ-साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर साथ निभाना है। यह सच है कि बगैर खेती के डेयरी व्यवसाय सम्भव नही, क्योकि पशुओ के लिए हरा एव सूखा चारा, दाना (रातव), खली, बिनौले आदि सभी खेती से ही मिलते हैं और इसके विपरीत डेयरी उद्योग से खेती के लिए बैल, बछड़े, भैंस आदि जानवर, गोबर एव मलमूत्र की खादें आदि मिलती हैं, अत दोनो ही व्यवसाय एक दूसरे पर निर्भर हैं। स्वास्थ्य विशेषज्ञों के अनुसार मनुष्य को अनाज द्वारा ही पेट भरना काफी नहीं है, बल्कि सतुलित आहार लेना अनिवार्य हैं। शाकाहारी व्यक्तियों के लिए इसकी पूर्ति केवल दुध से ही सम्भव है। क्योकि दूध को ही मानव का पूर्ण भोजन माना गया है। वैसे आहार में चावल के बाद दूध का दूसरा स्थान है। अत डेयरी उद्योग से ग्रामीणो की आमदनी बढ़ाना और व्यवसायिक दृष्टि से दुग्ध उत्पादन बढ़ाना, इस व्यवसाय का मुख्य लक्ष्य है। कहा जाता है कि प्राचीन काल में (मुख्य रूप से भगवान कृष्ण के जमाने में) हमारे देश मे दूध की नदियाँ बहा करती थी, लेकिन बाद में दूध का उत्पादन धीरे-धीरे कम होता चला गया, जो एक चिताजनक बात है जिसे पुन बढ़ाने हेतु प्रयास जरूरी हैं। दूध के क्षेत्र मे क्राति लाना ही श्वेत क्रांति कहलाता है।

डेयरी उद्योग हेतु पोषण मानक एवं दूध उपलब्धता:-[42]

निश्चय ही भूमि पर बढ़ते हुए दबाव एव भूमि का पीढ़ी दर पीढ़ी बँटवारा एवं धान फसलो के उत्पादन ने डेयरी विकास के लिए आवश्यक अवसर प्रदान किया है। यह पूर्णतया स्थापित हो चुका है कि औसतन २००० लीटर दूध उत्पादन प्रति क्रॉस ब्रीड गाय से प्रति व्यात (१४ माह का जिसमें ४ माह उसकी सूखी अवधि भी शामिल हैं, अर्थात् १० माह यानी ३०० दिन) मिल जाता है। ऐसी ही ४ क्रॉस ब्रीड गाय से

---

[42] डॉ० राजपूत ओ० पी०, भारत में श्वेत क्रांति, प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त, १९९४, पृष्ठ संख्या ८२ ।

४ एकड भूमि पर खरीफ और रबी की फसलो से आय प्राप्त की तुलना में अधिक मुनाफा मिलता है। बशर्ते पशुओ को सन्तुलित आहार निर्धारण एव उचित प्रबन्ध मे रखा जाए। यह पुन. कहना उचित ही होगा कि डेयरी उद्योग और फसल उत्पादन का आपसी सामजस्य परम आवश्यक है। वर्तमान में दूध उपलब्धता १७४ ग्राम/दिन/व्यक्ति है जो पिछले दशक की तुलना मे (१३६ ग्राम) उल्लेखनीय वृद्धि रही है। फिर भी पोषण सलाहकार समिति की सस्तुति २८३ ग्राम/दिन व्यक्ति की तुलना मे काफी कम है दूध उपलब्धता की सन् २००० ई० तक २०० ग्राम/दिन/व्यक्ति बढ़ाने की प्रबल सम्भवना है । कुल मिलाकर देखा जाए तो दूध उपलब्धता पिछले ५ दशको मे, इस प्रकार रही है - १९४७ (१५२ ग्राम/दिन/व्यक्ति), १९६६ (१०८ ग्राम/दिन/व्यक्ति), १९७० (१०५ ग्राम/दिन/व्यक्ति), १९८१ (१२२ग्राम), १९८९ (१५७ ग्राम) एवं १९९० मे (१७२ ग्राम) इन आंकडो से आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है कि शुरू मे दूध उपलब्धता अधिक थी। बीच मे घटी और बाद मे पुन बढ़ी इसके ठीक विपरीत, कृषि उत्पादन के सभी क्षेत्रो में अन्न/तेल/दाल की उपलब्धता प्रति व्यक्ति प्रति दिन गत वर्ष की तुलना मे निरन्तर घट रही है। उदाहरण के तौर पर वर्तमान में प्रति व्यक्ति वार्षिक भोजन उपलब्धता लगभग १९० किग्रा० है। इस स्तर पर भोजन उपलब्धता प्रति व्यक्ति द्वारा ऊर्जा ग्रहण विश्व खाद्य सगठन द्वारा निर्धारित उर्जा आवश्यकता से कम है। दलहन उपभोग मात्र ३६ ग्राम/दिन/व्यक्ति है। जबकि १०४ ग्राम/दिन/व्यक्ति संस्तुत है। खाद्य तेल भी ५ कि०ग्रा०/वर्ष/व्यक्ति निर्धारित है। इसी प्रकार खाने हेतु मॉस की उपलब्धता १४ ग्राम/व्यक्ति दिन ही है जिसमे भी पुनःगिरावट है, क्योकि दूध की अपेक्षाकृत अधिक उपलब्धता एवं धार्मिक बन्धनो ने इसे अधिक प्रभावित किया है। साथ ही ग्रामीण इलाको मे रहने वाले अधिकाशत व्यक्ति शाकाहारी है। इस प्रकार इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि मानव के आहार में दाल, तेल, मॉस आदि की उपलब्धता में काफी कमी आई है, अथवा निर्धारित पोषण पैमाने से काफी कम मिल रहा है जब कि दूध की उपलब्धता में आशातीत् वृद्धि हुई है और आगे भी बढ़ने की पूर्ण आशा है।

डेयरी व्यवसाय का सूत्रपात :- [43]

सर्वप्रथम देश मे सन् १८८९ में इलाहाबाद " **मिलिट्री डेयरी फार्म** " प्रारम्भ हुआ था और यहीं से १९३१ मे देश का सर्वप्रथम दुग्ध सहकारी संघ आरम्भ हुआ। आज देश के प्राय· सभी बडे नगरो मे " **कुछ सहकारी संघ** " स्थापित हो चुके है जो दूध को एकत्र करके संसाधित करते हैं और शहरो के उपभेक्ताओ को उचित मूल्य पर उपलब्ध कराते हैं। सहकारी सघ के नाते किसान एव दूध उत्पादको को, जो समिति के सदस्य होते हैं दूध के उचित मूल्य के अतिरिक्त पशुधन के विकास तथा स्वास्थ्य के लिए अनेक प्रकार के ऋण प्रदान किए जाते हैं।

२ अक्टूबर १९५२ से देश मे सामुदायिक विकास कार्यक्रम शुरू किए गए, ताकि ग्रामीणो का सर्वांगीण विकास किया जा सके । इन कार्यक्रमो मे पशुपालन के साथ-साथ कृषि, स्वास्थ्य व सफाई, आहार एव पोषण, शिक्षा, जन कल्याण कार्यक्रम, परिवहन एव सचार साधनो की स्थापना घरेलू दस्तकारी, ग्राम्य उद्योग आदि भी शामिल थे बाद मे सन् १९६४-६५ में सघन पशु विकास प्रोग्राम चलाया गया, जिसके अन्तर्गत 'धवल क्राति अथवा श्वेत क्रांति' लाने के लिए पशु मालिकों का पशुपालन के सुधरे तरीको का पैकेज प्रदान किया गया बाद मे 'श्वेत क्रांति' की गति और तेज करने के लिए ऑपरेशन फ्लड आरम्भ किया गया।[44]

डेयरी उद्योग की वर्तमान स्थिति :- [45] इस समय देश मे कुल दूध उत्पादन ५० मिलियन टन (१९८९-९०) है जिसमे भैंस गाय, बकरी का हिस्सा २५, ५९, २३ व १.५ मिलियन टन का क्रमश· है। वैसे दूध देने वाले पशुओ मे गाय का प्रमुख स्थान है और देश में लगभग १८ करोड़ गौधन है । गाय और भैस का योगदान लगभग १५ प्रतिशत सकल राष्ट्रीय आय मे है। मूल्य की दृष्टि से दूध उद्योग १,००,००० रू० मिलियन वार्षिक से अधिक का हिस्सा है। वर्तमान मे देश मे लगभग २३३ दुग्ध ससाधन संयन्त्र एव ४६ दुग्ध उत्पाद फैक्ट्री है। सहकारिता सार्वजनिक क्षेत्र सयन्त्र और सुव्यवस्थित निजी सयंत्र की दुग्ध व्यवस्था क्षमता

---

[43] डॉ० राजपूत ओ० पी०, भारत में श्वेत क्रांति, प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त, १९९४, पृष्ठ संख्या ८३ ।
[44] डॉ० राजपूत ओ० पी०, भारत मे श्वेत क्रांति, प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त, १९९४, पृष्ठ सख्या ८३ ।
[45] डॉ० राजपूत ओ० पी०, भारत में श्वेत क्रांति, प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त, १९९४, पृष्ठ संख्या ८४ ।

८ ६५ मिलियन लीटर प्रतिदिन है अनेक पशु सुधार परियोजनाएँ ६०० दूरस्थ सामुदायिक खण्डों मे शुरू की गई थी। देश मे अब १२२ सघन पशु विकास प्रोग्राम, १४० पशु प्रजनन फार्म ४० विदेशी पशु फार्म और ४८ हिमीकृत वीर्य बैंक चालू है जिनकी वजह से दुग्ध उत्पादन क्षमता ४९ ११ प्रतिशत तक पिछले ३ दशको मे बढी है, जबकि इस अवधि मे नस्ल सुधार हेतु गाये और भैंस मे मात्र २२ २३ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। ऑपरेशन फ्लड प्रोग्राम और राष्ट्रीय दुग्ध ग्रिड के अन्तर्गत ४२००० 'दुग्ध उत्पादक सहकारी संगठन' अच्छे ढग से सफलतापूर्वक स्थापित है। ये ग्रिड देश के ४ महानगरो एव लगभग २०० शहरो और कस्बो को दूध सप्लाई करते हैं। कृषक सहकारिताओ से प्रतिदिन ५ ५३ मिलियन लीटर दूध प्राप्त होता है।

श्वेत क्रांति में सरकारी एवं सहकारी संघों की भूमिका :-[46]

वैसे तो डेयरी उद्योग में योगदान देश के विभिन्न वेटिनरी कालेज/युनिवर्सिटी मे कार्यरत वैज्ञानिको का है ही जिन्होंने पशु विज्ञान के क्षेत्र में अनेक उल्लेखनीय अनुसधान कार्य किए हैं उनमे भी नेशनल ब्यूरो ऑफ एनिमल जेनेटिक्स रिसोर्सेस नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एनिमल जेनेटिक्स और नेशनल डेयरी रिसर्च इन्स्टीट्यूट (सभी करनाल मे) इण्डियन वेटेरिनरी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, इज्जत नगर (बरेली उ०प्र०) एव सेन्ट्रल गोट रिसर्च इन्सटीट्यूट, फरह (मथुरा) का योगदान अनुसधान के क्षेत्र मे सराहनीय है, साथ ही साथ सहकारी क्षेत्र मे राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड, आनन्द (गुजरात) जिसे अमूल के नाम से जाना जाता है, ने देश के डेयरी उद्योग की नई दिशा दी है। डॉ० वर्गीज कुरियन एम०डी०डी०बी० एव इण्डियन डेयरी कॉरपोरेशन के प्रथम अध्यक्ष एव डॉ० अमृता पटेल, वर्तमान प्रबन्ध निदेशिका राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड, आनन्द का कार्य 'श्वेत क्राति' हेतु वास्तव मे प्रशसनीय है। डॉ० पटेल देश की ऐसी प्रथम महिला हैं जिन्हें १२ दिसम्बर १९९२ को भारत के उपराष्ट्रपति डॉ० के०आर० नारायणन ने बोरलॉग पुरस्कार से उनके डेयरी विकास के उललेखनीय एव प्रशसापात्र योगदान के लिए पुरस्कृत किया था, आपने आनन्द (गुजरात) के ग्रामीण क्षेत्र की गरीबी को दूर करने के लिए काफी काम किया है।

---

[46] डॉ० राजपूत ओ० पी०, भारत में श्वेत क्राति, प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त, १९९४, पृष्ठ सख्या ८४ ।

आपॅरेशन फ्लड योजना का क्रियान्वयन एवं सफलता :-[47]

ऑपरेशन फ्लड के सूत्रधार डॉ० वर्गीज कुरियन हैं, जिन्हे इस योजना के क्रियान्वयन एव सफलता का शत-प्रतिशत श्रेय जाता है। ऑपरेशन फ्लड का दूसरा नाम ही श्वेत क्राति है अब तक ऑपरेशन फ्लड के प्रथम दो चरण पूर्ण हो चुके है जिनसे किसानो एवं दुग्ध उत्पादकों को काफी आर्थिक लाभ मिला है तथा तीसरा चरण वर्तमान मे प्रगति पर है। प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय 'ऑपरेशन फ्लड' के सम्बन्ध मे कुछ रोचक जानकारी इस प्रकार है।

1. ऑपरेशन फ्लड प्रथम चरण :- (1970-71 से 1974-75 तक) - ऑपरेशन फ्लड के प्रथम चरण भारत सरकार ने जुलाई १९७० से आरम्भ किया, जिसका मुख्य उद्देश्य आनन्द (अमूल) की भाँति १८ सहकारी सघ स्थापित कर उन्हे देश के ४ महानगरो - दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास से सम्बद्ध करना था। इस योजना के अन्तर्गत विश्व खाद्य प्रोग्राम से प्राप्त १,२७,५१७ टन 'सप्रेटा दूध चूर्ण' तथा ३९६९६ टन बटर ऑयल की बिक्री से प्राप्त ११६ ४ करोड़ रूपया प्राप्त हुआ । इस धनराशि का उपयोग विभिन्न डेयरी विकास के कार्यक्रमो मे किया गया। ऐसा करने से प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता मे वृद्धि हुई जैसा कि उपलब्ध ऑकड़ों से स्पष्ट है कि सन् १९७० से पूर्व दूध उपलब्धता प्रति व्यक्ति प्रतिदिन बहुत कम (मात्र १०५ ग्राम) थी जो १९८१ मे १२२ ग्राम तक बढ़ी। यह सब 'प्रथम चरण ऑपरेशन फ्लड का रहा, उसी का परिणाम है, प्रथम चरण में इस योजना से लगभग ११६ करोड़ रू० उपार्जित किए गए। यह योजना वास्तव मे भारत के लिए एक वरदान साबित हुई।

2. ऑपरेशफ्लड द्वितीय चरण (1978 से 1985 तक) - प्रथम चरण के चलते-चलते १ जुलाई १९७८ को ऑपरेशन फ्लड द्वितीय चरण का श्री गणेश किया गया। इस चरण मे वास्तव में भारतीय डेयरी विकास मे एक कायापलट हुई। जिस पर कुल व्यय लगभग ३८ ५ करोड़ रूपए आँका गया एव २४६ करोड़ रूपए का उपार्जन किया गया।

---

[47] डॉ० राजपूत ओ० पी०, भारत में श्वेत क्रांति, प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त, १९९४, पृष्ठ संख्या ९५ ।

ऑपरेशन फ्लड द्वितीय चरण एक बहुत बडी योजना के साथ आरम्भ हुआ। यूरोपियन आर्थिक ममुदाय से उपहार स्वरूप प्राप्त १,८६,००० टन दुग्ध चूर्ण तथा ७६००० टन बटर ऑयल से आय लगभग २५० करोड रूपए, विश्व बैंक से प्राप्त सहायता राशि लगभग १७३ करोड़ रूपए तथा भारतीय डेयरी निगम से प्राप्त धनराशि से डेयरी विकास की योजना, तैयार की गई। लगभग १ करोड़ दुग्ध उत्पादक सहकारी तत्र से जोड़ दिए गए। यह सख्या विभिन्न राज्यों के १५५ जिलो मे फैली हुई है तथा प्रत्येक जिले को २००-६०० ग्राम्य सहकारी समितियो को सम्बद्ध कर एक जिला दुग्ध उत्पादक सघ बनाया गया। इस चरण में १ ५ करोड सकर गाय तथा उन्नत भैंस तैयार करने की योजना बनाई गई। इस चरण मे उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, गुजरात, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश तथा कर्नाटक (देश के १२ राज्यो) को लाभ मिला।

3. **ऑपरेशन फ्लड तृतीय चरण :- (1987 से 1994 तक) -** भारत सरकार ने इस योजना के लिए ९१५ करोड़ रूपए का मूल्याकन किया है तथा लगभग ३६० करोड रू० की आर्थिक सहायता देने की स्वीकृति प्रदान की है। इस योजना का उद्देश्य निम्नलिखित हैं।

- ✓ ग्राम्य सहकारी समितियो की संख्या में वृद्धि ।
- ✓ ससाधित दूध की मात्रा एव उसके विपणन मे वृद्धि करना ।
- ✓ पशु की दूध देने की क्षमता को बढाना ।
- ✓ प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता बढ़ाना ।
- ✓ अनुसधान, परीक्षण, परीक्षण एवं विकास कार्य को बढ़ावा देना ।
- ✓ ग्रामीणो की आय मे वृद्धि करना आदि ।

आशा है इस 'ऑपरेशन फ्लड' के तृतीय चरण मे दूध के उत्पादन मे आशातीत वृद्धि के साथ-साथ किसानों एव दुग्ध उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं को समान रूप से लाभ मिलेगा। आज '**ऑपरेशन फ्लड**' योजना के अन्तर्गत लगभग एक करोड़ किसान तथा उनके परिवार के सदस्य कार्यरत होकर १७६ से अधिक '**जिला सहकारी संघ**' से सम्बद्ध होकर डेयरी विकास कार्यक्रम में योगदान दे रहे हैं। आज हमारा देश दुग्ध पदार्थ उत्पादन के क्षेत्र मे पूर्णतया से आत्म निर्भर हैं। देश मे सभी दुग्ध पदार्थ अपने ही देश में

उपलब्ध दूध से ही बनाए जा रहे हैं, लेकिन इस सबके बावजूद हमे इसी से पूर्ण सतुष्ट होकर नहीं बैठना चाहिए क्योकि तेज गति से बढ़ती हुई जनसंख्या पुन· इन बिन्दुओं को भी ध्यान में रखना होगा, ताकि भविष्य मे इस दुग्ध व्यवसाय को हमेशा-हमेशा योगदान मिलता रहे।

श्वेत क्रांति हेतु नई दिशाओं पर जोर की आवश्यकता एवं आशाएँ :-

'श्वेत क्राति' लगातार दिशा देने के लिए निम्नलिखित पहलुओ को ध्यान में रखना होगा -

1. पशु प्रजनन एवं नस्ल सुधार कार्यक्रम :- अच्छी नस्ल की गाय, भैंस, बकरी एव भेड का दूध उत्पादन मे काफी योगदान है, अत· अच्छी नस्ल के सुधार की निरतर आवश्यकता है, गाय की विदेशी नस्ल - जर्सी होलस्टीन फ्रीजियन, गर्नसी, ब्राउन स्विस, अयर शायर अपने एक पूरे व्यात (३०० दिन) मे ४५०० से ५२०० लीटर दूध, जबकि सकर नस्ल की गायें - करन स्विस, करन फ्रीज, जरसिंध आदि ३२०० से ५६०० लीटर प्रति व्यॉत दूध देने की क्षमता रखती हैं। ये दोनो प्रकार की गायें, अपनी देशी गायों की तुलना मे कहीं अधिक दूध देती हैं अत· संकर अथवा विदेशी नस्ल की गायो को अपनी दशाओ में पालना लाभदायक होगा। यद्यपि कुछ प्रगतिशील किसान एवं सरकारी डेयरी फार्म पर ऐसी नस्ल की गाये अभी भी पाली जा रही है। इनके विकास की और अधिक आवश्यकता है। देशी गाय एव सकर नस्ल की सांड से सकर/क्रास बछिया पैदा की जाए ताकि अधिकतम दूध प्राप्त किया जा सके।

कुछ सकर विदेशी एवं देशी अथवा विदेश से आई और अपने देश मे लम्बे समय से पाली जाने वाली गायें के दूध का तुलनात्मक विवरण इस प्रकार है, जिससे सहज में ही उनकी गुणवत्ता का अनुमान लगा सकता है।

गाय की किस्म	दूध में वसा प्रतिशत में	प्रति व्यॉत (300 दिन) औसतन दूध उत्पादन	सर्वाधिक दूध उत्पादन प्रतिदिन (लीटर)
1. संकर			
करन स्विस	------	3200–3500	44 (एन०डी०आर०आई०करनाल)
करन फ्रीज,	------	5600	33 (एन०डी०आर०आई०करनाल)
जरसिध	4.00	3500–4000	------

2. विदेशी			
जर्सी	5 - 5.5	4500	------
होलस्टीन फ्रीजियन	03.37	6200–6500	------
ब्राउन स्विस	04.20	5200	------
गर्नसी	------	4400–5000	------
अयरशायर	------	5110	
3. अन्य गायें			------
			(विशेष दशा में)
साहीवाल	------	2150	४०००-५००० ली०/व्यात
सिन्धी	------	1474	अधिकतम 5443 ली०/व्यात
हरियाणा	------	1200	3200 ली०/व्यात
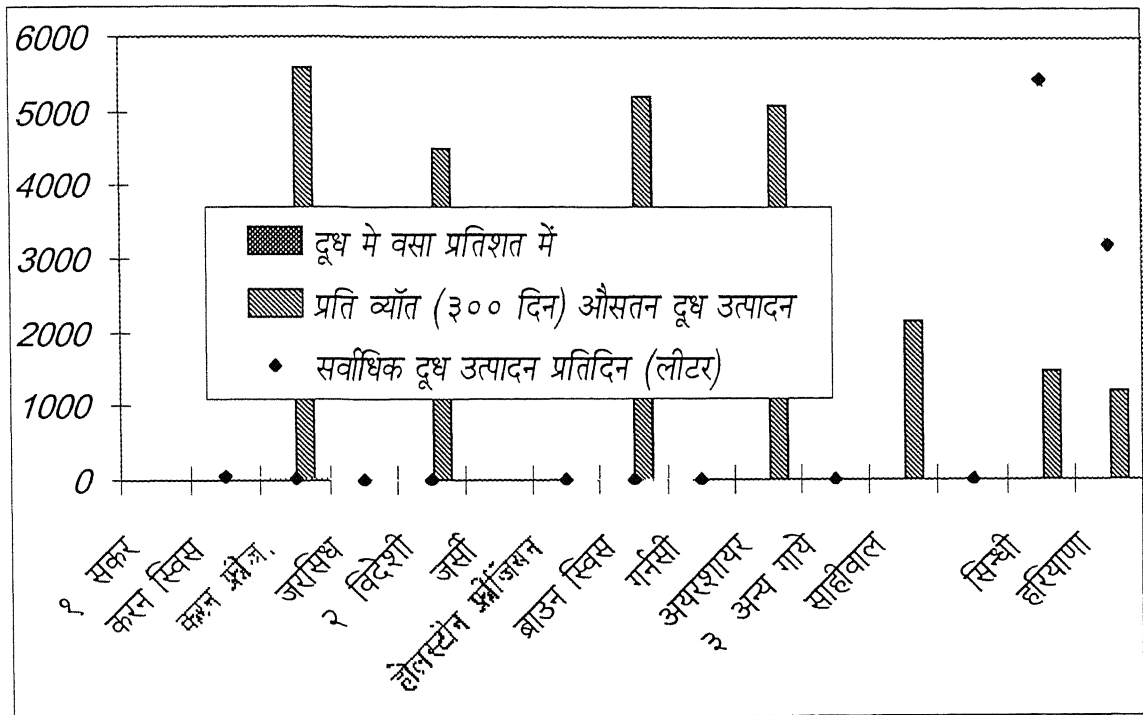
स्रोत :- मासिक नेशनल डेरी रिसर्च इन्स्टीट्यूट करनाल हरियाणा

उपर्युक्त आँकड़े यह प्रदर्शित करते है कि जो गायें भारत में वर्षों से पाली जा रही है जैसे साहीवाल, सिंधी, हरियाणा या अन्य गायें उनकी दूध देने की क्षमता सकर अथवा विदेशी गायों की तुलना में बहुत कम है। इसके लिए नस्ल सुधार/पशु प्रजनन पर जोर दिया जाना चाहिए यद्यपि सकर नस्ल की गायो के

सुधार हेतु राष्ट्रीय डेयरी अनुसधान सस्थान करनाल पर कार्य तो चल ही रहा है साथ ही साथ जर्सी गाय हेतु स्टेट कैटल ब्रीडिग फार्म गौरी कर्मा (बिहार) व वारपेट्टा (असम) में, मुर्रा भैंस के लिए स्टेट कैटल ब्रीडिग फार्म बनवासी (आन्ध्र प्रदेश) व दुर्ग (मध्य प्रदेश) मे, साहीवाल गाय के लिए स्टेट केटल ब्रीडिग फार्म गजरिया, लखनऊ मे हरियाणा हेतु स्टेट कैटल ब्रीडिग फार्म भरतपुर मे भी नस्ल सुधार कार्य प्रगति पर है, यूँ तो पतनगर, मथुरा, जबलपुर, हिसार, मेरठ, बीकानेर, कोयम्बटूर मे भी गाय, भैस, बकरी, भेड़ के विकास हेतु कार्य प्रगति पर है।

2. अच्छे चारे उत्पादन एवं परिरक्षण पर अनुसंधान कार्य की आवश्यकता:- भारत मे कुल कृषि भूमि का लगभग ४ ४ प्रतिशत क्षेत्रफल (६९ लाख हेक्टेयर) चारे की फसलों को उगाने मे काम आता है जबकि प्रति पशु स्थायी चारागाहो की भूमि केवल ०.०६ हेक्टेयर पाई गई है, प्राय· किसान अपने कुल क्षेत्रफल का १० प्रतिशत भाग खरीफ के चारे और केवल १ प्रतिशत रबी के चारे हेतु छोड़ता है। अत पशुओ को वर्ष भर अधिक समय तक केवल पुआल, बाजरा, ज्वार एवं मक्का की कडवी गेहूँ - जौ का भूसा पर ही रहना पड़ता है जिनकी पोषक शक्ति कम होती है। कमजोर चारा खिलाने से दुग्ध उत्पादन कम होता है। सन् १९९० तक ८९२० लाख टन हरे चारे तथा ८३२० लाख टन सूखे चारे की आवश्यकता का अनुमान था। सन् २००० मे यह आवश्यकता ९९०० तथा ९४९० लाख टन होने की सम्भावना है। देश मे उत्पादित चारे तथा चारे के स्त्रोतो से कुल आवश्यकता का केवल ४६ ६ प्रतिशत भाग ही पूरा किया जा सकता है, अत· आज इस बात की जरूरत है कि अधिक पैदावार देने वाले हरे चारे, ज्वार, बरसीम, नेपियर घास आदि की नई किस्मे विकसित की जाए तथा जो अच्छी किस्मे विकसित की जा चुकी है उनका प्रचार-प्रसार किसानो तक अवश्य किया जाए, उनमें कुछ फसलो की चारे की किस्में निम्नलिखित हैं –

- ❖ **ज्वार :-** बहु कटाई की ज्वार मे पूसा चरी १, एस एल ४४, कम्पोजिट-१, जे०एस० २०, एस०एस०जी० ९८८, पूसा चरी -२३, राजस्थान चरी अच्छी किस्में है जिनसे ४००-४५० कु०/हे० हरा चारा मिल जाता है। इण्डियन ग्रासलैण्ड एवं फॉडर रिसर्च इन्सटीट्यूट झाँसी में किए गए परीक्षणो के अनुसार इससे २१० दिन में औसतन ८५० कु०/हे० हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है।

❖ **बरसीम :-** पूसा जाइन्ट, बरदान, बी०एल०, जे०वी० ३, आई०एल० ९९-१ आदि से ९००-१३०० कुन्तल/हेक्टेयर हरा चारा मिल जाता है।

❖ **नेपियर घास :-** स्वेटिका-१ तथा पूसा जाइन्ट नेपियर घास अच्छी किस्मे हैं जिनसे वर्ष मे ६-७ कटाइयाँ करके १२००-१६०० कुन्तल/हेक्टेयर हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है।

❖ **लूसर्न (रिजका) :-** सिरसा टाइप ८, सिरसा टाइप ९, आनन्द-२, एस २२४, एस ५४ अच्छी किस्मे हैं जिसकी हरे चारे के उत्पादन की क्षमता ६०० कुन्तल हेक्टेयर तक है।

❖ **लोबिया :-** को-१, को-२, हिसार १०, रसियन जाइन्ट, एस० १४५, एच०एस०सी०, ४२-१, यू०पी०सी० ५२८७, यू०पी०सी० २८७ अच्छी किस्में हैं जिनकी हरे चारे की उपज ३५० कु०/हे० तक है।

❖ **ग्वार :-** हरियाणा ग्वार १, एफ०ओ०एस० २७७ एच०एफ०जी०, १५६ अधिक पैदावार १५०-२०० कु०/हे० तक मिल जाता है।

❖ **मक्का :-** संकर ३०४७, गंगा-२, जवाहर, किसान, विजय से हरा चारा उपज ३५०-४०० कु०/हे० तक मिल जाता है।

❖ **बाजरा :-** के ६७४, के ६७७, राजको, जाइन्ट बाजरा, टाइप ५५ से हरे चारे की उपज ६०० कु०/हे० तक ली जा सकती है।

❖ **मकचरी :-** इम्प्रूव्ड मकचरी से ६००-७०० कु०/हे० हरा चारा मिल जाता है।

उपर्युक्त विभिन्न फसलो के हरे चारे की किस्मो की उपज क्षमता तो अच्छी है, लेकिन चारा अनुसंधान की भावी दिशाएँ इस प्रकार होनी चाहिए और उन्हे अपनाया जाए।

➢ **चारे की पौष्टिकता और गुण :-** ज्वार मे हाइड्रोसाएनिक अम्ल बाजरा मे आक्सलेट की जो अधिकता होती है इसको कम करने के उपाय किए जाएँ ताकि पशुओ को उन गुणो वाला चारा नुकसान न करे।

➢ उपयुक्त फसल चक्र अपनाए जाएँ।

➢ **बहुवर्षीय फसले :-** रिजका व नेपियर घास पर जोर दिया जाए।

➢ चारे का सतुलित उत्पादन हो।

➢ **चारे का परिरक्षण :-** हे साइलेज पर अनुसधान हो।

➢ आहार मे हरे चारे के साथ यूरिया २ प्रतिशत मिलाया जाए।

➢ **अन्य क्षेत्र :-** जगली घासे, पेड़ो - सुबबूल आदि पर अनुसधान हो।

➢ **जड़दार फसले :-** शलजम, गाजर, चुकन्दर पर कार्य किया जाए जो पशुओ के आहार के गुण को बढ़ाएगी।

3. **दुग्ध उत्पाद को बढावा :-** आइस्क्रीम, बटर,दही, घी, पनीर, दूध पाउडर, खोआ, छेना आदि को बढा दिया जाए, ताकि दुग्ध उत्पादक को दूध से बने पदार्थ से अधिकतम लाभ मिलेगा।

भावी प्रलम्बता एवं सुझाव :-

आशा है कि भविष्य मे भारतीय डेयरी उद्योग निश्चय ही बढ़ती हुई जनसख्या की दूध की प्यास को बुझाएगा ओर सम्पूर्ण दृश्य मे बदलाव लाएगा। दूध उतपादन मे सन् १९८० के दशक के पहले मध्य तक ४ ६ प्रतिशत प्रति वर्ष बढ़ोत्तरी हुई और आगे भी ६.८ प्रतिशत वृद्धि की आशा है। २००० ई० तक दुग्ध उत्पादन में ६५ मिलियन टन तक की अतिरिक्त वृद्धि सम्भव है –

जिसके निम्नलिखित मुख्य कारण होंगें.–

✓ इन्टेन्सिव ब्रीडिग एव सेलेक्शन प्रोग्राम को अधिक दूध देने वाली गाय एवं भैस मे अपनाकर जो विदेशी नस्लों एवं स्वदेशी अच्छी नस्ल की गाय - भैस के द्वारा सम्भव है।

✓ अति हिमीकृत वीर्य को दूरस्थ ग्रामीण अंचल में पहुँचाकर, इसके लिए प्रत्येक राज्य मे अति हिमीकृत वीर्य उत्पादन केन्द्र और खोले जाएँ।

✓ मल्टीपल ओव्युलेशन एम्ब्रियो ट्रासफर तकनीक - एम०ओ०ई०टी० अपनाकर,

✓ ओपन न्यूक्लियस ब्रीडिंग सिस्टम ओ०एन०बी०एस० के द्वारा,

✓ पशुओ के सुधरे स्वास्थ्य डेयरी व्यवसाय मे अनुभवी मानव शक्ति, सुविधाओ एव अच्छी सफाई व्यवस्था के द्वारा,

✓ नई वैक्सीन दवाओ के विकास से।

✓ चारे के अन्तर्गत क्षेत्र बढाकर एव उच्च कोटी की गुणवत्ता वाले हरे चारे ज्वार,बाजरा, लोबिया, बरसीम, लूसर्न, जई, नेपियर घास एव सू-बबूल आदि पैदाकर एवं नई किस्मो के विकास से, ताकि चारे की उपलब्धता बढ़े।

✓ पशु आहार गेहूँ का भूसा, दाना, शीरा, खनिज पदार्थ, विटामिन 'ए' में यूरिया प्रति १०० किग्रा० आहार मे देने से दूध में वृद्धि मिली है। ध्यान रहे यूरिया की मात्रा २ प्रतिशत से अधिक होने पर पशु के लिए हानिकारक होगी इसका प्रसार किया जाए।

✓ अच्छे भोजन मानको एव बडे पैमाने पर शिक्षा एवं प्रसार से, सुव्यवस्थित राजकीय एव निजी एजेन्सियो से ग्रामीण क्षेत्रों मे दुग्ध इकट्ठा कर, यातायात, संरक्षण, प्रोसेसिग एवं दुग्ध उत्पादन बनाकर।

इन उपर्युक्त सुझावों के बावजूद एक अनुमान के अनुसार यदि पशु को नियमित रूप से सतुलित आहार दिया जाए एव उसकी उचित देखभाल की जाए, तो उसके दुग्ध उत्पादन क्षमता में ५० प्रतिशत तक बढ़ोत्तरी की जा सकती है। साथ ही देश में दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में 'श्वेत क्राति' की लहर सुनिश्चित होगी, दुग्ध उत्पादन एवं दुग्ध पदार्थ व्यवसाय से कुटीर व्यवसाय, स्वरोजगार, आर्थिक लाभ मिलेंगे और परिणमस्वरूप दुग्ध उत्पादकों की आय और जीवन स्तर में वृद्धि होगी और देश मे खुशहाली आएगी।

उत्तर प्रदेश में मशरूम की खेती - एक व्यवसायिक पहलू :-[48] आधुनिक जगत की बहुमुखी प्रगति मे अति स्वादिष्ट एव पौष्टिक भोज्य के रूप में मशरूम अर्थात् खुम्बी की खेती एक प्रमुख उपलब्धि है जिसे शाकाहारी मीट भी कहा जाता है। वनस्पति जगत के निम्न समुदाय से सम्बन्धित कुछ विशेष फफूँदी जिनकी सरचना धागोनुमा होती है अपनी पोषकता से भोजन संग्रह करके मशरूम के रूप मे परिवर्तित हो जाती है अन्य पौधो की भाँति मशरूम भी प्रकृति मे स्वतंत्र रूप से वर्षा के मौसम मे उगते पाए जाते हैं।

---

[48] डॉ० मिश्र कुमार सतोष, उ०प्र० मे मशरूम की खेती प्रतियोगिता दर्पण, जून १९९६, पृष्ठ संख्या १८०५

इनमे से कुछ खाद्य व कुछ अखाद्य पदार्थों की श्रेणी मे माने जाते है। मशरूम प्रोटीन बाहुल्य एवं उच्च कोटि की विटामिनयुक्त होता है। इसमे कार्बोहाड्रेट तथा वसा कम होने के कारण यह मधुमेह एवं हृदय रोगो से पीडित व्यक्तियो के लिए बहुत ही लाभदायक है। इस तरह के रोगियो के लिए मशरूम एक आदर्श भोजन माना गया है। इसके अलावा ऐसे व्यक्ति जो अपना भार कम करना चाहते हैं इसे इस्तेमाल कर सकते हैं। इसमे बहुमूल्य खनिज लवणो जैसे - कैल्सियम एव फास्फोरस और लोहा भरपूर मात्रा मे पाया जाता है। मशरूम के १०० ग्राम खाने योग्य पदार्थ मे साधारणत ८८ ५ ग्राम पानी ३ १ ग्राम प्रोटीन, ० ८ ग्राम वसा, ४ ३ ग्राम कार्बोहाइड्रेट, १ ४ ग्राम लवण पदार्थ ० ४ ग्राम रेशा, ४३ कैलोरी ऊर्जा, ६ मिग्रा० कैल्सियम, ११० मिग्रा० फास्फोरस, १ ५मिग्रा० लोहा पाया जाता है। फौलिक अम्ल जिसमे रक्त का निमार्ण होता है। के आधार पर मशरूम गुर्दा एव यकृत के तुल्य माना जाता है। मशरूम में कुछ ऐसे तत्व भी है जो पथरी तथा कैंसर को बनने से रोकते है, मशरूम की खेती व्यावसायिक दृष्टि से संयुक्त राज्य अमरीका, चीन, फ्रास, ताइवान, जापान एव इग्लैण्ड मे की जाती है जिनमे प्रमुख रूप से बटन मशरूम, ढीगरी कालिओटा, स्टोफारिया की खेती की जाती है। भारत मे व्यावसायिक स्तर पर मशरूम की खेती कुछ समय पहले हिमाचल प्रदेश व कश्मीर तक ही सीमित थी लेकिन गत ७-८ वर्षो मे इसकी खेती का समस्त पर्वतीय एवं मैदानी भागो मे व्यावसायिक स्तर पर विस्तार हुआ है। दिल्ली के आसपास हरियाणा एव उत्तर प्रदेश मे इसकी खेती काफी बड़े पैमाने पर व्यापारिक रूप ले चुकी है। इसकी खेती गॉव,कस्बो एव शहरों मे कहीं भी की जा सकती है। गॉव मे किसान फसल पद्धति के साथ-साथ मशरूम की खेती करके फार्मिंग सिस्टम अपनाकर अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकते हैं। शहर कस्बों में जिनके पास कमरा, बरामदा या गैराज आदि की जगह हो वहाँ भी इसकी खेती करके अधिक आय प्राप्त कर सकते है। इसे घरों में भी उगा सकते हैं मशरूम की खेती के लिए भूमि की आवश्यकता नहीं पड़ती हैं। इसलिए इनकी खेती को भूमि रहित खेती अथवा भूमि बचत अथवा दाना बचत भी कहा जाता है। देश में इसकी खेती की काफी सम्भावना है। मशरूम को सब्जियो के साथ अन्य तरह के व्यजन बनाकर भोजन के रूप मे प्रयोग किया जा सकता है। इसकी प्रोटीन की पाचकता ७० से ९० प्रतिशत तक होती है। शहरो में अच्छे स्तर के होटलों (३ या ५ सितारा) में इसकी माँग काफी बढ़ गई है। इसकी खेती करके अच्छी आमदनी प्राप्त की जा सकती है। अतः भारतीय कृषि पर निरन्तर बढ़ते हुए जनसंख्या के दबाव

के कारण जो आज लगभग ९१२ मिलियन (जनवरी १९९५ के शुरू मे) तक पहुँच चुकी है। जोत आकार कम होते जा रहे है।[49] तथा बेरोजगारी एक विकट समस्या बनती जा रही है। ऐसे बदलते परिवेश मे कम क्षेत्र मे अधिक उत्पादन करना समस्या का एक महत्वपूर्ण समाधान है। निश्चय ही हम खुम्बी (मशरूम) की खेती अपनाकर कम स्थान होने पर भी अपनी आजीविका का साधन बना सकते हैं और इसकी खेती उन व्यापारियो के लिए भी उचित होगी जो सेवा निवृत्त कर्मचारी है अथवा कामकाजी महिलाएँ हैं और अपनी घरेलू कार्यो के साथ-साथ इसे भी पैदा कर सकती है।[50]

मशरूम की खेती के लिए सूर्य के प्रकाश वर्षा के पानी एवं तेज हवा के झोको से बचाव होना अति आवश्यक है। वास्तव मे मशरूम की खेती के लिए कुछ विशेष तापक्रम, आर्द्रता, माध्यम तथा अच्छे कवकजाल (बीज) जिसे स्पान कहा जाता है कि आवश्यकता पड़ती है इसके अतिरिक्त खुली हवा का उपलब्ध होना भी अत्यन्त आवश्यक है, वैसे इसकी खेती साधारण कमरे के अन्दर, ग्रीन हाउस, गैराज व बन्द बरामदो मे सफलतापूर्वक की जा सकती है। परन्तु व्यावसायिक स्तर पर इसके उत्पादन हेतु विशेष प्रकार से निर्मित मशरूम उत्पादन कक्ष का प्रयोग अधिक लाभकारी होता है। हमारे देश की जलवायु के आधार पर मशरूम की मुख्य रूप से तीन प्रकार की किस्मे उगाने हेतु ठीक पाई गई हैं।

1. **बटन मशरूम :-** इसे शरद ऋतु मे धान के पुआल अथवा गेंहूँ के भूसे की कम्पोस्ट पर ८५-९० प्रतिशत आर्द्रता एवं १५-२५° सेल्सियस तापक्रम पर पैदा किया जा सकता है।

2. **पैंडी स्ट्रा मशरूम :-** इसे गर्मियो में धान के पुआल पर ३०-३५° सेल्सियस तापक्रम पर तथा ८० प्रतिशत आर्द्रता मे अच्छी तरह से उगाया जा सकता है। इसका स्वाद अच्छा होता है।

3. **ढींगरी :-** इसे शरद ऋतु मे (सितम्बर - मार्च) २०-३०° सेल्सियस तापक्रम पर तथा ८०-९०° आर्द्रता मे धान के पुआल पर उगाया जा सकता है।

---

[49] डॉ० मिश्र कुमार सतोष, उ०प्र० मे मशरूम की खेती प्रतियोगिता दर्पण, जून १९९६, पृष्ठ सख्या १८०५

[50] डॉ० मिश्र कुमार संतोष, उ०प्र० मे मशरूम की खेती प्रतियोगिता दर्पण, जून १९९६, पृष्ठ संख्या १८०५

उपर्युक्त मे बटन मशरूम सबसे ज्यादा होती है। बाजार मे इस प्रजाति की माँग भी अधिक है तथा आमदनी भी बटन मशरूम से अधिक होती है। अत बटन मशरूम की खेती करने की विधि पर ही जोर दिया गया है।

बटन मशरूम की खेती :- [51] बटन मशरूम को देश के पर्वतीय क्षेत्रो मे वर्ष भर उगाया जा सकता है। देश के मैदानी भागो मे मशरूम की खेती १५ सितम्बर से १५ मार्च तक सर्दियो में, जब कमरे का तापक्रम २०-२५° सेल्सियस के बीच में हो इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। उपलब्ध प्राकृतिक तापक्रम के अनुसार इस मशरूम की २-५ फसल पर्वतीय क्षेत्रों में तथा १-२ फसल मैदानी क्षेत्रो मे ली जा सकती है। व्यावसायिक स्तर पर मैदानी क्षेत्रों मे वर्ष भर उत्पादन के लिए वातानुकूलित मशरूम गृहो का निर्माण करके खेती किसी भी भाग मे की जा सकती है। बटन मशरूम को उगाने के लिए विशेष प्रकार से निर्मित कम्पोस्ट की आवश्यकता होती है जिसे गेहूँ के भूँसे अथवा धान के पुआल मे रासायनिक उर्वरको के मिश्रण द्वारा निम्नलिखित प्रकार से बनाया जा सकता है।

कम्पोस्ट बनाने की विधि :- [52] कम्पोस्ट बनाने हेतु साफ व पक्के फर्श की जरूरत पड़ती है। फर्श खुली हवा मे या किसी कमरे या बरामदे का हो सकता है। खुली हवा में कम्पोस्ट बनाने पर कम्पोस्ट को वर्षा से बचाव करना आवश्यक है तथा कमरे या बरामदे मे बनाने पर अच्छी वायु का सचार होना आवश्यक है। कम्पोस्ट बनाने मे प्रयोग होने वाला भूसा या पुआल १५ महीने से अधिक पुराना नहीं होना चाहिए ताकि उसकी लम्बाई २-४ सेमी होनी चाहिए। कम्पोस्ट बनाने की निम्नलिखित दो विधियाँ - दीर्घ एव अल्प अवधि की है।

1. दीर्घ अवधि विधि :- कम्पोस्ट बनाने के लिए गेंहूँ के भूसे की पतली तह पक्के फर्श अथवा सीमेन्ट के बने चबूतरे पर बिछाकर उसे अच्छी तरह पलट कर पानी के फब्बारे से ४८ घण्टे तक तर कर लिया जाता है। कम्पोस्ट बनाने के २४ घण्टे के पूर्व रासायनिक उर्वरको जैसे कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट ६ किग्रा०, यूरिया

---

[51] डॉ० मिश्र कुमार संतोष, उ०प्र० में मशरूम की खेती प्रतियोगिता दर्पण, जून १९९६, पृष्ठ सख्या १८०६

[52] डॉ० मिश्र कुमार सतोष, उ०प्र० में मशरूम की खेती प्रतियोगिता दर्पण, जून १९९६, पृष्ठ सख्या १८०६

२ ४ किग्रा०, सुपर फास्फेट १ किग्रा० एव सल्फेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा अर्थात् ३०० किग्रा० प्रत्येक को १५ किग्रा० गेहूँ के चोकर मे लकड़ी के बुरादे की एक बोरी (३० किग्रा०) के साथ मिलाकर अच्छी तरह से पानी द्वारा नम करके ढेर बना दे तत्पश्चात् निम्नलिखित प्रकार से कम्पोस्ट बनाएँ :–

- **आरम्भ (0 दिन) :–** नम किए हुए भूसे व रासायनिक उर्वरको को अच्छी तरह से मिलाएँ तदोपरान्त भूँसे का लगभग १ ८ मीटर चौड़ा व १ ८ मीटर ऊँचा किसी भी लम्बाई का ढेर बनाएँ। ढेर बनाने के ७२ घण्टे बाद ढेर मे भीतर तापक्रम ६०-७०° सेल्सियस से अधिक होगा। ढेर की बाहरी सतह पर दिन मे दो बार पानी का हल्का छिड़काव करें।
- **प्रथम पलटाई (छठवाँ दिन) :–** ढेर के बाहय भाग मे चारो तरफ हवा लगने के कारण पदार्थ देरी से सडता है, अत· बाहय भाग से १५ सेमी कम्पोस्ट निकाल कर फर्श पर फैलाकर पानी का छिड़काव करे। तत्पश्चात् दोनो कम्पोस्ट को अच्छी तरह मिलाकर बचे हुए ३ किग्रा० कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट १.६ किग्रा० यूरिया जो २४ घण्टे पूर्व १५ किग्रा० चोकर नम करने के बाद मिला दे, ५ लीटर शीरा और ३० मिली० निमेगान, आधा बाल्टी पानी मे धोकर उक्त कम्पोस्ट मे मिला दे तथा पूर्व की भाँति ढेर कर दे।
- **द्वितीय पलटाई (दसवें दिन) :–** प्रथम पलटाई की भाँति बाहय भाग पर अच्छी तरह पानी छिड़क कर दोनों भागों को अच्छी तरह मिलाएँ।
- **तृतीय पलटाई (तेरहवें दिन) :–** पूर्व की भाँति पलटाई करके ३० किग्रा० जिप्सम, २५० ग्राम बी०एच०सी० तथा १०० ग्राम जिंक सल्फेट मिलायें कम्पोस्ट को मुट्ठी मे लेकर दबाएँ यदि पानी की बूँद अँगुलियो के बीच दिखाई दे तो पानी मिलाने की आवश्यकता नहीं है।

  चौथी, पाँचवी, छठवीं तथा सातवीं पलटाई क्रमशः सोलहवें दिन, उन्नीसवे दिन, बाईसवे दिन एव पच्चीसवे दिन पर पूर्व की भाँति करें।
- **आठवीं पलटाई (अट्ठाइसवें दिन) :–** अट्ठासइवे दिन ढेर पुन· तोड़कर पूर्व की भाँति करे, यदि अमोनियम गैस की गंध आती है तो पुन तीन दिन के अन्तराल पर दो पलटाई करे।

2. **अल्प अवधि विधि :-** अल्प अवधि विधि द्वारा कम्पोस्ट उपर्युक्त तकनीकी से ही बनाई जाती है, परन्तु द्वितीय पलटाई आठवे दिन, तृतीय पलटाई दसवे दिन की जाती है। तृतीय पलटाई के साथ ३० किग्रा० जिप्सम मिलाया जाता है। तत्पश्चात् कम्पोस्ट को ८-१० दिन के लिए विशेष प्रकार के विन में कर लिया जाता है। इस प्रकार अमोनिया गध रहित कम्पोस्ट १८-२० दिन में तैयार हो जाता है।

कम्पोस्ट का निर्जीवीकरण :- अच्छी गुणवत्ता वाली कम्पोस्ट तैयार करने के लिए कम्पोस्ट का निर्जीवीकरण किया जाता है। निर्जीवीकरण के लिए बन्द कमरे मे गर्म हवा द्वारा तापक्रम ४५° सेल्सियस कर दिया जाता है। २४ घण्टे तक तापक्रम बनाए रखा जाता है। तत्पश्चात् बाइलर द्वारा कमरे में वाष्प प्रवेश की जाती है। जिससे तापक्रम ४ घण्टे के लिए ६०° सेल्सियस कर दिया जाता है। अब वाष्प स्थगित कर तापक्रम गर्म हवा द्वारा ५०-५५° सेल्सियस तक ले जाते हैं तथा कमरे मे हल्का वायु संचार किया जाता है, जिससे दूषित वायु बाहर निकल जाती है। इस तापक्रम पर कम्पोस्ट ७२ घण्टे के लिए रखी जाती है।

आवरण मृदा :- जिस पदार्थ द्वारा कम्पोस्ट पर फैली हुई फफूँदी को ढका जाता है उसे आवरण मृदा मे निम्नलिखित सामग्री का प्रयोग किया जाता है।

- दोमट मिट्टी एव रेत (चार भाग एक भाग)
- दो साल पुरानी गोबर की खाद व दोमट मिट्टी (बराबर-बराबर भाग)
- दो साल पुरानी खुम्ब की खाद, रेत और चूना (चार भाग . एक भाग . एक भाग)
- दो साल पुरानी खुम्ब की खाद्य व गोबर की खाद्य और चिकनी दोमट मिट्टी (दो भाग एक भाग एक भाग) ५ प्रतिशत फार्मलीन घोल से शोधित करके तैयार किया जाता है। आवरण मृदा चढ़ाने के बाद वायु सचार व आर्द्रता का उचित प्रबन्ध रखने पर १५ - २० दिन में मशरूम निकलना प्रारम्भ हो जाता है। ८०-९० प्रतिशत वायु आर्द्रता (नमी) बनाए रखने के लिए फसल कक्ष की दीवारों व फर्श पर पानी का छिड़काव करते रहना चाहिए।

मशरूम (खुम्बियों) की चुनाई :- मशरूम की टोपी खुलने से पहले उनको तने सहित अँगुलियो के सहारे ऐंठकर निकाल लिया जाता है। मशरूम खुलने पर उसकी गुणवत्ता व बाजार मूल्य प्रभावित

होता है। १०० किग्रा० कम्पोस्ट से दो माह मे १०-२० किग्रा० मशरूम प्राप्त हो जाता है। ध्यान रहे खुम्बियो मे सिचाई, हल्की व जल्दी-जल्दी की जाए ताकि खुम्बी कड़ी न हो जाए। यह सिचाई पानी के छिडकाव के रूप मे की जाए।

फ़सल की देखभाल :-

- ✓ चुनाई के बाद पेटियो के गड्ढे बन जाते हैं उन्हे आवरण मृदा से ढक देना चाहिए।
- ✓ मशरूम की चुनाई के समय उसका नीचे का भाग यदि टूट जाए तो निकाल देना चाहिए अन्यथा सड़न पैदा होन का भय रहता है।
- ✓ कीडो के प्रकोप से बचने के लिए ५-७ मिली मैलाथियान (५० सी०सी०) को १० लीटर पानी मे घोलकर बीजाई के दो दिन बाद और आवरण मृदा के दो दिन पूर्व छिड़काव करें।
- ✓ बीमारियों से बचाव हेतु ० ०५ प्रतिशत बावस्टीन छिड़काव करने से लाभ होता है।

अन्य :-

- यातायात के उत्तम साधन हो ताकि उर्वरक व अन्य निवेशों हेतु प्रबन्ध हो सके।
- सीधी धूप न आती हो।
- कमरा हवादार होना चाहिए।
- कमरे का तापक्रम २०° सेल्सियस से अधिक न हो।
- फफूँद, रोगाणु, विषाणु, नैमाटोड, परजीवियो, दीमक व कीटों से बचाया जाए।
- मशरूम की खेती हेतु भारतीय स्टेट बैंक द्वारा मध्यावधि ऋण दिया जाता है जिस पर १० प्रतिशत वार्षिक ब्याज लघु एव सीमान्त कृषको पर है।[53]

---

[53] डॉ० मिश्र कुमार संतोष, उ०प्र० मे मशरूम की खेती प्रतियोगिता दर्पण, जून १९९६, पृष्ठ संख्या १८०७

टिकाऊ/समगतिशील खेती - आज की आवश्यकता :- [54]

इस सदी के ७० के दशक में प्रकाश - असंवेदी अधबौनी किस्मो के आने से धान और गेंहूँ की पैदावार मे आशाजनक प्रगति दिखाई देने लगी थी। ये किस्मे किसानों के बीच खाद-पानी देने पर अच्छी उपज देने के कारण प्रचलित होने लगी जिससे खाद्यान्न उत्पादन में क्रान्ति सी आ गई। जो सन् १९५०-५१ मे ५० मिलियन टन से बढकर १९९४-९५ मे १९१ ०४ मिलियन टन तक पहुँच गया है। अर्थात् ४ गुनी (लगभग) उत्पादन मे वृद्धि मिल चुकी है, जिसे सन् १९६८ में **डॉ0 विलियम गाड** ने हरित-क्रान्ति का नाम दिया जो १९६८ से ८० तक यह युग रहा, इस प्रकार खेती से प्रति हेक्टेयर ज्यादा कमाई बढ़ने का जो दौर शुरू हुआ, जिसके फलस्वरूप बढ़ती हुई जनसंख्या का भरण-पोषण सम्भव हो सका जो आज ९४३ मिलियन को पार कर चुकी है लेकिन इस हरित क्रान्ति की हरियाली धीरे-धीरे धूमिल होने का आभास वैज्ञानिको को होने लगा है। इसके कई कारण हैं, इनमें पहला मुख्य कारण - मिट्टी की उत्पादन क्षमता मे कमी का होना है। खाद्य एव कृषि सगठन ने " **विश्व कृषि सन् 2000 की ओर** " अनुमान लगाया है कि धरती की ३०-५० प्रतिशत जमीने अनुचित प्रबन्ध के कारण खराब हो चुकी हैं। खासतौर से पिछले २५ वर्षो मे खेती के लिए जंगल साफ करने की और खेती से ज्यादा पैदावार निचोड़ने के दुहरे लालच ने मिट्टी के कटाव, पोषक तत्वो, सूक्ष्म जीवों एव जीवांश की कमी की समस्या बढ़ा दी है। इस प्रकार लगभग हर वर्ष ६० लाख हेक्टेयर भूमि खेती के योग्य नहीं रहती। कुछ इलाकों मे तो मिट्टी का कटाव इतना ज्यादा हो चुका है कि भारी खर्चा करने पर भी इन मिट्टियो में जान डालना मुश्किल है, दूसरा कारण- जल अर्थात् सिंचाई से सम्बन्धित है, "विश्व पर्यावरण एवं विकास आयोग ने अपनी रिपोर्ट" हमारा साझा भविष्य (१९८७) में विश्व के जल स्त्रोतों की गम्भीर स्थिति की ओर ध्यान दिलाया गया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि सन् १९४० से १९८० के बीच ४० वर्षो मे दुनिया मे पानी की खपत दोगुनी हो गई है। सन् २००० में यह फिर दोगुनी हो जाएगी । इस खपत का दो तिहाई खेती में खपेगा परन्तु सघन खेती मे पानी के निकास का उचित प्रबन्ध किए बिना सिंचाई करने से मिट्टियाँ ऊसर या रेतीली होती जा रही है। तीसरे - जैविक विविधता की भी गम्भीर रूप से क्षति हो रही है।

---

[54] डॉ० मिश्र कुमार विनय, समगतिशील खेती, प्रतियोगिता दर्पण, मार्च पृष्ठ संख्या १३६७

अधिक उपज देने वाली किस्मो के आने से पुरानी किस्में लुप्त हो रही है। और कहीं-कहीं तो पुरानी किस्मे ही गायब हो रही है। चौथे - कीटों और व्याधियों एव खरपतवारो का प्रकोप बढ़ता जा रहा है अथवा खरपतवारो, कीटो आदि में रसायनो के प्रति सहनशीलता बढ़ गई है, पाँचवे पौधे खनिज उर्वरकों रासायनिक कीटनाशियो और कृषि यत्रो के रूप में हर वर्ष उतनी ही उपज पैदा करने से पहले से ज्यादा ऊर्जा की जरूरत पड़ती है और अन्त मे लागत, जोखिम और खर्च का दुष्चक्र ऐसा विकट हो चला है कि विकसित और विकासशील दोनो वर्गों के देशो मे उत्पादकता बढाने मे किसानो का उत्साह टिकाए रखने के लिए सरकारो को बड़े पैमाने पर खेती में छूट और रियायते देनी पड़ रही हैं। यही कारण है कि टिकाऊ खेती की ओर वैज्ञानिको का ध्यान गया है। टिकाऊ खेती मे ऐसी कृषि प्रणालियो के विकास पर बल दिया गया है जो हवा पानी और मिट्टी को बिगाड़े बिना खेती की पैदावार बढ़ाती रहे, ऐसी कृषि प्रणाली में उत्पादकता का मापदण्ड होगा।

टिकाऊ खेती का सिद्धान्त :- [55]

टिकाऊ खेती के सिद्धान्त का मूल यह है कि इसमें छोटे-बड़े सभी किसानो को एक साथ समान रूप से आमदनी बढ़ाने के मौके दिए जाते हैं और साथ ही पर्यावरण सुरक्षा की भी व्यवस्था रहती है। टिकाऊपन के लक्ष्य को पूरा करने के लिए कई नुस्खे सुझाए गए हैं। **डॉ० एम० एस० स्वामीनाथन (पूर्व महानिदेशक, आई० सी० ए० आर० एवं प्रमुख कृषि वैज्ञानिक)** ने आज की खेती को प्राकृतिक स्वास्थ्य प्रदान करने के लिए निम्नलिखित सिद्धान्तों को सुझाया है।

1. भूमि :- आज खेती/फसलों मे सघनीकरण के प्रभाव से सबसे ज्यादा भूमि प्रभावित हुई है, जैविक सम्भावना, जैविक विविधता दोनो के आधार पर भूमि को सरक्षण, सुधार और टिकाऊ सघनीकरण इन तीन क्षेत्रो मे बॉटा जा सकता है। टिकाऊ सघनीकरण के काबिल मृदा को दूसरे कामो में इस्तेमाल करने के खिलाफ कानून बनाना चाहिए। इस मिट्टी की हालत पर भी बराबर निगाह रखनी पड़ेगी। पारिस्थितिकी के सिद्धान्त को अपनाकर बजर पड़ी भूमि को सुधार कर उसकी खोई हुई जैविक सम्भावना का पुनरुद्धार आवश्यक है जैविक विविधता मे समृद्ध क्षेत्रों की जमीने सदा के लिए संरक्षित घोषित करके अछूती छोड़नी होगी।

---

[55] डॉ० मिश्र कुमार विनय, समगतिशील खेती, प्रतियोगिता दर्पण, मार्च पृष्ठ संख्या १३६८ ।

2. जल :- जमीन की सतह एव उसके नीचे के जल का टिकाऊ प्रबन्ध के लिए पानी बचाने, समान जल वितरण करने, पानी पहुँचाने और इस्तेमाल करने मे दक्षता बेहद जरूरी है साथ ही मल-जल और औद्योगिक अपजल को शुद्ध करके फिर से इस्तेमाल के लायक बनाना होगा।

3. पोषक तत्व :- अच्छी पैदावार के लिए विभिन्न पोषक तत्वो की सन्तुलित रूप में आवश्यकता होती है। जैसे एन०पी०के० का ४ २ १ मे उपयोग लेकिन आज खेती मे पोषक तत्वो का प्रयोग रासायनिक उर्वरको से बहुतायत मे किया जा रहा है, जिससे नि सन्देह मृदा का स्वास्थ्य खराब हुआ है इससे छुटकारा पाना तो मुश्किल है, हॉ इसकी मात्रा कम कर सकते हैं। इसके लिए समन्वित पोषक तत्व प्रणाली अपनानी होगी। इस प्रणाली में शामिल है - उचित फसल चक्र, हरी खाद, कम्पोस्ट एव जैविक उर्वरक के प्रयोग के साथ रासायनिक उर्वरक। इस प्रणाली को अपनाने से मिट्टी की बनावट उत्पादन के अनुकूल बनी रहेगी।

4. फसल सुरक्षा प्रबन्ध :- उष्ण कटिबधीय और समशीतोष्ण कृषि क्षेत्रो में कीड़े-मकोड़े बीमारियों और खरपतवारो की रोकथाम सबसे बड़ी चुनौती है। विभिन्न कीटनाशियों के प्रयोग से पर्यावरण, जल, भूमि एव कृषि उत्पादन पर बहुत ही खराब प्रभाव पड़ता है। ऐसे क्षेत्रों में 'समेकित कीट प्रबन्ध' अपनाने होगे। इस प्रणाली को अपनाने से रासायनिक कीटनाशियो का प्रयोग कम से कम होता है तथा कीटो के प्राकृतिक शत्रुओ को सरक्षण भी मिल जाता है। चने की फली बेधक के लिए न्यूक्लियर पॉली-डाइड्रोसिस वाइरस २५० शिशु समतुल्य की दर से बहुत सफल पाया गया है। जल कुम्भी जिसकी जलाशयो, नहरो में समस्या रहती है को वियोचैटिना वीविल द्वारा नियत्रित किया जा सकता है। इसी प्रकार एपीक्रेनिया प्रजाति के परजीवी कीट की मदद से फसल के सबसे विनाशकारी शत्रु फुदका कीट के नियंत्रण मे अच्छी सफलता मिली है। वैज्ञानिकों के अनुसार कीटों के २५ से ३३ प्रतिशत परिसर जैव नियत्रण मे उपयोगी है जिनकी जानकारी कृषको को होनी चाहिए। कीटनाशियों की तरह विभिन्न जीवाणुओं का भी प्रयोग 'समेकित कीट प्रबन्ध' मे किया जा सकता है। जैसे बीटीवेसीलस यूरिजिएसीस कई फसलो मे इसका प्रयोग करने पर फसलो को कीटरोधी बनाने में सफलता मिली है, लेकिन इस बात पर ध्यान देना होगा कि पौधे जो प्राकृतिक कीटनाशी बनाते कहीं मानव स्वास्थ्य के लिए कोई खतरा न पैदा करे।

5. **ऊर्जा :-** परम्परागत एव गैर परम्परागत ऊर्जा साधनो के इस्तेमाल मे सही तालमेल बैठाकर ऐसा ऊर्जा प्रबन्ध अपनाना होगा कि उपज के वाछित स्तर प्राप्त किए जा सके।

6. **आनुवांशिक विविधता :-** उत्पादन मे टिकाऊ प्रगति बनाए रखने के लिए स्थानीय तौर पर उपयुक्त किस्मे और अनुवाशिक विविधिता दोनो जरूरी है, प्राय एक फसल की समान आनुवांशिक आधार वाली किस्मे ही सभी किसान उगाने लगते हैं। यदि कोई ऐसा रोग फैल जाए तो सबकी फसले चौपट कर दे।

7. **कृषि प्रणालियों पर ध्यान :-** उपलब्ध भूमि, जल और ऋण सुविधाओ का इस तरह इस्तेमाल हो ताकि वे एक दूसरे के आड़े हाथ न आए बल्कि पूरक बने। इसके लिए प्रणालीगत दृष्टिकोण विकसित करने की जरूरत है जिसमें फसल उगाने के साथ-साथ पशुपालन, कृषि वानिकी और मछली पालन वगैरह सबका मिले-जुले तौर पर इस्तेमाल हो ताकि आमदनी बढ़ने के साथ-साथ रोजगार के अवसर भी ज्यादा मिले और मिट्टी उपजाऊ भी बनी रहे।

कटाई के बाद की तकनीकी :-[56]

अधिक उपज के साथ-साथ उपभोक्ताओ को उन्हे पसन्द आने वाली सुपोषक व्यजन प्रदान करने के लिए खेती से उपलब्ध सामग्री को अनेक आकर्षक और पोषक वस्तुओ के रूप मे उपलब्ध कराना और के हर हिस्से को किसी न किसी रूप मे इस्तेमाल करना जरूरी है। इसके लिए जरूरी है कि उत्पादन और कटाई के बाद की प्रौद्योगिकी दोनों के बीच तालमेल हो। कृषि वस्तुओ को सुखाने, भण्डारण और उनका विपणन करने की तकनीके ऐसी होनी चाहिए कि वे ऊर्जा के परम्परागत साधनों पर ज्यादा जोर न डाले तथा कृषि उत्पादन का गुण एवं मात्रा मे किसी प्रकार की गिरावट या बरबादी न हो।

अनुसंधान एवं विकास :-[57]

टिकाऊपन के लिए बुनियादी जरूरत इस बात की है कि अनुसंधान और प्रशिक्षण दोनों मे सहकारिता पर बल दिया जाए। इनमे नई तकनीके विकसित करने मे वैज्ञानिकों और किसानो दोनो की हिस्सेदारी

---

[56] डॉ० मिश्र कुमार विनय, समगतिशील खेती, प्रतियोगिता दर्पण, मार्च पृष्ठ संख्या १३६८ ।

[57] डॉ० मिश्र कुमार विनय, समगतिशील खेती, प्रतियोगिता दर्पण, मार्च पृष्ठ संख्या १३६८ ।

हो और दोनो मिल-जुल कर प्रसार करे।

टिकाऊपन का उपायः–[58]

टिकाऊ खेती को बढ़ावा देने के लिए अनुसधान की नई दिशाएँ अपनानी पड़ेगी। फसल उत्पादन मे टिकाऊ प्रगति का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए फसलो के आनुवाशिक ससाधनो के सग्रह, सरक्षण, मूल्याकन और उनकी अभिवृद्धि के विशेष कार्यक्रम चलाने पड़ेगे। टिकाऊ खेती का आनुवाशिक उद्यान स्थापित करके हम ऐसी सामग्री प्राप्त कर सकेगे जो किसी विशेष क्षेत्र मे टिकाऊपन ला सके जैसे कि —

- हवा से नाइट्रोजन खींचकर पेड-पौधो और मिट्टी मे जमा करने वाले सूक्ष्म जीवयुक्त पेड़ और झाड़ियाँ, तने मे गॉठ वाले फलीदार पौधे जैसे - साधारण ढॅचा, जाइन्ट ढॅचा, अजोला और नील हरित शैवाल इत्यादि।
- कीटो के नियत्रण मे प्रयोग होने योग्य पौधों, पेड़ों की प्रजातियॉ इनमे ऐसे पौधे, जीवाणु और फफूँदी भी शामिल है, जो कीटों को दूर भगाते हैं और मिट्टी में पनपने वाले कृमियो का नियत्रण तथा खरपतवारो की रोकथाम करते हैं।
- रासायनिक उर्वरकों के इस्तेमाल की दक्षता बढ़ाने वाले पेड़ पौधो और अन्य प्रजातियॉ जैसे - नीम, जिसकी खली मिट्टी मे नाइट्रोजन को नाइट्रीकरण से बचाकर खाद की बचत करती है।
- वे प्रजातियॉ जो मिट्टी के कटाव को रोकती है या कम करती हैं जैसे की खस, कीनीपोडियम, एमरेन्थस प्रजातियॉ इत्यादी।
- कृषि वानिकी मे उपयोगी पेड़ और झाड़ियॉ तथा बिगड़ी और बंजर मिट्टियो को उपजाऊ बनाने मे मदद करने वाली प्रजातियॉ।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि टिकाऊ खेती कोई एक नारा नहीं है बल्कि भविष्य के लिए मानव की अत्यन्त आवश्यकता भी है। एक सर्वोत्तम रणनीति यह होगी कि पर्यावरण के कुप्रभाव को कम किया जाए और आगे चींटी के झुण्ड की तरह बढ़ती हुई इस मानव जनसंख्या की वर्तमान एव भविष्य की आवश्यकताओ

---

[58] डॉ० मिश्र कुमार विनय, समगतिशील खेती, प्रतियोगिता दर्पण, मार्च पृष्ठ सख्या १३६९ ।

को पूरा किया जा सके। यह मुख्य तीन चरणो मे होनी चाहिए ।

1. उत्पादन का इष्टतम करना :- इसके लिए उन क्षेत्रो मे जहाँ उच्च उत्पादन क्षमता है, मे सरक्षण एव उत्पादन को समन्वित करना होगा, ताकि बिना पर्यावरण खोए पूर्ण रूप से क्षमता का दोहन किया जा सके। जो उच्च तकनीकी एव पर्यावरण दोस्ती के द्वारा सम्भव होगा।

2. उत्पादन को पुनः हासिल करना :- इसके लिए उन क्षेत्रो मे जहाँ उत्पादकता मे गिरावट आई है उनको ध्यान मे रखना होगा।

3. जहाँ पर्यावरण तेजी से बदल रहा हो वहाँ क्षेत्रो का संरक्षण करना होगा जैसे फॉरेस्ट्री, घासे, एव वसास्वति विधियो से।

उपर्युक्त सभी सोच के लिए लिए सामूहिक आन्दोलन एव भागीदारी के प्रयास करने होगे ताकि भूमि एव जल ससाधनो को सुरक्षित, सुदृढ़, सुधार, सरक्षित एव वैज्ञानिक तरीके से उपयोंग किया जा सके।

टिकाऊपन का मूल्यांकन :- [59]

हम टिकाऊ खेती की ओर कहाँ तक बढ़े है उसकी जॉच करने के लिए कोई विशेष नियम नहीं है क्योकि इसमे बहुत से मुद्दे और विभिन्न प्रजातियाँ तथा परिस्थितियाँ शामिल हैं, परन्तु इनमें से कुछ पहलू ऐसे हैं जिनके आधार पर कुछ स्तर तक मूल्याकन किया जा सकता है। जैसे की बिगड़ी हुई मिट्टी को फिर से सुधारने की गुजाइश, फसल सुरक्षा के लिए आवश्यक आनुवांशिक विविधता का स्तर, मिट्टी मे सूक्ष्म जीवो की उन क्रियाओ का सार जो मिट्टी को उपजाऊ रखने के लिए जरूरी है। इसके अलावा मिट्टी मे जीवाश की मात्रा मिट्टी की क्षारीयता और अम्लीयता जमीन मे पानी का स्तर और पानी की गुणवत्ता तथा प्रति हेक्टेयर उत्पादन एवं उत्पादन की गुणवत्ता, इन सभी को लम्बे समय तक बनाए रखना होगा।

******

---

[59] डॉ० मिश्र कुमार विनय, समगतिशील खेती, प्रतियोगिता दर्पण, मार्च पृष्ठ सख्या १३६९ ।

चतुर्थ अध्याय

उत्तर प्रदेश में तिलहन का विपणन

उत्तर प्रदेश मे तिलहन फसलो का एक महत्वपूर्ण स्थान है। भारत मे क्षेत्राच्छादन की दृण्टी से खाद्यानो के पश्चात् तिलहनी फसलो का दूसरा स्थान है। तेलो का उपयोग मानव उपभोग के अतिरिक्त औद्योगिक उत्पाद यथा साबुन, पेन्टस लुब्रीकेन्टस, सौन्दर्य प्रसाधन,दवाएँ आदि बनाने मे भी प्रयोग किया जाता है। इसकी खलियों का उपयोग पशुओ को खिलाने तथा भूमि मे जीवाश पदार्थो के बढाने मे भी किया जाता है। नीम की खली का प्रयोग कीटनाशक के रूप मे किया जाता है।[1]

हमारे देश मे तिलहन की नौ किस्मो की फसले बोयी जाती हैं [2] जो निम्न है।

- मूँगफली
- तोरी या तोरिया
- सरसो
- तिल
- सोयाबीन
- सूरजमुखी
- अरडी
- अडी
- बिनौला

---

[1] तिलहन उत्पादन कार्यक्रम,२००१-२००२ कृषि विभाग उत्तर प्रदेश लखनऊ ।

[2] डॉ० सिह कुमार आशोक, उत्तर प्रदेश मे तिलहन का विपणन, पृष्ठ सख्या १०८ ।

इनमे से अलसी एव अरडी [3] मुख्यत अखाद्य तेल हैं तथा शेष सभी तिलहनो का खाने मे उपयोग होता है। देश के तिलहन उत्पादन मे उत्तर प्रदेश का सातवॉ स्थान है। देश के कुल तेल उत्पादन का ७ ४ प्रतिशत तेल उत्तर प्रदेश मे उत्पादित होता है। प्रदेश मे कुल फसली क्षेत्र का ७१६ प्रतिशत क्षेत्र तिलहनी फसलो के अन्तर्गत आता है। प्रदेश मे १९५०-५१ मे ३ ४८ लाख है० क्षेत्रफल मे तिलहनी फसले बोई जाती थी। उस समय कुल उत्पादन १ ८२ लाख मी० टन था। १९९६-९७ मे १२ ७८ लाख है० क्षेत्र मे तिलहनी फसले बोयी गयी थी, जिसमे १५.४६ लाख मी० टन उत्पादन प्राप्त हुआ था जो क्षेत्रफल एव उत्पादन के मामले मे वर्ष १९५०-५१ से क्रमश ४ व ८ गुना अधिक था। लेकिन १९९७-९८ मे क्षेत्रफल एव उत्पादन मे प्रतिकूल मौसम के कारण कमी हुई है। वर्ष ९७-९८ मे क्षेत्रफल ११ ६५ लाख हे० और उत्पादन १० ०२ लाख मी० टन हुआ तथा १९९८-९९ मे क्षेत्रफल १० ५१ लाख हे० रहा जिससे उत्पादन १०.८९ लाख मी० टन प्राप्त हुआ। प्रदेश मे तिलहन उत्पादन सम्बन्धी क्षेत्रफल उत्पादन एव उत्पादक्ता के ऑकडे निम्नवत है।

वर्ष	आप्छादन (लाख हे0)	उत्पादन (लाख मी0 टन)	उत्पादकता (कु0/हे0)
1950-51	3 48	1.82	5.24
1960-61	5 71	3 25	5 69
1970-71	6 97	3.80	5.45
1980-81	7.00	3.73	5.27
1990-91	10.45	13 74	8.45
1991-92	11 86	17 76	7.95
1992-93	11 24	12.02	7.35
1993-94	12 01	14.24	8.41
1994-95	12 37	14.40	8.43
1996-97	12.78	19.46	8.93

[3] तिलहन उत्पादन कार्यक्रम २००१-२००२ कृषि विभाग उत्तर प्रदेश लखनऊ ।

1997-98	11 65	10 02	6.08
1998-99	10.51	10.89	6.87
1999-2000	9.74	8 55	8 77
2000-2001	9 88	8 75	8 85
2001-2002	17.47	19.93	11.39

स्रोत :- कपास एवं तिलहन अनुभाग कृषि निदेशालय, उ0 प्र0 लखनऊ
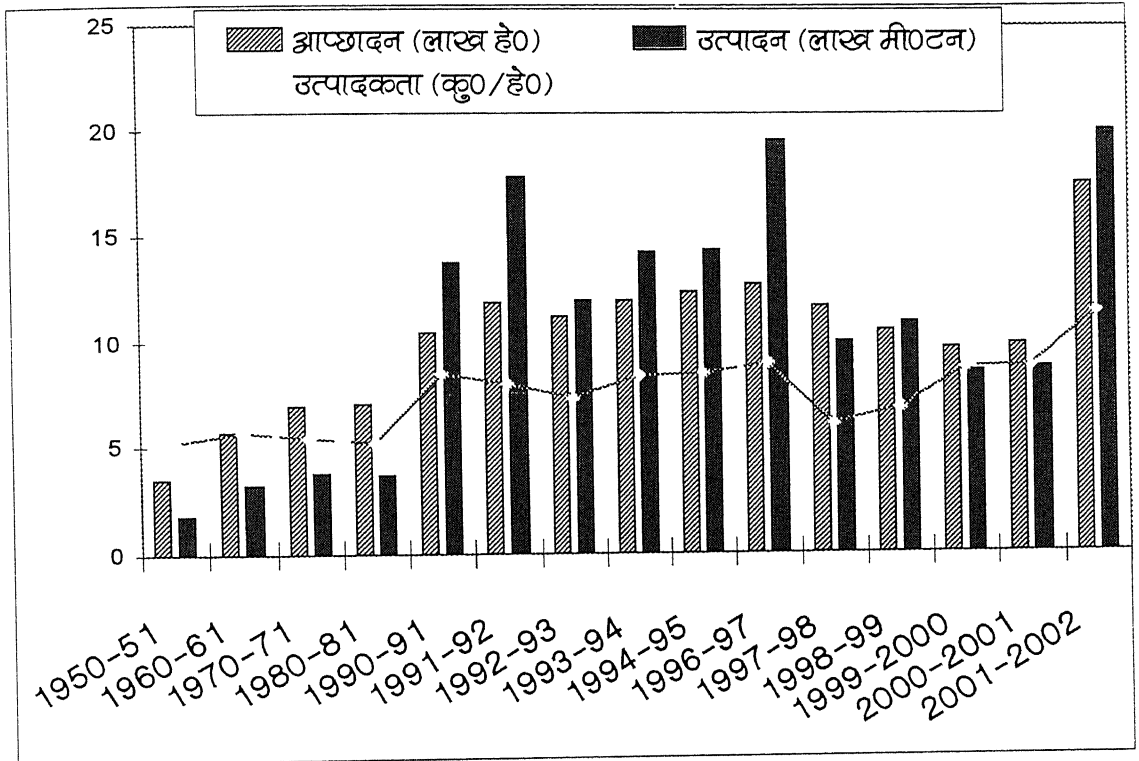
भारत सरकार द्वारा कृषि उत्पादन मे तिलहन कार्यक्रम को प्रथमिकता देने के उद्देश्य से निम्न निति अपनाई गई है।[4]

- बड़े पैमाने पर तिलहन की खेती के लिए खेती के नए तरीके अपनाना।
- तिलहन की खेती के क्षेत्र मे वृद्धि।
- सोयाबीन तथा सूरजमुखी जैसे नई किस्मों के विकास पर अधिक बल देना।

---

[4] भारत, १९९३ पृष्ठ सख्या ३०३ ।

- बढिया ब्रीजो फासफोरस उर्वरक का अधिक इस्तेमाल तथा पौध सरक्षण उपाय करना।
- तिलहन की खेती वाले सिचित क्षेत्र का विस्तार करना।
- तिलहनो की खेती के सभावना वाले क्षेत्रो मे विशेष परियोजनाएँ प्रारभ करना।
- प्रदर्शन कार्यक्रम चलाना, मिनी कॉटो का वितरण करना तथा दूसरी फसलो से तिलहन बोना।

उत्तर प्रदेश में तिलहन का क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता:-

तिलहन उ०प्र० की मुख्य नकदीं औद्योगिक फसल है। यहाँ पर देश के कुल तिलहन उत्पादन का २० प्रतिशत उत्पादित होता है।[5] राई सरसों के उत्पादन मे तो इस प्रदेश का प्रथम स्थान है, परन्तु यह बडी ही निराशजनक बात है कि यधपि तिलहनी फसलो के अन्तर्गत क्षेत्रफल मे कोई खास गिरावट नहीं आई है परन्तु औसत उत्पादन प्रति हेक्टेयर एव कुल उत्पादन घटा है। तिलहनी फसलो एव उनके तेलो का मूल्य दिन-प्रतिदिन बढता जा रहा है जिसके कारण एक सामान्य आदमी को अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड रहा है।

उपर्युक्त उद्देश्यो को ध्यान मे रखते हुए ही हमे तिलहन उत्पादन नीति का निर्धारण करना होगा। हम उसकी प्रतीक्षा नहीं कर सकते जब कि गेहूँ की भॉति तिलहन की अधिक उपज देने वाली फसले निकलेगी बल्कि जो हमारी वर्तमान प्रणालियॉ है उनसे ही उत्पादन बढ़ाने का कार्यक्रम बनाना होगा क्योकि अभी भी उनकी क्षमता से काफी कम औसत उत्पादन प्राप्त हो रहा है।[6]

उत्तर प्रदेश में तिलहन विकास योजना :- यह योजना प्रदेश मे तिलहनो के उत्पादन बढाने के उद्देश्य से पिछड़े क्षेत्र बुन्देलखण्ड, पूर्वी जिले एव तिलहन की क्षमता रखने वाले अन्य जनपदो मे मूँगफली, तिल, अण्डी, राई, सरसो, अलसी, एवं कुसुम के उत्पादन बढ़ाने हेतु वर्ष १९९१-९२ मे कार्यान्वित कराई गयी। रबी तिलहन कार्यक्रम में वर्ष १९९१-९२ में विशेषत. यह प्रयास करने का विचार रखा गया था

---

[5] तिलहन उत्पादन कार्यक्रम वर्ष १९९१-९२ पृष्ठ सख्या ५, प्रकाशित, कृषि निदेशालय, उ०प्र० (कपास एव तिलहन अनुभाग) लखनऊ ।

[6] सौजन्य से मुख्यालय कृषि निदेशालय, उ०प्र० लखनऊ ।

कि राई सरसो के वर्तमान शुद्ध क्षेत्रफल में सघन विधियॉ अपना कर इसके उत्पादन मे वृद्धि करना तथा साथ ही साथ जो क्षेत्रफल राई सरसो के अन्तर्गत मिश्रित बोया जाता है उसके शुद्ध क्षेत्रफल को बदलना है।[7]

इन फसलो के उत्पादन बढ़ाने के लिए क्षेत्रो एव कृषकों को चुन लिया जाय और नवीनतम् कृषि विधियो से खेती की जाय साथ ही इन फसलो के उत्पादन के लिए कृषको को कृषि निवेश समय से उपलब्ध कराया जाय।

वर्ष १९९९-२००० व २०००-२००१ मे फसलवार क्षेत्रफल, उत्पादन एव उत्पादकता की स्थिति निम्न प्रकार है –

क्षेत्रफल - लाख है० मे
उत्पादन - लाख मै० टन मे
उत्पादकता - कुन्तल/है० मे

क्र०सं०	फसल का नाम	वर्ष 1999-2000			वर्ष 2000-2001		
		क्षेत्रफल	उत्पादन	उत्पादकता	क्षेत्रफल	उत्पादन	उत्पादकता
१	मूँगफली	1.13	0.95	8.30	1.18	0.97	8.21
२	तिल	0.95	0.18	1.83	1.09	0.17	1.55
३	सोयाबीन	0.18	0.14	7.64	0.16	0.10	6 24
४.	सूरजमुखी	0.15	0.19	13 19	0.25	0.33	13 50
	योग खरीफ	2.41	1.46	6.05	2.68	1.57	5.85
५	तोरिया/राई सरसो	6.62	6 78	10 23	6.30	6.61	10.50
६	अलसी	0.71	0.31	4.33	0.90	0.57	6.35
	योग रबी	7.33	7.09	9.67	7.20	7.18	9.97
	महायोग	9.74	8.55	8.77	9.88	8.75	8.85

* आकडे परिवर्तनीय है ।

स्रोत :- कृषि निदेशालय, उ0 प्र0 (कपास एवं तिलहन अनुभाग) लखनऊ।

---

[7] सौजन्य से मुख्यालय कृषि निदेशालय, उ०प्र० लखनऊ ।
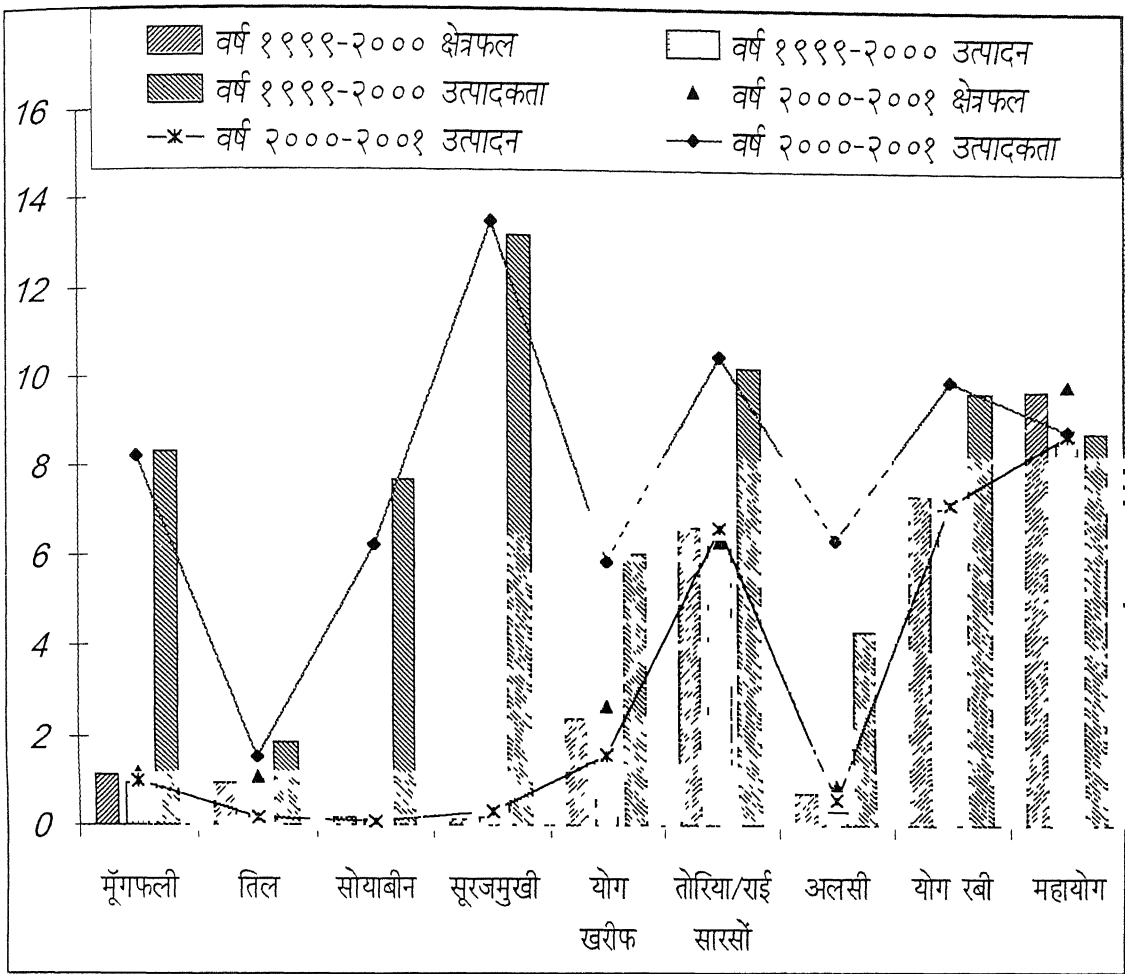
वर्ष २००१-२००२ के क्षेत्रफल उत्पादन एव उत्पादकता के लक्ष्य निम्नवत निर्धारित किए गए है –

क्षेत्रफल - लाख है० मे
उत्पादन - लाख मै० टन मे
उत्पादकता - कुन्तल/ है० मे

क्र०सं०	फसल का नाम	2001-2002 क्षेत्रफल	2001-2002 उत्पादन	2001-2002 उत्पादकता
१	मूँगफली	1.46	1.61	11.00
२	तिल	1.35	0 34	2.50
३	सोयाबीन	0.43	0 53	12.00
४	सूरजमुखी	0.396	0 55	14.00
	योग खरीफ	3.646	3.03	8.31

५	तोरिया	8 90	2 09	11.00
६	राई/सरसो	10 84	14.11	12 95
७	अलसी	1 10	0 70	6.36
	योग रबी	13.89	16.90	12.16
	महायोग	17.47	19.93	11.39

स्रोत :- कृषि विभाग, उ0 प्र0 (कपास एवं तिलहन अनुभाग) लखनऊ।
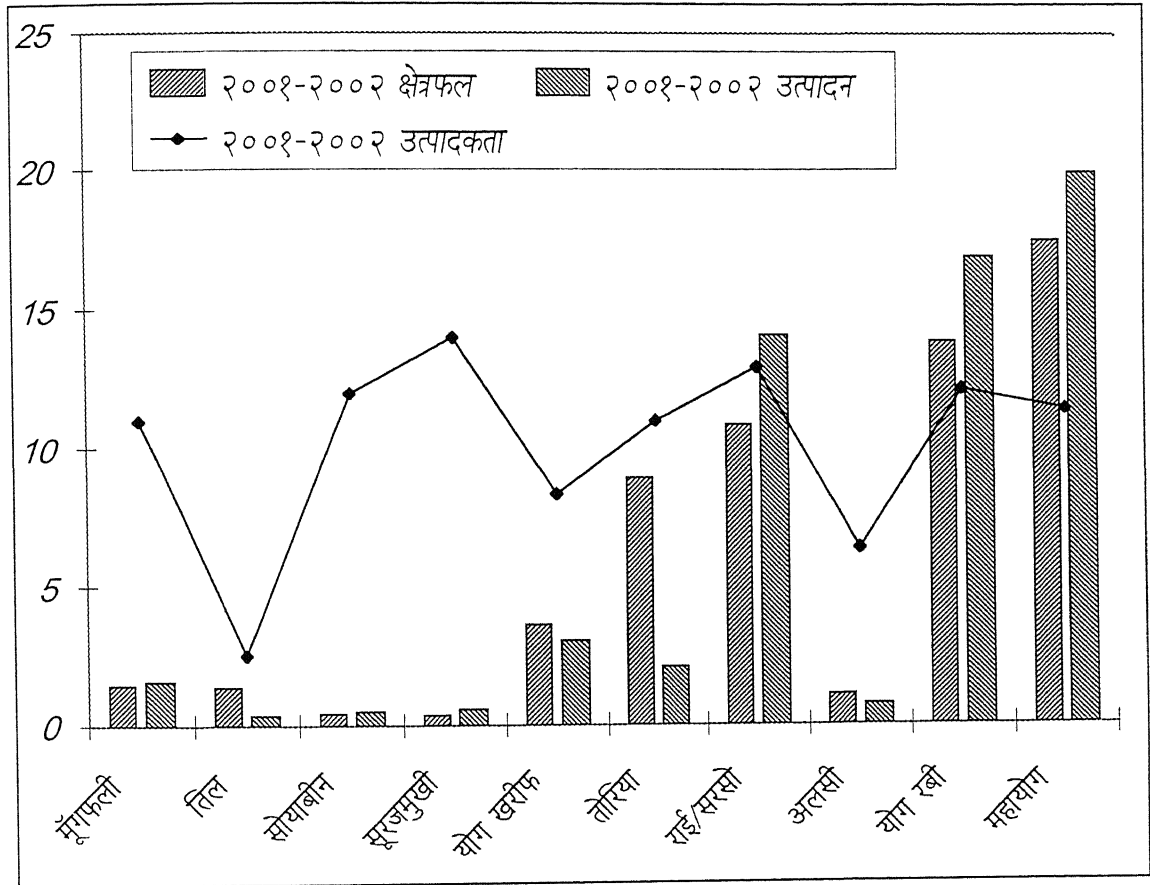
तिलहनों के उपयोग :- तिलहन अत्यन्त उपयोगी फसल है। इसका खाद्य तेल, पशुचारा अनेक औद्योगिक उत्पादो मे प्रयोग किये जाने वाले तेल, निर्यात आदि मे विशेष महत्व है।

तिलहनो के विभिन्न उद्देश्यो मे हुए उपयोग की मात्रा को प्रतिशत मे दिया गया है। मूँगफली का १ ३ प्रतिशत निर्यात मे, १२ ० प्रतिशत बीज हेतु उपयोग मे लाया जाता है। इसी प्रकार लाही सरसो का

१ ५ प्रतिशत बीज मे, ४ १ प्रतिशत खाद्य पदार्थ हेतु ९ ४ प्रतिशत पेराई मे उपयोग होता है । अलसी का ४ ९ प्रतिशत बीज मे ५ १ प्रतिशत खाद्य पदार्थ हेतु तथा ९० ० प्रतिशत पेराई मे प्रयोग होता है । अण्डी का ६ २ प्रतिशत बीज मे ९३ ८ प्रतिशत पेराई मे प्रयोग होता है[8]

रणनीति :- वर्तमान वर्ष मे निर्धारित लक्ष्यो की प्राप्ति हेतु कठोर परिश्रम एव विशेष रणनीति की आवश्यकता होगी। निर्धारित लक्ष्यो की प्राप्ति हेतु निम्न रणनीति तैयार की गई है -[9]

1. तिलहनी फसलों के क्षेत्रफल में वृद्धि :- बुन्देलखण्ड मे खाली खेतो मे तिलहनी फसलो की बुवाई करके तथा ज्वार बाजरा, असिचित धान के स्थान पर तिलहनी फसले उगाकर क्षेत्र का विस्तार किया जाय। कानपुर मण्डल मे बाजरा के स्थान पर सोयाबीन की खेती पर बल दिया जाय। सुरजमुखी के क्षेत्र का विस्तार इलाहाबाद, कानपुर, बरेली, मुरादाबाद, मेरठ, आगरा, एव लखनऊ मण्डल मे किया जायेगा। इसके साथ ही जायद मे आलू, सब्जी, मटर, तोरिया, गन्ना की पेड़ी व अगेती राई/सरसो की कटाई के उपरान्त खाली खेतो मे सुरजमुखी की बुवाई हेतु कृषको को प्रेरित किया जाय।

2. उत्पादकता में वृद्धि :- तिहलनी फसलों की उत्पादकता मे वृद्धि हेतु उच्च्च गुणवत्ता युक्त प्रमाणित बीज की मात्रा, सतुलित मात्रा मे उर्वरको का प्रयोग, जिप्सम का प्रयोग, कीट रोगो से बचाव एव समय से बुवाई, सिचाई, निराई-गुडाई पर बल दिया जाय। इसके लिए न्याय पचायतवार क्षेत्र की जानकारी करने के उपरान्त ऐसे मुख्य बिन्दु चिन्हित कर लिए जाय जिनके कारण उत्पादकता प्रभावित होती है। इन्ही चिन्हित बिन्दुओ पर आधारित तिलहन उत्पादन को अभियान के रूप मे न्याय पचायत/ग्राम पचाय त मे चलाया जाय। ऐसे नियोजित एव क्रियान्वित कार्यक्रम से फसल पर जो प्रभाव पड़ेगा उसे अन्य कृषको को भी दिखाया जाय।

वृहत स्तर पर तिलहनी फसलो मे उत्पादकता में कमी को जिन मुख्य कारणो को चिन्हित किया गया है वे निम्न है :-[10]

---

[8] खाद्य साख्यिकीय बुलेटिन १९९१-९२ पृष्ठ सख्या १४९ ।

[9] तिलहन उत्पादन कार्यक्रम २००१-२००२ कृषि विभाग उ०प्र० लखनऊ ।

[10] तिलहन उत्पादन कार्यक्रम २००१-२००२ कृषि विभाग उ०प्र० लखनऊ ।

(अ) - मूँगफली :-

- बीज की उपलब्धता पर्याप्त मात्रा मे न होना तथा बीज की मात्रा कम रहना ।
- वर्षा पर आधारित बुवाई के कारण विलम्ब से बुवाई होना ।
- कृषको द्वारा सतुलित उर्वरको का प्रयोग तथा मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरक का प्रयोग न किया जाना ।
- जिप्सम का प्रयोग न करना ।
- सफेद गिडार का प्रकोप बढ़ता जा रहा है। कृषको को इस कीट के नियंत्रक के बारे मे पर्याप्त जानकारी की आवश्यकता है।
- खूँटियाँ एव फली बनते समय नमी का अभाव ।

(ब) - सोयाबीन :-

- पर्याप्त मात्रा मे गुणवत्ता युक्त बीजों का अभाव ।
- बीज उपचार तथा राजोबियम कल्चर का प्रयोग न करना ।
- संतुलित उर्वरक/जिप्सम का प्रयोग न करना ।
- सामयिक निराई-गुड़ाई न करना ।
- फूल फली आने की अवस्था पर नमी की कमी ।
- उचित विपणन व्यवस्था का अभाव ।

(स) - तिल :-

- बुबाई विलम्ब से करना ।
- सतुलित उर्वरक का प्रयोग न करना ।
- जिप्सम का प्रयोग न करना ।

(द) - **सूरजमुखी :-**

✓ उच्च गुणवत्ता युक्त प्रमाणित बीजो का अभाव ।

✓ सहत क्षेत्र मे बुवाई न होने से चिड़ियो द्वारा अत्यधिक हानि ।

✓ उचित विपणन व्यवस्था का अभाव ।

(य) :- 1. वर्षा से बोई फसल का नष्ट हो जाना तथा बुवाई मे विलम्ब होना ।

2. सतुलित उर्वरक / जिप्सम का प्रयोग न करना ।

3. कटाई के समय अथवा खलिहान मे कटी फसल मे प्रतिकूल मौसम एव वर्षा से होने वाली क्षति के भय से कृषक खेती करना कम पसद करते है ।

(२) - **राई /सरसों :-**

- समय से बुवाई न होना ।
- सतुलित उर्वरक /जिप्सम का प्रयोग न करना ।
- बीज शोधन / कल्चर का प्रयोग न करना ।
- बिरलीकरण न करना ।
- माहू किट नियत्रण समय से न करना ।

(ल) - **अलसी :-**

- शुद्ध खेती के प्रति कृषको मे रूचि न होना ।
- उपेक्षित भूमि में खेती करने की परम्परा ।
- समय से बुवाई न करना ।

उत्पादन वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि उपरोक्त कठिनाइयों का समन्वित रूप से निराकरण किया जाय।

उत्तर प्रदेश में तिलहनी फसलों का विपणन :- उत्तर प्रदेश की मुख्य तिलहनी फसल सरसो है। पूरे देश मे सरसो उत्पादन मे प्रदेश का प्रथम स्थान है, पूरे देश के सरसो उत्पादन क्षेत्र का ३५ ६७

प्रतिशत भाग केवल उत्तर प्रदेश मे है। देश के कुल उत्पादन का ५३ ७ प्रतिशत तोरिया एव सरसो का उत्पादन केवल उत्तर प्रदेश मे होता है। इसके अतिरिक्त पूरे देश के कुल उत्पादन का २ ४ प्रतिशत मूँगफली, १३ ६ प्रतिशत तिल, ५ ६ प्रतिशत सूरजमुखी का उत्पादन उ०प्र० मे होता है।[11]

इस प्रकार से प्रदेश मे कमोबेश मात्रा मे प्राय· सभी तिलहनो की खेती होती है, किन्तु लाही सरसो का उत्पादन सर्वाधिक है। अत लाही सरसो के अतिरिक्त अन्य तिलहनी फसल जैसे अलसी, मूँगफली के विपणन सम्बन्धी क्रियाओ का सक्षिप्त विवरण इस अध्याय मे प्रस्तुत किया गया है। प्रतिनिधि फसल के रूप मे लाही सरसो का चुनाव किया गया है जिसके विपणन सम्बन्धी समस्त क्रियाओ का विस्तृत विवरण आगे अध्याय ५ मे दिया गया है।

चूँकि सभी तिलहनों की विपणन क्रियाए लगभग एक समान है और कुल ९ प्रकार के तिलहन हमारे देश मे पाये जाते है। अत सभी तिलहनो का अलग-अलग अध्ययन करना न तो सभव ही रहा और न ही अध्ययन की दृष्टि से आवश्यक। अत· विस्तृत अध्ययन हेतु मात्र लाही सरसो का ही चुनाव किया गया है। अन्य तिलहनो के सदर्भ मे सक्षिप्त विवरण इस अध्याय मे प्रस्तुत किया गया है।

एकत्रीकरण :-[12] तिलहन के एकत्रीकरण मे तेल मिले महत्वपूर्ण स्थान रखती है। तेल दो प्रकार से निकाला जाता है · (१) तेल घानियो द्वारा तथा (२) तेल मिलो द्वारा। प्राय तेल मिले पूँजीपतियों की होती है और ये अन्य क्रेताओ के साथ प्रतिस्पर्धा करती है किन्तु जिन क्षेत्रो मे तेल मिले नहीं है वहॉ पर तेल घानियाँ महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। किसान द्वारा अपने कुल तिलहन की उपज का अनुमानत १८ प्रतिशत तक अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए रोक लिया जाता है। शेष आधिक्य को वह या तो स्वय मडी को, गॉव के व्यापारी को, थोक व्यापारी को, घूमता-फिरता व्यापारी को गॉव की घानी को, मिल के प्रतिनिधि को एव सहकारी समिति को बेच देता है।

---

[11] उ०प्र० मे कृषि आंकडे वर्ष १९९१-९२ पृष्ठ संख्या १२५ ।

[12] खाद्य साख्यिकीय बुलेटिन १९९१-९२ पृष्ठ सख्या १४२

अत विभिन्न जोत वर्ग के किसानो द्वारा विभिन्न माध्यमो से की गयी बिक्री के विवरण को प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न जोत वर्ग के किसानो द्वारा की गयी बिक्री का औसत भाग विभिन्न माध्यमो से इस प्रकार रहा है।

सरसो की बिक्री उत्पादक द्वारा सीधे मण्डी को १५ प्रतिशत, गॉव के बाजार के व्यापारी को ४५ प्रतिशत, थोक व्यापारी को २० प्रतिशत, घूमता-फिरता व्यापारी को ८ प्रतिशत, गॉव की घानी को १० प्रतिशत, मिल के प्रतिनिधि को ६ प्रतिशत, सहकारी समिति को २ प्रतिशत है। इसी प्रकार अलसी की बिक्री किसान द्वारा सीधे मण्डी को २२ प्रतिशत, गाँव के बाजार के व्यापारी को ४० प्रतिशत, थोक व्यापारी को १४ प्रतिशत, घूमता-फिरता व्यापारी को ४ प्रतिशत, गॉव की घानी को २ प्रतिशत, मिल के प्रतिनिधि को ११ प्रतिशत, सहकारी समिति को १ प्रतिशत है। इसी प्रकार मूँगफली की बिक्री का विवरण इस प्रकार रहा -

उत्पादक द्वारा सीधे मण्डी को ५२ प्रतिशत, गॉव के बाजार के व्यापारी को १५ प्रतिशत, थोक व्यापारी को ११ प्रतिशत, घूमता-फिरता व्यापारी को १२ प्रतिशत, मिल के प्रतिनिधि को १३ प्रतिशत, सहकारी समिति को १ प्रतिशत है। स्पष्ट है कि विभिन्न तिलहनो की विभिन्न माध्यमों से की जाने वाली बिक्री की मात्रा में अन्तर है। स्पष्ट है कि विभिन्न जोत वर्ग के किसानो द्वारा विभिन्न माध्यमो से की जाने वाली बिक्री भिन्न-भिन्न है। गॉव मे की जाने वाली बिक्री मे सबसे अधिक भाग छोटे किसानो का है। एक बात और ध्यान देने की है कि तिलहनो का एकत्रीकरण विभिन्न माध्यमो से तेल मिलो एवं घानियो मे होता है जहॉ इनकी प्रक्रिया की जाती है।

विक्रय की पद्वति :- तिलहन उपभोक्ता तक तीन बाजारो मे होकर पहुँचता है। प्राथमिक बाजार गौण बाजार व फुटकर बाजार। प्राथमिक बाजार गॉवो मे होते है, गौण बाजार तिलहन मे बहुत महत्वपूर्ण होते है क्योकि ये ही अधिकाश आधिक्य की बिक्री करते है। इन बाजारो को हम मण्डी या गज कहते है। यह मण्डी या गज किन्ही स्थानो पर व्यक्तिगत नियंत्रण मे है जबकि किन्ही स्थानो पर स्वायत्त शासन के अधीन हैं तो किन्हीं स्थानो पर नियमित है। जो मण्डियॉ या गंज व्यक्तिगत है ये किसान को अधिक सुविधा नही देती है तथा किसान से व्यय भी अधिक लेती है लेकिन जहॉ पर मंडियो स्वायत शासन के अन्तर्गत हैं वहॉ पर यह उनकी

आय का साधन बनी हुई है। नियमित मण्डी निश्चित रूप से सुविधाओं का ध्यान रखती है तथा यहाँ किसान से वसूल होने वाले व्ययो की मात्रा भी निश्चित होती है।

इन मडियो के समय भिन्न-भिन्न होते है तथा बेचने के ढग भी अलग-अलग होते है। कुछ स्थानो पर कच्चे आढतिया के यहाँ तिलहन बिकता है वहीं उसकी तुलाई होती है लेकिन कुछ मडियो मे सौदा तो कच्चे आढ़तिया के यहाँ होता है लेकिन माल की तुलाई क्रेता के यहाँ होती है। यह माल किसान ही अपनी गाड़ी से क्रेता के पास तक पहुँचाता है। साधारणतया तिलहन का भाव (१) छिपे तौर से या (२) नीलाम से या (३) समझौते द्वारा तय किया जाता है। छिपे तौर के ढग मे क्रेता या उसका दलाल तथा आढ़तिया कपड़े के नीचे एक दूसरे की उंगली पकड कर इशारे से भाव तय कर लेते है तथा बाद मे इसकी सूचना तिलहन के मालिक को दे दी जाती है। नीलाम प्रणाली मे तिलहन का नीलाम किया जाता है। जो व्यक्ति अधिकतम मूल्य लगाता है उसके नाम बोली समाप्त कर तिलहन की बिक्री कर दी जाती है। समझौते के अन्तर्गत क्रेता एव आढ़तिया द्वारा भाव तय किया जाता है तथा उसी मूल्य पर बिक्री की जाती है।

वर्गीकरण व प्रमापीकरण :- तिलहन की बिक्री मुख्यत उसकी किस्म के आधार पर की जाती है। अलग-अलग किस्म के तिलहन का भाव अलग-अलग होता है। तिलहन की किस्म का उसके विपणन पर अधिक प्रभाव पड़ता है। यदि तिलहन खराब किस्म का होता है तो तेल भी अच्छे किस्म का नही प्राप्त किया जा सकता है, फलस्वरूप इसके मूल्य भी कम मिलते है, यही कारण है कि तिलहन मे शुद्धता को अधिक महत्व दिया जाता है। अत तिलहन की तैयारी मे किसानो को अधिक ध्यान देना चाहिए, किन्तु इस सम्बन्ध मे मुख्य कठिनाई यह है कि तिलहन की खेती पृथक रूप से नहीं की जाती वरन् अन्य खाद्य फसलो के साथ की जाती है। फलस्वरूप इसमें अन्य खाद्यान्न मिल जाते है और इनका श्रेणीयन तथा वर्गीकरण करना कठिन हो जाता है। तिलहन मे मिलावट दो प्रकार की होती है (१) अन्य तिलहनो की मिलावट तथा (२) गेहूँ आदि अन्य अनाजो की मिलावट। व्यवहार मे शुद्ध तिलहन मिलना कठिन होता है। तिलहनो का वर्गीकरण उनके रग-रूप

या आकार के आधार पर किया जाता है जैसे अलसी का वर्गीकरण बड़ा व छोटा के आधार पर किया जाता है। सरसो व लाही का पीली, भूरी के आधार पर किया जाता है।

वित्त प्रबन्ध :- जैसा कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे यह स्पष्ट किया जा चुका है कि विपणन के प्राय सभी कार्यों मे वित्त की आवश्यकता पडती है, बिना वित्त के विपणन का चक्र चलना कठिन होता है। हमारे देश मे किसानो के पास विक्रय योग्य अतिरेक की कमी है। इसके अतिरिक्त हमारे देश के किसानो की आर्थिक स्थिति खराब है। अत ऐसी स्थिति मे उन्हे ऋण का सहारा लेना आवश्यक होता है, गॉव मे किसान को जिन स्रोतो से ऋण उपलब्ध होता है, तिलहन उत्पादक किसान उन स्रोतो से ऋण प्राप्त करते है। इसके अतिरिक्त तिलहन बोने वाले किसानो को तिलहन की फसल मे उर्वरक एव कृषि रक्षा उपचार अपनाने हेतु सहकारिता विभाग से फसलो के लिए ऋण वितरण अश 'ख' के रूप मे किया जाता है। यह सुविधा तिलहन बोने वाले कृषको को उपलब्ध करायी जाती है। प्रत्येक विकास खण्ड मे सहायक विकास अधिकारी (सहकारिता) का यह दायित्व होता है कि तिलहन बोने वाले कृषको को ऋण की व्यवस्था करायेगे और कृषको से प्रार्थना पत्र प्राप्त करके अल्पकालीन ऋण वितरण कराने की व्यवस्था करेगे। सहायक विकास अधिकारी कृषि को यह निर्देश जारी किये गये है कि वे ऐसे कृषको की सूची एव प्रार्थना पत्र प्राप्त कर सहायक विकास अधिकारी (सहकारिता) को देगे। जिन्हे इन फसलो के लिए ऋण की आवश्यकता है, ताकि वे उन्हे समय से ऋण उपलब्ध करा सकें। राष्ट्रीयकृत बैंक भी कृषि निवेश हेतु अल्पकालीन ऋण दे रहे है। अत कृषको को इन बैंकों के माध्यम से ऋण उपलब्ध कराया जाय।[13]

इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय तिलहन विकास परियोजना के अन्तर्गत तिलहन की खेती हेतु अनुदान राशि प्रदान की गयी है।

अत उत्तर प्रदेश मे राष्ट्रीय तिलहन विकास परियोजना के अन्तर्गत विभिन्न विकास-कार्यक्रमो जैसे कृषि रक्षा, उर्वरक वितरण गोदाम निर्माण, रसायन छिड़काव आदि के सन्दर्भ मे कृषको को अनुदान की सहायता प्रदान करायी गई है। इससे प्रदेश के तिलहन उत्पादको को पर्याप्त प्रोत्साहन मिलने की सम्भावना है।

---

[13] तिलहन उत्पादन कार्यक्रम वर्ष १९९१-९२ कृषि निदेशालय, उत्तर प्रदेश (कपास एव तिलहन विभाग) लखनऊ पृष्ठ सख्या १३ ।

अलसी का विपणन :- अलसी तेल के बीजो मे से एक है। भारत वर्ष मे अलसी का सर्वाधिक उत्पादन उत्तर प्रदेश मे होता है। वर्ष १९९९-२००० मे उत्तर प्रदेश मे ० ७१ लाख है० मे अलसी की खेती की गयी थी और कुल अलसी का उत्पादन ० ३१ लाख मी०टन मे था। इस प्रकार पूरे देश की सर्वाधिक अलसी का उत्पादन उत्तर प्रदेश में होता है। अलसी का उत्पादन करने वाले अन्य राज्य क्रमश महाराष्ट्र, बिहार, राजस्थान, कर्नाटक, पश्चिम बगाल व आन्ध्र प्रदेश है। किसान अपनी अलसी की कुल उत्पादन का ७९ प्रतिशत ही बाजार मे बेचने के लिए लाता है। शेष ७ प्रतिशत बीज के लिए, ४ प्रतिशत घर के उपभोग के लिए व १० प्रतिशत गाँव के घानियो के लिए रख लेता है।[14]

अत उत्तर प्रदेश मे अलसी का सर्वाधिक उत्पादन झाँसी मण्डल मे होता है। तत्पश्चात् क्रमश वाराणसी, इलाहाबाद, फैजाबाद, गोरखपुर, लखनऊ, बरेली, कुमायूँ, आगरा और मेरठ मण्डल का स्थान है। वर्ष २०००-२००१ मे पूरे उत्तर प्रदेश मे १ १० लाख हे० क्षैत्र मे अलसी की खेती की गयी थी और कुल उत्पादन ० ७० लाख मी० टन था।[15]

बाजार के लिए तैयारी :- अलसी की उत्पत्ति की क्रियाएँ अन्य खाद्य पदार्थों की उत्पत्ति की क्रियाओ के समान है। अलसी को बाजार में लाने से पहले फसल काटने, बीज या दाने अलग करने व साफ करने की क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। अतिम क्रिया के पूर्ण हो जाने पर बाजार मे बेचने की क्रिया शुरू होती है। फसल आम तौर से दोपहर के पहले काटी जाती है जिससे गर्मी पाकर (पौधो मे से) बीज बिखर न जाये। पौधो को काटने के बाद बॉध कर सुखने के लिए ४ से १० दिन तक रखा जाता हैं। सूखने के बाद बैलो के पैरो से दबाकर बीज, पत्ते इत्यादि अलग-अलग कर दिये जाते हैं व बौछार करके बीजो को एकत्रित कर लिया जाता है।[16] अलसी को खेत से काट कर बाजार तक भेजने योग्य बनाने में प्राय वही सब क्रियाएँ करनी पडती है जो क्रियाएँ अन्य खाद्य पदार्थों की उत्पत्ति मे करनी पडती है।

---

[14] शर्मा एव जैन, बाजार व्यवस्था, साहित्य भवन आगरा वर्ष १९९३, पृष्ठ सख्या २२२ ।

[15] उ०प्र० के कृषि आकड़े वर्ष १९९१-९२ निदेशक कृषि साख्यिकी एव फसल बीमा, उ०प्र०, कृषि भवन लखनऊ, पृष्ठ सख्या ६६,६७,६८ से ।

[16] स्वत सर्वेक्षण पर आधारित ।

एकत्रीकरण :- किसान अपने बीज व उपभोग सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति के बाद बाकी उत्पत्ति गाँव मे या पास के बाजारो मे बेचता है।

अत. पूरे देश मे अलसी के एकत्रीकरण मे उत्पादक का ५० प्रतिशत, गाँव के बनियो का २० प्रतिशत और घूमते-फिरते व्यापारियो का २५ प्रतिशत,थोक व्यापारी ४ प्रतिशत एवं मिलो के प्रतिनिधि का १ प्रतिशत का योग दिया जाता है।[17]

अलसी का वितरण माध्यम :- तिलहनो के वितरण माध्यम के सदर्भ मे यह उललेखनीय है कि इसका वितरण दो स्तरो पर होता है, एक तों तिलहन के रूप मे, द्वितीय खली तेल के रूप मे। सर्वप्रथम तिलहन विभिन्न मार्गो से मिल तक पहुँचता है तत्पश्चात् मिल से तेल,खली के रूप मे विभिन्न मार्गो से अतिम उपभोक्ता तक पहुँचता है।

अत विभिन्न जोत वर्ग के कृषकों द्वारा की जाने वाली बिक्री विभिन्न माध्यमो से भिन्न-भिन्न है। छोटे किसान अपनी उपज का सर्वाधिक ४३ २३ प्रतिशत भाग गाँव के व्यापारी को कर देते हैं और मिल के प्रतिनिधि को २० ३५ प्रतिशत एव सीधे मण्डी को १७ ६५ प्रतिशत, थोक व्यापारी को ११ ४९ प्रतिशत, घूमन्तू व्यापारी को ४ २३ प्रतिशत, गाँव की घानी को ३.०७ प्रतिशत करते है। जबकि मध्यम वर्ग के किसान अपनी उपज का सर्वाधिक ३९ ५५ प्रतिशत गाँव के व्यापारी को २३ ५ प्रतिशत सीधे मण्डी को, १७ ४० प्रतिशत मिल के प्रतिनिधि को १३ ३० प्रतिशत थोक व्यापारी को ४ ४५ प्रतिशत, घूमते-फिरते व्यापारी को करते है। गाँव की घानी और सहकारी समितियो मे की जाने वाली बिक्री अति न्यून है। १० एकड से ऊपर वाले किसान अपनी उपज की सर्वाधिक बिक्री ३९ ७१ प्रतिशत गाँव के व्यापारी को, २२ २१ प्रतिशत मण्डी को, १८ ७८ प्रतिशत मिल के प्रतिनिधि को, १३ ३४ प्रतिशत थोक व्यापारी को, ३ ८९ प्रतिशत घूमता-फिरता व्यापारी को, १ ७७ प्रतिशत गाँव की घानी को करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि गाँव मे बिक्री का प्रतिशत सर्वाधिक औसतन ३९ ७१ प्रतिशत है, इसके कई कारण हैं। चूँकि किसान को अपनी उपज को बाहर ले जाने मे अनेक झझट, जैसे परिवहन साधन, उपयुक्त समय, मोल भाव, आदि का सामना करना पड़ता है जिससे

---

[17] स्वत सर्वेक्षण पर आधारित ।

बचने के लिए वह अपने गाँव के बाजार या मण्डी मे अपना माल बेचना अधिक पसद करता है। इसके अतिरिक्त किसान को आवश्यकता पड़ने पर उसे समय से अपने गाँव के व्यापारी से साख-सुविधा मिलती रहती है जिसके कारण भी वह इन्हे उनके हाथो बेचना उपयुक्त समझता है।

विक्रय की पद्धती :-

अलसी के बाजार भी अन्य खाद्य पदार्थों की भाँति तीन प्रकार के होते है ।

- प्राथमिक बाजार
- थोक बाजार
- सीमान्त बाजार

केन्द्रीय व उत्तरी भारत के गाँवो मे हाट व पैठ लगती है। दक्षिणी भारत में इन्हे शण्डीज कहते हैं। यह बाजार हफ्ते मे एक से तीन बार तक लगते हैं तथा इन्हे प्राथमिक बाजार कहते हैं। अलसी की बिक्री इन हाटो, पैठो व मण्डियो मे बहुत कम मात्रा मे होती है। इन बाजारो मे खरीद गाँवो के घानी वालो द्वारा की जाती है।

थोक बाजार मडी या गज कहलाते हैं और ये शहर व कस्बो मे होते हैं। यहाँ प्रतिदिन थोक में अलसी की खरीद व बिक्री की जाती है। इन्ही बाजारो से मिलों द्वारा खरीद की जाती है। यहाँ खरीद व बिक्री की सहायता के लिए आढ़तिया पाए जाते हैं। जिनके पास माल को कुछ समय तक रखने के लिए गोदाम होते है। अलसी के सीमान्त बाजार बम्बई व कलकत्ता बन्दरगाह पर पाये जाते हैं जहाँ से निर्यात किया जाता है। इन बाजारों मे भविष्य के सौदे किये जाते हैं। बाजारो मे अलसी की बिक्री मे सहायता के लिए विभिन्न प्रकार के मध्यस्थ पाये जाते हैं जिनमे आढ़तिया, दलाल, तौला व पल्लेदार प्रमुख हैं। किसान अपनी उत्पत्ति को गाड़ी मे भरकर आढतिया की दुकान पर लाता है जहाँ पर सबसे पहले उसके बोरो को खोलकर नमूना लिया जाता है। अलसी की बिक्री तीन प्रकार से होती है।

- समझौते द्वारा
- नीलाम द्वारा

➢ छिपे तौर पर (कपडे के नीचे उँगलियो से)

बिक्री या तो उसी दिन कर दी जाती है या भविष्य मे करने के लिए आढतियो के पास छोड दी जाती है। यदि किसान को धन की आवश्यकता होती है तो आढ़तिया के द्वारा उपज के मूल्य के ७५ प्रतिशत तक ऋण दे दिया जाता है। जिस पर ७ से १० ३ प्रतिशत तक ब्याज ली जाती है। भविष्य मे बिक्री आढतिया द्वारा की जाती है।[18]

वर्गीकरण व प्रमाणीकरण :-

अलसी का वर्गीकरण आकार पर आधारित है - पहला बड़ा व दूसरा - छोटा ।

इसमे रग का इतना महत्व नहीं है। भारत मे अधिकतर अलसी भूरे रग की होती है। लेकिन कुछ सफेद व पीले रग की भी होती है। जबकि राजस्थान व मध्य प्रदेश मे सफेद व पीले रग की उपज होती है। व्यापारिक दृष्टिकोण से किस्म तीन प्रकार की होती है।[19]

✓ मुम्बई बडा

✓ कोलकाता बडा

✓ कोलकाता छोटा

यह वर्गीकरण निर्यात के लिए काम मे आता है। देश मे तो बड़े व छोटे का ही वर्गीकरण माना जाता है।

वित्त प्रबन्ध :- अलसी उत्पादको का सामान्य तौर से गाँव के बनियो, घूमता-फिरता व्यापारी, थोक व्यापारी या अढतिया, मिलो के प्रतिनिधि, सहकारी समितियो, बैंकों से व्यक्तिगत जमानत पर ऋण प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त तिलहन बोने वाले कृषको को प्राय उर्वरक एव कृषि रक्षा उपचार हेतु सहकारिता विभाग से ऋण वितरित किया जाता है।

---

[18] शर्मा एवं जैन, बाजार व्यवस्था १९९० पृष्ठ सख्या २२२, २२३ ।
[19] शर्मा एव जैन, बाजार व्यवस्था १९९० पृष्ठ सख्या २२३ ।

स्पष्ट है कि कृषको के अन्य साख श्रोतो के अतिरिक्त सरकार द्वारा अलसी उत्पादको को विशेष रूप से अलग से साख एव अनुदान प्रदान करने की व्यवस्था भी है।

विपणन खर्चे :- जैसा कि प्रस्तुत अध्याय मे ही इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि प्रत्येक वस्तु को उत्पादक से लेकर उपभोक्ता तक पहुँचने मे अनेक मध्यस्थो से होकर गुजरना पड़ता है। जिससे उपज के मूल्य मे कई विपणन खर्चे सम्मिलित होते रहते हैं। परिणामस्वरूप उत्पादक एव उपभोक्ता मूल्य मे भारी अन्तराल उत्पन्न हो जाता है।

अत अलसी के विपणन मे उत्पादक, फुटकर व्यापारी एव थोक व्यापारी द्वारा किये जाने वाले मडी खर्च की दर का विवरण दिया गया है। इसमे तहबाजारी धर्मादा आदि खर्चो को नहीं दिखाया गया है। क्योकि अब यदि कही धर्मादा, गोशाला आदि की वसूली होती भी है तो वह चोरी-छिपे होती है, इन खर्चो को लेना अवैध माना गया है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि उत्पादक द्वारा चुगी, नमूना, कर्दा, दलाली का खर्च मुख्य रूप से दिया जाता है। कहीं-कहीं पल्लेदारी भी किसान से ली जाती है, लेकिन वसूली विक्रय से पूर्व की क्रियाओ पर ही होती है, जब उत्पादक अपना माल किसी दलाल के मार्फत बेचता है तभी उसे दलाली देनी पड़ती है। नमूना तो बिक्री हेतु लेना आवश्यक प्रतीत होता है, इसमे किसान को कोई विशेष आपत्ति भी नही रहती है। कर्दा, दाना,क्षति आदि मे लगभग १ से १ ५ कि०ग्रा० प्रति गाड़ी तक उपज का भाग चला जाता है।[20]

इसी प्रकार फुटकर व्यापारी एव थोक व्यापारी द्वारा विपणन खर्चे किये जाते हैं। फुटकर व्यापारी एव थोक व्यापारी द्वारा किए जाने वाले मडी खर्चो मे स्पष्ट अन्तर कर पाना कुछ कठिन है क्योकि थोक व्यापारी अपनी सभी खर्चों को उपज के मूल्य मे जोड़ देता है ओर वह फुटकर व्यापारी से वसूल लेता है और कभी-कभी वह जब इन खर्चों को उपज के मूल्य में नहीं जोड़ता है तो वह अलग से इन खर्चों की वसूली करता है। फुटकर व्यापारी द्वारा यातायात व्यय १० रू० प्रति क्विंटल, चुगी ३ रू० प्रति क्विटल, कमीशन १ ५० प्रतिशत, दलाली ५० पैसा प्रति सैकड़ा, तौलाई ५० पैसा प्रति क्विटल, पल्लेदारी ५० पैसा प्रति बोरा

---

[20] स्वत. गणना पर आधारित ।

की दर से वहन किया जाता है। इसी प्रकार यातायात व्यय १० रू० प्रति क्विटल, दलाली ५० पैसा प्रति बोरा, मडी शुल्क १ प्रतिशत, प्रतिस्थापना खर्च १ रू० प्रति क्विंटल एवं बिक्री ५ प्रतिशत थोक व्यापारी को खर्च करना पडता है।[21]

एक बात यह भी उल्लेख कर देना उपर्युक्त समझता हूँ कि ये सारे मडी खर्चे भले ही थोक व्यापारी एव फुटकर व्यापारी द्वारा दिये जाते है लेकिन अन्त मे यह सभी खर्चे इनके द्वारा उपभोक्ता पर स्थानान्तरित कर दिये जाते हैं, जिससे उपभोक्ता मूल्य मे वृद्धि हो जाती है। मात्र उत्पादक को अपनी जेब से मडी खर्च करना पड़ता है, इसलिए उत्पादक को प्राप्त मूल्य और उपभोक्ता द्वारा दिए जाने वाले मूल्य मे पर्याप्त अन्तर आ जाता है।

मूँगफली का विपणन

परिचय :- मूँगफली शिम्ब परिवार का सदस्य है। इस पौधे की जडो मे ग्रन्थियाँ होती है जिनमे अनेक जीवाणु पाये जाते है जो कि वायुमण्डल से नाइट्रोजन लेकर भूमि मे यौगिकरण करते हैं जिससे भूमि की उर्वरता बढ़ती है। इस प्रकार मूँगफली हमारे देश की अत्यन्त ही महत्वपूर्ण तिलहन की फसल है जिसका तेल वनस्पति घी के निर्माण मे तथा खाने के लिए बडी मात्रा मे प्रयोग किया जाता है। मूँगफली को भूनकर उसके दानो को चबाने के लिए भी प्रयोग किया जाता है। मूँगफली की खली को पशुओ को खिलाने के लिए तथा खाद के रूप मे प्रयोग किया जाता है।

"ब्राजील देश मूँगफली का जन्म-स्थान कहा जाता है। हमारे देश मे मूँगफली के खेती को अभी २०० वर्ष भी नही बीते। लेकिन आज हमारा देश, मूँगफली उगाने वाले देशो मे सबसे आगे है और मूँगफली के समस्त उत्पादन मे ४० प्रतिशत का भागीदार है। हमारे देश के अतिरिक्त मूँगफली की खेती चीन, पश्चिमी अफ्रीका, सयुक्त राज्य अमेरिका, वेस्टइण्डीज, जापान, बर्मा तथा आस्ट्रेलिया मे बड़े पैमाने पर होता है। हमारे देश मे गुजरात, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र और मद्रास राज्य मे मूँगफली की खेती सबसे अधिक क्षेत्रफल

---

21 स्वत गणना पर आधारित ।

मे होती है।[22]

उत्तर प्रदेश में मूँगफली का क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता :-

हमारे प्रदेश मे प्राय सर्वत्र ही मूँगफली की खेती की जाती है। क्षेत्रफल और उत्पादन दोनो ही दृष्टियो से लखनऊ मडल मूँगफली की खेती मे सबसे आगे है। उसके बाद रूहेलखण्ड का स्थान आता है। उ०प्र० मे हरदोई जिले मे मूँगफली की खेती सबसे अधिक क्षेत्रफल मे होती है। तत्पश्चात् क्रमश बदायूँ, सीतापुर, मुरादाबाद, बरेली, फर्रूखाबाद और एटा का नम्बर आता है। अधिक क्षेत्र मे मूँगफली उगाने वाले अन्य जिले क्रमश उन्नाव, खेरी, बिजनौर, शाहजहाँपुर, मैनपुरी और सहारनपुर है।[23]

अत मूँगफली का क्षेत्रफल वर्ष १९९२-९३ मे घटा है और कुल उत्पादन एव उत्पादकता मे भी ह्रास हुआ है। इसका प्रमुख कारण सफेद गिडार का प्रकोप रहा है, जिससे मूँगफली की खेती को भारी क्षति हुई है। इसे दूर करने के लिए एव अच्छी पैदावार करने के लिए सरकार (उ०प्र०) द्वारा विशेष ध्यान दिया जा रहा है।[24]

क्षेत्रफल और उत्पादन दोनो दृष्टियो से लखनऊ मडल मे मूँगफली की खेती सबसे अधिक होती है। लखनऊ मडल के हरदोई जिले मे सबसे अधिक क्षेत्रफल मे मूँगफली की खेती होती है।

बाजार के लिए तैयारी :- कटाई (हारवेस्टिग) के पश्चात् मूँगफली को सुखाया जाता है जिससे अतिरिक्त नमी दूर की जाती है। १० से १२ प्रतिशत तक आमतौर पर बीजो मे नमी होती है। यदि इससे अधिक नमी है तो धूप में अथवा ड्राइंग मशीनो पर सुखा कर अतिरिक्त नमी को निकाल दिया जाता है। ड्राइग मशीन उत्तर प्रदेश में नहीं है। यदि मूँगफली मे नमी रह गई तो मूँगफली के खराब हो जाने की संभावना रहती है। इसके पश्चात् मूँगफली से धूल, मिट्टी, डठल, खर-पतवार अलग किया जाता है। पुन मूँगफली आकार, और भार के आधार पर वर्गीकृत कर दी जाती है।[25] किसान अपनी फसले मूँगफली के रूप मे ही बेचता है

---

[22] रिपोर्ट ऑन दि मार्केटिंग ऑफ ग्राउन्डनट इन इडिया १९९३ ।

[23] कृषि निदेशालय, कृषि भवन, उ०प्र० लखनऊ ।

[24] खरीफ अभियान (खाद्यान्न उत्पादन कार्यक्रम) १९९१-९२ ।

[25] कृषि निदेशालय, उ०प्र० लखनऊ से प्राप्त सूचनाओ पर आधारित ।

जबकि व्यापारी मूँगफली पर से छिलका उतार कर दानो के रूप में ही बेचता है। छिलका उतारने का कार्य मूँगफली को लकड़ी से पीट कर अथवा मशीन द्वारा अलग किया जाता है। मशीन द्वारा दाना निकालना अधिक अच्छा होता है क्योकि इसमे दाना कम टूटता है।[26]

एकत्रीकरण :- किसान अपनी उपज व उपयोग सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति के बाद बाकी उत्पत्ति गॉव मे या पास के बाजारो मे बेचता है। मूँगफली के एकत्रीकरण मे उत्पादक वर्ग, गॉव का बनिया, घूमता फिरता व्यापारी, थोक व्यापारी, मिलो के प्रतिनिधियो का महत्वपूर्ण भाग रहता है।

अत पूरे देश में मूँगफली के एकत्रीकरण मे उत्पादक का भाग सर्वाधिक है। ऐसा इसलिए है कि अधिकाश किसानो के द्वारा उपज को अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए रोक लिए जाने के उपरान्त बाकी अधिक्य को वह या तो स्वयं हाट, मडियों, थोक व्यापारियो के हाथो ले जाकर बेच देते हैं या गॉव मे ही व्यापारियो, तेलियो, गॉव के बनियो,थोक व्यापारियो व तेल बेचने वाले प्रतिनिधियो के हाथ बेच देते है। अधिकाश किसान हाटो मे छोटी-छोटी मात्राओ मे लाकर बेंचते हैं जहॉ व्यापारियो व तेलियो द्वारा यह उपज खरीदी जाती है।

अत मूँगफली की किसान द्वारा विभिन्न वर्गों को की गई बिक्री विवरण दिया गया है। विभिन्न जोत वर्ग के किसानो द्वारा की जाने वाली बिक्री मे कुछ अन्तर है। यह इनकी आर्थिक स्थिति एव विपणन सुविधा मे अन्तर के कारण है। छोटे कृषको द्वारा की गई बिक्री का विवरण इस प्रकार है, सीधे मडी को ४५ ६५ प्रतिशत, गॉव के व्यापारी को २० ३६ प्रतिशत, घूमते-फिरते व्यापारी को १६ ९५ प्रतिशत, थोक व्यापारी को ५ ९३ प्रतिशत, सहकारी समिति को ० २८ प्रतिशत, मिल के प्रतिनिधि को १० ८९ प्रतिशत है।[27]

मध्यम जोत वर्ग के किसानो की बिक्री का विवरण इस प्रकार है सीधे मण्डी को ४९ ५० प्रतिशत, गॉव के व्याणरी को १५ ७९ प्रतिशत, घूमता-फिरता व्यापारी को १३ ३९ प्रतिशत, थोक व्यापारी को ११ ४४ प्रतिशत, सहकारी समिति को १ १३ प्रतिशत मिल के प्रतिनिधि को १२ ७५ प्रतिशत।

---

[26] गुप्ता ए०पी०. भारत मे विपणन के सिद्धात एव व्यवहार, उ०प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ १९९७ पृष्ठ सख्या १९० ।

[27] वही, उ०प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ १९९७ पृष्ठ सख्या १९०।

१० एकड से ऊपर वाले किसानो की बिक्री का विवरण इस प्रकार है। सीधे मडी को ६० ०० प्रतिशत, गॉंव के व्यापारी को ८ ३५ प्रतिशत, घूमता-फिरता व्यापारी को ४ ११ प्रतिशत, थोक व्यापारी को १३ २१ प्रतिशत, सहकारी समिति को ० ९७ प्रतिशत मिल के प्रतिनिधि को १३ ३६ प्रतिशत है।

इस प्रकार औसत बिक्री का विवरण इस प्रकार है :- उत्पादक द्वारा सीधे मडी को ५१ १७ प्रतिशत, गॉंव के व्यापारी को १४ ८३ प्रतिशत, घूमता-फिरता व्यापारी को ११ ४८ प्रतिशत, थोक व्यापारी को १० १९ प्रतिशत, सहकारी समिति को ०.९७ प्रतिशत, मिल के प्रतिनिधि को १२ ३६ प्रतिशत है।

अत वितरण मार्ग उत्पादक से उपभोक्ता तक एवं दूसरा वितरण मार्ग उत्पादक से मिल तक का दिखाया गया है। किसानो द्वारा विभिन्न मार्गों द्वारा किए गए सर्वे से पता चल रहा है कि किसान अपनी उपज का अधिकाश भाग लगभग ५० प्रतिशत स्वयं मंडी को ले जाते हैं एव मंडी से उसका वितरण अन्यत्र होता है। शेष उपज का लगभग १४.८३ प्रतिशत भाग मिल के प्रतिनिधि को और ०.९७ प्रतिशत भाग सहकारी समितियो को बेच रहा है। इस प्रकार किसान अपनी उपज का अधिकाश भाग निम्न वितरण मार्ग से बेच रहे हैं -

उक्त विक्रय मार्ग में किसान अपने कृषि पदार्थ को मडी मे ले जाता है और प्राय दलालो और आढ़तियो के माध्यम से बेच देता है। इन एकत्रित कृषि पदार्थो को थोक व्यापारी, प्राय· फुटकर व्यापारी को बेच देते हैं। अन्तत फुटकर व्यापारी के यहाँ से अंतिम उपभोक्ता अपनी आवश्यकतानुसार खरीद करते है।

वर्गीकरण :- मूँगफली का वर्गीकरण कृषको द्वारा आम तौर पर मूँगफली मे दानों की संख्या के आधार पर किया जाता है। इसे एक दाना, दो दाना और तीन दाना वाली मूँगफली के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। व्यापारी वर्ग द्वारा मूँगफली का वर्गीकरण मूँगफली मे दाने के प्रतिशत के आधार पर किया जाता है। इसकी विधि यह है कि १०० ग्राम मूँगफली किसी ढेर से नमूने के रूप मे लेकर उसके दाने छीलकर अलग कर लेते है और उसे तौलते है वजन ही प्रतिशत हो जाता है। प्रतिशत कम होने पर दर घटती है प्रतिशत अधिक होने

पर दर बढ़ती है। और आमतौर पर एक बोरे मे सूखी मूँगफली ३२ कि०ग्रा० तक आती है।[28]

वित्त प्रबन्धन :- किसानो को परम्परागत एव संस्थागत श्रोतो के साख सुविधाएँ उपलब्ध होती है। मूँगफली उत्पादको को भी इन श्रोतों से तो वित्त सुविधाएँ प्राप्त होती ही है, इसके अतिरिक्त मूँगफली उत्पादन के विकास हेतु सरकार द्वारा सहायता राशि अलग से भी उपलब्ध करायी जाती है। तिलहन बोने वाले किसानो को तिलहन फसल मे उर्वरक एव कृषि रक्षा उपचार अपनाने हेतु सहकारिता विभाग द्वारा इन फसलो के लिए ऋण उपलब्ध कराया जाता है।[29] जिसका विस्तृत विवरण इसी अध्याय में " **उत्तर प्रदेश में तिलहनी फसलों का विस्तृत विवरण** " के " **वित्त प्रबन्ध** " शीर्षक के अन्तर्गत दिया जा चुका है।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय तिलहन विकास परियोजना के अन्तर्गत वर्ष १९८४-८५ मे तिलहन उत्पादन को बढाने हेतु कृषको को अनुदान राशि दी गयी थी।

अत मूँगफली उत्पादक किसानो को सस्थागत एव निजी श्रोतो के अतिरिक्त समय-समय पर सरकार एव सहकारिता विभाग द्वारा अलग से साख सुविधाएँ उपलब्ध करायी जाती है।

प्रस्तुत अध्याय मे सामान्य तिलहनों एव अलसी और मूँगफली की विपणन सम्बन्धी क्रियाओ का सक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। चूँकि प्रदेश में कमोवेश मात्रा मे सभी तिलहनो की खेती होती है। अत सबका अलग-अलग अध्ययन करना न तो संभव ही रहा और न अध्ययन की दृष्टि से आवश्यक ही था, इसके अतिरिक्त सभी तिलहनो की विपणन क्रियाएँ लगभग एक समान होती है। अतएव प्रदेश मे सर्वाधिक पैदा होने वाली तिलहनी फसल सरसो का प्रतिनिधि तिलहनी फसल के रूप मे चुनाव किया गया है जिसके विपणन सम्बन्धी समस्त क्रियाओ का अध्ययन पॉचवा अध्याय में विस्तार पूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

******

---

[28] शुक्ला आर०पी० सहायक कृषि विपणन अधिकारी (मुख्यालय) कृषि विपणन निदेशालय कृषि भवन, उ०प्र०, लखनऊ से एक साक्षात्कार पर आधारित ।

[29] तिलहन उत्पादन कार्यक्रम १९९१-९२, कृषि निदेशालय, उ०प्र० (कपास एव तिलहन अनुभाग) लखनऊ, पृष्ठ सख्या १३ ।

पंचम् अध्याय

उत्तर प्रदेश में सरसों एवं सरसों तेल का विपणन

लाही व सरसों :-

भारत मे तेल निकालने वाले बीजो में उत्पादन की दृष्टि से लाही व सरसो का स्थान मूँगफली के बाद दूसरा हैं। इसकी खेती पूरे देश में लगभग १८६५.४५ हजार हेक्टेयर भूमि में होती है और पूरे देश का कुल उत्पादन लगभग ५५५ ७५ हजार मैट्रिक टन है। [1] *जैसा कि पिछले अध्याय मे इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि तिलहन हमारे देश की मुख्य नगदी/औद्योगिक फसल है जिसका हमारी अर्थव्यवस्था मे महत्वपूर्ण योगदान है।*

तिलहन हमारे प्रदेश की भी प्रमुख नगदी/औद्योगिक फसल है। उत्तर प्रदेश मे देश के कुल तिलहन उत्पादन का २५ प्रतिशत भाग का उत्पादन होता है। [2] *लाही सरसो का उत्पादन उत्तर प्रदेश मे देश के कुल उत्पादन का ४८.६६ प्रतिशत है। वर्ष १९९१-९२ मे पूरे देश का लाही सरसो का उत्पादन ५८३ ८९ हजार मैट्रिक टन रहा था जिसमे १८८ २० हजार मैट्रिक टन उत्पादन केवल उत्तर प्रदेश का था।* [3] *क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से पूरे देश के लाही सरसो के उत्पादन क्षेत्र का ३८ ७५ प्रतिशत भाग केवल उत्तर प्रदेश मे ही है। इस प्रकार लाही सरसों के उत्पादन एवं क्षेत्रफल दोनो की दृष्टि से पूरे देश मे उत्तर प्रदेश का प्रथम स्थान है।* [4]

---

[1] *उ०प्र० में कृषि ऑकडे, फरवरी,१९९४ पृष्ठ संख्या १२५ ।*

[2] *तिलहन उत्पादन कार्यक्रम वर्ष १९९१-९२ कृषि निदेशालय, उ०प्र० (कपास एव तिलहन अनुभाग) लखनऊ पृष्ठ सख्या १ ।*

[3] *वही, पृष्ठ संख्या १ ।*

[4] *वही, पृष्ठ सख्या १ ।*

अत· आगरा मडल सरसों के क्षेत्रफल और उत्पादन दोनो दृष्टियो से उत्तर प्रदेश मे प्रथम स्थान रखता है। तत्पश्चात इलाहाबाद मंडल, लखनऊ मडल और फैजाबाद मडल का स्थान आता है। आगरा जनपद उत्तर प्रदेश का सबसे बडा सरसों उत्पादन करने वाला जनपद है। वर्ष १९९१-९२ मे इस जनपद मे सरसो का कुल क्षेत्रफल ८९५८५ हेक्टेयर एव कुल उत्पादन ७२६४७५ मैट्रिक टन था। इसके बाद क्रमश कानपुर, मथुरा, इटावा, मैनपुरी, खीरी, फर्रुखाबाद जनपदो का स्थान आता है।[5]

उत्तर प्रदेश के कुछ जिलो के क्षेत्रफल, औसत उपज तथा उत्पादन के ऑंकडे निम्न हैं।

फ़सल - लाही-सरसों   वर्ष - 1999-2000

1.

जिला	योग	निर्धारित	विश्लेषित	औसत/उपज (कु0/हे0)	उत्पादन (मी0टन)
फतेहपुर	13670	50	46	8 94	12221
इलाहाबाद	1810	10	10	5 99	906
कौशाम्बी	1037	------	------	5.00	519
प्रतापगढ़	1970	10	8	5.00	986
इलाहाबाद मण्डल	18487	70	64	23.94	14632
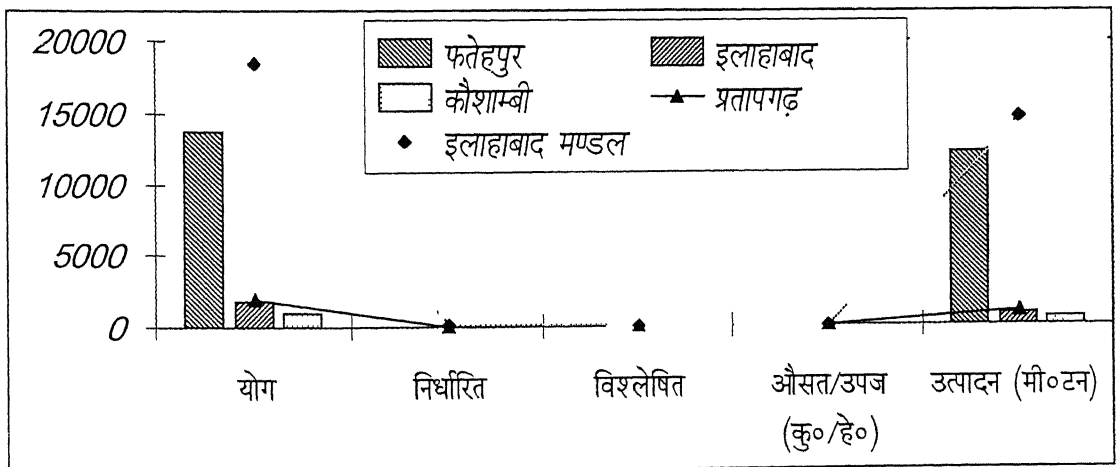
[5] उ०प्र० के कृषि आँकडे १९९१-९२ पृष्ठ सख्या १२५।

2.

जिला	योग	निर्धारित	विश्लेषित	औसत/उपज (कु0/हे0)	उत्पादन (मी0टन)
वाराणसी	571	------	------	7.46	426
चन्दौली	371	------	------	7.46	277
गाजीपुर	767	------	------	7.46	572
जौनपुर	2193	10	4	7.46	1637
वाराणसी मण्डल	3902	10	4	7.46	2912

3.
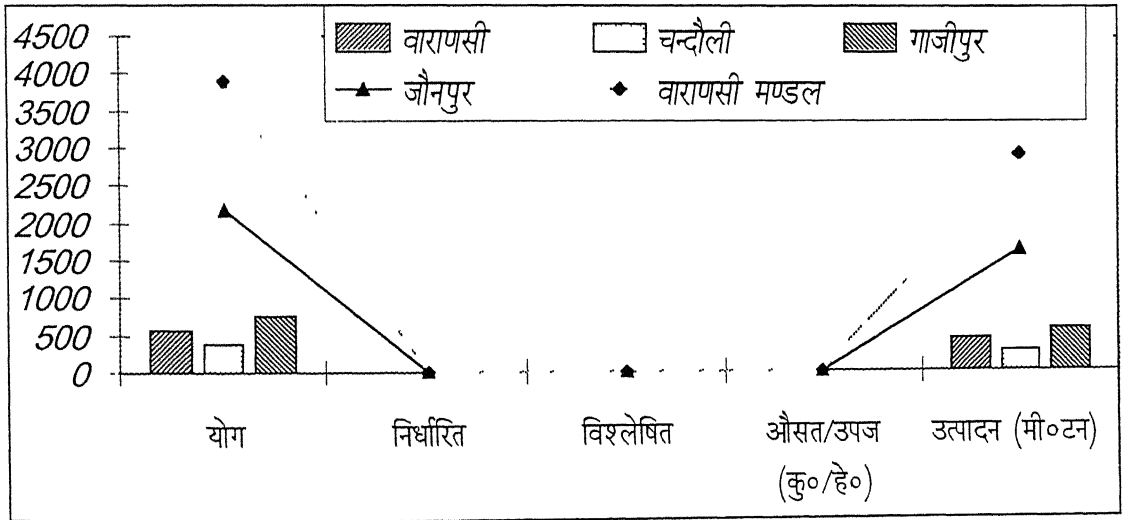
जिला	योग	निर्धारित	विश्लेषित	औसत/उपज (कु0/हे0)	उत्पादन (मी0टन)
मिर्जापुर	3414	10	8	3.82	1304
सोनभद्र	5009	20	20	3.82	1913
सन्त रविदास नगर	116	------	------	3.82	44
मिर्जापुर मण्डल	8539	30	28	3.82	3261

4.
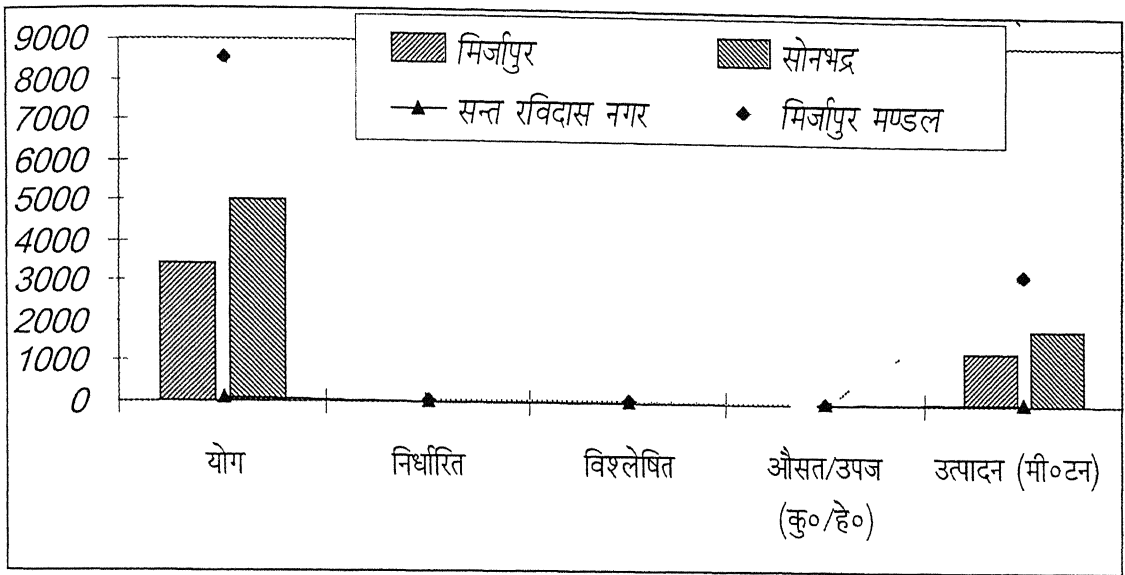
जिला	योग	निर्धारित	विश्लेषित	औसत/उपज (कु0/हे0)	उत्पादन (मी0टन)
झाँसी	4282	20	20	8.03	3439
ललितपुर	990	------	------	8.03	795
जालौन	7688	20	18	8.03	6175
झाँसी मण्डल	12960	40	38	8.03	10408

5.
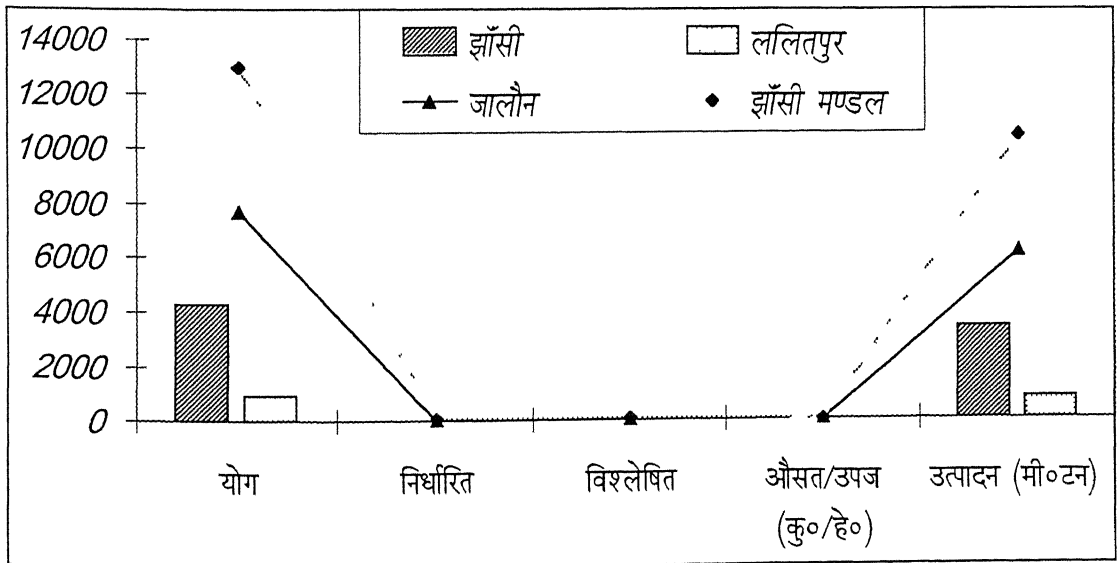
जिला	योग	निर्धारित	विश्लेषित	औसत/उपज (कु0/हे0)	उत्पादन (मी0टन)
बरेली	14547	20	18	7.27	10576
बदायूँ	16545	80	70	9.47	15676
शाहजहाँपुर	15213	50	50	8.23	12519
पीलीभीत	4684	20	20	7.27	3406
बरेली मण्डल	50989	170	158	8.27	42177
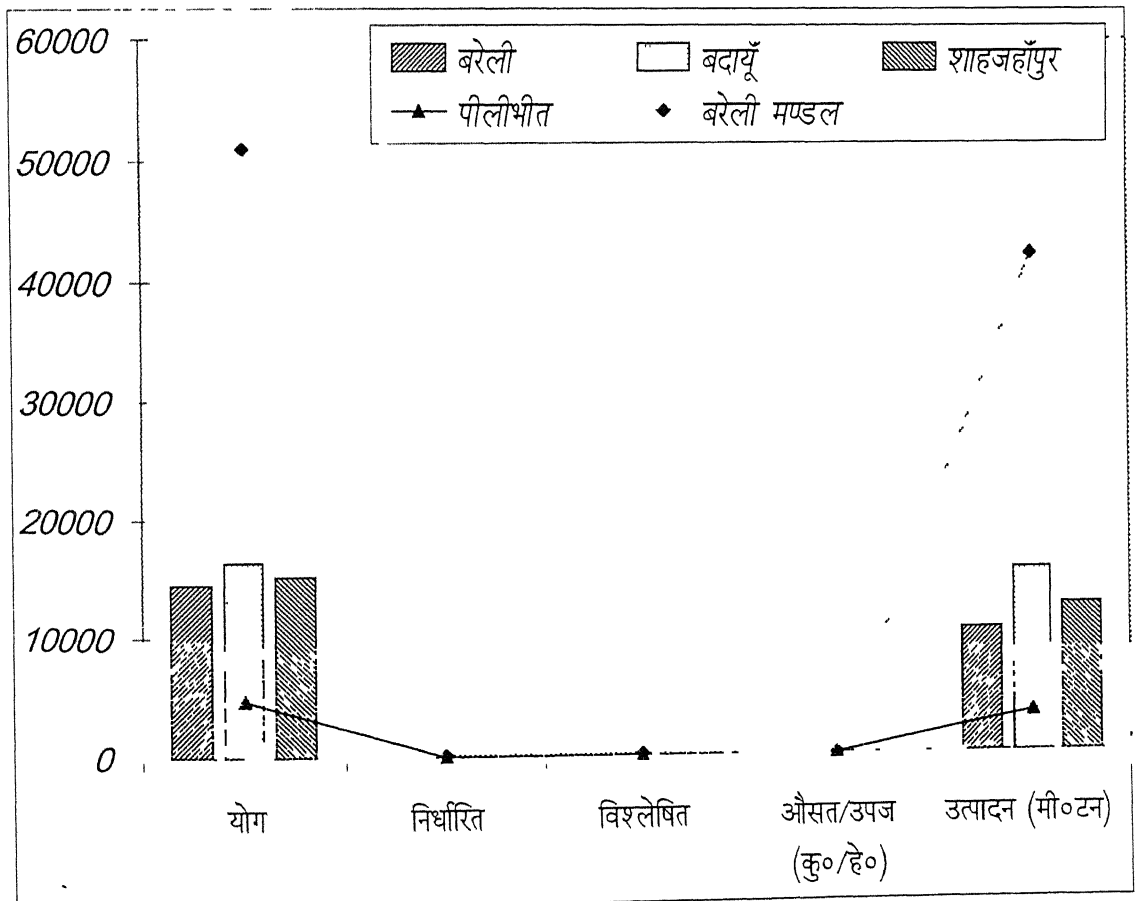
स्रोत :- तिलहन उत्पादन कार्यक्रम वर्ष 1999-2000, कृषि निदेशालय, उ0 प्र0 (कपास एवं तिलहन अनुभाग) लखनऊ

उत्तर प्रदेश के कुछ जिलो के क्षेत्रफल, औसत उपज तथा उत्पादन के आँकड़े निम्न हैं।

फसल - लाही-सरसों

वर्ष - 2000-2001

1.

जिला	योग	निर्धारित	विश्लेषित	औसत/उपज (कु0/हे0)	उत्पादन (मी0टन)
फतेहपुर	13757	50	38	7.42	10295
इलाहाबाद	1780	------	------	7.42	1320
कौशाम्बी	1618	------	------	7 42	948
प्रतापगढ	1279	------	------	7 42	1200
इलाहाबाद मण्डल	18434	50	38	7.42	13763

2.
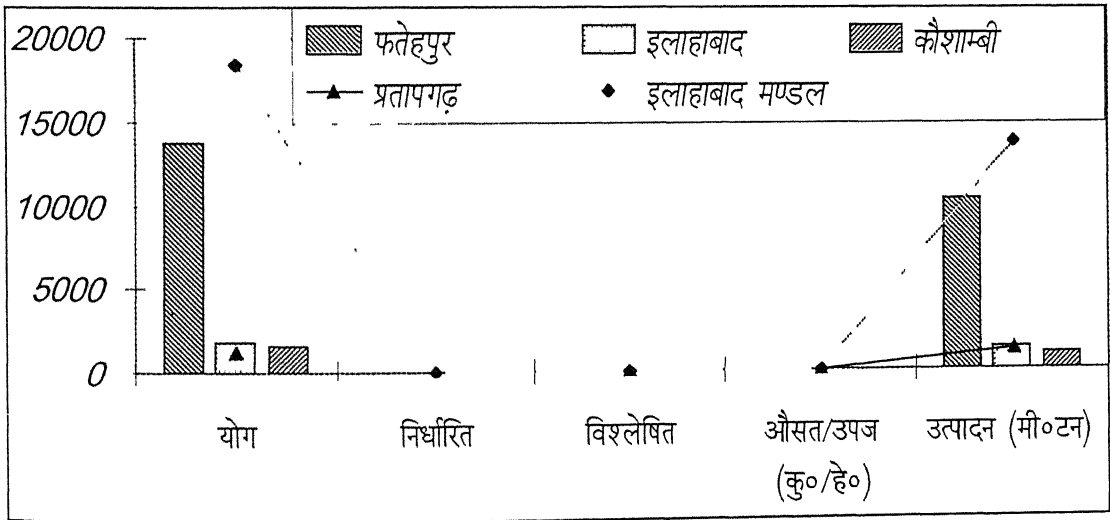
जिला	योग	निर्धारित	विश्लेषित	औसत/उपज (कु0/हे0)	उत्पादन (मी0टन)
वाराणसी	579	------	------	9 94	575
चन्दौली	433	------	------	9.94	430

गाजीपुर	560	------	------	9 94	557
जौनपुर	2173	------	------	9 94	2159
वाराणसी मण्डल	3745	------	------	9.94	3721

3.
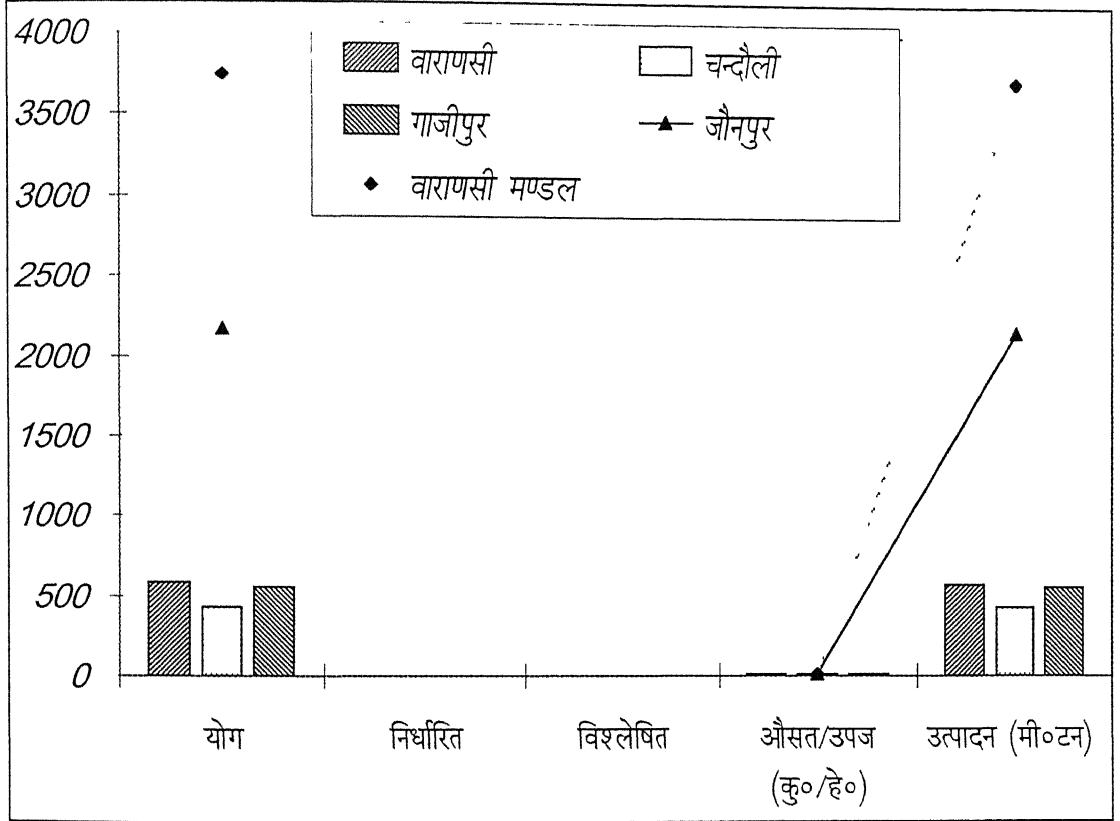
जिला	योग	निर्धारित	विश्लेषित	औसत/उपज (कु0/हे0)	उत्पादन (मी0टन)
मिर्जापुर	2867	------	------	2.92	836
सोनभद्र	4124	20	20	2 92	1202
सन्त रविदास नगर	177	------	------	2 92	52
मिर्जापुर मण्डल	7168	20	20	2.92	2090

4.
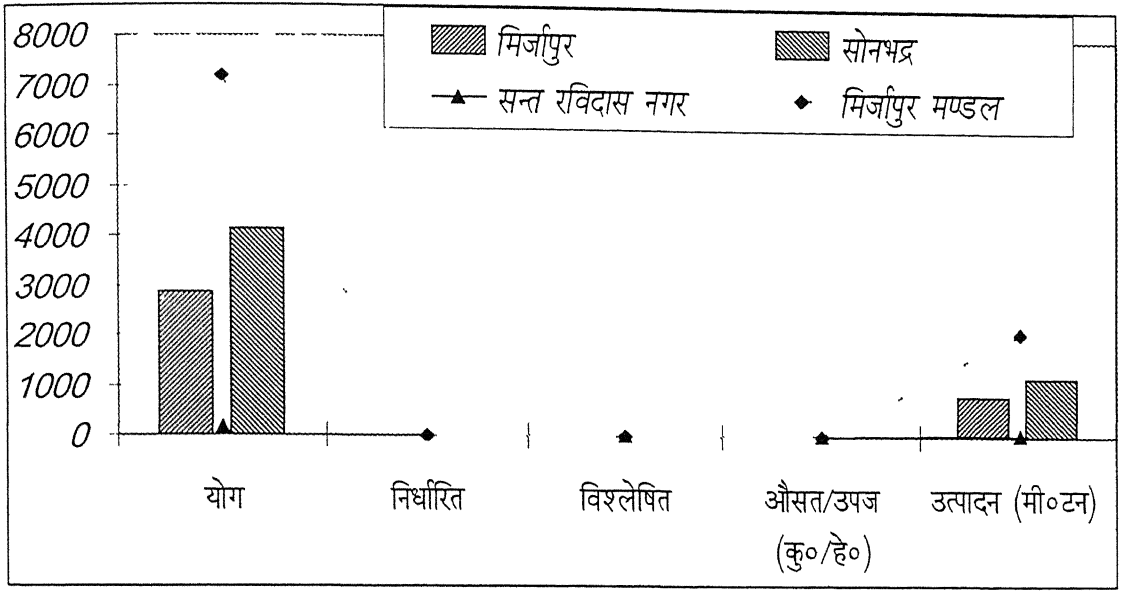
जिला	योग	निर्धारित	विश्लेषित	औसत/उपज (कु0/हे0)	उत्पादन (मी0टन)
झाँसी	5443	20	20	4.83	2629
ललितपुर	823	------	------	4.83	397
जालौन	6200	20	20	4.83	2995
झाँसी मण्डल	12466	40	40	4.83	6021

5.
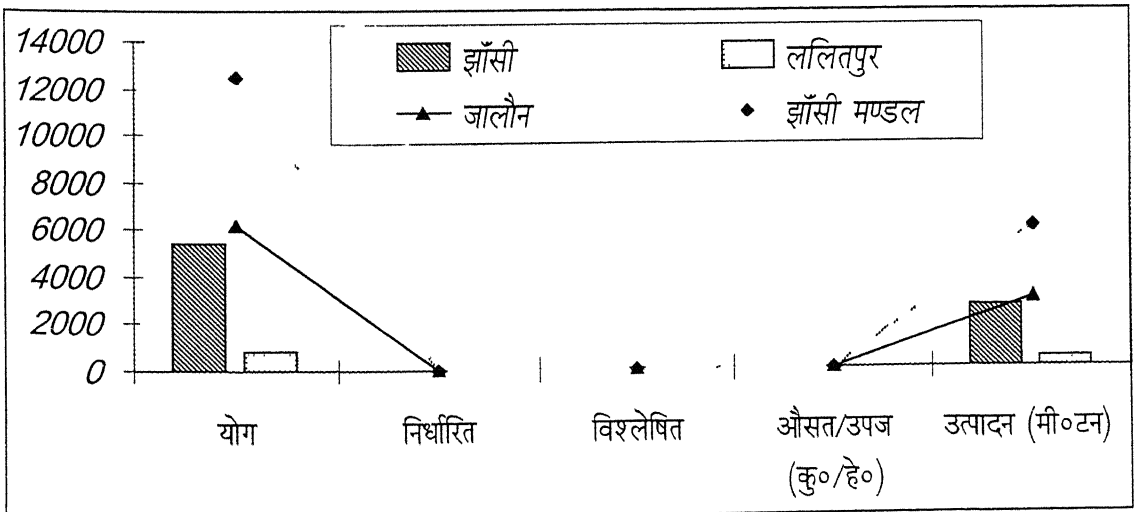
जिला	योग	निर्धारित	विश्लेषित	औसत/उपज (कु0/हे0)	उत्पादन (मी0टन)
बरेली	17481	40	36	7 17	13582
बदायूँ	11942	70	68	8.30	9908
शाहजहाँपुर	9255	30	30	7 95	7357
पीलीभीत	6204	20	20	6 67	4140
बरेली मण्डल	44882	160	154	7.50	34987
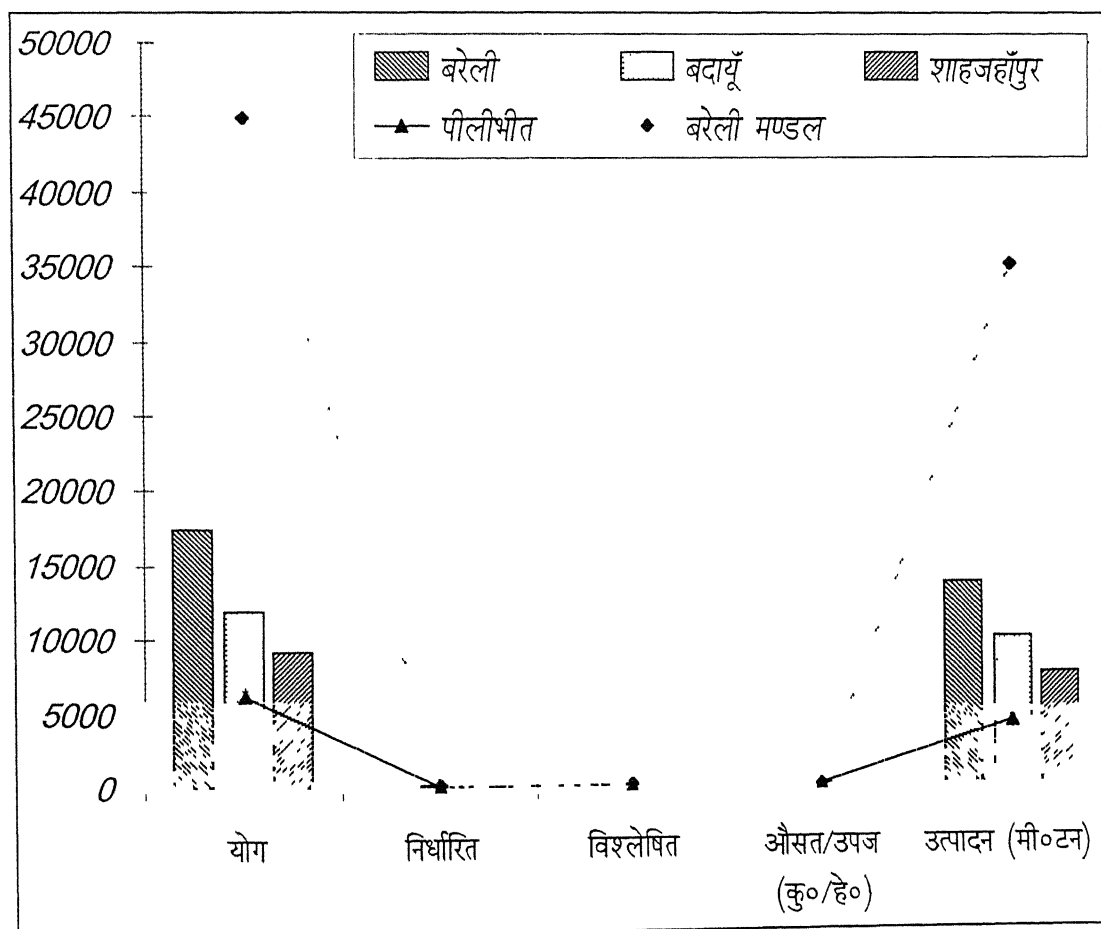
स्रोत :- तिलहन उत्पादन कार्यक्रम वर्ष 2000-2001, कृषि निदेशालय, उ0 प्र0 (कपास एवं तिलहन अनुभाग), लखनऊ

उत्तर प्रदेश मे तिलहन उत्पादन के अन्तर्गत वर्ष २००१-२००२ के आच्छादन, उत्पादन, उत्पादकता के लक्ष्य

फसल का नाम - राई / सरसों

आच्छादन - है०
उत्पादन - मै० टन
उत्पादकता - कु०/है०

वर्ष :- 2001-2002 (लक्ष्य)

क्र0सं0	जनपद का नाम	आच्छादन	उत्पादन	उत्पादकता
1	सहारनपुर	6000	7800	13.00
2	मुजफ्फरनगर	6000	7800	13.00
	सहारनपुर मण्डल	12000	15600	13.00
3	मेरठ	6500	8450	13.00
4	बागपत	3000	3900	13.00
5	गाजियाबाद	6000	7800	13.00
6	गौतमबुद्ध नगर	1500	1950	13.00
7	बुलन्दशहर	31000	40300	13.00
	मेरठ मण्डल	48000	62400	13.00
8	आगरा	150000	232500	15.50
9	अलीगढ़	55000	82500	15.00
10	हाथरस	30000	45000	15.00
11	एटा	35500	46150	13.00
12	फिरोजाबाद	41600	54080	13.00
13	मैनपुरी	25000	32500	13.00
14	मथुरा	90000	135000	15.00

	आगरा मण्डल	**427**	**627730**	**14.72**
15	बरेली	285000	35625	12 50
16	बदायूँ	48500	50925	10 50
17	शाहजहाँपुर	15500	16275	10 50
18	पीलीभीत	4000	4200	10 50
	बरेली मण्डल	**96500**	**107025**	**11.09**
19	बिजनौर	3000	3150	10.50
20	मुरादाबाद	5500	5775	10.50
21	ज्योतिबाफुले नगर	3000	3150	10.50
22	रामपुर	8500	8925	10.50
	मुरादाबाद मण्डल	**20000**	**21000**	**10.50**
23	फर्रुखाबाद	35500	52362	14 75
24	कन्नौज	5500	8113	14.75
25	इटावा	45000	66375	14.75
26	औरयया	2000	2950	14.75
27	कानपुर नगर	9000	11350	12.61
28	कानपुर देहात	52000	70200	13.50
	कानपुर मण्डल	**149000**	**211350**	**14.10**
29	इलाहाबाद	4500	5625	12.50
30	कौशाम्बी	2500	3125	12.50
31	फतेहपुर	20500	25625	12.50

32	प्रतापगढ	6500	8125	12.50
	इलाहाबाद मण्डल	**3400**	**42500**	**12.50**
33	झाँसी	8500	8500	10 00
34	ललितपुर	2500	2500	10.00
35	जालौन	10000	10000	10 00
	झाँसी मण्डल	**21000**	**21000**	**10.00**
36	हमीरपुर	3500	3500	10.00
37	महोबा	3500	3500	10.00
38	बादा	5500	5500	10.00
39	चित्रकूट	2000	2000	10.00
	चित्रकूट धाम मण्डल	**14500**	**14500**	**10.00**
40	वाराणसी	6500	6500	10.00
41	चन्दौली	6500	6500	10.00
42	गाजीपुर	2500	2500	10.00
43	जौनपुर	3000	3000	10.00
	वाराणसी मण्डल	**16500**	**16500**	**10.00**
44	मिर्जापुर	8000	7600	09.50
45	सन्त रविदास नगर	2000	1900	09.50
46	सोनभद्र	6500	6175	09.50
	मिर्जापुर मण्डल	**16500**	**15675**	**09.50**
47	आजमगढ़	5500	5775	10.50

48	मऊ	1500	1575	10 50
49	बलिया	2000	2100	10 50
	आजमगढ़ मण्डल	**9000**	**9450**	**10.50**
50	गोरखपुर	5500	5225	09 50
51	महाराजगज	10000	9500	09 50
52	देवरिया	13000	12350	09 50
53	कुशीनगर	7500	7125	09.50
	गोरखपुर मण्डल	**36000**	**34200**	**09.50**
54	बस्ती	9500	9500	10.00
55	सन्त कबीर नगर	2000	2000	10.00
56	सिद्धार्थनगर	4500	4500	10 00
	बस्ती मण्डल	**16000**	**16000**	**10.00**
57	गोण्डा	15000	16500	11 00
58	बलरामपुर	2500	2750	11 00
59	बहराइच	10000	11000	11.00
60	श्रावस्ती	2500	2750	11.00
	देवीपाटन मण्डल	**30000**	**33000**	**11.00**
61	लखनऊ	7000	7700	11.00
62	उन्नाव	20000	25000	12.50
63	रायबरेली	14000	18200	13 00
64	सीतापुर	20000	22300	11.15

65	हरदोई	18000	23400	13 00
66	लखीमपुर	28000	30800	11.00
	लखनऊ मण्डल	107000	127400	11.90
67	फैजाबाद	8500	9350	11 00
68	अम्बेदकर नगर	2000	2200	11.00
69	सुल्तानपुर	5000	5500	11 00
70	बाराबकी	16000	17600	11 00
	फैजाबाद मण्डल	31500	34650	11.00
	प्रदेश योग	10,84,600	14,09,980	13.00
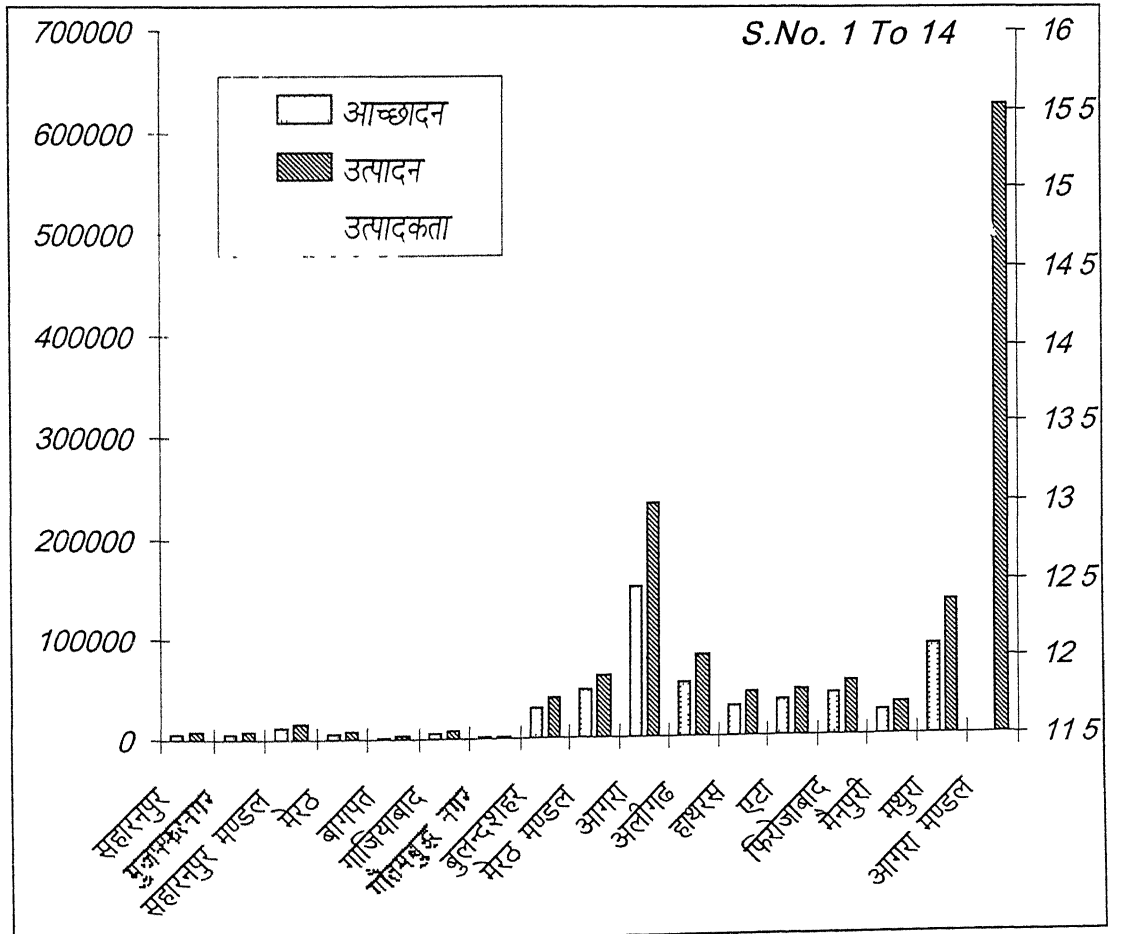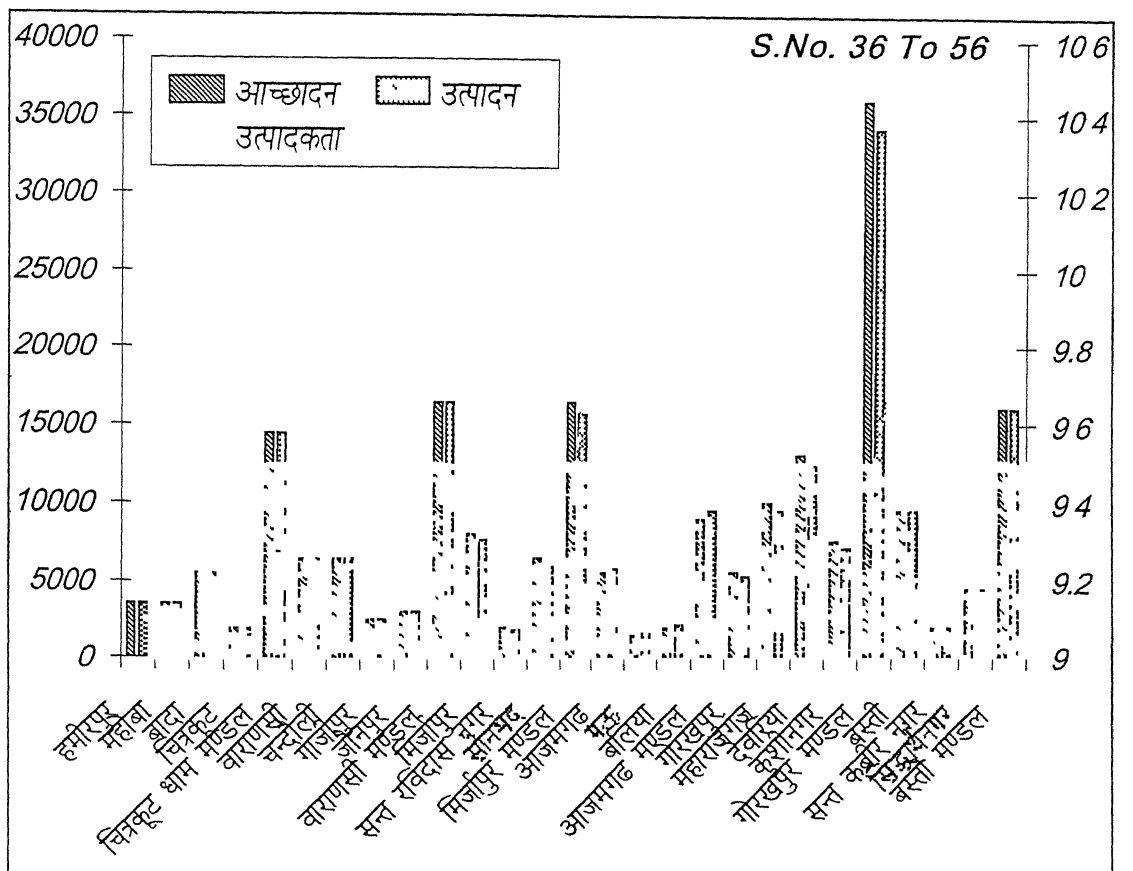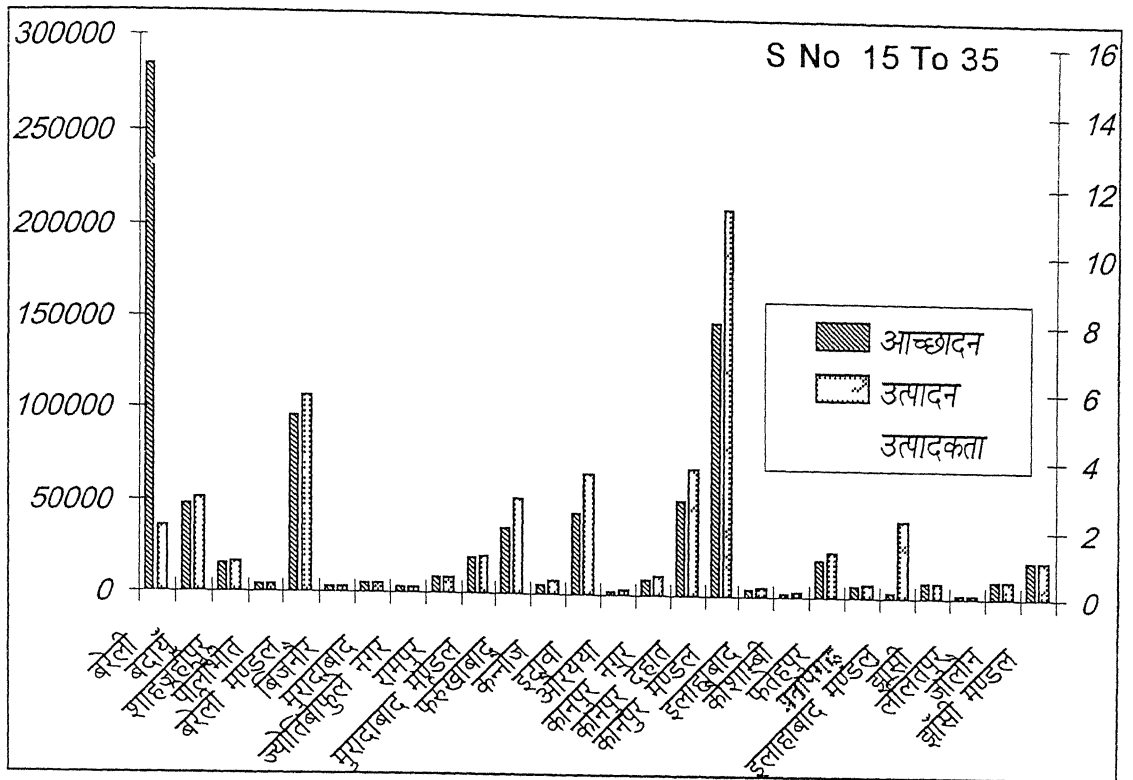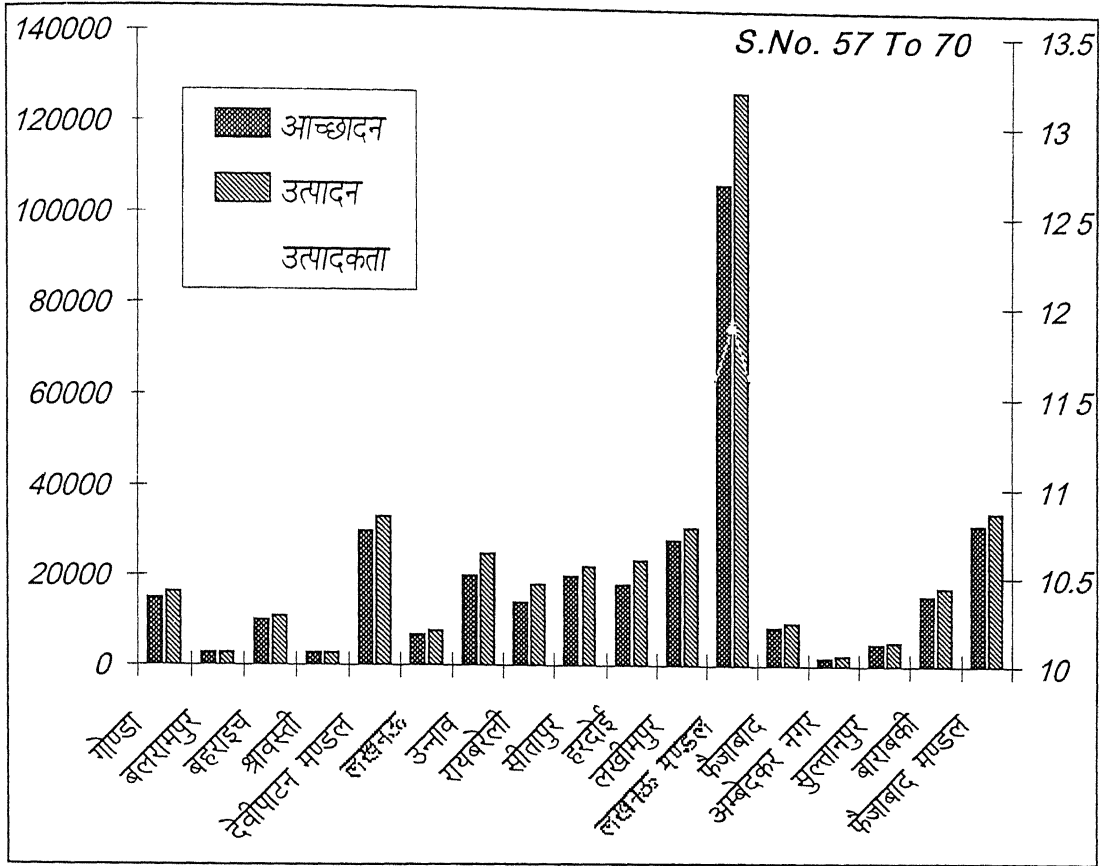
स्रोत :- तिलहन उत्पादन कार्यक्रम वर्ष 2001-2002 कृषि विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

विपणन का समय :-[6]

लाही सरसो कटाई के बाद बाजार मे भेजे जाते हैं। इनके विपणन का समय इनकी किस्म और क्षेत्रफल पर निर्भर करता है। जैसे तोरिया उत्तर प्रदेश और पजाब मे अधिक होती है और इनका विपणन समय दिसम्बर से फरवरी है। राई सरसो का उ०प्र० मे काटने का समय जनवरी से फरवरी है, लाही का फरवरी है, अतएव इसका विपणन समय मार्च-अप्रैल है। विपणन समय प्रभावित होता है :-

- ❖ स्थानीय कारणो से जो प्राथमिक बाजारों मे माल पहुँचाने को प्रभावित करते हैं।
- ❖ पूरे देश की सामान्य माँग जिससे थोक और सीमान्त बाजार प्रभावित रहते हैं।

---

[6] कृषि निदेशालय उ०प्र० लखनऊ से प्राप्त ।

बाज़ार के लिए तैयारी :-

फसल आमतौर से दोपहर के पहले काटी जाती है जिससे गर्मी पाकर (पौधो मे से) बीज बिखर न जाये। पौधो के काटने के बाद बाध पर सुखाने के लिए ४ से १० दिन तक रखा जाता है। सूखने के बाद बैलो के पैरों से दबाकर बीज, पत्ते इत्यादि को अलग कर दिया जाता है। बौछार करके बीजों को एकत्रित कर लिया जाता है। इस प्रकार से लाही व सरसो की उत्पति क्रियाएँ अन्य खाद्य फसलो की उत्पत्ति क्रियाओ के समान ही है। इन सभी मे फसल काटने, बीज या दाने निकालने व साफ करने की क्रियाएँ करनी पड़ती है।

इस समय जबकि विद्युत गाँव-गाँव में उपलब्ध हो चुकी है थ्रेसिंग (दाने को भूसे से अलग करने का कार्य) मशीन द्वारा होती है। जानवरों, द्वारा दाने को अलग करने की प्रथा में सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमे दाने का क्षय अधिक होता है। इस रीति के अर्न्तगत समय अधिक नष्ट होता है। दाने को अलग करने पर भी इसके अर्न्तगत मिट्टी, धूल व अनावश्क्क पदार्थ मिले रह जाते हैं। सरसो को साफ कराने के लिए मजदूरो का सहयोग लिया जाता है, ये मजदूर सूप, झरने और चलनी से सरसो मे से धूल ककड एव अन्य पदार्थो को अलग करते हैं। ३५ से ५० रू० तक प्रतिदिन की मजदूरी इन मजदूरों की होती है। इस प्रकार से सरसो की भराई, बोराबन्दी पर कुल लागत लगभग १०-१५ रू० प्रति क्विटल तक पड़ती है।[7]

नमूना लेने की विधि :-[8]

इसे सैम्पुलिंग कहते हैं। इसमें पूरे बोरे में से एक मुट्ठी सरसो ले ली जाती है। इस एक मुट्ठी अनाज का विश्लेषण करके इसे वर्ग अथवा श्रेणी दी जाती है। इस पद्धति को मंडी में रोला कहते हैं। कभी-कभी विभिन्न बोरो मे से तीन चार मुट्ठी अनाज ले लेते हैं इसका विश्लेषण करते हैं। इस पद्धति से विश्लेषण करने वालो को "पारखी" कहा जाता है।

सरसो के विश्लेषण द्वारा इसे जो वर्ग अथवा श्रेणी दी जाती है उसे प्रभावित करने वाले निम्न प्रमुख कारक होते हैं।

---

[7] स्वत सर्वेक्षण पर आधारित ।

[8] रिपोर्ट आन द मार्केटिंग आफ रेपसीड एण्ड मस्टर्ड इन इंडिया, १९९६ पृष्ठ संख्या ५७ ।

- नमी का प्रतिशत ,
- अशुद्धता का प्रतिशत ,
- टूटे दानो का प्रतिशत ,
- अन्य दानो का प्रतिशत ,
- अन्य तिलहनो का प्रतिशत ,
- प्रतिग्राम मे बीजो की सख्या ।

यदि जिंस में नमी का प्रतिशत अधिक है, अशुद्धता है, टूटे दानो की सख्या अधिक है, अन्य दानों का प्रतिशत अधिक है, अन्य तिलहन मिले हैं, प्रतिग्राम मे बीजो की सख्या अधिक है, तो इसे खराब वर्ग दिया जायेगा। इसके विपरीत दशा मे ऊँचा वर्ग प्रदान किया जाता है।

एकत्रीकरण एवं वितरण माध्यम :-

किसान अपनी उत्पत्ति का कुछ भाग बीज के लिए एव कुछ भाग घरेलू उपयोग हेतु रखकर शेष भाग की बिक्री कर देते हैं। किसान द्वारा लाही सरसों की बिक्री प्राय· गॉव के व्यापारी, घूमता-फिरता व्यापारी, थोक व्यापारी, सीधे मंडी को एवं मिल को की जाती है। सरसों का विपणन माध्यम प्रायः वही होता है। जो अन्य तिलहनो का होता है।

अत· विभिन्न जोत वर्ग के कृषक अपनी कुल उपज का औसतन १२.४४ प्रतिशत भाग स्वय मडी मे ले जाकर बेचता है स्वय मडी मे ले जाकर बेचने में बड़े किसानो का प्रतिशत भाग अधिक है, और छोटे किसानों का कम है, ऐसा इसलिए होता है कि छोटे किसानो के पास विपणन योग्य अतिरेक कम होता है जिसकी वजह से वह अपनी उपज को शहर या बाजार में ले जाने की अपेक्षा गॉव मे ही बेच देना उपयुक्त समझते है।

किसान अपनी उपज का सबसे बड़ा भाग औसतन ४५ प्रतिशत गॉव के बाजार के व्यापारी के हाथों बेंच देता हैं। इसमे छोटे और बड़े तथा मध्यम किसानो का प्रतिशत भाग क्रमशः ५२ १०, ३४ ०० और ४७ ८३ है। इसका कारण यह होता है कि गॉव के किसान को प्राय पैसे का अभाव बना रहता है। किसान

अब खेती को घाटे का धन्धा कहता है, इसमे सच्चाई भी है कि जितनी लागत वह लगाता है उसे उचित प्रतिफल नही प्राप्त होता है, क्योकि कृषि उपज के मूल्यों मे उस अनुपात मे वृद्धि नहीं हुई है जिस अनुपात मे अन्य आवश्यक वस्तुएँ की कीमते बढ़ी है। अत कृषक का अभाव ग्रस्त रहना स्वाभाविक है, इस अभाव की पूर्ति गाँव के बनिया, महाजन करते हैं। अत किसान उन्ही के हाथो अपनी उपज को बेचना सरल और उपयुक्त समझता है। इसमे कुछ अश तक उसकी मजबूरी भी होती है।

मिलो के प्रतिनिधि भी गाँवो मे किसानो से सम्पर्क बनाये रहते हैं और उन्हे अग्रिम के रूप मे कुछ पैसे दे देते है और उपज तैयार होने पर उसे क्रय कर लेते हैं। कुल एकत्रीकरण मे इनका प्रतिशत भाग मात्र ५ ३५ ही है। गाँव की घानी मे भी गाँव की लाही सरसो का लगभग १० प्रतिशत भाग चला जाता है। आज भी गाँव मे परम्परागत कोल्हू, एव अब विद्युत के विकास के कारण छोटे-छोटे स्पेलर लग गये हैं जो गाँव से ही सरसो खरीद कर उसकी पेराई करते हैं।

थोक व्यापारियों का कुल एकत्रीकरण मे १९ २० प्रतिशत भाग है। ये भी किसानों से सम्बन्ध बनाये रखते हैं, इनके प्रतिनिधि दलाल प्राय· गाँवों का चक्कर लगाते रहते हैं और किसान की उपज का मोल भाव करके उसे खरीद लेते हैं। इनका भी कुल एकत्रीकरण में प्रतिशत भाग पर्याप्त है। घूमते फिरते व्यापारियो का प्रतिशत भाग कुल एकत्रीकरण मे औसतन ८ है। अभी सहकारी समितियो का प्रतिशत भाग कुल एकत्रीकरण में अति न्यून है।

इस एकत्रीकरण एव वितरण की प्रक्रिया में कुछ तथ्य और उल्लेखनीय है। जैसे घूमन्तु व्यापारी इस फसल मे जो एकत्रीकरण करते हैं। उसे वे एकत्रीकरण केन्द्र (मुख्य मंडी) मे लाते हैं और अढतिया सरसो लाही के विपणन में महत्वपूर्ण केन्द्र बिन्दू होता है। कच्चा आढ़तिया एक उत्पादक या व्यापारी होता है जो जिसको एकत्रित करके पक्का अढ़तिया या तेल मिल को अथवा किसी निर्यातक के हाथों बेंच देता है। पक्का आढ़तिया ही मुख्य संग्रहकर्ता होता है, जिसे थोक विक्रेता भी कहा जाता है। यह एक कमीशन एजेन्ट के रूप मे कार्य करता है।

अब जब हम लाही सरसों के वितरण माध्यम पर विचार करें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वितरण का कार्य पक्का अढ़तिया अथवा थोक विक्रेता के यहाँ से प्रारम्भ होता है। गाँव के व्यापारी, घूमता

फिरता व्यापारी, उत्पादक मिलो के प्रतिनिधि, फुटकर व्यापारी सभी अपना माल एकत्रीकरण केन्द्र पर पक्का अढ़तिया एवं थोक व्यापारी के पास बेच रहे हैं। पक्का अढ़तिया सीधे माल उपभोक्ता के पास भेजता है जब तेल मिल को लाही सरसो की आवश्यकता पड़ती है तो वह अपने प्रतिनिधि को अढ़तिया के पास भेजती है अन्यथा अढ़तिया अथवा थोक विक्रेता के मार्फत स्वयं माल क्रय करती है। इसी प्रकार निर्यातक सस्थाएँ भी दलालो के मार्फत जो आढ़तिया के ससर्ग मे रहते हैं निर्यात हेतु माल क्रय करती है। कहीं-कहीं ये सस्थाएँ क्रय करने हेतु अपने व्यापारिक सगठन बना ली है जो मुख्य मंडी से मौसम विशेष अर्थात् जब निर्यात हेतु माँग रहती है उस समय माल क्रय करती है। ध्यान रहे कि निर्यात कर्ताओं की माँग पूर्णतया मौसमी होती है।

विक्रय पद्धति :-

लाही के सरसो की मण्डियो मे बिक्री दलालो के मार्फत होती है। किसानो को मडी मे पहुँचने से पहले कुछ फासले से आढ़तियो को दलाल घेर लेते हैं गाड़ी मडी मे आने पर उनके नमूने लेकर दलालो द्वारा सौदा तय किया जाता है। मूल्य, समझौते से, नीलाम से या छिपे तौर पर दलाल के माध्यम से तय होते हैं।

सौदा तय होने के उपरान्त गाड़ी माल खरीदने वाले व्यापारियों के गोदामों या हातो मे ले जाकर खड़ी कर दी जाती है जहाँ व्यापारियो के तौलो द्वारा या फसल तौल दी जाती है और किसान के माल का पर्चा अढ़तिये द्वारा बनाकर तैयार किया जाता है। इन सभी मध्यस्थों को बिक्री मूल्य में से पारिश्रमिक दिया जाता है।[9]

वर्गीकरण व प्रमापीकरण :-

किसानों के द्वारा उपज को बेचते समय कोई वर्गीकरण नहीं किया जाता है। सिर्फ लाही व सिर्फ सरसो अधिक मूल्य पर बेंचे जाते है। अक्सर किसान सरसो और लाही की खेती अन्य फसलों जैसे गेहूँ चना आदि के साथ मिश्रित रूप से करते हैं। अत: जब इसमें अन्य खाद्यान्न की मिलावट रहती है तो इसकी कीमत किसान को कम मिलती है। धूल, गर्दा की मात्रा अधिक रहने पर किसान को कम कीमत दी जाती है। इसके अतिरिक्त लाही व सरसों का वर्गीकरण उपज के स्थान आकार रंग व नमी अनुसार भी किया जाता है।

---

[9] स्वत: सर्वेक्षण पर आधारित ।

जैसे पीली गुजरात, पीली कानपुर, बड़ी फिरोजपुर, बड़ी भूरी कानपुर इत्यादि। सरसो मे तेल की मात्रा अधिक होती है अत लाही के मुकाबले मे अधिक मूल्य मे बेची जाती है। लाही व सरसो की बिक्री विभिन्न स्थानो पर स्थानीय नामो के स्थान पर होती है। जिसमे सरसो, राई, व तोरिया प्रमुख हैं।

कृषि पदार्थों के श्रेणीकरण का प्रयास सबसे पहले सन् १९३७ मे किया गया जब कि भारत सरकार ने कृषि उपज (श्रेणीकरण व चिन्हन) अधिनियम पास किया था। इस अधिनियम के बन जाने से भारत सरकार को प्रमाप व वर्ग स्थापित करने का अधिकार मिल गया। इस समय इस अधिनियम के प्राविधानो के अधिन कृषि एव पशुजन्य उत्पादो का विश्लेषण, वर्गीकरण पैकिंग एव चिन्हाकन का कार्य प्रदेश में कार्यरत ५ एगमार्क वर्गीकरण प्रयोगशालाओ के द्वारा किया जा रहा है। यह प्रयोगशालाएँ उत्तर प्रदेश मे लखनऊ, हल्द्वानी, मेरठ, आगरा एव वाराणसी मे स्थित है। इस योजना के अन्तर्गत मुख्य रूप से खाद्य तेलो, मसालो, घी,मक्खन,शुद्ध शहद आदि का वर्गीकरण किया जाता है। [10]

वित्त प्रबंधन :-

कृषक को सस्थागत एवं निजी स्रोतो से ऋण प्राप्त होते है। निजी स्रोतों में मुख्यत बड़े किसान महाजन, साहूकार आढ़तिया आदि आते हैं। सस्थागत स्रोतो मे सरकार सहकारी समितियाँ एव बैंक प्रमुख है। इन स्रोतो के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश में तिलहन विकास योजना (आयोजनागत) के अन्तर्गत प्रदर्शनों पर अनुदान कृषको को कृषि निवेश के रूप मे दिया जाता है। राई सरसो हेतु यह राशि ५.५०रू० प्रति हेक्टेयर निर्धारित की गयी है। [11] प्रदेश में तिलहन उत्पादन को बढ़ावा देने हेतु तिलहन की फसल में उर्वरक एव कृषि रक्षा उपचार हेतु कृषको को सहकारिता विभाग द्वारा ऋण वितरण किया जाता है।

राष्ट्रीय तिलहन विकास परियोजना के अन्तर्गत वर्ष १९८४-८५ में राई सरसों की विशेष योजना हेतु अनुदान प्रदान किये जाने का प्राविधान है।

गोरखपुर प्रखण्ड में किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार कृषको को प्राप्त होने वाले ऋणो से विभिन्न सस्थाओ का भाग इस प्रकार रहा है। बड़े किसान तथा कृषक महाजन ३२.२० प्रतिशत बनिया एव

---

[10] प्रगति के बारह वर्ष १९९५, राज्य कृषि उत्पादन मण्डी परिषद् उ०प्र० लखनऊ, द्वारा प्रकाशित, पृ०स० १४ ।
[11] तिलहन उत्पादन कार्यक्रम १९९१-९२ कृषि निदेशालय उ०प्र० पृष्ठ सख्या ३३ ।

मध्यस्थ २३ ४७ प्रतिशत सरकार एव बैंक ५ ४७ प्रतिशत सहकारी समितियाँ ३०.०६ प्रतिशत, अन्य ८ ८ प्रतिशत।[12]

विपणन हेतु बनियो को भी ऋण की आवश्यकता होती है। चूँकि बनियो मे इन्तजार करने क शक्ति भी अधिक होती है, अत अधिक लाभ कमाने की आशा मे वह कृषि पदार्थो को सग्रहीत भी कर लेते हैं। अत किसानो से खरीदे गये कृषि पदार्थो के मूल्यो का भुगतान करने के लिए एवं अन्य आवश्यकताओ के लिए यदि पैसे की आवश्यकता पडती है तो वे अल्पकालीन ऋणो से अपना काम चला लेते है, लेकिन बनिया प्राय अपनी रकम अधिक दिनो तक फँसा कर रखना नहीं पसन्द करता है। उनका प्रयास होता है कि वे अपनी पूँजी से कई बार खरीद बिक्री करके कुल लाभ को अधिकतम किया जाये। बनियो को ऋण प्राय थोक व्यापारी, अढतिया, मडी के फुटकर व्यापारी व बैंको से प्राप्त होता है। अढ़तिये बनियो को ऋण प्राय उनकी साख के आधार पर देते है। अढ़तिये दिये गये धनराशि का सरखत बनियो से लिखवा लेते है। बनियो को इस ऋण का औसतन एक प्रतिशत माहवारी ब्याज देना पडता है। अढ़तिये और थोक व्यापारी को यदि ऋण की आवश्यकता होती है तो ये प्राय बैंक से ऋण प्राप्त करते है। बैंक उनके बिक्री कर के आधार पर पूँजी का पता लगा लेते है और इस पूँजी का ६० प्रतिशत तक ही ऋण के रूप में देते है। इसके अतिरिक्त ये व्यापारी बड़े-बडे थोक व्यापारियों से भी ऋण प्राप्त करते है। इनसे साख प्राप्त करने के लिए इनको सरखत लिखना पड़ता है। अढतियो को ऋण तेल निकालने वाली मिलो द्वारा भी दिये जाते है।[13]

विपणन लागत :-

प्रत्येक वस्तु का उत्पादन उसकी अतिम उपभोक्ता तक पहुँचाने के लिये किया जाता है और उसे अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँचने में कई माध्यमो से होकर गुजरना पड़ता है। जैसे - फुटकर व्यापारी, गॉव का व्यापारी, घुमन्तु व्यापारी, थोक विक्रेता आढ़तिया दलाल आदि। इन मध्यस्थो की सेवाओ का उपयोग उत्पादन को अतिम उपभोक्ता तक पहुँचाने मे

---

[12] हरिद्वार, गोरखपुर प्रखण्ड मे कृषि पदार्थो का विपणन अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, पृष्ठ सख्या १८९ ।
[13] स्वत सर्वेक्षण पर आधारित ।

पडता है। इस प्रकार से मंडी मे अनेक विपणन कार्यकर्ता होते है जो कृषि पदार्थों की क्रय-विक्रय को प्रक्रिया म प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मदद करते हैं।[14]

इस प्रकार उत्पादक से लेकर अंतिम उपभोक्ता तक अनेक विपणन सम्बन्धी खर्चे उपज के कीमत मे सम्मिलित होते रहते हैं। जिसके परिणाम - स्वरूप किसान द्वारा प्राप्त की गयी कीमत तथा अतिम उपभोक्ता द्वारा दी गयी कीमत मे भारी अन्तराल उत्पन्न हो जाता है। प्रस्तुत अध्याय मे लाही सरसो की विपणन लागत का अध्ययन उपभोक्ता मूल्य और उत्पादक मूल्य मे अन्तर को लेकर किया गया है, गणना की सुविधा को ध्यान मे रखकर यह मान लिया गया है कि - प्रति टन उपज का औसत १० कि०मी० की दूरी तक विपणन किया जा रहा है।

आज भी दलाली, पल्लेदारी, कर्दा नमूना जैसे कुछ अवैध खर्चे मण्डियो में लिये जाते हैं। यह खर्च लेना दण्डनीय अपराध है। मण्डी समिति अधिनियम १९६४ की धारा (३७) के अनुसार ऐसे किसी व्यापारी या कर्मचारी या आढ़तिया अगर निर्धारित शुल्क एव कमीशन से अतिरिक्त कुछ भी किसान से वसूलते हैं तो उसे दण्डनीय अपराध माना जाएगा और उनके लाइसेस रद्द किये जा सकते हैं।

मडियो के नियमन के बाद मण्डी अधिनियम १९६४ के अनुसार सभी व्यापारिक परिव्यय क्रेता को देने होंगे ऐसा निर्दिष्ट किया गया है।[15] प्रतिबन्ध यह है कि नीलाम के पूर्व तौलाई या मापने अथवा सम्भालने के परिव्यय यदि कोई हो, जो मण्डी समिति द्वारा अपनी उप-बधियो में निर्दिष्ट किये जाये विक्रेता द्वारा देय होगे।

लाही सरसों के वितरण में फुटकर व्यापारी के बाजार खर्चे को दिखाया गया है। फुटकर व्यापारी का कार्य प्राय पक्के आढ़तिये या थोक व्यापारियों से कृषि पदार्थों की खरीद करना तथा उन्हे अंतिम उपभोक्ताओं को बेचना है। ऐसे व्यापारी शहर, बड़े कस्बों या ग्रामीण बस्तियो में उपभोक्ताओं के समीप अपनी दुकाने रखते हैं। इस व्यवस्था को फुटकर मण्डी की संज्ञा दी जाती है।

---

[14] उत्तर प्रदेश कृषि उत्पादन मण्डी अधिनियम १९६४ पृष्ठ सख्या ३३ ।
[15] उत्तर प्रदेश कृषि उत्पादन मण्डी अधिनियम १९६४ पृष्ठ सख्या ३३ ।

फुटकर व्यापारी यदि दलाल के माध्यम से माल खरीदता है तो उसे दलाली देनी पडती है। अगर सीधे आढ़तिये से क्रय करता है तो कभी-कभी वह दलाली देने से बच जाता है। इसके अतिरिक्त उसे समस्त मण्डी परिव्यय जैसे मण्डी शुल्क, कमीशन या आढ़त, तौलाई पल्लेदारी आदि का भुगतान करना पड़ता है।

अत तिलहन पर फुटकर व्यापारी देता है। ये सारे खर्च वह तिलहन के मूल्य मे जोडकर उपभोक्ता से वसूल लेता है। अथवा थोक व्यापारी ही कभी-कभी इसे मूल्य मे जोड़ देता है जिसे फुटकर व्यापारी से वसूल करता है और फुटकर व्यापारी उपभोक्ता से वसूलता है।

थोक व्यापारी, उत्पादको बनियों एवं दूसरी मंडियों के थोक व्यापारियो से कृषि पदार्थो की खरीद प्राय आढ़तियों के द्वारा करते हैं तथा भविष्य में अधिक लाभ की प्राप्ति के उद्देश्य से उनका बड़ी मात्रा मे एकत्रीकरण करते है। अपने यहाँ एकत्र कृषि पदार्थो को फुटकर व्यापारियों एव दूसरी मंडियों मे प्राय आढ़तियों के द्वारा थोक व्यापारियो को बिक्री करते रहते है।

एक बात यहाँ ध्यान देने की है कि मण्डी समिति अपनी उपविधियों में कुछ व्यापारिक परिव्यय निर्दिष्ट की है जो इन नियमों के अधीन लाइसेन्स रखने वाले किसी व्यापारी या आढ़तिया या दलाल अथवा किसी तोलक या मापक अथवा पल्लेदार द्वारा लिये या वसूल किये जा सकते है जो निर्धारित है, ये निम्न है।[16]

✓ कमीशन	१.५० प्रतिशत
✓ दलाली	० ५० प्रतिशत
✓ तौलाई	० १५ पैसा प्रति कुन्तल
✓ पल्लेदारी	०.२० पैसा प्रति कुन्तल

उपर्युक्त सभी व्यापारिक परिव्यय क्रेता को देने होंगे। इसका भी उललेख किया गया है। थोक विक्रेता द्वारा वहन किये जाने वाले खर्चे मे मण्डी शुल्क और कमीशन के खर्चो को सम्मिलित नही किया गया है। ऐसा इसलिए हुआ है कि ये परिव्यय किसी एक वस्तु पर एक ही बार लिए जा सकते हैं। अधिकाशतया

---

[16] उत्तर प्रदेश कृषि उत्पादन मण्डी अधिनियम १९६४ पृष्ठ संख्या ३३ ।

अढतिया इन्हे जिस के मूल्य मे जोड़ देते है और ट्रक समेत माल बेच देते हैं और यदि कभी इन्हे अलग से वसूलते हैं तो थोक विक्रेता इन खर्चों को जिंस के मूल्य मे जोड़ देता है और उसे फुटकर विक्रेता से वसूल कर लेता है। अन्तत मण्डी शुल्क, कमीशन, दलाली, आढ़त - ये सारे परिव्यय वस्तु के मूल्य मे जुट जाते हैं। अत सुविधा हेतु इन्हे फुटकर विक्रेता के खर्च मे सम्मिलित किया गया है।

एक बात और ध्यान देने की है कि कृषि पदार्थों पर बिक्री कर लिए जाते है। तिलहन (अधिकाश कृषि पदार्थ कुछ को छोडकर) पर बिक्री कर दर ४ प्रतिशत है । यह प्रथम क्रेता से वसूला जाता हैं। मण्डी का प्रथम क्रेता कोई भी (फुटकर व्यापारी, थोक व्यापारी, मिल का प्रतिनिधि, उपभोक्ता) हो सकता है। अत अध्ययन सुविधा को ध्यान मे रखते हुए अन्त मे इसे उपभोक्ता मूल्य के साथ जोड दिया गया है। इसका उल्लेख इसके पूर्व इसी अध्याय मे किया जा चुका है।

थोक व्यापारी द्वारा कुल विपणन खर्च ४५० रू० प्रति टन किया गया है जिसमें यातायात व्यय १०रू० प्रति क्विंटल, दलाली ३००पैसा सैकडा, पल्लेदारी २.५०रू० प्रति क्विंटल प्रतिस्थापन खर्च १०रू० प्रति क्विटल है। इस प्रकार थोक व्यापारी का कुल विपणन व्यय उपभोक्ता मूल्य का ७३ प्रतिशत है।

ट्रक द्वारा आगरा से मुँडेरा (इलाहाबाद) तक लाही सरसो को मँगाने में कुल विपणन लागत आगरा मे जिस के मूल्य का १६ ८६ प्रतिशत है। इसमे यातायात व्यय आढ़त, दलाली, पल्लेदारी, लोडिग, अनलोडिग, धर्मादा, गोशाला, चुगी आदि सम्मिलित है। इस प्रकार जिस के मूल्य मे परिवहन और उपभोक्ता बाजार की दूरी का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा है। इस प्रकार दूरी बढ़ने पर परिवहन व्यय अधिक होगा जो उपभोक्ता मूल्य में शामिल होगा। सरकारी करो की मात्रा भी उपभोक्ता मूल्य को प्रभावित करता है। बिक्री कर ४ प्रतिशत जिंस के मूल्य में जोड़दिया जाता है जिसे अन्त मे उपभोक्ता को ही देना पड़ता है। मण्डी शुल्क, दलाली, आढत, चुगी आदि सारे परिव्यय उपभोक्ता मूल्य मे जोड़ दिये जाते है।

सरसों तेल का विपणन

सरसों के तेल का उपयोग :-

आधुनिक युग मे सरसो के तेल की उपयोगिता अत्यधिक बढ चुकी है। हमारे दैनिक जीवन मे इसका महत्व उतना ही है जितना की जल और वायु का है हमारे कहने का मतलब यह है कि खाद्य तेल (सरसों तेल) के अभाव मे जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। इसकी माँग इतनी तेजी से दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है इसका पता इस बात से चलता है कि इसकी कीमतों मे निरन्तर वृद्धि हो रही है। हमारे उत्तर प्रदेश मे सरसो के तेल के निम्न प्रमुख उपयोग है।

- निर्यात मे ,
- खाद्य तेल के रूप मे ,
- शरीर मे लगाने एव मालिश करने में ;
- जलाने (लाइटिंग) मे ,
- साबुन बनाने मे ,
- अन्य औद्योगिक उद्देश्यों में ;

निर्यात की जाने वाली मात्रा में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं अतएव वह अस्थायी ऑकड़ा है किन्तु मोटे तौर पर ऐसा अनुमान है कि निर्यात के अतिरिक्त खाद्य तेल के रूप मे ९७ ५ प्रतिशत, शरीर मालिश हेतु १ २ प्रतिशत, लाइटिंग उद्देश्य हेतु ० २ प्रतिशत, साबुन उद्योग हेतु ०.२ प्रतिशत एव अन्य औद्योगिक उद्देश्य हेतु ० ९ प्रतिशत सरसो के तेल का उपयोग होता है।[17]

पेराई की विधि :-

हमारे उत्तर प्रदेश मे तिलहनो की पेराई विभिन्न साधनों से होती है इसमें प्रमुख साधन निम्न है।

---

[17] रिपोर्ट आन द मार्केटिंग ऑफ रेपसीड एण्ड मस्टर्ड इन इंडिया (१९६६) पृष्ठ सख्या ९५ ।

1. **कोल्हू अथवा बैल से चलने वाली घानी :-** कोल्हू पत्थर का होता है जिसे भूमि मे गड्ढा खोद कर गाड़ दिया जाता है, इसमे लकडी की कतरी लगी रहती है। यह बैलो द्वारा चलाया जाता है। कतरी मे बैल को बाध दिया जाता है जो चक्कर लगाता रहता है। यह प्राय· एक बैल से चलता है। कही-कहीं दो बैल, भैंसा, ऊँट भी लगाये जाते है। इसमे प्राय प्रति दिन ८ से १० घटे तक पेराई होती है। कोल्हू गाँव में ही पाये जाते हैं और इनकी क्षमता भिन्न-भिन्न होती है। अब शक्ति चलित मशीनो के विकास से इनकी सख्या मे निरन्तर कमी होती जा रही है। अब इनकी सख्या अति न्यून है। [18]

2. **रोटरी मिल :-** यह शक्ति चालित घानी है। यह लोहे की बनी होती है। इसमें लगभग १० कि०ग्रा० बीज एक बार पडता है और प्रति डेढ घटे मे १६० कि०ग्रा० तिलहन की पेराई की जाती है। ये २४ घटे चलाये जा सकते हैं। इसकी खली मे मात्र १० से १२ प्रतिशत तक तेल बचता है। [19]

3. **इक्सपेलर :-** यह भी शक्ति चलित मशीन है। इसमे रोलर लगे रहते है। जिनकी संख्या ३ से ५ तक होती है। इनकी क्षमता अलग-अलग होती है। जितने अधिक हार्स पावर का स्पेलर होगा उतना ही अधिक तेल की पेराई होगी। इक्सपेलर का प्रचलन अधिक है। इसकी खली में ७ से ८ प्रतिशत तक तेल होता है। [20]

4. **साल्वेन्ट प्लान्ट :-** यह अत्याधुनिक तेल रिकवरी की मशीन है। इसमे खली की पेराई होती है और मुख्य रूप से लाही सरसो और मूँगफली की खली पेरी जाती है। इसके द्वारा पेरी गई खली में मात्र ० ५ से १ प्रतिशत तक तेल रह पाता है उत्तर प्रदेश में इनकी संख्या अत्यन्त न्यून है। [21]

5. **हाइड्रोलिक प्रेस :-** इसका प्रचलन बहुत कम है। यह भी शक्तिचालित मशीन है। इसमें २४ या ३२ लोहे की प्लेट लगी रहती है और ये बीजो पर प्रति वर्ग से०मी० २ से ३ टन तक का दबाव डालते है। यह

---

[18] स्वतः सर्वेक्षण पर आधारित ।

[19] स्वत· सर्वेक्षण पर आधारित ।

[20] स्वत सर्वेक्षण पर आधारित ।

[21] स्वत सर्वेक्षण पर आधारित ।

ऊँचे दामो की मशीन है और इसके उपयोग में अनेक तकनीकी कठिनाइयाँ आती है। अतएव ये अधिक प्रचलित नहीं है।[22]

इस प्रकार उपर्युक्त मे तिलहन की पेराई किन साधनो द्वारा की जाती है इसका सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया। एक बात ध्यान देने की है कि जैसे-जैसे आधुनिक साधनो का विकास हो रहा है वैसे-वैसे बैल से चलने वाले कोल्हू का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। जब प्राय शक्ति चालित सयन्त्रो द्वारा ही तिलहन की पेराई होती है। बैल द्वारा चलने वाले कोल्हू से पेरे जाने वाले तिलहन की मात्रा अति न्यून है।

लाही सरसों की खली में तेल का प्रतिशत भाग :-

लाही सरसो की पेराई के बाद इससे जो खली निकलती है उसमें तेल का कुछ भाग शेष रह जाता है जिसे साल्वेन्ट प्लान्ट की सहायता से अलग कर सकते है। जैसा कि बताया जा चुका है कि लाही सरसों की पेराई विभिन्न साधनो से होती है, अतएव विभिन्न साधनों से प्राप्त खली मे तेल का प्रतिशत भाग भिन्न - भिन्न होता है।

शक्ति चालित मशीनों से लाही सरसों के पेराई और उस पर पड़ने वाली लागत :-

जैसा कि इसी अध्याय मे यह उल्लेख किया जा चुका है कि सरसों की पेराई के प्रमुख साधन कोल्हू (बैल से चलने वाले) वर्धाघानी शक्ति चलित रोटरी मिल, शक्ति चालित स्पेलर, हाइड्रोलिक प्रेस है। इनकी सरसो पेरने की क्षमता अलग-अलग है। ये कोल्हू, स्पेलर, घानी विभिन्न कम्पनियो के बनाये होते है। कुछ प्रमुख स्पेलर, घानी कोल्हू का उल्लेख उनकी पेराई क्षमता के अनुसार यहाँ किया जा रहा है।

यूनिवर्सल पजाब कोल्हू जिसका प्रचलन बहुत अधिक है इसके एक जोड़े कोल्हू पर ८ हार्स पावर की मोटर की आवश्यकता पडती है और पेराई क्षमता प्रति कोल्हू ४० कि०ग्रा० प्रति घटा है। एक जोडा बगाल स्पेलर १५ से २० कि०ग्रा० तक सरसों इससे पेरी जाती है। छोटी घानी जिसे आयल पर कुल ५ हार्स पावर का मोटर लगता है और प्रति घंटा स्पेलर अथवा बेबी स्पेलर भी कहा जाता है यह एक जोड़ा तीन हार्स पावर के मोटर से चलता है और इसमे स्पेलर द्वारा एक घटे में १५ से १७ कि०ग्रा० तक सरसों पेरी जाती है।

---

[22] स्वत सर्वेक्षण पर आधारित ।

यह सभी स्पेलर शक्ति चलित है। इसमें तेल घनी और स्पेलर दो किस्म की अलग-अलग मशीन होती है। घानी से तेल पेरने की लागत स्पेलर की तुलना मे अधिक आती है। घानी से तेल पेरने की लागत ४०० से ४५० रू० प्रति क्विटल तक आती है और स्पेलर से तेल पेरने की लागत २५०से ३०० रू० प्रति क्विटल तक आती है।[23]

तेल की पैकेजिग :-

आजकल पैकेजिग का काफी महत्व है, इसी कारण उपभोक्ताओ को बाजार मे वस्तुएँ कागज के डिब्बो, सुन्दर आकार की शीशियो तथा टिन या प्लास्टिक के डिब्बो मे पैक की हुई मिलती है। यही नहीं, उन पर सुन्दर व आकर्षक लेबिल, रंग-बिरंगे रंगो मे लगे रहते हैं तथा उन डिब्बो पर छपा हुआ कागज लगा रहता है, जिस पर उस वस्तु के गुणो को लिखा रहता है। **प्रो0 डाबर** के शब्दो में '' पैकेजिंग वह कला या विज्ञान है जो एक वस्तु को किसी आधान पात्र मे बन्द करने या आधान पात्र को वस्तु के सवेष्ठन के उपयुक्त बनाने हेतु सामग्रियो, ढगों और साज- सज्जा के विकास एवं प्रयोग से सम्बन्धित है। जिससे कि वस्तु वितरण की विभिन्न अवस्थाओं में से गुजरते समय पूर्णरूप से सुरक्षित रहे।[24]

भारत मे पैकेजिग, साबुन, बालो के तेल, घी, वनस्पति, दवाइयॉं आदि मे तो बहुत पहले से रही है। तिलहन से निर्मित खाद्य तेल प्राय· खुले ही बिकते रहे हैं। इसमे कोई खास पैकेजिग की व्यवस्था नहीं रही है। किन्तु समय परिवर्तन के साथ सरसों के तेल में भी पैकेजिग की व्यवस्था हो गयी है।

सरसो के तेल की पैकेजिंग मुख्यतया टीन या प्लास्टिक के डिब्बों में की जाती है। पैकेजिग मे प्राय १, २, ५, १० और १५ कि०ग्रा० के डिब्बो का ही प्रयोग किया जाता है।

पैकेजिग मुख्यतया निम्न उद्देश्यो को ध्यान मे रखकर की जाती है।

- सुरक्षा
- पहचान
- सुविधा

---

[23] स्वत· सर्वेक्षण पर आधारित ।

[24] रस्टन एस० डाबर · माडर्न मार्केटिंग मैनेजमेन्ट, पृष्ठ सख्या २३३ ।

❖ लाभ वृद्धि की सम्भावनाएँ

❖ विज्ञापन

सरसो के तेल की पैकेजिंग प्राय १, २, ५, १० और १५ कि०ग्रा० के टीनो मे मजदूरो की सहायता से होती है। मिल मालिक प्राय मजदूरो को दैनिक मजदूरी पर रखते हैं। कुछ बड़ी मिले ही बहुत अल्पसख्या मे कुछ वेतन भोगी मजदूरी को स्थायी रूप से रखे हुए है। यह कार्य कुछ मिलो मे ठेके पर भी होता है यह ठेका प्राय वहीं के स्थाई मजदूर ही लेते हैं। विभिन्न बाजारों मे तेल की भराई १० रू० से १५ रू० प्रति टीना तक है। पैकेजिग का खर्च टीने के मूल्य को सम्मिलित करने पर उपभेक्ता मूल्य मे १० ८५ प्रतिशत के लगभग है। यह व्यय केवल टीन के सादे डिब्बे में तेल को भर कर पैक करने के दिये गये हैं यदि उत्पादक अपने उत्पादन को अच्छा ब्रान्ड देकर उसकी अच्छी पैकेजिग कराना चाहता है तो उसकी सजावट लेबुल, विज्ञापन, डिजाइन आदि पर अतिरिक्त व्यय करने पड़ते हैं।

सरसो से सरसो तेल बनाने मे होने वाले समस्त खर्चे एव प्राप्त तेल और खली की मात्रा का विवरण प्रस्तुत किया गया है। मिल मालिक द्वारा वहन किये जाने वाले कुल खर्चे ४१०.३७ रू० प्रति क्विटल है जिसमे सरसो की सफाई का खर्च ५० रू० प्रति क्विटल पेराई की लागत २०० रू० प्रति क्विटल प्रतिस्थापन खर्च ५० रू० प्रति क्विंटल भराई, टीना, पैकेजिंग के खर्च ११०.३७ रू० प्रति क्विटल है। इस प्रकार प्रति टन सरसो पर मिल मालिक द्वारा खर्च की गयी कुल धन राशि ४०१३ ७५ रूपये है जो सरसो तेल उपभोक्ताओ मूल्य का ६० ८२ प्रतिशत है।[25]

एक टन सरसो की पेराई करने पर ३ ३५ क्विटल तेल एव ६.६५ क्विटल खली की मात्रा प्राप्त हो रही है तथा १० कि०ग्रा० प्रति टन जलन जा रही है। वर्तमान मूल्य स्तर पर तेल का मूल्य ४००० रूपया प्रति क्विंटल तथा खली का मूल्य ५५० रू० प्रति क्विटल है अत· एक टन सरसों से प्राप्त तेल और खली का सम्मिलित मूल्य १७०५७५० रूपया है। चूँकि प्रति टन सरसों पर मिल मालिक को ४०१३.७५ रू० खर्च करने पड़ रहे है । एवं प्रति टन सरसो का क्रय मूल्य १२००० रू० है।[26]

---

[25] रस्टन एस० डाबर · माडर्न मार्केटिंग मैनेजमेन्ट, पृष्ठ सख्या २३३ ।

[26] रस्टन एस० डाबर · माडर्न मार्केटिंग मैनेजमेन्ट, पृष्ठ सख्या २३३ ।

उत्तर प्रदेश मे सरसो तेल के वितरण के सदर्भ मे मुख्यतया निम्न वितरण माध्यम को अपनाया जाता है।

निर्माता ⟹ थोक विक्रेता ⟹ फुटकर विक्रेता ⟹ उपभोक्ता

इस वितरण माध्यम मे वस्तु थोक विक्रेता व फुटकर विक्रेता के माध्यम से उपभोक्ता तक पहुँचती है। वास्तव मे यह उपभोक्ता वस्तुओ की बिक्री करने का बहुत पुराना ढग है और छोटे निर्माताओ के लिए बहुत उपर्युक्त वितरण माध्यम है। अध्ययनार्थ चुनी गयी मडियो के सर्वेक्षण मे ऐसा पाया गया कि अनुमानत ५० से ६५ प्रतिशत तक तेल की बिक्री मिल मालिक थोक विक्रेता को ही कर देते हैं और थोक विक्रेता फुटकर बिक्रेता को करते हैं और उपभोक्ता अत मे फुटकर विक्रेता से क्रय करता है। कुछ मिले अपने माल को बेचने में प्रतिनिधि का सहारा लेती है इस तरीके को अपनाने, वस्तु निर्माता से प्रतिनिधि और प्रतिनिधि से थोक विक्रेता तक पहुँच जाती है । बहुत से स्थानो पर ऐसा पाया गया है कि फुटकर बिक्रेता सीधे मिल से तेल की खरीद करते हैं और उसे उपभोक्ता के हाथों बेच देते हैं। प्रत्यक्ष बिक्री भी बहुत कुछ देखने को मिलती है। इस पद्धति मे निर्माताओ द्वारा सीधी बिक्री उपभोक्ताओं को की जाती है यह बिक्री अपनी दुकानो से या स्वय के विक्रय कर्ताओ के माध्यम से होती है। प्रत्यक्ष तरीके से बिक्री बहुत ही कम मात्रा मे होती है।

यहाँ एक बात और ध्यान देने की है कि सरसो के तेल का उपयोग कुछ औद्योगिक इकाइयो मे भी होता है। ये औद्योगिक इकाइयाँ प्रायः थोक विक्रेता अथवा सीधे मिल से तेल की खरीद करती है। निर्यात करने वाली सस्थाएँ प्राय· प्रतिनिधि के मार्फत तेल खरीदती है। ये इनके स्वयं के प्रतिनिधि होते हैं एव ये सामान्य प्रतिनिधि, दलालो से सम्पर्क बनाये रखते हैं, जिनके मार्फत से तेल की खरीद करते हैं।

प्रतिनिधि एव दलाल तेल की बिक्री मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इनका सम्बन्ध देश के विभिन्न भागो के व्यापारियो से रहता है और यह उनकी माँग के अनुरूप थोक विक्रेता अथवा मिल मालिक से मोल-चोल तय करके अपने व्यवसायी को तेल की खरीद करवाते हैं। जिसके बदले मे इन्हे कमीशन मिलता रहता है। इस प्रकार ये खरीददार और विक्रेता के बीच मध्यस्था का कार्य करते हैं। प्रतिनिधि के मार्फत होने

वाले बिक्री का प्रतिशत अनुमानत २५ से ३० तक है। प्रतिनिधि के मार्फत की गई बिक्री का वितरण माध्यम निम्न प्रकार से पाया गया है।

निर्माता ⇒ प्रतिनिधि ⇒ थोक विक्रेता ⇒ फुटकर विक्रेता ⇒ उपभोक्ता

ये प्रतिनिधि प्राय दो प्रकार के होते है।

- एक तो वे प्रतिनिधि जो आढ़त या दलाली पर कार्य करते हैं और वस्तुओ के हस्तान्तरण मे वास्तविक रूप से स्वामित्व को अपने ऊपर नहीं लेते। ये निर्माता और क्रेता को मिलकर सौदो को पूरा करा देते हैं।
- दूसरे वे प्रतिनिधि, जो निर्माता के माल को स्वय क्रय करते हैं और बाद मे अन्य मध्यस्थो या क्रेताओ को बिक्री कर देते है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि यहाँ पर विपणन कार्य दो स्तरों पर सम्पादित हो रहा है।

प्रथम, सरसो उत्पादक से मिल तक कच्चे माल के रूप मे सरसों का विपणन किया जा रहा है, जिसमे मुख्यतया निम्न वितरक माध्यम को अपनाया जा रहा है।

उत्पादन ⇒ फुटकर विक्रेता ⇒ थोक विक्रेता ⇒ मिल

द्वितीय स्तर पर निर्मित सरसों तेल का विपणन निर्माता (मिल) से अतिम उपभोक्ता तक किया जा रहा है जिसमे मुख्यत· निम्न वितरण माध्यम को अपनाया जाता है।

निर्माता (मिल) ⇒ थोक विक्रेता ⇒ फुटकर विक्रेता ⇒ उपभोक्ता

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे विपणन लागत का अध्ययन उपर्युक्त विपणन माध्यम के आधार पर ही किया गया है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उपयुक्त होगा कि अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में सरसों एवं सरसों तेल के विपणन लागत का अध्ययन प्रति १० क्विटल सरसों के आधार पर किया गया है अतएव उपभोक्ता कीमत मे मिल गेट पर प्राप्त खली की कीमत को ही सम्मिलित कर लिया गया है।

उत्पादक से उपभोक्ता तक मूल्य प्रसार :-

प्रस्तुत अध्याय मे अब तक सरसो के उत्पादक से लेकर सरसों तेल के अन्तिम उपभोक्ता तक के विभिन्न विपणन व्ययो का विवरण प्रस्तुत किया गया है। स्पष्ट है कि सरसों को सरसो तेल के रूप मे अतिम उपभोक्ता के पास पहुँचने तक अनेक विपणन सम्बन्धी खर्चे उसकी कीमतो मे सम्मिलित होते रहते हैं। परिणाम यह होता है कि उत्पादक को प्राप्त कीमत और अतिम उपभोक्ता द्वारा दी गयी कीमत मे भारी अन्तर आ जाता है। प्रति टन सरसो एव उससे प्राप्त सरसो तेल के विपणन मे सरसो उत्पादक से लेकर सरसो तेल के अतिम उपभोक्ता तक विभिन्न मध्यस्थो द्वारा वहन किए है।

अत सरसों एव सरसों तेल के विपणन में विभिन्न वर्गो द्वारा वहन किये जाने वाले विपणन खर्चे एव उनके लाभाशो का विवरण दिया गया है। यहॉ यह ध्यान रहे कि विपणन की गयी सरसो की मात्रा १ टन है। एवं विपणन किये जाने वाले सरसो तेल की मात्रा ३ ३५ क्विटल है, क्योकि १ टन सरसो से मात्र ३ ३५ क्विटल ही तेल प्राप्त होता है।

अत· उत्पादक सरसो की जब बिक्री कर रहा है तो उसे प्रति टन ४०० रूपये विपणन खर्च वहन करने पड़ रहे हैं। जिससे उत्पादक को अपनी उपज की वास्तविक कीमत से ४०० रू० कम प्राप्त होते है। इस प्रकार उत्पादक द्वारा वहन किया गया विपणन खर्च उपभोक्ता कीमत का ६ ५ प्रतिशत है। उत्पादक द्वारा वहन किये जाने वाले विपणन खर्चों मे दलाली, चुगी, पल्लेदारी, कर्दा नमूना आदि सम्मिलित है। सरसो के फुटकर विक्रेता द्वारा कुल १६२० रू० प्रतिटन विपणन खर्च किया जा रहा है, जो उपभोक्ता कीमत का २६ ४ प्रतिशत है।

सरसो के फुटकर विक्रेता का लाभाश १८३० रू० प्रति टन है जो उपभोक्ता कीमत का २९ ९ प्रतिशत है। सरसों के थोक विक्रेता द्वारा वहन किया गया विपणन खर्च ४५० रू० प्रति टन है। जो उपभोक्ता कीमत का ७.३ प्रतिशत है। प्रति टन सरसो के विपणन पर सरसो के थोक विक्रेता को ११०० रू० का शुद्ध लाभाश प्राप्त हो रहा है जो उपभोक्ता कीमत का १७ ९ प्रतिशत है। चूँकि ८ प्रतिशत की दर से

बिक्री कर सरसों पर लगाया जाता है यह बिक्री कर थोक व्यापारी वहन करे अथवा फुटकर व्यापारी यह अन्य मे उपभोक्ता कीमत मे ही सम्मिलित होता है। प्रति टन सरसो पर ८ प्रतिशत की दर से कुल बिक्री कर १६०० रू० है जो उपभोक्ता कीमत की २६ १ प्रतिशत है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जिस उपज की उत्पादक को ३९६०रू० प्रति क्विटल की दर से कीमत प्राप्त हो रही है, वही उपज (उत्पादक ⇨ फुटकर व्यापारी ⇨ थोक व्यापारी ⇨ मिल) कई विक्रय भागो से होकर मिल मालिक तक पहुँचती है तो वह ४६६० रू० प्रति क्विटल की दर से बिक रही है। इस प्रकार मिल मालिक द्वारा दी गयी कीमत और उत्पादक को प्राप्त कीमत मे ७०० रू० प्रति क्विटल का अन्तर आ रहा है। अब मिल मालिक द्वारा विधायनी क्रिया सम्पन्न होती है, जिसमें होने वाले खर्चे इस प्रकार है। सरसों का सफाई का खर्च ५० रू० प्रति क्विंटल, पेराई की लागत २०० रू० प्रति क्विंटल, प्रतिस्थापन खर्च ५० रू० प्रति क्विटल, भराई टीना पैकेजिंग के खर्चे १६१० ३७ रूपया प्रति क्विंटल। इस प्रकार मिल मालिक द्वारा वहन किया गया कुल खर्च ४१३० ७५ रू० प्रति टन है।

सरसो की पेराई के बाद तेल और खली का अनुपात ३२.५० ६६ ५० का है। इस प्रकार तेल मिल मालिक को प्रति टन सरसो से ३.२५ क्विंटल तेल और ६.६५ क्विटल खली प्राप्त होती है एव प्रति क्विंटल १ कि०ग्रा० वजन जा रही है। सरसों तेल के थोक विक्रेता द्वारा वहन किया गया विपणन खर्च १७० ६ रू० है जो उपभोक्ता कीमत का २ ८ प्रतिशत है। सरसों के थोक व्यापारी अर्जित शुद्ध लाभाश ४१३०.९७ रू० है जो उपभोक्ता कीमत का २३ ५ प्रतिशत है। सरसो के फुटकर व्यापारी द्वारा वहन किये जाने वाले विपणन खर्चे १२०.१८ रू० है। जो उपभोक्ता कीमत का १ ९ प्रतिशत है एव इसकी प्राप्त शुद्ध लाभाश २७४०.५४ रूपया है जो उपभोक्ता कीमत का ४४ ८ प्रतिशत है।

अत· सरसो तेल की उपभोक्ता कीमत मे सरसो उत्पादक का हिस्सा मात्र ६४.७३ प्रतिशत है। शेष ३५ २७ प्रतिशत में विभिन्न विपणन खर्च एवं मध्यस्थों को प्राप्त लाभांश सम्मिलित है। विभिन्न विपणन खर्चों का उपभोक्ता कीमत में सम्मिलित भाग इस प्रकार है - परिवहन खर्च १.२ प्रतिशत, कमीशन २ १० प्रतिशत।

प्रतिशत तोला ३ ० प्रतिशत, कर्दा एव नमूना १ ० प्रतिशत, मण्डी शुल्क २.० प्रतिशत, लोडिग, अनलोडिंग १ ८ प्रतिशत , चुंगी १.५ प्रतिशत, प्रतिस्थापन खर्च १५.९ प्रतिशत विधायनी लागत ८ ०८ प्रतिशत, भराई पैकेजिग के खर्च १ ८६ प्रतिशत, संग्रहण १ ५ प्रतिशत , अन्य खर्चे १ प्रतिशत। विभिन्न मध्यस्थो द्वारा प्राप्त किये गये लाभाश का उपभोक्ता कीमत मे सम्मिलित भाग इस प्रकार है। सरसो के फुटकर विक्रेता के लाभाश २९ ९० प्रतिशत सरसो के थोक विक्रेता का लाभाश १७ ९ प्रतिशत मिल मालिक का लाभाश ४१ ६ प्रतिशत सरसो तेल के थोक विक्रेता का लाभाश २३ ५ प्रतिशत, सरसो तेल फुटकर विक्रेता का लाभाश ४४ ८ प्रतिशत।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि सरसो तेल की उपभोक्ता कीमत मे उत्पादक से लेकर अन्तिम उपभोक्ता तक के अनेक विपणन सम्बन्धी खर्चे एवं विपणन कार्यकर्ताओ के लाभांश सम्मिलित हैं। परिणामत उत्पादक द्वारा प्राप्त की गयी कीमत एवं उपभोक्ता द्वारा दी गयी कीमत में भारी अन्तर आ गया है। अत इस बात पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि विपणन व्यय का वास्तविक भुगतान करने वाला कौन सा वर्ग है चूँकि एक ओर उत्पादक (किसान) द्वारा वहन किये जाने वाले विपणन खर्चों का हस्तान्तरण सम्भव नही हो पाता है। अत यह खर्च उत्पादक को ही अपनी उपज की कीमत मे से अदा करना होता है, जिससे उसे अपनी उपज की वास्तविक धन राशि से कम धनराशि प्राप्त होती है, जबकि दूसरी ओर उपभेक्ता कीमत मे समस्त विपणन खर्चो के सम्मिलित हो जाने के कारण उपभोक्ता कीमतों मे वृद्धि हो जाती है इस प्रकार उत्पादक और उपभोक्ता दोनो का शोषण होता है और लाभ बिचौलियों को मिलता है।

******

षष्ठम् अध्याय

उत्तर प्रदेश में गन्ना एवं गन्ना उत्पादों का विपणन

उत्तर प्रदेश में गन्ना एवं गन्ना उत्पादों का विपणन :-[1]

उत्तर प्रदेश भारत का सबसे बडा गन्ना उत्पादक राज्य है। सम्पूर्ण भारत का आधे से अधिक गन्ना अकेले उत्तर प्रदेश मे उत्पादित होता है। विश्व मे कुल १२३ देशो मे गन्ने की खेती की जाती है विश्व के कुल गन्ना उत्पादन का बीस प्रतिशत गन्ना अकेले भारत वर्ष मे उगाया जाता है। इस प्रकार सँम्पूर्ण विश्व का दस प्रतिशत गन्ना उत्तरप्रदेश मे उत्पादित होता है। यहाँ २० ५४ लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल में गन्ने की खेती की जाती है। विश्व मे चीनी उत्पादन मे भारत का अशदान १२ ४० प्रतिशत है। भारत मे स्थापित चीनी मिलो की सख्या ४६० तथा कार्यरत चीनी मिलो की संख्या ४२३ है। उत्तर प्रदेश मे कुल ११९ चीनी मिले स्थापित है। जिनमे से १०० चीनी मिले इस वर्ष कार्यरत है। इनमे से २२ चीनी मिले सरकारी क्षेत्र मे २७ चीनी मिले सहकारी क्षेत्र मे तथा ५१ चीनी मिलें निजी क्षेत्र मे है। चीनी मिलो को कुल १६१ सहकारी गन्ना समितियो के माध्यम से लगभग ३१ लाख गन्ना कृषक लगभग ५०० लाख टन गन्ने की आपूर्ति करते हैं। प्रदेश मे कुल ११२ गन्ना विकास परिषदे, चार गन्ना बीज विकास निगम,१३ गन्ना शोध केन्द्र तथा ६ गन्ना किसान संस्थान कार्यरत है। उत्तर प्रदेश का खाडसारी एव गुड़ उद्योग भी सबसे बड़ा एवं पुराना उद्योग है। इस वर्ष प्रदेश मे कुल ६५३ खाडसारी इकाईयाँ कार्यरत रही।

---

[1] कुशल नीतियो की शानदार उपलब्धियाँ, अमर उजाला इलाहाबाद,वाराणसी १७ सितबर, २००१, पृष्ठ सख्या ६ ।

गन्ना मूल्य की घोषणा :- [2] वर्तमान शासन ने सदैव किसान हित को सर्वोपरि माना है। गन्ना किसानो को लाभकारी गन्ना मूल्य प्राप्त हो सके, इसके लिए वर्ष १९९७-१९९८ मे अगैती प्रजाति मे चार रूपये तथा सामान्य गन्ना प्रजाति का तीन रूपये प्रति कुतल गन्ना मूल्य की वृद्धि की गयी। पुन किसानो के हित को सरक्षित करते हुए वर्ष १९९८-१९९९ मे पाच रूपये प्रति कुतल गन्ना मूल्य बढ़ा कर दिलाया गया। इसी प्रकार १९९९-२००० मे पॉच रूपये तथा वर्ष २०००-२००१ मे भी पाँच रूपये प्रति कुतल गन्ना मूल्य की वृद्धि की घोषणा की गई। इस प्रकार वर्तमान शासन काल में गन्ना किसानो को १९ रूपये की कुल गन्ना मूल्य मे वृद्धि की गयी तथा समस्त चीनी मिलो ने सहर्ष इस मूल्य को स्वीकार व किसानो को अदा किया। वर्ष २०००-२००१ मे ही अकेले इस वृद्धि से गन्ना किसानो को २५० करोड़ रूपये की अतिरिक्त आमदनी हुई है।

गन्ना मूल्य का भुगतान :- [3] वर्ष १९९८-१९९९ मे चीनी मिलो की गन्ना किसानो ने ३२५९ ८० करोड रूपये का गन्ना बेचा। इसी प्रकार वर्ष १९९९-२००० में कुल ४०९२ २७ करोड़ का गन्ना चीनी मिलो द्वारा खरीदा गया। वर्ष २०००-२००१ मे किसानो ने पुन· ३९८५.६७ करोड़ रूपये का गन्ना चीनी मिलो को बेचा। वर्तमान शासन की कुशल अनुश्रवण व्यवस्था तथा दृढ़ सकल्प के कारण जहाँ वर्ष २०००-२००१ मे विगत् वर्ष के शत-प्रतिशत गन्ना मूल्य का भुगतान सुनिश्चित कराया गया वहीं इस वर्ष के कुल देय गन्ना मूल्य रूपया ३९८५ ६८ करोड़ में से ७ अगस्त २००१ तक गन्ना किसानो को ३७३० ४६ करोड़ रूपये का भुगतान किया जा चुका है। जो कुल देय का ९३ ६० प्रतिशत है। जो भुगतान अवशेष रह गया है। वह भी शीघ्र भुगतान की प्रक्रिया में है। कुल ३१ चीनी मिलो ने शत-प्रतिशत गन्ना मूल्य का भुगतान कर दिया है। शेष मिलें शीघ्र भुगतान की प्रक्रिया में है। लगभग चार अरब की विशाल पूँजी को गाँवो की ओर मोड़ा गया है। जिससे कि गाँवो की खुशीहाली बढ़ी है। गन्ना मूल्य को लेकर विगत् दो वर्षों से कोई आदोलन

---

[2] कुशल नीतियो की शानदार उपलब्धियां, अमर उजाला इलाहाबाद,वाराणसी १७ सितबर, २००१, पृष्ठ सख्या ६ ।
[3] वही पृष्ठ सख्या ६ ।

नहीं हुआ तथा चीनी उद्योग एव गन्ना किसानो के परस्पर समन्वय से रिकार्ड गन्ना मूल्य का भुगतान हुआ है, यह वर्तमान शासन की कुशल नीति का ही परिणाम है।

नई चीनी मिलों की स्थापना :- [4] उत्तर प्रदेश मे नई चीनी मिलो की स्थापना हेतु उद्यमियो को प्रोत्साहित करने, उत्पादित गन्ने की अधिकाधिक पेराई एव डाल प्रतिशत बढाने के उद्देश्य से वर्तमान शासन ने विगत् दो वर्षों मे पाँच नई चीनी मिलो का सचालन प्रारम्भ किया तथा एक पुरानी असचालित चीनी मिल को पुन संचालित कर अपनी किसान एव उद्योग परक नीति का परिचय दिया। इस प्रकार वर्तमान मे प्रदेश मे कार्यरत चीनी मिलो की स्थापित पेराई क्षमता ३.५४ से बढ़कर ३ ५९ लाख टी० सी० डी० हो गई है। अभी हाल में ही वर्तमान शासन ने बाराबकी जनपद की हैदरगढ़ तहसील मे २५०० टी० सी० डी० की एक अत्याधुनिक चीनी मिल आसवानी, खोई आधारित सहविद्युत उत्पादन गृह सहित एक शुगर काम्पलेक्स स्थापित करने का निर्णय लिया है जो आगामी दो वर्षों मे बनकर तैयार हो जाएगा। ९ अगस्त को माननीय मुख्यमत्री ने इसकी आधारशिला रख दी है। वर्तमान मे प्रदेश मे चीनी उद्योग स्थापना हेतु लाइसेंस प्रणाली को समाप्त कर उद्यमियों को प्रत्येक प्रकार की त्वरित सहायता देने की नीति अपनाई जा रही है।

चीनी का उत्पादन :- [5] विगत् दो वर्षों मे लगातार प्रदेश मे रिकार्ड चीनी का उत्पादन वर्तमान शासन के गतिशील एव कुशल नेतृत्व का परिचायक है। वर्ष १९९९-२००० मे अविभाजित उत्तर प्रदेश की कुल कार्यरत १०९ चीनी मिलों द्वारा ४८७ ७६ लाख टन गन्ने की पेराई कर ४५ ५५ लाख टन चीनी उत्पादन का कीर्तिमान स्थापित किया गया था। इस वर्ष प्रदेश की चीनी मिलो का औसत चीनी परता ९.३४ प्रतिशत था। वर्ष २०००-२००१ में अपने ही कीर्तिमान को भगकर कुल ४८९ १४ लाख टन गन्ने की पेराई करते हुए ४७ ४९ लाख टन चीनी का उत्पादन किया गया। इस वर्ष औसत चीनी परता ९ ७१ प्रतिशत है। ये आकड़े उतराचल की चीनी मिलो को सम्मिलित करते हुए है। उत्तरांचल को छोड़कर इस वर्ष प्रदेश की सौ चीनी मिलो द्वारा कुल ४५०.८८ लाख टन गन्ने के पेराई करते हुए ४३ ८७ लाख टन चीनी का उत्पादन किया

---

[4] कुशल नीतियो की शानदार उपलब्धिया, अमर उजाला इलाहाबाद,वाराणसी १७ सितबर, २००१, पृष्ठ सख्या ६ ।

[5] वही पृष्ठ सख्या ६ ।

गया था विगत् बीस वर्षो में सर्वाधिक चीनी परता ९ ७३ प्रतिशत हासिल किया गया जो एक उल्लेखनीय उपलब्धि है। इस प्रकार इस वर्ष पुराने कीर्तिमान को भी भगकर लगभग पाच लाख टन अधिक गन्ने की पेराई कर दो लाख टन अधिक चीनी का उत्पादन एवं ० ३८ प्रतिशत अधिक चीनी परता का नया कीर्तिमान स्थापित किया गया है।

गन्ना खरीदने की उदार गन्ना नीति :- [6] प्रदेश के गन्ना किसानो का अधिक से अधिक गन्ना लाभकारी मूल्य देकर शीघ्र से शीघ्र चीनी मिलो द्वारा क्रय कराने की तीन वर्षीय गन्ना अनुबध नीति की घोषणा विगत् वर्ष की गई थी। इस उदार नीति को इस वर्ष और अधिक व्यावहारिक एव सरल बनाते हुए प्रयास किया जा रहा है कि किसानो का और अधिक गन्ना चीनी मिलों को सरलता से आपूर्ति कराया जाये।

इस वर्ष चीनी मिलों को पाँच वर्षो के लिए उनका क्षेत्र सुरक्षण किया जा रहा है। जिससे कि किसी भी चीनी मिल के सुरक्षित क्षेत्र मे गन्ने का स्थायी विकास कार्यक्रम चीनी मिलें चला सकें। नई गन्ना नीति मे शीघ्र पकने वाली गन्ना प्रजातियों को गन्ना आपूर्ति को वरीयता दी गयी है। इसी प्रकार छोटे गन्ना उत्पादको, स्वतत्रता सग्राम सेनानियो, सैनिको, भूतपूर्व सैनिको एव उनके परिवार के सदस्यो को भी गन्ना आपूर्ति मे वरियता प्रदान की जा रही है। गन्ना सर्वेक्षण कार्यो की व्यापक समीक्षा कर सर्वेक्षण कार्य को और अधिक व्यापक व विश्वसनीय बनाया जा रहा है। गन्ना क्रय मे कम्प्यूटरो का अधिक से अधिक प्रयोग तथा बैंको से गन्ना मूल्य भुगतान गन्ना किसानों के हित मे सर्वाधिक सफल प्रयोग सिद्ध हुआ है।

शीरा नियंत्रण मुक्ति का क्रांतिकारी निर्णय :- [7] गन्ना किसानों एव चीनी उद्योग, दोनो के हित मे विगत् वर्ष शीरे पर से ९० प्रतिशत तथा ०१ अप्रैल २००१ से शीरे पर शत-प्रतिशत नियत्रण हटा लेने का वर्तमान सरकार का निर्णय अभूतपूर्व रहा है। इससे किसानो को बेहतर एव सामाजिक गन्ना मूल्य भुगतान मे सहायता मिली है।

---

[6] कुशल नीतियो की शानदार उपलब्धियां, अमर उजाला इलाहाबाद,वाराणसी १७ सितबर, २००१, पृष्ठ सख्या ६ ।
[7] वही पृष्ठ सख्या ६ ।

गन्ना प्रजाति संतुलन और बीच बदलाव की महत्वाकांक्षी योजना :- [8] प्रदेश मे पहली बार सचालित मिल क्षेत्रवार गन्ना प्रजातीय सतुलन एव गन्ना बीज बदलाव की पाँच वर्षीय योजना से गन्ना किसानों को उन्नतशील बीज उपलब्ध होने लगे है। चीनी मिलो गन्ना विकास परिषदो तथा विभाग की मदद से चलाई जा रही इस महत्वाकाक्षी योजना मे अगैती गन्ना प्रजाती का क्षेत्रफल प्रत्येक चीनी मिल क्षेत्र मे बीस प्रतिशत तक करने का तथा नवीनतम् उन्नतशील गन्ना प्रजातियो को उपलब्ध कराने का प्रयास किया जा रहा है। चीनी परता में वृद्धि से इस योजना के परिणाम अब मिलने लगे हैं। निगम एवं सहकारी चीनी मिलो की बेहतर सचालन व्यवस्था प्रदेश मे सहकारी क्षेत्र की २७ तथा चीनी निगम की २२ चीनी मिले कार्यरत है। इन मिलो मे बेहतर सचालन, कड़ी अनुशासनिक व्यवस्था, कार्य सस्कृति का विकास एव स्थापित क्षमताओ का पूर्ण उपयोग सुनिश्चित किया गया है। अकर्मण्य एव अक्षम अधिकारियों की बर्खास्तगी तथा अनेको कर्मचारियो के विरूद्ध जहाँ अनुशासनात्मक कार्यवाही की गई वहीं अच्छे अधिकारियो एवं कर्मचारियो को पुरस्कृत भी किया गया। प्रशासनिक एव अन्य कार्यों में कटौती करके लगातार हो रहे घाटो को कम किया गया। राज्य चीनी निगम की बद पडी ग्यारह चीनी मिलो में कार्यरत ६७४८ कर्मचारियों के लिए ११८.३० करोड़ की स्वैच्छिक अवकाश ग्रहण योजना (वी० आर० एस०) लागू की गयी तथा क्षेत्र, किसानों एवं उद्योग के हित मे अनेक निर्णय लिये गये ।

गन्ना किसानों को थोक मूल्य पर चीनी :- गन्ना किसानो के हित मे थोक मूल्य पर एक कुतल चीनी उपलब्ध कराने का निर्णय किया गया। किसानो की यह बहुत पुरानी माँग भी जिसे वर्तमान शासनकाल में पूरा किया गया है। इससे किसानों मे हर्ष का वातावरण व्याप्त हुआ है।

खांडसारी उत्पादन में और आगे :- [9] प्रदेश मे खाडसारी एव गुड़ उत्पादन को प्रोत्सासहन देने के लिए अनेक निर्णय वर्तमान सरकार द्वारा लिये गये हैं। प्रदेश मे खाडसारी इकाईयो के लिए एक मुश्त लाइसेंसिंग एवं क्रयकर समाधान योजना लागू की गयी है। प्रदेश मे कुल १०६२ लाईसेंसकृत इकाईयाँ है

---

[8] कुशल नीतियो की शानदार उपलब्धिया, अमर उजाला इलाहाबाद,वाराणसी १७ सितबर, २००१, पृष्ठ सख्या ६ ।

[9] वही पृष्ठ सख्या ६ ।

जिनमे से इस वर्ष ६७२ इकाईयाँ कार्यरत रही है। इनके द्वारा इस वर्ष कुल ७४२ ४५ लाख कुतल गन्ना पेरकर ३१ ६१ लाख कुतल खाडसारी एव ग्यारह लाख कुतल गुड़ का उत्पादन किया गया है।

सह उत्पादों से खुशहाली लाने का संकल्प :- [10] चीनी मिलो द्वारा गन्ने से चीनी बनाने के अतिरिक्त शीरे से अल्कोहल व गन्ने की खोई को मिल के ब्वायलर मे जलाने का कार्य किया जाता था। गन्ने के सहउत्पादों का और अधिक बेहतर उपयोग कर खुशहाली बढाने का सकल्प वर्तमान शासन ने लिया। वर्तमान सरकार के लगातार प्रयासो से केद्र सरकार ने बरेली मे शीरे पर आधारित गैसोहल के एक पाइलट प्रोजेक्ट की शुरूआत कर दी है। वर्तमान मे उत्तर प्रदेश मे बजाज हिन्दुस्तान गोला चीनी मिल जिला लखीमपुर, सिवहारा चीनी मिल बिजनौर जनपद तथा सीतापुर जनपद की हरगाँव चीनी मिलो मे जलविहीन अल्कोहल बनाया जा रहा है जिसकी तीव्रता ९९ ६ प्रतिशत है। बरेली मे भारतीय तेल निगम तथा भारत पेट्रोलियम के डिपो से कुल ११० पेट्रोल पम्प पर पेट्रोल मिश्रण के रूप मे गैसोहल उपलब्ध है। द्वितीय चरण मे अल्कोहल मिश्रित पेट्रोल को लखनऊ, आगरा, कानपुर, बनारस, इलाहाबाद तथा मेरठ जैसे महानगरो मे भी उपलब्ध कराये जाने की परियोजना का अनुरोध किया गया है। उत्तर प्रदेश में लगभग पाँच सौ करोड़ रूपये के पेट्रोल आयात व्यय मे इससे कमी आयेगी तथा पर्यावरण प्रदूषण रोकने मे भी मदद मिलेगी। गौसोहल दूनिया के विभिन्न देशो मे अनेक वर्षो से पेट्रोल के विकल्प के रूप मे प्रयोग किया जा रहा है।

उत्तर प्रदेश की कृषि अर्थव्यवस्था में गन्ना को महत्वपूर्ण कृषि औद्योगिक एव नकदी फसल माना जाता है। गन्ना हमारे देश मे अति प्राचीन काल से उगाया जाता है। यद्यपि सभी विद्वान गन्ने का जन्म स्थान भारत वर्ष को मानने को तैयार नहीं होते हैं किन्तु बहुतो का मत है कि आज जावा, सुमात्रा, हवाई द्वीप, क्यूबा, जमैका, मारीशस एवं फिलीपीन द्वीपो मे जो गन्ना होता है वह हमारे भारत की ही विरासत है। [11]

पूरे देश मे लगभग २७ लाख हेक्टैयर भूमि मे गन्ना पैदा किया जाता है। इसमे से अधिकाशत लगभग ८० प्रतिशत उत्तर भारत मे तथा शेष बीस प्रतिशत दक्षिण भारत मे उपजाया जाता है।

---

10 कुशल नीतियो की शानदार उपलब्धिया, अमर उजाला इलाहाबाद,वाराणसी १७ सितबर, २००१, पृष्ठ सख्या ६ ।

11 "गन्ना " मासिक नवम्बर १९९६ पृष्ठ सख्या ४ ।

भारत वर्ष के पूरे क्षेत्रफल का लगभग ५६ प्रतिशत गन्ना उत्तर प्रदेश मे उपजाया जाता है।[12] प्रदेश के २२ लाख परिवारो की आजीविका गन्ना उत्पादन का कार्य हैं, जिसमें केवल पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक लाख व्यक्तियो का गन्ना उत्पादन ही मुख्य कार्य है।[13]

इस प्रकार प्रदेश की अर्थव्यवस्था मे गन्ने का महत्वपूर्ण स्थान होने के कारण गन्ने के क्षेत्रफल एव उत्पादन मे सन् १९५०-५१ से उतरोत्तर वृद्धि हुई है। उत्तर प्रदेश मे गन्ने की खेती देश के अन्य प्रदेशो की तुलना मे अधिक होती है।

गन्ना क्षेत्रफल, औसत उपज एवं कुल गन्ना उत्पादन :- गन्ना उत्पादन की दृष्टि से उत्तरप्रदेश का देश मे महत्वपूर्ण स्थान है। भारतवर्ष मे गन्ना क्षेत्रफल विश्व के गन्ना क्षेत्रफल का २४ प्रतिशत है। जबकि देश में उत्तरप्रदेश का औसतन गन्ना क्षेत्रफल ५२ प्रतिशत तथा गन्ना उत्पादन ४२ प्रतिशत है। प्रदेश की औसत उपज लगभग ४२ टोन्स प्रति हेक्टेयर है।[14] देश के ट्रापिकल व सब ट्रापिकल क्षेत्र के प्रदेशो की गन्ने की औसत उपज स्पष्ट कारणो-वश तुलनात्मक नहीं है। सब ट्रापिकल क्षेत्र मे पजाब के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश की औसत गन्ना उपज सबसे अधिक है व हरियाणा का स्तर इस प्रदेश के समान है।[15]

चीनी मिल क्षेत्र :- उत्तर प्रदेश मे सबसे अधिक वैक्यूमपान चीनी मिले हैं। प्रदेश की चीनी मिलो के सुरक्षित क्षेत्र मे गन्ना विकास विभाग द्वारा सघन गन्ना विकास का कार्यक्रम किया जाता है। सुरक्षित क्षेत्र के अतर्गत गन्ना क्षेत्रफल प्रदेश के गन्ना क्षेत्रफल का लगभग ८५ प्रतिशत है।[16] गन्ना विकास विभाग प्रदेश की चीनी मिलो के सुरक्षित क्षेत्र से सम्बन्धित है व इसी क्षेत्र के ऑकडो का विशलेषण यहाँ किया जा रहा है।

---

12 "गन्ना " मासिक नवम्बर १९९६ पृष्ठ सख्या ४ ।

13 "गन्ना " मासिक नवम्बर १९९९ पृष्ठ सख्या ५ ।

नोट :- गन्ना मासिक का प्रकाशन उत्तर प्रदेश सहकारी गन्ना समिति सघ द्वारा होता है एव केन यूनियन्स फेडरेशन प्रेस १२, राणाप्रताप मार्ग, लखनऊ से मुद्रित है ।

14 "गन्ना" मासिक जुलाई १९९६ पृष्ठ सख्या ३ ।

15 "गन्ना" मासिक जुलाई १९९६ पृष्ठ सख्या ३ ।

16 "गन्ना" मासिक जुलाई १९९६ पृष्ठ सख्या ३ ।

गन्ना क्षेत्रफल, औसत उपज एव कुल गन्ना उत्पादन मे अन्य फसलो की भाँति, मौसम के कारण उतार-चढ़ाव होते हैं। प्रदेश की चीनी मिलो की सख्या, मिलो की गन्ना पेराई क्षमता एव मधुर वस्तुओ (चीनी, गुड एव खाण्डसारी) की माँग मे वृद्धि के कारण प्रदेश के गन्ना क्षेत्रफल मे यह वृद्धि हुई है। यह वृद्धि गेहूँ के बौने जाति के प्रचलन से हुई है, जिसका प्रभाव फसल चक्र पर पड़ा है।

औसत उपज :- सुरक्षित क्षेत्र की औसत उपज मे वृद्धि पिछले १५ वर्षों की औसत उपज के अनुमान स्पष्ट है। गन्ना लम्बी अवधि की फसल है।[17] अत· इस पर सिचाई उर्वरकीय करण तथा अन्य विकासशील कार्यक्रमो के अलावा मौसम का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

- औसत उपज मे वृद्धि की दर कम है।
- गन्ना की औसत, उपज ४० टोन्स। हेक्टेयर से अधिक रही। परन्तु जलवायु के प्रतिकुल होने के कारण गन्ने की औसत उपज पर कुप्रभाव पडा।

गन्ने का विपणन :- गन्ने का विपणन मुख्यत इस बात पर निर्भर करता है कि उनका प्रयोग किन उद्देश्यों के लिए किया जा रहा है। हमारे देश मे इसका प्रयोग प्रायः निम्न कार्यो मे होता है -

- बीज के लिए, चूसने के लिए अथवा पीने के लिए, रस निकालने के लिए।
- पेरकर उसका रस निकालने के लिए जो खडसारी, राब, गुड़ बनाने वालो को बेच दिया जाता है।
- सीधे गुड़ बनाने के लिए यह प्रथा अधिकाशत· उन स्थानो मे प्रचलित है जहाँ या तो स्थानीय जनता का गुड़ का उपयोग अधिक होता है अथवा जहाँ चीनी मिले अथवा खाडसारी मिले अधिक नहीं है। ऐसे क्षेत्रो मे गुड़ बनाने के लिए गन्ने की पेराई कोल्हुओं द्वारा की जाती है। जो उत्पादन क्षेत्र के पास ही लगाये जाते है। कोल्हू या तो गाँव का बड़ा किसान लगाता है जो अपना गन्ना पेरने के साथ-साथ अन्य छोटे-छोटे किसानो का भी गन्ना कुछ शुल्क लेकर पेर देता है, अथवा इसे कुछ छोटे-छोटे किसान मिलकर किराये पर लगा लेते हैं जो बारी-बारी से उनके गन्ने की पेराई का कार्य करता है।
- चीनी मिलों द्वारा दानेदार चीनी बनाने के लिए।

---

17 "गन्ना" मासिक जुलाई १९९६ पृष्ठ संख्या ४ ।

एकत्रीकरण :- गन्ने की एकत्रीकरण मे निम्नलिखित सस्थाओ की महत्वपूर्ण भूमिका है।

किसान :- किसान अपनी गाड़ियो अथवा किराये की गाड़ियो द्वारा गन्ना चीनी मिलो तक लाते हैं और उन्हे बेच देते है। गन्ने के मूल्य का भुगतान इन्हे न्यूनाधिक इसी प्रकार से किया जाता है जैसा कि सहकारी समितियों द्वारा बेचने पर किया जाता है। ऐसे किसानो की सख्या जो गन्ना मिलो को सीधे बेचते हों बहुत कम है, क्योकि सहकारी गन्ना विकास समितियो द्वारा गन्ना बेचने के लाभ इतने अधिक होते हैं कि सभी किसान अपना गन्ना सहकारी समितियो के माध्यम से बेचना चाहते हैं।

खांड़सारी मिलें :- गन्ना उत्पादक क्षेत्रो मे बडी खाडसारी मिले किसानो से सीधे गन्ने का क्रय करती है। किसानो के साथ इनके व्यक्तिगत सम्बंध होते है और आवश्यकता पड़ने पर उन्हे कुछ धन भी दे दिया जाता है किन्तु इसके साथ यह भी शर्त होती है कि गन्ने का विक्रय खाडसारी मिलों को ही किया जाय। ये गन्ने की पेराई शक्ति चलित कोल्हुओ से करती है और उससे खांडसारी को तैयार करती है। यद्यपि खाडसारी की अपेक्षा सफेद चीनी या दानेदार चीनी अधिक अच्छी होती है। किन्तु उन क्षेत्रो मे जहाँ चीनी की मिलें नहीं होती है। वहाँ गन्ना उत्पदको का यही मुख्य आधार होती है। इसके अतिरिक्त मिल क्षेत्र मे भी जब मिले गन्ना खरीदने से मना कर देती है तो खांडसारी ही गन्ने का अन्य विकल्प प्रस्तुत करती है।

लाइसेंस प्राप्त आढ़तिए :- गन्ने के एकत्रीकरण के लिए चीनी मिले आढ़तियो की नियुक्ति करती हैं जो एक निश्चित सीमा तक उन्हे गन्ने का सम्भरण करने का दायित्व लेते हैं। चीनी मिले इन्हें बिना किसी शुल्क के तोल सेतु प्रदान करती है। मिलो के फाटक पर भी गन्ने की वास्तविक सुपुर्दगी के लिए आढ़तियों की नियुक्ति की जाती है। यही नहीं मिल क्षेत्र मे आने वाले रेलवे स्टोशनों पर भी इनकी नियुक्ति की जा सकती है। और ये वहाँ पर गन्ने को लादने और उतारने, तौलने आदि के कार्यों का निरीक्षण करते हैं। कहीं-कहीं पर आढ़तिये मिल क्षेत्रो से बाहर अथवा सड़क के किनारे स्थित गन्ना उत्पादक केन्द्रो से गन्ना खरीदते हैं और मोटर ट्रको अथवा रेलगाडियो द्वारा इसे मिलो तक पहुँचाने का कार्य करते हैं।

सहकारी गन्ना विकास समितियाँ :- चीनी मिलो को किसानो की ओर से गन्ने के सम्भरण मे इन समितियों ने महत्वपूर्ण सेवा प्रदान की है। इन्होने मिलो को गन्ना बेंचने में मध्यस्थों को प्राय समाप्त कर

दिया है यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि खांडसारी और गुड निर्माताओ को गन्ना बेचने की कोई समस्या नहीं है। जहाँ तक मिलो को गन्ना बेचने का प्रश्न है, यह कार्य सहकारी गन्ना समितियो द्वारा ही किया जाता है।

उत्तर प्रदेश में सहकारी गन्ना विकास समितियाँ :- उत्तर प्रदेश मे गन्ने का विपणन उत्तर प्रदेश सहकारी गन्ना विकास समितियो के माध्यम से होता है। सहकारी गन्ना समितियो की प्रदेश के गन्ना विकास आन्दोलन मे न केवल महत्वपूर्ण भूमिका है अपितु प्रदेश में इस आन्दोलन ने सहकारिता की सक्षम और कल्याणकारी सम्भावनाओ का मार्ग भी प्रशस्त किया है। सहकारी गन्ना विकास समितियो द्वारा गन्ने का क्रय, गन्ना मूल्य भुगतान, सिचाई व्यवस्था खाद वितरण, उन्नतशील बीज वितरण, गन्ना रक्षा, ऋण वसूली वर्तमान सकट से गन्ना किसानो को बचाने के प्रयास आदि कार्य भी किये जाते है।

सहकारी गन्ना विकास समितियों का संगठन एवं कार्य विधि :- [18] सहकारी गन्ना समितियो का सगठन निम्न कमेटियो एव पदाधिकारीयो द्वारा होता है -

- सामान्य निकाय
- प्रबन्ध कमेटी
- सभापति एव उपसभापति

इस विषय मे सामान्य निकाय सहकारी समिति की सर्वोच्च्व सस्था मानी गई है। जैसा कि इसी के अधिनियम की धारा २८ मे स्पष्ट उल्लेख है कि सामान्य निकाय का गठन, व्यक्तिगत सदस्यो से अथवा व्यक्तिगत सदस्यो के प्रतिनिधियो से होता है। गन्ना विभाग की सहकारी गन्ना समितियो की सामान्य निकाय प्रतिनिधियो से गठित होने के लिए यह प्रतिबंध है कि यदि समितियो की सदस्य सख्या १५०० या उससे अधिक हो। उत्तर प्रदेश की गन्ना समितियाँ लगभग सभी इसी श्रेणी मे आती हैं।

प्रबध कमेटी का सगठन सामान्य निकाय के सदस्यो द्वारा निर्वाचन पश्चात् होता है। इसके लिए उत्तर प्रदेश सहकारी समिति नियमावली के नियम संख्या ४४० व ४४१ मे विस्तार से पद्धति दी गई है।

---

18 "गन्ना" मासिक अक्टूबर १९९८ पृष्ठ सख्या ७ ।

प्रबध कमेटी के निर्वाचित सदस्यो मे से ही सभापति तथा उपसभापति का पुन निर्वाचन होता है जिसकी पद्धति नियम सख्या ४४४ मे निर्दिष्ट है।

सचिव प्रत्येक समितियो में वैतनिक अधिकारी होता है। वह नियमो के अधिन एवं सभापति के नियत्रण मे सहकारी सस्था का मुख्य कार्यपालक अधिकारी होता है।

सहकारी गन्ना समितियो के द्वारा मुख्यतया गन्ने की आपूर्ति समानुपातिक रूप से होती है इसके अतिरिक्त गन्ना समितियाँ अपने सदस्यो की सुविधा हेतु उर्वरको एव कीटनाशक दवाओ तथा कृषि के उपकरणो का वितरण करती है।

गन्ना समितियों के आर्थिक स्रोत :- [19] इन सहकारी समितियो के आर्थिक स्रोतो का सूक्ष्म उल्लेख उपविधि संख्या १९ मे निर्दिष्ट है अंशपूँजी प्रवेश शुल्क एव जुर्माना मुख्य है।

इनके अतिरिक्त मुख्य स्रोत गन्ने से प्राप्त कमीशन तथा उर्वरक, कीटनाशक का कृषि यन्त्रो के वितरण मे ब्याज के रूप मे होने वाली आय भी उल्लेखनीय है।

सहकारी समिति नियमावली नियम 1965 के महत्वपूर्ण प्रविधान :- [20] उक्त अधिनियम तथा नियमो मे सभी प्राविधान महत्व के हैं, किन्तु सहकारी समितियो के निबधन, उपविधियो के सशोधन, समितियो का विभाजन, समायोजन तथा इनकी सरचना विशेष है।

- सहकारी समितियो की निबधन की विधि धारा ४ से ८ तक में दी गई है। तथा इन्हीं धाराओं मे निर्दिष्ट प्रणाली को विस्तार से नियम ३ से १२ में स्पष्ट किया गया है।
- उपविधियो के सशोधन की विधि धारा १२ एव १४ मे तथा धारा संख्या २४ से ३६ तक मे दी गयी है।
- समितियो के विभाजन एवं विलीनीकरण की प्रक्रिया के लिए धारा १५, १६ तथा १२५ व १२६ मे प्राविधान है, जिनका नियमों मे विस्तृत विधान नहीं किया गया है।

---

19 "गन्ना" मासिक अक्टूबर १९९८ पृष्ठ सख्या ७ ।

20 "गन्ना" मासिक अक्टूबर १९९८ पृष्ठ संख्या ७ ।

❖ सहकारी समितियों की सरचना अर्थात् संगठन के लिए वर्ष १९७७ से कुछ मूलभूत परिवर्तन प्रभाव मे आ गये हैं। जिनके कारण गन्ना सहकारी समितियों की सामान्य सभा व्यक्तिगत सदस्यो से होना अनवार्य हो गया है।

यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि उक्त परिवर्तन का मूल कारण गन्ना समितियो की धारा २१ (३) के अधीन वर्ष १९७८ से अधिसूचित कर दिया था जिसके फलस्वरूप इनकी सामान्य सभा की रचना के लिए नियम सख्या ८४ (क) तथा निर्वाचन के लिए नियम संख्या ४३९ से ४४४ लागू होते हैं[21]

इस विषय में अधिकाश लोगो मे भ्रम है कि डेलीगेटो का निर्वाचन गन्ना ग्राम सेवक करावे किन्तु यह विधान अब उक्त नियमो के अनुसार समाप्त हो चुका है। गन्ना समितियों का निर्वाचन कार्य निर्वाचन अधिकारी (जो गन्ने के विभाग से सम्बन्धित न हो) एव उनके अधीन पोलिग अधिकारी हों, कराने के लिए विधि मान्य है।

दूसरी बात यह ध्यान रखने की है कि यदि कहीं पर कोई प्राविधान उप विधियो को देखते हुए नियमों के प्रतिकुल पाया जाये तो वहा पर केवल नियम (सहकारी समिति नियमावली १९६८) ही प्रभावी होगी। नियम का प्रविधान उसी प्रकार मान्य होगा जैसी अधिनियम की मान्यता एव प्रभाव माना जाता है।

सहकारी गन्ना समितियों के अधिकार एवं कर्तव्य :- [22] प्रत्येक संस्था के सदस्यो एव पदाधिकारियो को अपने उद्देश्यो की पूर्ति के लिए जहाँ कुछ अधिकार प्राप्त होते हैं उसी के साथ-साथ उन पर कुछ दायित्व भी होते हैं इनका एक दूसरे से चोली दामन का साथ है। यदि गन्ना समितियो के सचालन केवल अपने अधिकारो की पूर्ति की बात करे और अपने कर्तव्यों की ओर जागरूक न रहे, तो उस समिति का जीवित रहना ही असम्भव है जिसके आधार पर उनकी उत्तर प्रदेश सरकारी समितियाँ अधिनियम १९६५ नियमावली १९६८ एव सदस्यो द्वारा बनायी गयी तथा निबंधक सहकारी गन्ना समितियाँ (गन्ना आयुक्त), उत्तर प्रदेश द्वारा निबन्धित उपविधियो के अतर्गत अधिकार प्राप्त है। अत समिति के सभी सदस्यो को अपने कर्तव्य की पूरी जानकारी होनी चाहिए जो विभिन्न रूप में उक्त प्रविधानो के अतर्गत उन पर रखी गयी है।

---

21 "गन्ना" मासिक अक्टूबर १९९८ पृष्ठ सख्या ७ ।

22 "गन्ना" मासिक मई १९७७, वर्ष ९, अक १०, पृष्ठ सख्या १३ एव १४ ।

ग्राम समिति के साधारण व्यक्तिगत सदस्यो का कार्य क्षेत्र ग्राम समिति तक सीमित हैं किन्तु यही वह प्रारम्भिक इकाई है जहाँ से केन्द्रीय गन्ना समिति की नींव पड़ती हैं। अत ग्राम स्तर पर सदस्यो को चाहिए कि वह प्रत्येक मास ग्राम मे सामान्य निकाय की बैठक करके, ग्राम की समस्याओ पर विचार विमर्श करे और केन्द्रीय समिति को अपने सुझाव से अवगत करा दे।

नये सदस्यो को भरती करने में इस बात का ध्यान रखें कि अन्य साधारण समितियो की भॉति आवश्यक योग्यता के अतिरिक्त वह केवल गन्ने के उत्पादक ही न हो बल्कि उस ग्राम मे भूमि के स्वामी भी हो। जैसा कि गन्ना समितियो की वर्तमान उपविधियो मे समिति की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए अगस्त १९७० से नया प्राविधान किया गया है।[23] इसके अतिरिक्त विकास हेतु ग्राम से सबधित कर्मचारियो द्वारा किये गए गन्ने के पड़ताल, सट्टा एव पूर्ति के लिए ग्राम से केन्द्रीय समिति के लिए प्रतिनिधि चुनने मे सावधानी एव निष्पक्ष वातावरण मे योग्य व्यक्ति को भेजने की चेष्टा करे।

सरकारी गन्ना समितियों द्वारा विवाद का निपटारा :-[24] यदि समस्त सदस्य नि स्वार्थ भाव से कर्तव्य निभाते हुए कार्य करते रहे तो निश्चित है कि किसी प्रकार का कोई विवाद नहीं खड़ा हो सकता। फिर भी यदि किसी प्रकार का कोई विवाद सदस्यो के बीच या समितियो के बीच खड़ा होता है, तो उनके निपटारे हेतु सहकारिता अधिनियम की धारा ७० व ७१ तथा निगम २२९ व २३० के अतर्गत कार्यवाही की प्रक्रिया निर्धारित है। साथ ही यदि उन प्रविधानो के अन्तर्गत लिए गए निर्णय के विरूद्ध कोई आपत्ति अपेक्षित होती है तो निपटारे हेतु धारा ९६ से १०० तक के अतर्गत कार्यवाही करने के प्रविधान निर्धारित है।

इन विवादो को प्रस्तुत करने के तौर तरीके भी सभी आम कृषकों की जानकारी में नहीं होते हैं, जिसके कारण कभी-कभी ऐसा भी देखने में आता है कि योग्य अथवा निर्दोष व्यक्ति उक्त नियमो की प्रक्रियाओ को ठीक से न समझ पाने के कारण अपने मूल अधिकारो से हाथ धो बैठता है। अत· इन प्रक्रियाओ के लिए नियम २२९, २३० धारा ७०, ७१, तथा ९८ के अंतर्गत जो भी वाद या अपील निर्धारित अधिकारियो (क्रमश· जिला मजिस्ट्रेट तथा गन्ना आयुक्त, राज्य सरकार एवं सहकारी न्यायाधिकरण है।) को प्रस्तुत की

---

23 "गन्ना" मासिक मई १९७७, वर्ष ९, अंक १०, पृष्ठ संख्या १४ ।

24 "गन्ना" मासिक जुलाई १९९२ पृष्ठ सख्या ५ ।

जाय, वह तीस दिन के भीतर ही निर्धरित शुल्क, किसी भी सरकारी खजाने मे जमा कर देने के पश्चात् कर देना आवश्यक होता है।

सहकारी गन्ना समितियों द्वारा उत्पादकों को रियायती उत्पादन ऋण देने का प्रविधान :- [25] सहकारी गन्ना समितियाँ उत्तर प्रदेश रियायती दर पर ऋण सदस्य गन्ना कृषकों को समय से उपलब्ध कराने के सम्बन्ध मे आवश्यक औपचारिकताओ की पूर्ति हेतु समस्त सचिव सहकारी गन्ना समितियाँ उत्तर प्रदेश को निम्नलिखित निर्देश दिये गए हैं।

- राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक के परिपत्र में निर्धारित पात्रता के मानदण्ड का अनुसरण करते हुए गन्ना सहकारी समितियों की ऋण सीमा स्वीकृत सम्बन्धी उपविधियो एव विभागीय परिपत्रों द्वारा निर्धारित प्रक्रियानुसार ऋण सीमा सम्बन्धी स्टेटमेन्ट तीन प्रतियो मे सलग्न रूप पत्र पर फील्ड स्तर पर तत्काल तैयार कराकर गन्ना सहकारी समितियो द्वारा डी० सी० सी० बी० के प्रधान कार्यालय को बिना अनावश्यक विलम्ब के ऋण सीमा स्वीकृत करने हेतु प्रस्तुत की जाय। राष्ट्रीय कृषि एव ग्रामीण विकास बैंक के निर्देशानुसार अशपूजी के रूप मे लिये जाने वाला ऋण को दस प्रतिशत सीमा तक गन्ना सहकारी समिति डी० सी० सी० को॰ मे जमा करेगी। यदि इससे पूर्व अंश पूंजी के रूप मे कोई धन जमा हो तो उसका समायोजन उक्त दस प्रतिशत सीमा के विपरीत कर लिया जाय।
- डी सी. सी को॰ से ऋण सीमा स्वीकृति प्राप्त होते ही गन्ना सहकारी समितियों द्वारा उक्त सीमा के अतर्गत इनपुट्स उधार देने की व्यवस्था की जाय और पाक्षिक आधार पर (आन फोर्ट नाइट बेसिज), वितरित इनपुट्स की कीमत डी सी सी बी. की सम्बन्धित शाखा से रिइम्बर्स करायी जाय।
- गन्ना सहकारी समितियाँ किसी भी स्थिति में नगद रूप मे कोई गन्ना कृषकों को नहीं देगी।
- भारतीय रिजर्व बैंक की पूर्व स्वीकृति के उपरान्त उत्तर प्रदेश सहकारी गन्ना समिति सघ लि० लखनऊ, उर्वरक, कीटनाशक, दवाओ आदि के क्रय हेतु विभिन्न बैंको से ऋण लेता है। उसकी नियमित अदायगी के लिए यह आवश्यक है कि जिला केन्द्रीय सहकारी बैंको द्वारा आपको स्वीकृत

---

[25] "गन्ना" मासिक मई १९९५ पृष्ठ सख्या ५ ।

किये गय ऋण की धनराशि सीधे उ०प्र० सहकारी बैंक लखनऊ की मुख्य शाखा मे गन्ना सघ के खाते मे स्थानान्तरित कर दी जाय। इस सम्बन्ध मे आप अपने स्तर से सम्बन्धित जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक को अधिकृत करते हुए आवश्यक निर्देश सुनिश्चित कर ले।

❖ गन्ना सहकारी समितियो द्वारा इस योजना के अतर्गत सदस्य गन्ना कृषको को रियायती दर पर ऋण की सुविधा उसी ब्याज दर पर उपलब्ध कराई जायेगी, जिस ब्याज दर पर प्राथमिक कृषि साधन सहकारी समितियो द्वारा अपने ऋणियो को दी जाती है।

❖ ऋण लेने और ऋण वितरित करने की ब्याज दरो मे जो मार्जिन गन्ना सहकारी समितियो को उपलब्ध होगी उसका विभाजन गन्ना सहकारी समितियो द्वारा इस प्रकार किया जायेगा कि प्रारम्भ मे प्रारम्भिक कृषि साधन सहकारी समितियों को उसका एक प्रतिशत अवश्य मिले।

❖ गन्ना सहकारी समितियाँ तथा प्रारभिक कृषि साधन सहकारी समितियाँ अपने-अपने बकायदारो की सूची इस उद्देश्य से एक-दूसरे को आदान-प्रदान करेगी कि बकायेदार सदस्यों को इस योजना के अंतर्गत ऋण न मिल सके और जिससे दोहरे ऋण स्वीकृत होने की सभवना न रहे।

❖ चीनी मिल से गन्ना मूल्य के प्राप्त चेक गन्ना सहकारी समितियो द्वारा जिला सहकारी बैंक की सम्बन्धित शाखा को इस निर्देश के साथ में भेजा जाय कि वे चेक की धनराशि उनके चालू खाते मे क्रेडिट करे। इस सम्बन्ध मे विभागीय आदेशो के अतर्गत गन्ना मूल्य भुगतान के सम्बन्ध मे जो प्रक्रिया निर्धारित की गई है उसका भी पूर्णरूप से पालन किया जाय। जिन सदस्यो ने ऋण नहीं लिया है उनके गन्ना मूल्यो की पर्चियो के समय से भुगतान के सम्बन्ध मे चेक निर्गत करने के लिए गन्ना सहकारी समितियॉ एक नियमित पद्धति बना ले।

❖ ऋण लेने वाले सदस्यो के गन्ना मूल्य की धनराशि डी. सी सी बी. के अंतर्गत खुले चालू खाता सख्या दो मे जमा की जायेगी और गन्ना सहकारी समितियाँ सम्बन्धित बैंक को यह निर्देश देगी की वह उक्त खाते से अल्पकालीन कृषि ऋण का समायोजन सुनिश्चित करें और समाजयोजन के पश्चात् सदस्य कृषक को देय धनराशि चेक के माध्यम से वापस कर दी जाय।

❖ इस योजना के अतर्गत रियायती ब्याज दर पर ऋण की सुविधा गन्ना उत्पादको को प्रदान करने हेतु ऋण सीमा रजिस्टर तथा ऋणियो से सम्बन्धित लेजर रजिस्टर विधिवत् गन्ना सहकारी समिति पर अलग से रखा जाय और समिति के सचिव पूर्णतया जागरूक रहकर यह सुनिश्चित करते रहे कि इस अभिलेखो का रख-रखाव समय से पूरा होता रहे और किसी भी दशा मे राष्ट्रीय कृषि एव ग्रामीण विकास बैंक तथा विभागीय आदेशों का उल्लघन न हो। विभागीय अधिकारी अपने निरीक्षण के दौरान इस योजना के अंतर्गत लिये गये तथा वितरित ऋण की समय-समय पर समीक्षा करते रहेगे की इससे सम्बन्धित रजिस्टरों, अभिलेखो के नियमानुसार समय से प्रवृष्टियाँ की जा रही है और आदेशो का पूर्ण रूप से परिचालन हो रहा है।

उत्तर प्रदेश सहकारी गन्ना विकास सिमितियों द्वारा गन्ना मूल्य भुगतान एवं व्यवस्था :- गन्ना मूल्य का भुगतान करने का विधिक उतरदायित्व गन्ना समितियो का है। किन्हीं-किन्ही गन्ना समितियो के सदस्यों के गन्ना मूल्य का भुगतान सम्बन्धित चीनी मिलों द्वारा किया जाता है। इस प्रकार चीनी मिल द्वारा गन्ना मूल्य का भुगतान तभी हो सकता है जब कि गन्ना समिति भुगतान हेतु समझौता कर ले। चीनी मिल जब कृषको को गन्ना मूल्य का भुगतान करती है तो वह गन्ना समिति से पारिश्रमिक भी ले सकती है, पारिश्रमिक की दर गन्ना आयुक्त द्वारा तय की जाती है।[26]

गन्ना मूल्य का भुगतान करने हेतु उत्तर प्रदेश गन्ना पूर्ति तथा खरीद अधिनियम १९५३ की धारा १७ मे यह प्राविधान है कि चीनी मिलो द्वारा गन्ना मूल्य भुगतान तुरन्त किया जायेगा। यदि चीनी मिलो द्वारा १४ दिन के भीतर खरीदे हुए गन्ने का भुगतान नही किया जाता है तो उसे १२ प्रतिशत ब्याज भी देना पड़ेगा।[27]

गन्ना मूल्य के नियमित रूप से भुगतान करने के लिए विधान में यह भी प्राविधान किया गया है कि सीजन के प्रारम्भ में चीनी मिलो को उत्पादित चीनी पर बैंको से प्राप्त होने वाली आग्रिम धनराशि मे से

---

[26] "गन्ना" मासिक वर्ष १९९१ प्रगति विशेषाक, पृष्ठ सख्या ३ ।

[27] "गन्ना" मासिक मई १९९७ पृष्ठ सख्या ५ ।

एक प्रतिशत कटा दी जावे।[28] ऐसी धनराशि गन्ना मूल्य के खाते मे पृथक रूप से जमा होती रहेगी तथा उसको मिल का मालिक किसी अन्य मद मे व्यय नहीं कर सकता।

गन्ना मूल्य का भुगतान प्रारम्भ करने के लिए इस प्रकार नियमित रूप से धनराशि सुनिश्चित करने के पश्चात् स्थान की बात आती है। गन्ना आयुक्त के इस सम्बन्ध मे यह निर्देश है कि गन्ना मूल्य का भुगतान गेट तथा क्रय केन्द्रो पर नियमित रूप से होना चाहिए।[29]

गन्ना मूल्य भुगतान के स्थान के अतिरिक्त समय भी महत्वपूर्ण है। समिति के सचिव का कर्तव्य है कि गन्ना मूल्य के भुगतान के लिए गेट तथा विभिन्न क्रय केन्द्रो के कृषकों को जो कि भुगतान लेने आवें लौटना न पड़े।[30] सुविधानुसार ऐसा प्रयास करना चाहिए कि कम से कम प्रत्येक सप्ताह सभी क्रय केन्द्रो पर एक बार भुगतान अवश्य हो जाए। समिति के सचिव को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि खजाची गन्ना मूल्य का भुगतान करने के लिए दिन में ऐसे समय क्रय केन्द्र पर पहुँचे कि अधिक से अधिक कृषक-गण गन्ना मूल्य का भुगतान करके समय से घर पहुँच जावें, क्योकि ऐसा देखा जाता है कि खजांची अक्सर देर से क्रय केन्द्रो पर भुगतान हेतु पहुँचते हैं। इस प्रकार जब व्यवस्था हो जावे तथा गन्ना मूल्य प्राप्त करने के लिए गेट एव क्रय केन्द्रो पर पहुँचे तो निम्न प्रणाली अपनानी चाहिए :-[31]

1. पर्ची जमा करने के लिए टोकेन जारी करना :- गन्ना मूल्य प्राप्त करने के लिए आये कृषको के क्रमवार मिल पर्चियो एवं टोकेन प्राप्ति की व्यवस्था करना चाहिए। टोकेन लिपिक को चाहिए कि किसानो को क्रम से मिल पर्चियाँ दो प्रतियो मे पास बुक सहित जमा की गयी पर्चियो को पास बुक की सहायता से जाँच के पश्चात् सम्बन्धित कृषक की आखिरी पर्ची पर उसमे प्राप्त की गयी समस्त पर्चियो की सख्या अकित करेगे और छपे टोकेन पर पास बुक नम्बर, पर्चियो की संख्या जो उसमे भुगतान के लिए प्राप्त की है, लिखकर अपने हस्ताक्षर करने के पश्चात् टोकेन सम्बन्धित कृषक को देगा। टोकेन प्राप्त की गयी पर्चियो को चेकिग क्लर्क को

---

28 "गन्ना" मासिक मई १९९७ पृष्ठ सख्या ५ ।

29 गन्ना आयुक्त कार्यालय उ०प्र० लखनऊ से प्राप्त सूचना ।

30 गन्ना आयुक्त कार्यालय उ०प्र० लखनऊ से प्राप्त सूचना ।

31 गन्ना आयुक्त कार्यालय उ०प्र० लखनऊ से प्राप्त सूचना ।

देगे और अपने रजिस्टर पर उस लिपिक के हस्ताक्षर इस-से लेगा कि किस नम्बर तक के टोकेन और कतनी-कितनी पर्चियाँ बिल लिपिक को दी गयी।

2. चेकिग क्लर्क पास बुक, केन लेजर एव रेडी रिकनर की सहायता द्वारा प्राप्त पर्चियो की चेकिग करेगा तथा भुगतान की तिथि लेजर मे प्रत्येक पर्ची के समय अकित करेगा। वह इस बात की विशेष रूप से जॉच करेगी कि मिल पर्ची पर जो सख्या अकित है उससे लेजर मे अंकित सख्या मिलती है उन पर्चियों का भुगतान पहले नहीं हो चुका है। यदि कृषक द्वारा जमा की गयी पर्ची पर मुद्रित संख्या का मिलान लेजर पर अकित सख्या से नहीं हो रहा है या उक्त पर्ची का भुगतान हो चुका है, तो चेकिग क्लर्क को उक्त पर्ची को रोक लेना चाहिए। उसे सम्बन्धित गन्ना समिति के सचिव के पास डुप्लीकेट मे रिपोर्ट कर देना चाहिए। एक प्रति पर समिति के लिपिक का हस्ताक्षर प्राप्त करके रख लेगा। ऐसा करने से सम्बन्धित गन्ना समिति को फर्जी पर्ची या दुबारा भुगतान से बचाया जा सकता है। यदि पर्चियाँ ठीक पायी जावे तो चेकिग क्लर्क को चाहिए कि वह दोनो पर्चियो तथा पास बुक पर कर्जे आदि की कटौती का विस्तृत हिसाब प्रस्तुत करे तथा पास बुक एव पर्चियाँ खजाची को भुगतान हेतु प्रस्तुत करे। यदि किसी कृषक को डुप्लीकेट पास बुक जारी की गयी हो तो सचिव यह सुनिश्चित करेंगे की उसका अकन सम्बन्धित कृषक के केन लेजर के खाते मे अकित कर दिया गया है। ताकि उसे भुगतान प्राप्त करने मे असुविधा दृष्टिगत न हो। यदि कोई पर्ची टोकेन करने के बाद भुगतान के लिए आती है और लेजर में कर्ज नहीं है तो ऐसी पर्ची का भुगतान नहीं किया जावेगा तथा उसकी समिति से सचिव के पास जॉच हेतु भेज दिया जावेगा। यदि कोई पर्ची लेजर मे चढ़ी है परन्तु उस पर किसी लेजर लिपिक के हस्ताक्षर नहीं है तो ऐसी पर्ची का भुगतान के लिए चेकिंग न की जावे। मिल की पर्ची से लेजर में पर्ची किसी भी दशा मे दर्ज न की जावे।

उपर्युक्त से ज्ञात होगा कि गन्ना मूल्य के भुगतान में केन लेजर जाँच को विशेष महत्व दिया गया है एवं केन लेजर का उदयावधिक होना अत्यन्त आवश्यक है। गन्ना समिति के सचिव को चाहिए कि केन लेजर पर पोस्टींग किसी भी दशा में एक सप्ताह से अधिक नहीं पिछड़ना चाहिए। गन्ने के भुगतान के लिए जमा की गयी पर्चियो को लेजर से जॉच के लिए यह अच्छा होगा की यदि बारी-बारी लेजर सेक्सन से चेकर भेजे जावे। वह पेमेट काउन्टर पर उन्हीं के द्वारा बनाए जा रहें लेजर लेकर पर्चियों की चेकिग के लिए जावेगे

तो कार्य मे तीव्रता आ सकती है। चेकिंग क्लर्क का कार्य कर्जा वसूली की दृष्टि से भी बहुत उत्तरदायित्व का है तथा यदि कोई कर्जा वसूली से छूट जाता है तो उसकी भी जिम्मेदारी होगी।[32]

3. चेकर से प्राप्त पर्चियो को खजांची निर्धारित पेमेन्ट शीट (जो कि दो प्रतियो मे होगी) पर दर्ज करेगा तथा टोकेन की मख्या के अनुसार कृषको के बुलायेगा। यह पर्ची की दोनो प्रतियों एव पेमेन्ट शीट पर निशानी अँगूठा एव हस्ताक्षर प्राप्त करने के पश्चात् दोनो पर्चियों पर भुगतान की तिथि की सील और अपने हस्ताक्षर अकित करेगा। तदुपरान्त भुगतान करेगा। पर्चे की डुप्लीकेट प्रति सम्बन्धित कृषक को वापस कर दीजावेगा। भुगतान का विस्तृत विवरण पास बुक पर भी अकित कर दिया जावेगा। विवरण मे यह दर्शाना अनिवार्य है कि कितनी धनराशि की पर्चियो का भुगतान हुआ तथा कितनी धनराशि की कटौती हुई एवं कितने धन का भुगतान किया गया। गन्ना मूल्य का भुगतान करते समय कृषक से कर्जा एव अन्य धनराशि की वसूल की गयी धनराशि के लिए विधिवत् रसीद जारी करेगा।

खजांची एक रोकड़ बहीं रखेगा जिसमे कि समिति से एव कर्जे वसूली द्वारा प्राप्त समस्त धनराशि का दिन प्रतिदिन अंकन किया जावेगा। रोकड़ बहीं में भुगतान की गयी धनराशि को भी दिन प्रतिदिन दर्ज करना आवश्यक है। इसी प्रकार गन्ना समिति के खजाची को भी भुगतान लिपिक द्वारा जमा की गयी धनराशि की प्राप्ति हेतु रसीद जारी करना चाहिए। गन्ना समिति के प्रधान खजाची द्वारा भुगतान लिपिक को दिन-प्रतिदिन भुगतान हेतु अग्रिम धनराशि का कार्य भी महत्वपूर्ण है। ऐसा देखा गया है कि भुगतान लिपिक प्रधान खजाची से गन्ना मूल्य के भुगतान के लिए अग्रिम धनराशि बिना किसी माँग पत्र के लेते हैं जो कि उचित नहीं है। बिना किसी माँग पत्र के कोई धनराशि भुगतान लिपिक को अग्रिम रूप मे भुगतान न की जावे। प्रधान खजाची को एक रजिस्टर रखना चाहिए। जिसमे प्रतिदिन प्रत्येक भुगतान लिपिक को दी गयी धनराशि कटौतियो एव कर्जा की वसूली की गयी धनराशि आदि तथा रिकपमेंट बाउचर द्वारा प्रतिपादित हो, अंकित किये जावे। प्रधान खजांची को प्रत्येक भुगतान लिपिक के लिए एक रजिस्टर रखना चाहिए। जिसमें उपरोक्तानुसार खाते खोले जावे। समिति का लेखाकार जबकि कैश बुक मे भुगतान इन्ट्री करेगा तो वह प्रत्येक भुगतान लिपिक

---

32 "गन्ना" मासिक मई १९९७ पृष्ठ सख्या ६ ।

का खाता देखकर हस्ताक्षर करेगा। गन्ना समिति के सचिव का भी यह उतर दायित्व है कि वह प्रत्येक भुगतान लिपिक का खाता चेक करके हस्ताक्षर करता रहे। भुगतान समाप्त होने के पश्चात् भुगतान लिपिक भुगतान की गयी पर्चियो का शीट के अनुसार बडल बनाकर उस पर निम्नलिखित विवरण पृथक से एक कागज पर पर्चियो के बडल पर बाँधेगा तथा टोकेन भी पर्चियो के साथ नत्थी करेगा तथा भुगतान शीट, पर्ची व शेष रोकड वही प्रधान कोषाध्यक्ष को देकर रसीद प्राप्त करेगा तथा निम्न सूचना प्रेषित करेगा।[33]

- ✓ नाम केन्द्र/गेट
- ✓ भुगतान लिपिक का नाम
- ✓ चेकिंग लिपिक का नाम
- ✓ तिथि भुगतान
- ✓ सख्या पर्चियाँ
- ✓ धन जिसका भुगतान किया गया।

(क) नकद (ख) कटौती द्वारा।

गन्ना समिति के कोषाध्यक्ष भुगतान लिपिक द्वारा दिये गये भुगतान के हिसाब से संतुष्ट होने के उपरान्त प्रतिदिन का हिसाब तैयार करेगा और उसके पश्चात् भुगतान की गयी पर्चियो का भुगतान शीट के अनुसार सम्भाल कर पर्चियो एव शीट तथा भुगतान लिपिको द्वारा की गयी रोकड़ बही की एक नकल एक रजिस्टर मे भुगतान लिपिकवार अंकित करके लेखाकार को देगे और उसके हस्ताक्षर प्राप्त करेगे तथा भुगतान की हुई पर्चियो की कम से कम १५ प्रतिशत जाँच करेंगे।

पर्चियों की चेकिंग :- [34] समिति के लेखाकार कोषाध्यक्ष से भुगतान की हुई पर्चियों का भुगतान शीट तथा रोकड़बही की नकल प्राप्त करने के उपरान्त एक रजिस्टर में अंकित करेंगे और भुगतान की गयी पर्चियो को अपनी कस्टडी में ताले मे बंद रखेंगे। वह असल भुगतान की हुई पर्चियों पर कैन्सिलड की मोहर भी लगवायेगे। अच्छा यह होगा कि असल पर्चियाँ ऊपर की ओर कैंची से इस प्रकार काट दी जाये कि वह पढी

---

33 "गन्ना" मासिक मई १९९७ पृष्ठ सख्या ७ ।

34 "गन्ना" मासिक मई १९९७ पृष्ठ संख्या ७ ।

भी जा सके। इससे सील आदि लगाकर दुबारा भुगतान लेने की सम्भावना नहीं रह जायेगी। भुगतान सीट के अनुसार मिल की चौथी पर्चियाँ निकलवा कर चेकिंग लिपिक को चेकिग के लिए दे देगे।

चेकिग लिपिक जो कि गन्ना समिति का एक स्थाई लिपिक होना चाहिए, लेखाकार से तिथिवार भुगतान, लिपिकवार भुगतान शीट तथा मिल की चौथी पर्चियों को प्राप्त करके, रेडी रेकनर की सहायता से भुगतान की गयी पर्चियो की चेकिग करेगे। चेकिंग के समय मिल पर्ची नम्बर, वजन, गन्ना मूल्य कटौती तथा भुगतान की गयी धनराशि आदि सभी बातों को देखा जाएगा। वह चेकिंग से ज्ञात अधिक या कम भुगतान का हिसाब कृषक, तिथि व मिल पर्ची नम्बरवार रखेंगे। चेकिग लिपिक का यह कर्तव्य होगा कि वह प्रति सप्ताह भुगतान लिपिको द्वारा किए गये अधिक भुगतान की धनराशि की भुगतान लिपिवार सूची तैयार करके समिति के लेखाकार को देगे। ताकि सम्बन्धित भुगतान लिपिक से अधिक भुगतान की गयी धनराशि की वसूली रूपयो से की जा सके। कोषाध्यक्ष का यह कर्तव्य होगा कि वह अधिक भुगतान की हुई धनराशि की वसूली करता रहे एव सचिव को सूचित करता रहे।

गन्ना समिति के लेखाकार कैश बुक मे गन्ना मूल्य के भुगतान की इन्ट्री तभी पास करेगा जबकि वह सम्बन्धित अभिलेख जैसे कि क्लासीफाइड, पेमेटशीट, भुगतान लिपिक की पेमेटशीट, डिस्क्रीबेन्शी रजिस्टर, रोकड़ बही, आदि की जाँच कर लेगा। जब तक कि हिसाब का मिलान न हो जाये लेखाकार गन्ना मूल्य की इन्ट्री कैश बुक मे नहीं करेगा। गन्ना मूल्य के भुगतान के पश्चात् तुरन्त पेमेटशीट (तौल शीट) पर प्रत्येक पर्ची की भुगतान तिथि का अंकन कराना चाहिए।

यदि गन्ना मूल्य का भुगतान सीजन बद होने के बाद भी चल रहा है तो अनपेड लिस्ट तैयार कराने के लिए भुगतान की अन्तिम तिथि भी ३० जून के भीतर निर्धारित करना आवश्यक है। वर्ष के बाद जिन पर्चियो का भुगतान नहीं हुआ है उनका भुगतान अनपेड लिस्ट से चेक कराकर समिति के मुख्यालय पर मुख्य कोषाध्यक्ष द्वारा होना चाहिए।

यदि किसी कृषक की पर्ची खो गई हो तो सम्बन्धित कृषक का प्रार्थना पत्र प्राप्त होने पर समिति के सचिव द्वारा केन लेजर पर उस पर्ची का भुगतान रोकने के लिए स्पष्ट आदेश होने चाहिए। खोई हुई

पर्ची का भुगतान तभी किया जावेगा जब वह बन जायेगी।[35]

इस प्रकार देखा जायेगा कि गन्ना मूल्य का भुगतान एव उसके हिसाब का रख-रखाव करना इतना महत्वपूर्ण कार्य है कि गन्ना समिति मे नियुक्ति सभी पदाधिकारियों को जागरूक रहने की आवश्यकता है। जरा सी लापरवाही से गन्ना समिति को लाखो रूपये का घाटा हो सकता है इस तारतम्य मे समिति के लेखाकार का विशेष रूप से उतरदायित्व है कि वह उपरोक्तानुसार अपने कर्तव्यो को सत्यनिष्ठा एव लगन से निर्वाह करे ताकि न केवल कृषको की गन्ना मूल्य के भुगतान में सुविधा हो बल्कि हिसाब भी सही सही बनता रहे।

सहकारी गन्ना विकास समिति की ऋण वसूली योजना :- चीनी मिलो के गन्ने की पूर्ति की समुचित व्यवस्था करने के साथ-साथ प्रदेश की गन्ना समितियों का एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी है कि प्रतिवर्ष गन्ना किसानो को विभिन्न कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु १०-१५ करोड रूपये के उत्पादक ऋण वितरित करती है। परन्तु वाछनीय ऋण वसूली के अभाव मे आर्थिक कठिनाइयों के निवारण की दृष्टि से निबन्धक सहकारी गन्ना विकास समितियो उत्तर प्रदेश ने अपने अधिकारो का प्रयोग करते हुए वर्ष १९७१-७२ मे उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम १९६५ एव उसके अंतर्गत बनाये गये नियमो एवं प्रविधान के अनुसार ऋण वसूली हेतु एक योजना लागू की। इस योजना के अंतर्गत वसूली अधिकारियो व विक्रय अधिकारियो की नियुक्ति जनपदो मे की गयी। यह योजना समितियों हित मे बहुत लाभकारी सिद्ध हुई।[36]

प्रयोगात्मक रूप मे यह योजना सर्वप्रथम ९ जिलो में लागू की गई थी। इसकी सफलता को देखकर इस योजना का विस्तार किया गया और अब यह योजना ३३ जनपदो मे कार्य कर रही है।

इस योजना का सचालन मुख्य वसूली अधिकारी की देखरेख मे गन्ना आयुक्त एवं निबन्धक सहकारी समितियो के नियत्रण मे होता है। इस योजना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह एक पूर्ण

---

35 "गन्ना" मासिक मई १९९७ पृष्ठ संख्या ७ ।

36 वार्षिक रिपोर्ट वर्ष १९९२-९३ से १९९४-९५ पृष्ठ सख्या ७ ।

स्वावलम्बी योजना है, जिसके व्यय का भार न तो गन्ना संघ पर है और न तो गन्ना समितियों पर ही है। इसक समस्त व्यय दस प्रतिशत वसूली खर्चा की आय से वहन होता है।[37]

उत्तर प्रदेश में गन्ना उत्पादों का विपणन :- हमारे देश मे गन्ने का प्रयोग अनेक रूपो मे किया जाता है। गन्ने से गुड़, राव, भेली, चूर्ण, शक्कर, श्वेत चीनी, सीरा, खोइया, प्रेसमड आदि बनाये जाते है। भारतीय अर्थव्यवस्था मे कृषि आधारित उद्योगो में सूती वस्त्र उद्योग के बाद चीनी उद्योग में लगभग ७० हजार करोड़ रूपये की पूँजी विनियोजित है तथा इसमें ३ ६ लाख प्रत्यक्ष रूप से कार्यरत है। इस उद्योग मे भारत को लगभग ४५० करोड़ रूपये के वार्षिक राजस्व की प्राप्ति होने के साथ-साथ ३८ लाख से अधिक गन्ना उत्पादको को भी प्रत्यक्ष रूप से आय प्राप्त हो रही है। इसके साथ-साथ यह उपउत्पादो एव सह-उत्पादो से संबधित उद्योगो को विकसित करने की क्षमता भी रखता है।[38]

भारत मे प्राचीन काल से ही खाण्डसारी, भूरी शक्कर एव गुड़ का उत्पादन होता रहा है। गन्ने से शक्कर बनाने की विधि भारत की ही देन है। १५ वीं से १९ वीं शाताब्दी तक भारत परम्परागत विधियो से भूरी शक्कर का उत्पादन किया जाता था। सन् १९०३ से भारत मे चीनी के आधुनिक कारखानो का शुभारम्भ किया गया, किन्तु १९३० तक प्रगति अत्यंत धीमी रही और देश मे केवल ३२ चीनी कारखानों की स्थापना की जा सकी। १९३२ में सरकारी सरक्षण प्राप्त हो जाने के बाद चीनी उद्योग की अत्यधिक प्रगति हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि देश मे चीनी कारखानो की सख्या ३२ से बढकर वर्ष १९३८-३९ मे १३० हो गई तथा चीनी का उत्पादन १ ६ लाख टन से बढ़कर ६ ४ लाख टन हो गया। सन् १९३९ मे द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण चीनी की माँग मे वृद्धि हुई और चीनी कारखानो की स्थिति सुधरने लगी। युद्धकाल मे चीनी उद्योग ने सतोषजनक प्रगति की और सन् १९४५ मे देश मे चीनी का उत्पादन लगभग दस लाख टन से ऊपर पहुँच गया।[39]

---

[37] वार्षिक रिपोर्ट वर्ष १९९२-९३ से १९९४-९५ पृष्ठ सख्या ७ ।

[38] शर्मा ओ०पी०, भारतीय चीनी उद्योग, योजना, नवम्बर १९९९, पृष्ठ सख्या १८ ।

[39] वही पृष्ठ सख्या १८ ।

स्वतत्रता प्राप्ति के समय वर्ष १९४७ मे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के आग्रह पर केन्द्र सरकार ने चीनी के उत्पादन एव वितरण से नियंत्रण हटा लिया लेकिन इसका परिणाम यह हुआ कि चीनी के मूल्य मे तीव्र वृद्धि होने लगी। परिणामत वर्ष १९४८ मे चीनी पर पुन नियत्रण लागू करना पडा। तब से लेकर आज तक सरकार का चीनी उत्पादन एव वितरण पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष नियत्रण बना हुआ है और चीनी के मूल्यो मे अनावश्यक वृद्धि रोकने हेतु समुचित प्रयास किए जाते रहे है।

हालाकि उदारीकरण के दौर में केन्द्र सरकार द्वारा देश मे चीनी के बढते उपयोग के मद्देनजर खुली सामान्य लाइसेसिग प्रणाली के अतर्गत चीनी को शुल्क मुक्त आयात की अनुमति प्रदान कर दी गई थी किन्तु १४ जनवरी १९९९ से देश मे चीनी आयात पर मूल्यानुसार शुल्क बीस प्रतिशत कर दिया गया है। चीनी पर प्रति टन ८५० रूपये के प्रतिकारी शुल्क को मिलाकर देखे तो वर्तमान मे आयात पर कुल शुल्क २७ प्रतिशत हो गया है। [40]

योजना बद्ध विकास के विगत् लगभग पाँच दशको मे केन्द्र सरकार की नियत्रण, विनियत्रण और पुन नियंत्रण की नीति के कारण चीनी उत्पादन मे अस्थिरता के बावजूद भारतीय चीनी उद्योग की प्रगति अत्यत उत्साहवर्द्धक रही है। इस अवधि में न केवल चीनी उत्पादन मे वृद्धि हई बल्कि चीनी कारखानो की सख्या भी उतरोतर बढ़ी है। नियोजित विकास में चीनी उद्योग का विकास निम्न तालिका से स्पष्ट है -

नियोजित काल में चीनी उद्योग का विकास

योजना	उत्पादन लक्ष्य (लाख टन में)	वास्तविक उत्पादन (लाख टन में)	कारखानों की संख्या
प्रथम योजना (प्रथम वर्ष)	18	19.34	138
द्वितीय योजना (अंतिम वर्ष)	25	30.29	175
तृतीय योजना (अंतिम वर्ष)	35	35.32	200
चतुर्थ योजना (अतिम वर्ष)	47	39.50	229

---

40 शर्मा ओ०पी०, भारतीय चीनी उद्योग, योजना, नवम्बर १९९९, पृष्ठ संख्या १८ ।

पाचवी योजना (अतिम वर्ष)	54	58 42	298
छठी योजना (अतिम वर्ष)	76	61.78	356
सातवीं योजना (अतिम वर्ष)	102	109 90	414
आठवी योजना (अतिम वर्ष)	143	122.92	422
नवीं योजना (प्रथम वर्ष)	148	128 24	450
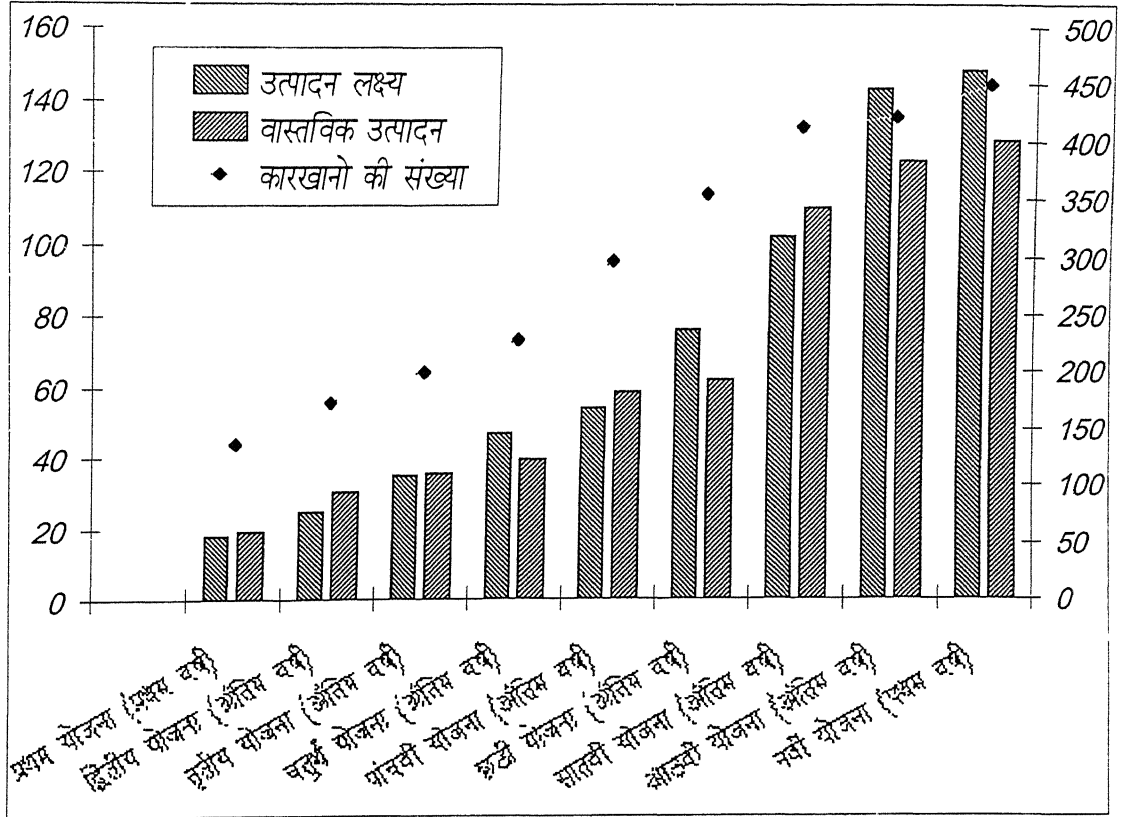
स्रोत : योजना नवम्बर 1999

दिसम्बर १९९८ मे देश मे ५५ लाख टन चीनी का स्टाक उपलब्ध था। वर्ष १९९९ मे १५५ लाख टन चीनी उत्पादन की सभावना है। इस प्रकार वर्ष १९९९ मे देश मे उपलब्ध चीनी का भण्डार २१० लाख टन होगा जबकि इस वर्ष चीनी की खपत १५० लाख टन होने की आशा है।[41]

---

[41] शर्मा ओ०पी०, भारतीय चीनी उद्योग, योजना, नवम्बर १९९९, पृष्ठ सख्या १८ ।

अतर्राष्ट्रीय बाजार मे उतर प्रदेश चीनी उत्पादन मे कई वर्षों से अग्रणी बना हुआ है। वर्ष १९९७-९८ मे उत्तरप्रदेश मे ३७ लाख टन तथा महाराष्ट्र मे ३३ लाख टन चीनी का उत्पादन हुआ था।

पहले देश मे चीनी कारखानों की स्थापना के लिए लाइसेस प्राप्त करना अनिवार्य था किन्तु २० अगस्त १९९८ को केन्द्र सरकार ने चीनी उद्योग पर १९३१ से लागू लाइसेंस व्यवस्था समाप्त कर दी। वर्तमान मे दो चीनो कारखानो के मध्य १५ किलोमीटर के फासले की शर्त को जारी रखा गया है। नए चीनी कारखानो पर क्षमता से सबधित भी कोई शर्त लागू नहीं की गई है। साथ ही नई चीनी इकाइयो के लिए उत्पादन का चालीस प्रतिशत भाग सरकार को लेवी चीनी के रूप मे बेंचने की बाध्यता भी समाप्त कर दी गई है। किन्तु पूर्व मे स्थापित कारखानों के लिए यह बाध्यता बनी रहेगी। सरकार ने यह भी निश्चित किया है कि २,५०० टन दैनिक पिराई क्षमता से कम की इकाइयों को लाइसेस नहीं दिए जाएँगे। सरकार ने चीनी के निर्यात को मुक्त करने का निर्णय लिया है। इसके परिणामस्वरूप अब चीनी कारखाने अब सीधे ही चीनी का निर्यात कर सकेगे। अभी तक चीनी का निर्यात केवल भारतीय चीनी एव सामान्य उद्योग आयात-निर्यात निगम के माध्यम से ही होता आया है। [42]

१८ मई १९९९ को मूल्यो पर मंत्रिमण्डलीय समिति द्वारा मूल्यविहीन उत्पाद (क्यूब्स व उपभोक्ता पैक आदि) के रूप मे २५ हजार टन तक चीनी निर्यात की अनुमति प्रदान की गई है। यह सीमा यूरोपीय सघ एवं अमेरिका के लिए पहले से ही आवंटित ३० हजार टन के कोटे के अतिरिक्त है। [43]

जून १९९९ मे देश के कपड़ा मत्रालय द्वारा जूट पैकेजिग आदेश का दायरा बढ़ाते हुए सभी चीनी उत्पादों की विशिष्ट किस्म के जूट बोरों मे पैकिंग अनिवार्य बना दी गई है। इस निर्णय का चीनी उद्योग ने कड़ा विरोध किया है तथा चीनी मिल मलिकों का कहना है कि कपड़ा मंत्रालय के इस कदम से चीनी उद्योग पर सलाना तीन सौ करोड़ रूपए का अतिरिक्त भार बढ़ जाएगा। इस मामले में खाद्य मत्रालय भी चीनी उद्योग के साथ है और इसने जूट पैकेजिग सामग्री अधिनियम १९८७ के तहत चीनी उद्योग को छूट देने के सिफारिश की है। भारतीय चीनी मिल सघ ने जूट पैकेजिग आदेश मे छूट के आलावा चीनी पैकेजिग एव मार्किंग आदेश

---

42 शर्मा ओ०पी०, भारतीय चीनी उद्योग, योजना, नवम्बर १९९९, पृष्ठ सख्या १८ ।

43 वही पृष्ठ सख्या १८ ।

को हटाने की माँग भी की है। इस आदेश के तहत चीनी मिलों को चीनी सौ किलो के विशिष्ट आकार और मार्किंग आदेश को हटाने की माँग भी की है। इस आदेश के तहत चीनी मिलो को चीनी सौ किलो के विशिष्ट आकार और मार्किंग के जूट के बोरों में ही पैकिग करना जरूरी किया गया है। घरेलू चीनी उद्योग की कुछ और भी पीडाये है उसे अपने कुल चीनी उत्पादन का ४० प्रतिशत सरकार को कम भाव पर लेवी के लिए देना पडता है तथा सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य पर गन्ना खरीदना पड़ता है। जो लगातार बढ़ता ही जा रहा है और इसे सस्ते आयात से प्रतिस्पर्धा भी करनी पड़ रही है। आयातित चीनी पर न तो लेवी का नियम लागू होता है और न ही उस पर स्टाक संबधी कोई प्रतिबंध आदि है। यही वजह है कि चीनी उद्योग चीनी का आयात शुल्क ४० प्रतिशत तक करने की माँग कर रहा है। [44]

भारत मे चीनी का उत्पादन लागत अतर्राष्ट्रीय बाजार मे प्रचलित २४० डालर प्रतिटन की कीमत से काफी ऊँची है। सरकारी सरक्षण के बावजूद अन्य भारतीय उद्योगो की भॉति चीनी उद्योग ने भी कभी तकनीकी और प्रबंधकीय सुधारों की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। उदारीकरण के इस दौर में अब वह आयात पर प्रतिबध के जरिए अपना भार उपभोक्ताओ पर लागू करना चाहता है। [45]

उपर्युक्त समस्याओं के अलावा भारतीय चीनी उद्योग उन्नत किस्म के गन्ने की कमी, परिवहन ससाधनों की अपर्याप्तता, चीनी का बढ़ता आतरिक उपभोग, प्रति हेक्टेयर गन्ने की कम उत्पादकता, उत्पादो की समस्या, आधुनिकीकरण, अस्थाई मूल नीति का अभाव, ईंधन की कमी, शोध एवं अनुसंधान कार्यों का अभाव, कारखानों का अवैज्ञानिक वितरण, निर्यात-संवर्धन हेतु प्रभावी व्यूह-रचना का अभाव आदि अनेक प्रकार की सरचानात्मक एवं आधारभूत समस्याओं के कारण वांछित विकास नहीं कर पा रहा है। [46]

भारतीय चीनी उद्योग को अंतर्राष्ट्रीय चीनी बाजार के प्रभावो के अनुरूप ढालने तथा प्रतिस्पर्द्धात्मक क्षमता विकसित करने हेतु जहाँ एक ओर प्रौद्यौगिकी सुधार तथा प्रबधकीय कुशलता की ओर पर्याप्त ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए, वहीं चीनी की उत्पादन लागत कम करने के लिए उत्पादन प्रक्रिया में

---

44 शर्मा ओ०पी०, भारतीय चीनी उद्योग, योजना, नवम्बर १९९९, पृष्ठ सख्या १८ ।

45 वही पृष्ठ संख्या १८ ।

46 वही पृष्ठ सख्या १८ ।

होने वाले अपव्ययो को समाप्त करते हुए सहउत्पादो का भी समुचित प्रबंध किया जाना चाहिए। भारत मे गन्ने की प्रति हेक्टेयर उपज बढ़ाने के लिए किसानों को उत्तम बीज उपलब्ध कराने के साथ-साथ उन्हे कृषि के उन्नत तरीको एव रासायनिक तथा कीटनाशक खादो के प्रयोग के लिए भी प्रेरित किया जाना चाहिए। देश में चीनी उद्योग के महत्व को ध्यान मे रखते हुए चीनी कारखानो के आधुनिकीकरण तथा शोध एव अनुसंधान कार्यो पर भी पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिए। गन्ना शोध सस्थान, कोयम्बटूर में विकसित गन्ने की किस्म दक्षिण भारत के लिए तो उपयोगी है, किन्तु यह तथ्य स्थिति-विशिष्ट शोध की आवश्यकता पर बल देता है अर्थात् उत्तर भारत के लिए भी ऐसे शोध कार्य करके उन्नत किस्म विकसित की जानी चाहिए। विकसित राष्ट्रो की भाँति कृत्रिम चीनी (एच० एफ० एस० अर्थात् अधिक फल व शर्करायुक्त शर्बत) बनाने की कारखानो की स्थापना की जानी चाहिए। देश मे चीनी के मूल्य मे होने वाले उतार-चढ़ाव को नियंत्रित करने हेतु पर्याप्त स्टाक का निर्माण आवश्यक है। साथ ही देश मे चीनी के बढ़ते आंतरिक उपभोग को नियंत्रित करने तथा उद्योग के त्वरित विकास हेतु एक व्यावहारिक, दीर्घकालीन तथा स्पष्ट मूल्य एवं वितरण नीति का होना भी बहुत जरूरी है।[47]

गन्ना उत्पादको के प्रमुख वर्गीकरण को निम्न तालिका की सहायता से दिखाया गया है -

गन्ना उत्पादों का वर्गीकरण[48]

---
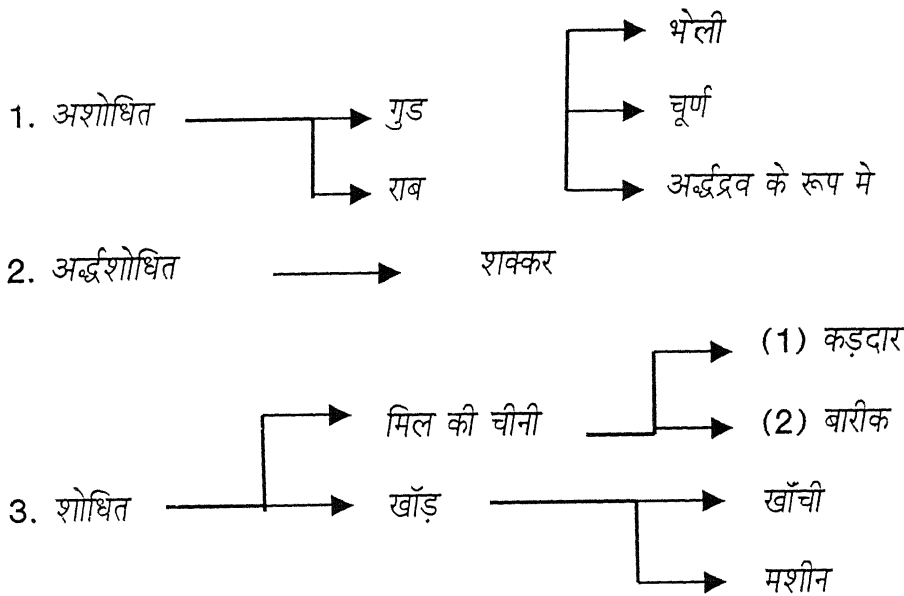
47 शर्मा ओ०पी०, भारतीय चीनी उद्योग, योजना, नवम्बर १९९९, पृष्ठ संख्या १८ ।

48 रिपोर्ट आन द मार्केटिंग ऑफ सुगर १९८३, पृष्ठ संख्या १९८

इसके अतिरिक्त गन्ने के अन्य औद्योगिक उपयोग भी है जैसे गन्ने के पौधो को छॉटने से व्यर्थ पदार्थ से पेपर बोर्ड, कम्पोस्ट खाद, चारा आदि बनता है। इसी प्रकार खोइया से चारा, गता एवं कागज, उत्प्रेरित कार्बन, सिलुकोज, फिल्टर ईधन, खाद आदि बनाये जाते है। इसी प्रकार शीरा का प्रयोग तम्बाकू, खाड, चारा, पोटाश, फिटकरी आदि मे किया जाता है।

गन्ने के विभिन्न प्रमुख उपयोग :- हमारे देश में गन्ना का मुख्यत गुड, खॉड, चीनी के उत्पादन मे प्रयोग किया जाता है। उत्तर प्रदेश के कुल गन्ना क्षेत्रफल का सबसे बड़ा भाग गुड़ के उत्पादन में प्रयुक्त है जो वर्ष १९९०-९४ के मध्य लगभग ४२.३३ प्रतिशत रहा है। इसके उपरान्त गन्ने का उपयोग चीनी उत्पादन मे होता है जो लगभग २६.०५ प्रतिशत तक रहा। खाण्डसारी उत्पादन मे गन्ने का प्रयोग १२ से १४ प्रतिशत के मध्य में रहा है।

गुड का विपणन

परिचय :- गन्ने के रस मे जो भी पोषक सामग्री होती है वह सब सघन रूप में गुड़ मे विद्यमान रहती हैं, जबकि श्वेत शर्करा, में गन्ने के रस के अत्यन्त पोषक पदार्थ जैसे कि ग्लुकोज, फ्रक्टोज एव खनिज पदार्थ आदि पृथ्क कर दिये जाते है। गुड़ मे खाद्य पदार्थ अपने नैसर्गिक रूप मे रहने के कारण स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद होता है किन्तु शर्करा उत्पादन प्रक्रिया में प्राकृतिक खाद्य पदार्थ का नैसर्गिक रूप इस सीमा तक नष्ट हो जाता है कि स्वास्थ्य के लिए अपेक्षाकृत उसकी पोषकता मे अत्यत ह्रास हो जाता है। गुड़ में आयोडीन, लोहा, कैल्शियम, मैग्नीशियम, सल्फर, सोडियम, पोटेशियम, आदि तत्व पाए जाते हैं। इस प्रकार गुड़ में जितने पोषक तत्व हैं उनका ज्ञान यदि सर्वसाधारण को हो जाय तो उसे छोडकर सफेद शर्करा की ओर उनका सुझाव नहीं होगा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि गुड मे सुक्रोज के अलावा ग्लुकोज तथा कैल्शियम व फास्फेट खनिज तथा प्रोटीन व वसा की भी कुछ मात्रा विद्यमान है। अत गुड श्वेत शर्करा की अपेक्षा अधिक पोषक एव निरापद भोज्य पदार्थ है।

गुड़ का एकत्रीकरण एवं वितरण :- अन्य कृषि पदार्थों की भाँति गुड के एकत्रीकरण मे निम्न प्रमुख सस्थाएँ संलग्न है :-

- ❖ उत्पादक
- ❖ गाँव का बनिया
- ❖ फुटकर व्यापारी
- ❖ थोक व्यापारी
- ❖ घुमता फिरता व्यापारी
- ❖ सहकारी समितियाँ ।

अत विभिन्न सस्थाओ को किसानों द्वारा की गयी बिक्री का स्पष्ट विवरण प्रस्तुत किया गया है। ० से ५ एकड़ तक की जोत के छोटे किसान अपनी उपज का २३ २५ प्रतिशत मण्डी को ३५ ६५ प्रतिशत गाँव के व्यापारी को, १४ ८९ प्रतिशत घुमता फिरता व्यापारी को, २४ ९६ प्रतिशत थोक व्यापारी को, ०१ प्रतिशत सहकारी समिति को बेचते हैं। ०५ से १० एकड़ तक की जोत के किसान अपनी उपज का २५.७५ प्रतिशत मण्डी को, ३७१० प्रतिशत गाँव के व्यापारी को, १०.७१ प्रतिशत घुमता-फिरता व्यापारी को, २५ २१ प्रतिशत थोक व्यापारी को और १ २३ प्रतिशत सहकारी समिति को बेचते है। १० एकड़ एव इससे अधिक जोत के किसान अपनी कुल उपज का ३०.०९ प्रतिशत उत्पादक को, ३३.३९ प्रतिशत गाँव के व्यापारी को, ९ ५३ प्रतिशत घुमता फिरता व्यापारी को, २६ ५१ प्रतिशत थोक व्यापारी को एव १ १३ प्रतिशत सहकारी समिति को बेचते है।

विपणन माध्यम :- सामान्यत किसान स्तर से अन्तिम उपभोक्ता स्तर तक गुड़ का स्वामित्व अनेक जगहो पर हस्तान्तरित होता है। अध्ययनार्थ चुने गये क्षेत्र मे जिन-जिन प्रमुख विक्रय मार्गो से होकर गुड अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँचते है उनका विवरण निम्न प्रकार है -

- ✓ किसान ⟶ गाँव का बनिया ⟶ थोक व्यापारी ⟶ फुटकर ⟶ उपभोक्ता व्यापारी ।
- ✓ किसान ⟶ थोक व्यापारी ⟶ फुटकर व्यापारी ⟶ अतिम उपभोक्ता ।

✓ किसान → घुमता-फिरता व्यापारी → फुटकर व्यापारी → उपभोक्ता व्यापारी ।

✓ किसान → घुमता फिरता व्यापारी → थोक व्यापारी → फुटकर व्यापारी → उपभोक्ता व्यापारी

✓ किसान → बनिया → उपभोक्ता ।

✓ किसान → सहकारी विपणन समितियाँ → उपभोक्ता ।

इस प्रकार किसान के घर बनिये या घुमन्तु व्यापारी आते हैं, मोलभाव तय करके उसके उपज को खरीद लेते हैं। कभी-कभी किसान स्वत· अपनी उपज को सीधे मण्डी में ले जाकर बेच आता है।

अत इससे विदित हो रहा है कि किसान द्वारा सीधे मण्डी को की गई बिक्री का औसत कुल उपज की ३०.०९ प्रतिशत है, गाँव के व्यापारी को की गई बिक्री कुल उपज की ३३ ३९ प्रतिशत, घुमता-फिरता, व्यापारी को ०९.५३ प्रतिशत, थोक व्यापारी को २६ ५१ प्रतिशत और सहकारी समिति को ०१ १३ प्रतिशत है। स्पष्ट है किसान अपनी उपज का सर्वाधिक भाग क्रमश· गाँव के व्यापारी, मण्डी एव थोक व्यापारी को बेचते है। सहकारी समितियो को की गयी बिक्री अतिन्यून है।

वर्गीकरण :- गुड़ के वर्गीकरण एवं प्रमापीकरण के लिए केन्द्रीय विपणन कर्मचारियों द्वारा कुछ प्रमाप निर्धारित किये गये जिनको कृषि उत्पादन अधिनियम १९३७ के अतर्गत मान्यता प्राप्त हो चुकी है। किन्तु आज भी मण्डियो मे अधिकाशत गुड की बिक्री व्यापारियो द्वारा किये जाने वाले निरीक्षणो के आधार पर होती है। चीनी कि किस्म का निर्धारण अधिकतर इसके रग एव दाने के आकार के आधार पर किया जाता है। शक्कर के प्रचलित ग्रेड इस प्रकार है -

➢ ए ३०, बी ३०, सी ३०, डी ३०, एफ ३०, ए-ए ३०, ए २९, बी २९, सी २९, डी २९, एफ २९ ।

➢ ए-ए ३० का दाना अधिक मोटा होता है और इसका रंग भी अधिक सफेद होता है ।

➢ ए-३० का दाना सफेद होता है और मोटा होता है परन्तु ए-ए ३० से कुछ कम मोटा होता है ।

➢ बाजार मे बहुधा सी एव डी ग्रेड की शक्कर अधिक बिकती है ।

विपणन खर्चे एवं कीमत प्रसार :- प्राथमिक मण्डी से लेकर थोक मंडी तक और उसके बाद अब तक कृषि पदार्थ अन्तिम उपभोक्ता के हाथ नहीं पहुँच पाते अनेक विपणन सम्बन्धी खर्चे इनकी कीमतो में शामिल होते रहते हैं। परिणाम यह होता है कि किसान द्वारा प्राप्त की गई कीमत तथा अतिम उपभोक्ता द्वारा दी गई कीमत मे एक बड़ा अन्तराल उपस्थित हो जाता है। किसान द्वारा प्राप्त की गई कीमत तथा अतिम उपभोक्ता द्वारा दी गई कीमत का अन्तराल सब स्थितियो मे एक समान नहीं होता और न ही सभी फसलो के सदर्भ मे एक समान होता है। उपभोक्ता मूल्य मे उत्पादक का प्रतिशत भाग सरसो तेल मे ६४ ७३ प्रतिशत गुड मे ८५ ९६ प्रतिशत है।[49] इस प्रकार उपभोक्ता मूल्य और उत्पादक की कीमत मे १ ५ से ३५ तक का अन्तराल पाया जाता है। गुड़ के विपणन मे उत्पादनकर्ता द्वारा प्राप्त की गयी कीमत और अन्तिम उपभोक्ता द्वारा दी गयी कीमत के अन्तराल का अध्ययन चुनी गयी मण्डियो मे किया गया।

अत उत्पादक वर्ग द्वारा गुड़ के विपणन मे किये गए खर्चे का विवरण दिया गया है। अलग-अलग मण्डियो मे किये जाने वाले खर्चो में भिन्नता पायी जाती है। अत चुनी गयी मण्डियो मे लिये गए खर्चो का औसत दिखाया गया है। स्पष्ट है कि यातायात व्यय दस रूपये प्रति क्विटल, चुँगी ४ ५० पैसे प्रति, नमूना ५१ किलो प्रति गाड़ी है। इस प्रकार एक टन की उपज पर कुल ३१.०० रूपये का विपणन खर्च उत्पादक द्वारा किया गया जो उपभोक्ता मूल्य का ० ८२ प्रतिशत है।

अत· चुनी गयी मण्डियो मे गुड़ के थोक व्यापारी द्वारा वहन किये जाने वाले व्यय को दिया है जो इस प्रकार है। यातायात व्यय दस रूपये प्रति क्विटल, दलाली तीन रूपये प्रति सैकडा, आढत १.५ प्रतिशत, पल्लेदारी तीन रूपये बोरा, प्रतिस्थापन खर्च बारह रूपये प्रति क्विटल, चुँगी ४ ५० पैसे प्रति क्विटल, नमूना १ कि०ग्रा० प्रति गाड़ी है। इस प्रकार प्रति टन की उपज पर कुल ३१ ०० रू० का विपणन खर्च उत्पादक द्वारा किया गया जो उपभोक्ता मूल्य का ०.८२ प्रतिशत है।

अत· चुनी गयी मण्डियो में गुड़ के थोक व्यापारी द्वारा वहन किये जाने वाले व्यय को दिया है जो इस प्रकार है। यातायात व्यय १० रू० प्रति क्विटल मण्डी शुल्क एक प्रतिशत तौलाई ३ ० रूपये

---

49 सौजन्य से उ०प्र० चीनी निगम, लखनऊ ।

बोरा, एसोशिएसन १ ३० पैसा क्विटल अन्य खर्च दस रूपये प्रति क्विंटल है। इस प्रकार प्रति टन पर १३४. ५० रूपये थोक विक्रेता द्वारा विपणन खर्च किया जा रहा है जो उपभोक्ता मूल्य का ३.५९ प्रतिशत है।

अत फुटकर विक्रेता के विपणन परिव्यय को दिया गया है जो इस प्रकार है, दलाली तीन रूपये सैकडा, तौलाई तीन रूपये बोरा, पल्लेदारी तीन रूपयें बोरा, प्रतिस्थापन खर्च दस रूपयें प्रति क्विटल, इस प्रकार प्रति १७६ ९५ टन फुटकर विक्रेता द्वारा विपणन व्यय किया गया जो उपभोक्ता मूल्य का ४ ७२ प्रतिशत है।

अत उत्पादक से लेकर अन्तिम उपभोक्ता तक के सम्पूर्ण विपणन खर्चों एव उपभोक्ता मूल्य मे उसके हिस्से को दिखाया गया है। स्पष्ट है कि उत्पादक द्वारा विभिन्न रूपो मे दिया गया विपणन व्यय ३१ रूपये प्रति टन है। जो उपभोक्ता मूल्य का ०.८२ प्रतिशत हैं उत्पादक का उपभोक्ता मूल्य में मात्र ८६ ७९ प्रतिशत भाग है शेष १३ २१ प्रतिशत विपणन खर्च एव मध्यस्थो के हिस्से है। उपभोक्ता मूल्य मे विभिन्न खर्चों का प्रतिशत भाग इस प्रकार है, परिवहन खर्च ०.८२ प्रतिशत, मण्डी खर्च ३.४३ प्रतिशत, बिक्रीकर ३ ५६ प्रतिशत, प्रतिस्थापना खर्च ०.५८ प्रतिशत, अन्य खर्च ०.७२ प्रतिशत है। इसमें विभिन्न वर्गो द्वारा वहन किया गया खर्च उपभोक्ता मूल्य का, उत्पादक द्वारा ० ८२ प्रतिशत, थोक विक्रेता का ३ ५९ प्रतिशत, और फुटकर विक्रेता का ४ ७२ प्रतिशत हैं। वितरण माध्यम मे संलग्न थोक विक्रेता की शुद्ध आय उपभोक्ता मूल्य की ३ ५९ प्रतिशत है और फुटकर विक्रेता की ३ १२ प्रतिशत है।

खाण्डसारी व गुड़ की नई नीति :- खांडसारी व गुड़ उद्योग भी हमारे देश का बहुत बड़ा उद्योग है और लाखों लोग इससे आजीविका पाते है। गन्ने के कुल उत्पादन का औसतन २५ ३० प्रतिशत भाग ही चीनी मिलो मे जाता है।[50] बाकी की गुड व खाडसारी बनाने, बीज व चूसने मे खपत होती है। हमे चीनी मिलो, खाडसारी व गुड इकाइयो तथा किसान के गन्ने की खपत में पूरी तरह सामंजस्य रखना चाहिए, इसे ध्यान मे रखते हुए सरकार गुड़ और खाण्डसारी उद्योग प्रोत्साहित करने का पूरा प्रयास कर रही है। वर्तमान सरकार ने खाण्डसारी नीति को किसान परक बनाया हैं सुप्त ईकाईयो को भी यदि वे गन्ना पेरना चाहें तो

---

50 "गन्ना" सितम्बर १९९३ पृष्ठ सख्या ५ ।

८२-८३ के सीजन मे लाइसेस देने की सुविधा दी गई है ताकि किसानों के गन्ने की अधिक खपत हो सके। निजी गन्ना पेरने के लिए किसानो को यह सुविधा दी गयी कि खड़े कोल्हुओं पर कोई लाइसेंस और फीस नहीं रखी गई। वर्तमान सीजन मे प्रदेश मे ४८५ पावर क्रशर के नये लाइसेस सृजित किये गये।[51] लाइसेन्स कृत इकाइयो के आकार प्रकार, नाम तथा स्थान परिवर्तन की नीति उदार रखी गई। खांडसारी इकाइयो पर लेवी भी समाप्त कर दी गई।

चीनी उत्पादन में विभिन्न व्यय :- चीनी मिलो के उत्पादन लागत में विभिन्नता पायी जाती है। मिल की प्रगति इस आधार पर आँकी जाती है कि उसकी निर्धारित पेराई क्षमता कितनी है? क्योंकि गन्ने की पेराई और चीनी का उत्पादन बड़ी सीमा तक इस बात पर निर्भर करता है कि चीनी मिल की निर्धारित पेराई क्षमता क्या है। चीनी मिलों की निर्धारित पेराई क्षमता को देखते हुए गन्ना पूर्ति मे अवरोध के कारण प्रति यूनिट चीनी उत्पादन पर, उत्पादन की सम्पूर्ण व्यवस्था पर तथा मिलो को होने वाले लाभाश पर कुप्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

ऐसा देखा गया है कि बड़ी श्रेणी की चीनी मिलो की प्रति ६०० टन निर्धारित पेराई क्षमता पर उत्पादित चीनी से यद्यपि काफी आय हुई तथापि इस श्रेणी की मिलो के आकार में ज्यों-ज्यो वृद्धि की गई त्यो-त्यो निर्धारित क्षमता के आधार पर इनकी वास्वतिक आय मे गिरावट आती गयी।[52]

अत· इससे स्पष्ट हो रहा है कि चीनी के उत्पादन मे सामान्यत गन्ना मूल्य ६१ ०३ प्रतिशत है, गन्ना क्रय कर ३ ६५ प्रतिशत, गन्ना कटाई यातायात एंव अन्य व्यय ६ ९७ प्रतिशत, चीनी उत्पादन मे किया गया व्यय ६ ८१ प्रतिशत अवमूल्यन १ ६९ प्रतिशत, अन्य हनियॉ ० १४ प्रतिशत हैं इस प्रकार चीनी का उत्पादन मूल्य मे कृषक यानि उत्पादक का हिस्सा ६१.०३ प्रतिशत मात्र है। शेष उत्पादन लागत एव विक्रय सम्बन्धी व्यय है।[53]

---

51 "गन्ना" सितम्बर १९९३ पृष्ठ संख्या ५ ।

52 "गन्ना" मासिक मई १९९७ पृष्ठ सख्या ३६ ।

53 "गन्ना" मासिक मई १९९७ पृष्ठ सख्या ३६ ।

सरकार और चीनी विपणन :- शक्कर के विपणन के क्षेत्र मे सन् १९५० के बाद से बराबर सरकारी हस्तक्षेप रहा है सन् १९५०-५१ में 'आंशिक स्वतत्र विपणन' की नीति बर्ती गई। जिसका प्रभाव अधिक स्वास्थ्यवर्धक रहा। १९५२-५३ मे शक्कर से बिल्कुल नियंत्रण हटा लिया गया। गुड़ और खाडसारी का भो विपणन पूर्ण रूप से मुक्त हो गया। यद्यपि गन्ने की निम्नतम कीमत सरकार द्वारा फिर भी निर्धारित की गई।[54] किसानो के हित की रक्षा को ध्यान मे रखते हुए वर्ष १९५३-५४ मे यू पी शुगर केन (रेगूलेशन ऑफ सप्लाई एण्ड परचेज) एक्ट बनाया गया।[55] १९२३ के बाद शक्कर का विपणन माँग और पूर्ति की शक्तियो पर आधारित रहा और इस ओर विशेष चिन्ता न रही, पर सन् १९५८ के बाद शक्कर की पूर्ति कम हो जाने के कारण बाजारू परिस्थितियाँ फिर बिगड़ने लगी और १९५९ मे शक्कर की कीमते इतनी अधिक बढ़ गई कि सरकार को पुन हस्तक्षेप करना आवश्यक हो गया। सरकार ने शक्कर का वितरण पूर्ण रूप से अपने हाथो में ले लिया और उपभोक्ताओ को सीधे सरकारी सस्ती दूकानों के द्वारा शक्कर की बिक्री की जाने लगी। धीरे-धीरे परिस्थितयो के सँभालने के साथ-साथ खुले बाजारो मे भी शक्कर की बिक्री की जाने लगी। १९६१ में शक्कर का उत्पादन उपभोग से कहीं अधिक था जिससे सितम्बर १९६१ मे सभी नियत्रण उठा लिये गये।[56]

१९६३ मे जुलाई से फिर शक्कर की कमी हो जाने के कारण मूल्यों को बढ़ते हुए देखकर सरकार ने शक्कर का बाजार अपने हाथो मे ले लिया। सरकारी दुकानो द्वारा या सहकारी उपभोक्ता स्टोर्स द्वारा राशन कार्ड पर शक्कर एक निश्चित भाव पर दी जाने लगी। इस प्रकार बाजार पुन· सरकारी नियत्रण मे आ गया। इस नियत्रण के अंतर्गत सरकार ने विभिन्न मिलों से खरीदी जाने वाली चीनी के दाम निश्चित कर दिये यद्यपि इस क्षेत्रीय मूल्यो के निर्धारण से उत्पादको को काफी असतोष रहा। यह मूल्य ११६ रूपये कुन्तल से १२० रूपये कुन्तल के बीच मे था। सरकारी खरीददारी व विक्रय नियत्रण के द्वारा चीनी विपणन वैद्यानिक बन्दिशो के बीच जकड़ कर रह गया। इस नियत्रण से उत्पादक व उपभोक्ता दोनों ही परेशान थे।[57]

---

54 गन्ना एव चीनी आयुक्त कार्यालय, २ माल एवन्यू, उ०प्र०, लखनऊ ।

55 "गन्ना" मासिक अगस्त-सितम्बर १९९१ पृष्ठ सख्या ६९

56 गन्ना एव चीनी आयुक्त कार्यालय, २ माल एवेन्यू, उ०प्र०, लखनऊ

57 गन्ना एव चीनी आयुक्त कार्यालय, २ माल एवेन्यू, उ०प्र०, लखनऊ

सेन कमीशन ने सन् १९६५ में यह सुझाव दिया कि चीनी बाजार को नियत्रणो से मुक्त कर दिया जाए और सरकार बफर स्टाक बनाये जिससे क्रय और विक्रय द्वारा मूल्य स्थिर रखे जा सके। भाग्यवश १९६४-६५ और १९६५-६६ मे उत्पादन अच्छा हुआ जिससे मूल्यो मे गिरावट आई पर १९६६ के सूखे के कारण परिस्थिति फिर खराब हो गई और चीनी की कमी होने लगी। सरकार ने चीनी के कोटे कम कर दिये जिससे चीनी काले बाजार मे ऊँचे दामो पर बिकने लगी। सरकार ने चीनी का उत्पादन और अधिक न गिरने देने के लिए चीनी मिलो को अपने उत्पादन का ४० प्रतिशत खुले बाजार मे बेचने की छूट दे दी जिससे चीनी मिलो ने गन्ना उत्पादको से गन्ने की माँग अधिक की और गन्ना उत्पादक इससे प्रोत्साहित होकर पुन गन्ने की खेती की ओर झुके। इस प्रकार एक निश्चित मात्रा मे सरकार जनता को शक्कर एक निश्चित मूल्य पर सरकारी गल्लो की दूकानो द्वारा देती है और साथ मे बाजारो मे भी चीनी बचे हुए साठ प्रतिशत मे मिलो के स्टाक से बिकने के लिए आती है। कुछ लोगो का कहना था कि अगर सरकार ने ऐसा न किया होता तो शक्कर का उत्पादन बहुत गिर जाता। कुछ लोगो का कहना था कि यदि सरकार चीनी बाजार का अनियत्रित कर दे तो शक्कर का उत्पादन अपने आप बढ़ेगा और बाजार स्थिर हो जायेगा।[58]

उत्तर प्रदेश में चीनी उत्पादन का नया कीर्तिमान[59]

चीनी उत्पादन का नया कीर्तिमान :- कार्यरत १०९ चीनी मिलो द्वारा ४८७ ५१ लाख मिट्रिक टन गन्ना पेरकर ४५ ५६ लाख मिट्रिक टन चीनी का इस वर्ष रेकार्ड उत्पादन हुआ है। इस वर्ष ७४ ८१ लाख मिट्रिक टन अधिक गन्ना पेरकर ८ २७ लाख टन अधिक चीनी का उत्पादन हुआ है जो नया कीर्तिमान है।

रेकार्ड गन्ना मूल्य भुगतान :-[60] वर्तमान मे गत वर्ष के बकाये मे से ५९ ३५ करोड़ तथा इस वर्ष कुल ३८३७१० करोड़ अर्थात् कुल ३८९६.४५ करोड़ रूपये गन्ना मूल्य का रेकार्ड भुगतान किया गया है।

अवशेष भुगतान के लिए चीनी मिलवार समीक्षा की जा रही है तथा आशा की जाती है कि सितम्बर माह तक सम्पूर्ण भुगतान करा दिया जायेगा।

---

58 सौजन्य से गन्ना एव चीनी आयुक्त कार्यालय, लखनऊ, उ०प्र० ।

59 हिन्दुस्तान, लखनऊ, २९ अगस्त, २००० ई० ।

60 हिन्दुस्तान, लखनऊ, २९ अगस्त, २००० ई० ।

विभाग मे प्रथम बार उच्च पदस्थ अधिकारियो के विरूद्ध बड़े पैमाने पर कठोर कार्यवाही की गई है जिससे नई सस्कृति विकसित कर दायित्वो का स्पष्ट निर्धारण तथा अक्षमता एवं अनियमितता के लिए त्वरित कठोर दण्ड देने की व्यवस्था की गई है।

गन्ना घटतौली रोकने के लए कुल १०५३१ निरीक्षण किये गए जिनमे कुल २१०० अनियमितताये पकड़ी गयी। दण्डस्वरूप ४९७ मिल तौल लिपिको के लाइसेस जब्त किये गये। ११० समिति तौल लिपिको का निलम्बन किया गया, ७०७ मामलो मे न्यायालय मे वाद दायर किये गये है।

राज्य चीनी निगम एवं सहकारी चीनी मिलो की संचालन व्यवस्था मे सुधार -[61]

राज्य चीनी निगम :-

- निगम की मिलो द्वारा अब तक का सर्वाधिक क्षमता उपयोग (९१ ७० प्रतिशत)
- बेहतर सचालन व व्यय नियत्रण से नगर हानि मे (५० प्रतिशत)
- आठ चीनी मिले नगद लाभ की स्थिति मे

सहकारी चीनी मिल संघ :-

- सहकारी चीनी मिलो द्वारा रेकार्ड चीनी उत्पादन व रेकार्ड गन्ना मूल्य भुगतान।
- बेहतर संचालन व व्यय नियत्रण से नगद हानि मे कमी।
- चौदह चीनी मिले नगद लाभ की स्थिति मे।

गन्ना कृषकों के हित में लिये गए महत्वपूर्ण निर्णय :-[62]

- सरल व व्यावहारिक तीन वर्षीय गन्ना पूर्ति नीति की घोषणा, छोटे व सीमात कृषको, सैनिको भुतपूर्व सैनिको, स्वतत्रता संग्राम सेनानियो व उनके आश्रित परिवारजनो को गन्ना पूर्ति में वरीयता।
- लघु व सीमांत कृषकों के गन्ना ऋण अदायगी नीति को उदार बनाते हुए दो किश्तों में अदायगी की सुविधा।
- सरकारी अनुदान पर कृषि यत्रों की खरीद मे कृषक को मानक यत्रो के स्वय खरीद की व्यवस्था।

---

61 हिन्दुस्तान, लखनऊ, २९ अगस्त, २००० ई० ।

62 हिन्दुस्तान, लखनऊ, २९ अगस्त, २००० ई० ।

- ❖ गन्ना सर्वेक्षण व विपणन का अधिकाधिक कम्प्यूटरीकरण करके स्वच्छ तथा पारदर्शी व्यवस्था की स्थापना।
- ❖ कम्प्यूटरीकृत किसान सेवा केन्द्र की स्थापना तथा किसानो को सूचना देने की नई व्यवस्था।
- ❖ लघु व सीमात कृषको को १० दिनो के अन्दर गन्ना खरीद की व्यवस्था।
- ❖ १.५ लाख से भी अधिक गन्ना किसानो को उन्नतशील गन्ना की खेती का प्रशिक्षण।
- ❖ प्रदेश मे गन्ना तौल कॉटो के निरीक्षण का अधिकार विभागीय अधिकारियो के साथ-साथ जन प्रतिनिधियो को भी दिया गया है।

गन्ना विकास एवं गन्ना बीज बदलाव की महत्वाकांक्षी योजना :- प्रदेश मे प्रथम बार सचालित मिल क्षेत्रवार गन्ना बीज बदलाव की सुनिश्चत योजना को तीव्र गति से लागू किया गया।[63]

चार वर्षीय लक्ष्य ७ २४ लाख हेक्टेयर मे से इस वर्ष १ २४ लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल मे अलाभकारी व पुरानी प्रजातियो के स्थान पर नवीन उन्नतशील बीजों का प्रतिस्थापन। योजना से प्रदेश मे गन्ना उत्पादकता वृद्धि के साथ-साथ एक प्रतिशत चीनी परता में वृद्धि लाने का लक्ष्य।

गन्ना कृषकों व चीनी उद्योग के हित में शीरे पर आधारित गैसोहल के उपयोग की महत्वाकांक्षी योजना :- चीनी मिलों में उत्पादित शीरे का राष्ट्रहित में बेहतर उपयोग करके गन्ना किसानों को बेहतर गन्ना मूल्य दिलाने, चीनी उद्योग की सुदृढ़ता व देश के पेट्रोल आयात व्यय मे कमी करने के उद्देश्य से शीरे से निर्मित गैसोहल के प्रयोग हेतु भारत सरकार से अनुमति का अनुरोध किया गया है।

भारत मे चीनी विक्रय की आनलाईन ट्रेडिग व्यवस्था को अपनाने वाला पहला राज्य उत्तर प्रदेश है।[64]

---

63 हिन्दुस्तान, लखनऊ, २९ अगस्त, २००० ई० ।

64 हिन्दुस्तान, लखनऊ, २९ अगस्त, २००० ई० ।

तालिका : 6-1

उत्तर प्रदेश की चीनी मिलो के सुरक्षित क्षेत्र मे गन्ना उत्पादन, औसत उपज, कुल गन्ना उत्पादन तथा चीनी मिलो द्वारा गन्ना पेराई, चीनी परता एवं चीनी उत्पादन

1980-81 से 2000-2001

वर्ष	गन्ना क्षेत्रफल (ला० हेक्टे०)	औसत उपज (टोन्स/हेक्टे०)	कुल गन्ना उत्पादन (ला० टोन्स)	गन्ना पेराई (ला० टोन्स)	चीनी परता (प्रतिशत)	चीनी उत्पादन (लाख टोन्स)
1980-81	12.05	47.85	576.62	129.35	9 46	12 24
1985-86	14.34	49.26	706 35	172.17	9 57	16 48
1990-91	18 30	55.78	1020 68	327 56	9 08	29 75
1991-92	18.55	57.51	1066 77	397.55	9 18	36.51
1992-93	18 07	55.58	1004 22	295 78	9 66	28 56
1993-94	18.60	59 13	1099 93	289.89	9 36	27 15
1994-95	20.53	59.84	1228.39	383.13	9 42	36.09
1995-96	23.83	60.31	1437.12	502.50	8.71	43.78
1996-97	25.14	58.90	1480.86	436.30	9.36	40.83
1997-98	21.96	60 76	1334.21	409.06	9.56	39 22
1998-99	20.74	58 70	1217.36	412.70	9.03	37.29
1999-2000	21.40	57.58	1232.40	487.88	9.34	45.56
2000-2001	20 54	------	------	------	------	------

स्रोत : गन्ना एवं चीनी आयुक्त कार्यालय, लखनऊ उत्तर प्रदेश से प्राप्त सूचना।
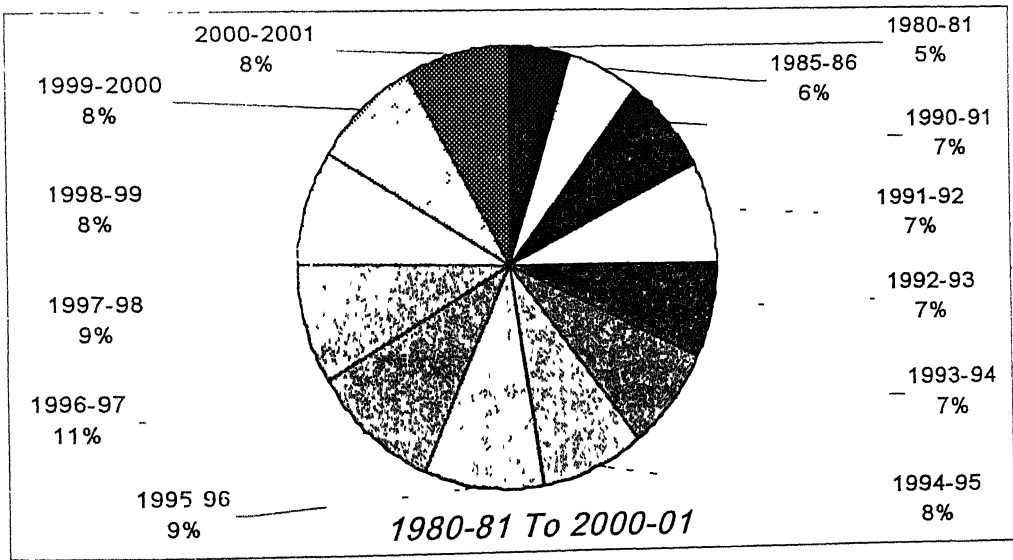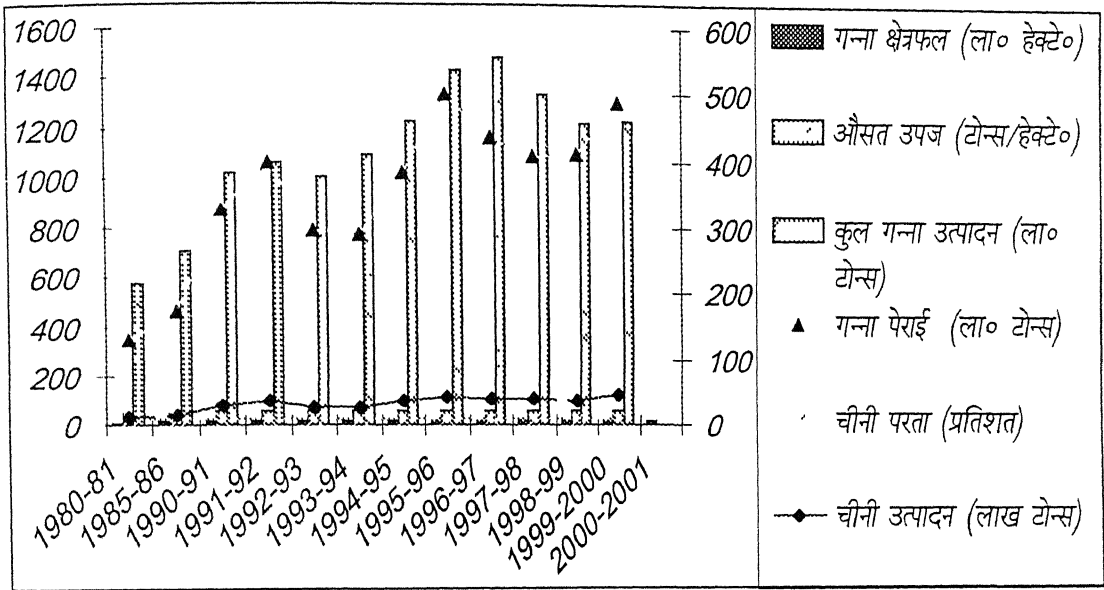
तालिका : 6-2

उत्तर प्रदेश की चीनी मिलो के सुरक्षित क्षेत्र मे पौधा पेड़ी व कुल गन्ना क्षेत्रफल -

1980-81 से 1999-2000

वर्ष	गन्ना क्षेत्रफल (लाख हेक्टेयर)			पेड़ी प्रतिशत (%)
	पौधा	पेड़ी	योग	
1980-81	5.76	6.29	12.05	52 20
1985-86	6.66	7.68	14.34	53.60

1990-91	8 69	9 61	18 30	52.50
1991-92	8 81	9 74	18 55	52.50
1992-93	8 08	9.98	18.07	55.30
1993-94	8 08	10 52	18 60	56 60
1994-95	9 95	10.58	20.53	51 50
1995-96	11 60	12.23	23 83	51 30
1996-97	11 00	14 14	25 14	56 20
1997-98	9.20	12.76	21 96	58 10
1998-99	9 79	10.95	20 74	52 80
1999-2000	9.90	11.50	21 40	53 80
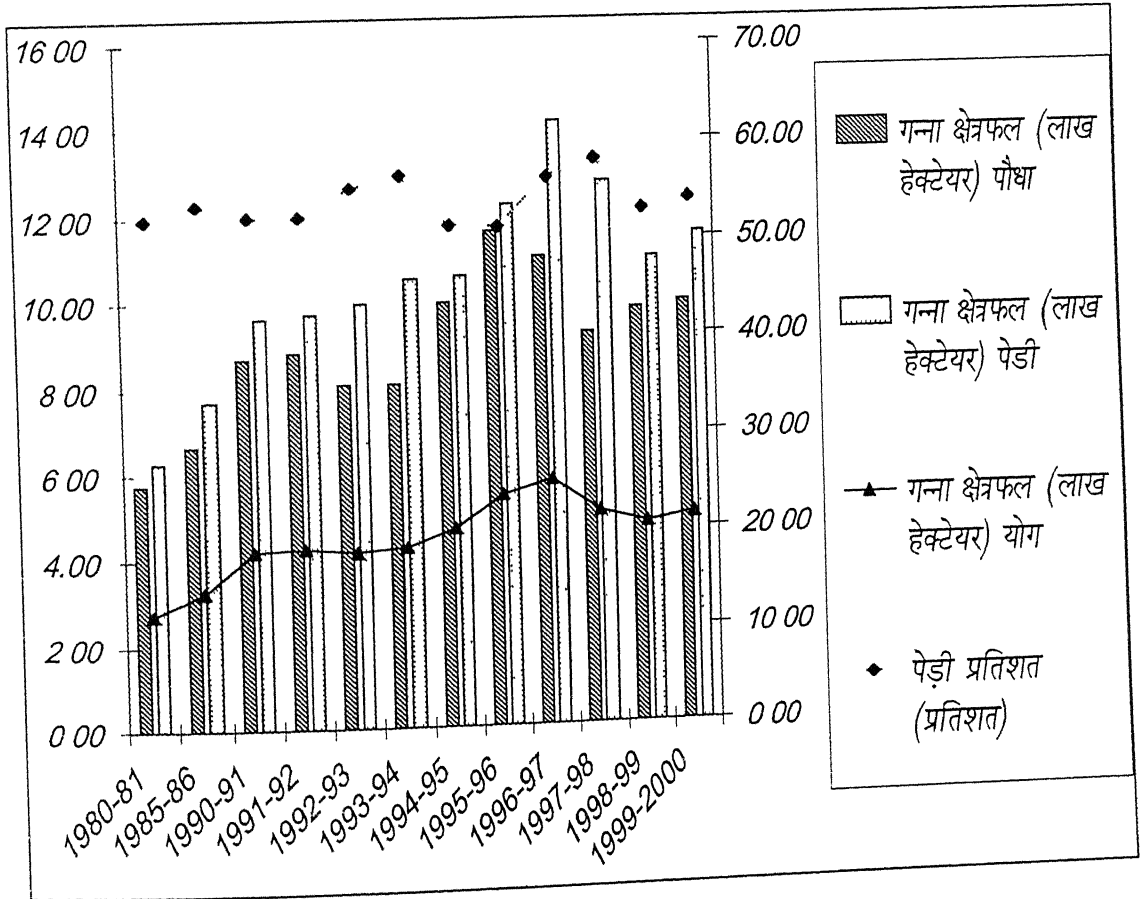
स्रोत : गन्ना एवं चीनी आयुक्त कार्यालय, लखनऊ उत्तर प्रदेश से प्राप्त सूचना।

तालिका : 6-3

उत्तर प्रदेश की चीनी मिलो के सुरक्षित क्षेत्र में चीनी मूल्य जोनवार गन्ने की औसत उपज एव कुल गन्ना उत्पादन -

1980-81 से 1999-2000

वर्ष	गन्ने की औसत उपज (टोन्स/हेक्टेयर)			कुल गन्ना उत्पादन (लाख टोन्स)		
	पश्चिम जोन	मध्य जोन	पूर्वी जोन	पश्चिमी जोन	मध्य जोन	पूर्वी जोन
1980-81	53.43	45.50	40 59	262.49	227 34	86.79
1985-86	50.83	49.70	45 20	267.17	315 58	123.60
1990-91	63.06	53.46	49.71	376.62	477.01	197 05
1991-92	64 90	55.92	49 98	389 45	471 92	205 40
1992-93	59.46	55.23	49.95	359.35	462.74	182.13
1993-94	64.76	58.37	51.24	419.16	485.04	198 72
1994-95	65 25	59.98	52.82	436.54	510.83	281.02
1995-96	67.21	60.85	52.20	473.42	615.14	348.56
1996-97	64.47	59.18	52.47	478.51	639.91	362.44
1997-98	66 50	61 87	51 64	475 54	568.81	289.86
1998-99	65.50	59.37	49 61	428.76	513.43	275 15
1999-2000	61.10	58.00	52 93	398.34	528.76	305 30

स्रोत : गन्ना एवं चीनी आयुक्त कार्यालय, लखनऊ उत्तर प्रदेश से प्राप्त सूचना।
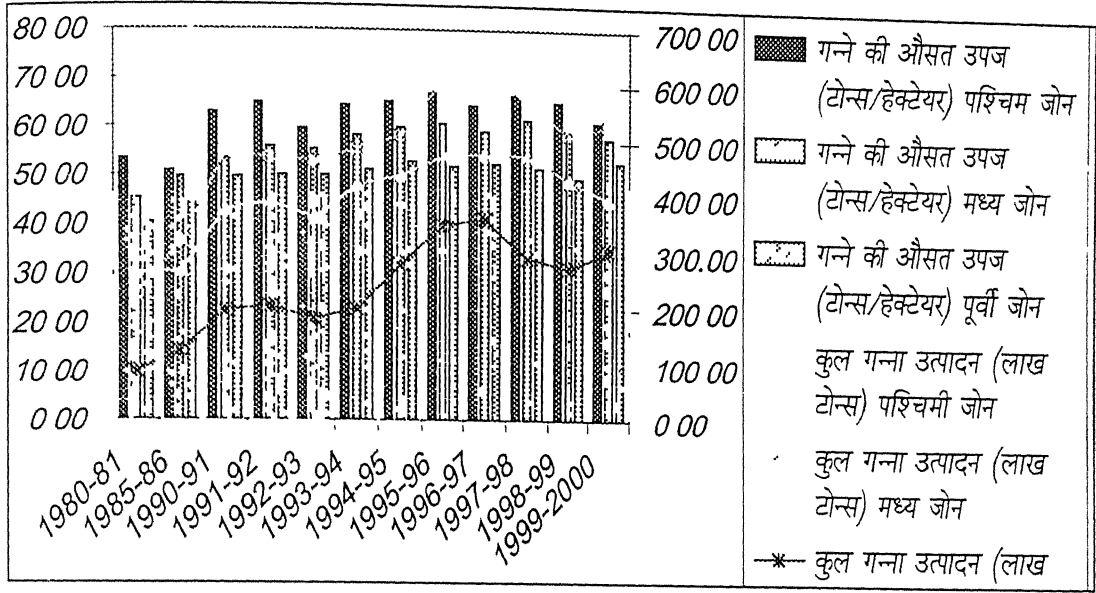
तालिका : 6-4

प्रदेश की चीनी मिलो द्वारा गन्ना उत्पादन का प्रयुक्त प्रतिशत :-

1985-86 से 1998-99

वर्ष	कुल गन्ना उत्पादन का चीनी मिलों द्वारा प्रयुक्त (%)			
	पश्चिम	मध्य	पूर्व	प्रदेश
1985-86	17.40	24.30	39.60	24.60
1990-91	29.60	29.20	43 40	32 10
1991-92	32.60	36.00	48.90	37 30
1992-93	24.50	28.00	43.00	29.50
1993-94	24.80	23.30	37 10	26.40
1994-95	27.30	30 00	39 40	31.20
1995-96	37 00	33.10	35.50	35.00
1996-97	30.10	27.30	32.40	29.50
1997-98	30.60	29 70	32.60	30.70
1998-99	34.70	33.90	22.60	33.90

स्रोत : गन्ना एवं चीनी आयुक्त कार्यालय, लखनऊ उत्तर प्रदेश से प्राप्त सूचना।

तालिका : 6-5

प्रदेशवार गन्ने की औसत उपज -

1990-91 से 1997-98

प्रदेश	गन्ने की औसत उपज (टोन्स/हेक्टेयर)							
	1990-91	1991-92	1992-93	1993-94	1994-95	1995-96	1996-97	1997-98
सब ट्रापिकल क्षेत्र								
१ बिहार	52.50	48.80	45 40	36 70	46 00	43 80	45 20	37 20
२ पजाब	55.40	63 50	56.90	61 20	62 20	65 30	63 80	65 90
३ मध्य प्रदेश	35.40	35 80	34 00	20.40	36 10	40.00	38.10	38 30
४ राजस्थान	52.70	43 90	46 50	49.50	45 10	50.40	48 30	53 20
५ पश्चिम बगाल	N.A	N.A	N.A	N.A	N.A	N A	N A	N.A

६	आसाम	42 50	38 30	38 80	38 40	42 20	41.50	39 40	42 40
७	उडीसा	72 40	63 80	47 10	58 30	59 00	58 40	64 50	53 30
८	नागालैण्ड	N A	N A	N A	N A	N.A	N A	N A	N A
९	हरियाणा	52 70	55 90	48 90	57 60	58 40	56 20	55 00	60 00
१०	उत्तर प्रदेश	55 80	57 50	55 60	59 10	59 80	60 30	58 90	60 80
	ट्रापिकल क्षेत्र								
१	महाराष्ट्र	86 50	79.90	76 40	81 10	85.50	80 40	81 00	76 00
२	गुजरात	89 60	85 30	85 50	79 70	69 70	65 00	68 80	71 90
३	आन्ध्र प्रदेश	69 90	74 50	71 10	76 70	76 50	71 00	75 10	74 40
४ ५	तमिलनाडू पान्डीचेरी	102 90	104 50	107 00	104 20	113 90	101 00	99 30	104 00
६	कर्नाटक	75 70	84.60	86 00	88 40	96 20	79.60	85.90	87 10
७	केरल	65 30	68 40	69 10	81 40	84 70	85.70	94.70	68 70
८	गोआ	N A	N A	N A	N A	N A	N A	N A	N A
	अन्य	51 40	47.40	35 50	34.20	27 80	31 70	39 20	34 50
	सम्पूर्ण भारत	65 30	66 10	63.80	67.10	71.10	67.80	66 50	66 40

स्रोत : इन्डियन शुगर, जुलाई 1996 और इन्डियन शुगर, अक्टूबर 1998

सब ट्रापिकल क्षेत्र

ट्रापिकल क्षेत्र

120 00
100 00
80 00
60 00
40 00
20 00
0 00

1990-91 1991-92 1992-93 1993-94 1994-95 1995-96 1996-97 1997-98

महाराष्ट्र
गुजरात
आन्ध्र प्रदेश
तमिलनाडू पान्डीचेरी
कर्नाटक
केरल
गोआ
अन्य
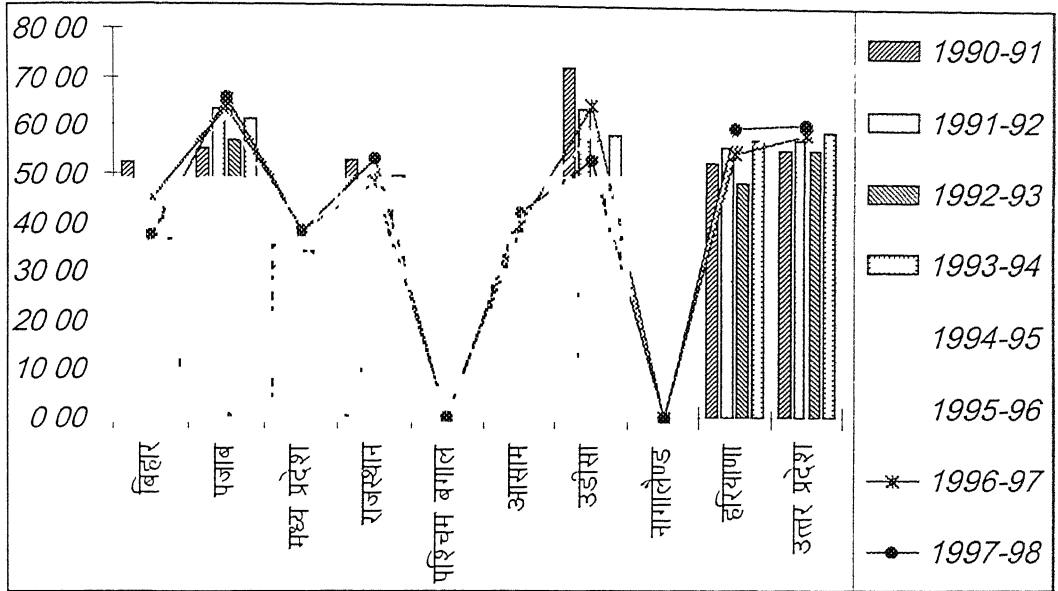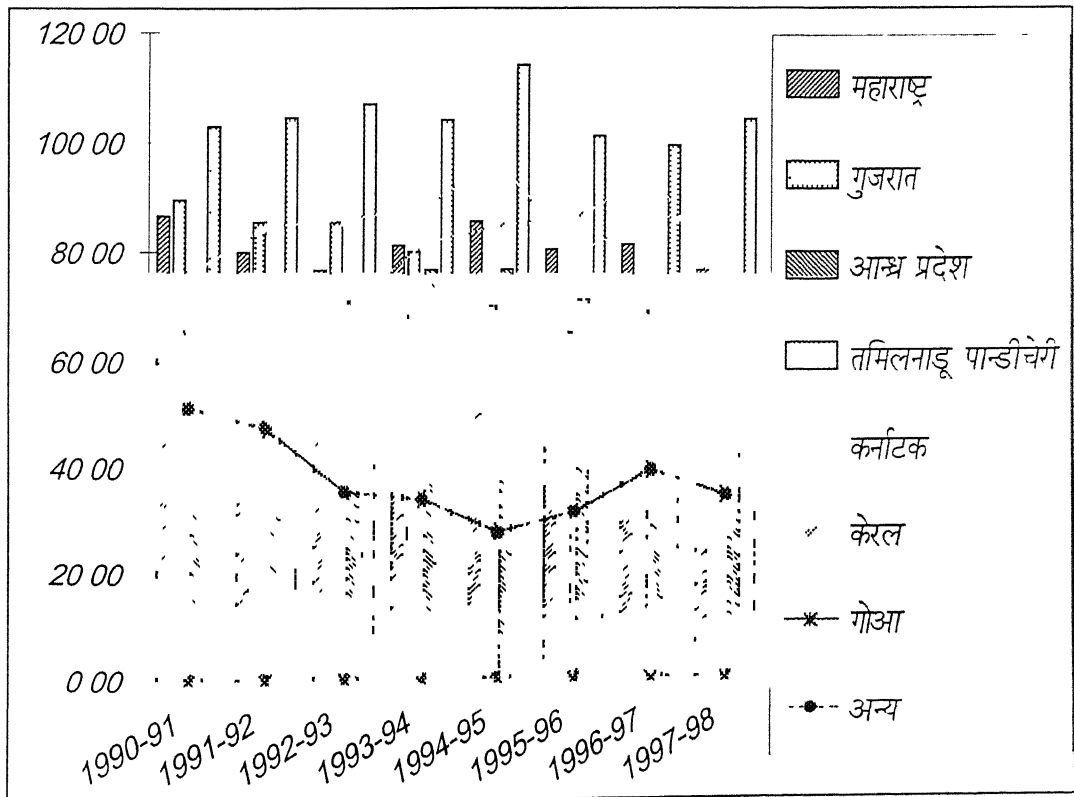
तालिका : 6-6

प्रदेशवार गन्ने की कुल उत्पादन -

1990-91 से 1997-98

प्रदेश	कुल गन्ना उत्पादन (हजार टन)							
	1990-91	1991-92	1992-93	1993-94	1994-95	1995-96	1996-97	1997-98
सब ट्रापिकल क्षेत्र								
१ उत्तरप्रदेश	102068	106677	100422	109993	122839	143712	1480	133421
२ बिहार	7805	707	6032	4398	5667	5485	632	6320
३ पजाब	6000	6920	6369	4710	5160	8620	1104	8700
४ मध्यप्रदेश	1392	1646	1324	1084	1511	1914	2204	2030
५ राजस्थान	1203	1361	1129	1020	987	1411	1290	1065
६ पश्चिम बगाल	859	969	889	542	649	1312	1810	1430
७ आसाम	1522	1454	1548	1374	1505	1490	1280	1400
८ उड़ीसा	3549	2745	754	781	1199	1594	1410	1600
९ नागालैण्ड	N A	N.A	N A	N.A	N A	N.A	N A	N A
१० हरियाणा	7800	9000	6550	6420	7010	8090	8960	8400
ट्रापिकल क्षेत्र								
१ महाराष्ट्र	38416	36187	30853	27892	44260	46656	4180	34960
२ गुजरात	10600	10239	10872	10232	10785	10511	1140	11150
३ आन्ध्र प्रदेश	12667	15057	12163	13474	15991	15179	1444	14277
४ तमिलनाडू	23480	24887	23064	25992	35236	32944	2693	30470
५ केरल	543	547	428	448	449	523	550	550
६ कनार्टक	20964	24117	22480	26603	30325	24918	2183	20983

७	पान्डिचेरी	256	286	187	163	226	242	203	200
८	गोआ	N A	N A	N.A	N A	N A	N A	N A	N A
	अन्य	427	406	462	444	361	380	390	380
	सम्पूर्ण भारत	241045	253995	228033	229659	275540	281099	3775	260160

स्रोत : इन्डियन शुगर, जुलाई 1996 और इन्डियन शुगर, अक्टूबर 1998

सब ट्रूपिकल क्षेत्र
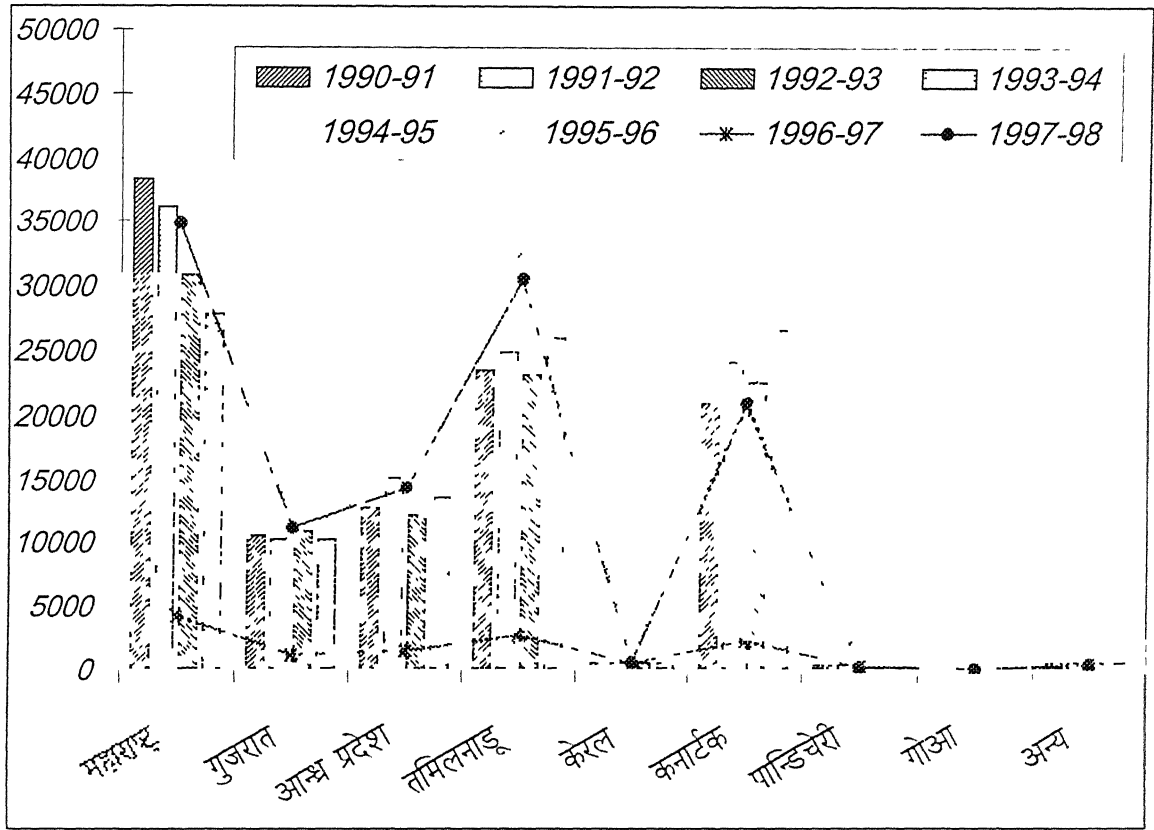
ट्रापिकल क्षेत्र

तालिका : 6-7

प्रदेशवार चीनी मिलो से चीनी उत्पादन -

1990-91 से 1997-98

प्रदेश	चीनी उत्पादन (हजार टोन्स)							
	1990-91	1991-92	1992-93	1993-94	1994-95	1995-96	1996-97	1997-98
सब ट्रापिकल क्षेत्र								
१ उत्तर प्रदेश	2975	3651	2856	2715	3609	4378	40 4	3922
२ बिहार	415	462	328	230	394	382	36 4	297
३ पजाब	275	384	409	311	319	633	61 8	331
४ मध्य प्रदेश	104	128	60	37	70	125	84	68
५ राजस्थान	24	37	24	16	18	31	2.4	29

६ पश्चिम बंगाल	3	6	4	5	7	7	5	3
७ आसाम	8	8	8	4	7	8	6	4
८ उडीसा	23	37	33	24	43	83	76	57
९ नागालैण्ड	4	4	3	1	1	1	----	----
१० हरियाणा	375	489	345	308	343	453	49	382
ट्रापिकल क्षेत्र								
१ महाराष्ट्र	4119	4213	3360	2746	5025	5394	34	3847
२ गुजरात	831	753	751	826	759	1130	96	889
३ आन्ध्र प्रदेश	701	843	540	647	874	859	72	782
४ तमिलनाडु	1183	1264	976	1085	1859	1614	105	1229
५ केरल	9	9	6	2	12	13	8	6
६ कर्नाटक	942	1032	847	831	1225	1263	87	959
७ पान्डिचेरी	48	63	45	37	62	57	3	37
८ गोआ	8	18	13	8	16	19	14	10
सम्पूर्ण भारत	12047	13404	10609	9833	14643	16451	129	12852

स्रोत : इन्डियन शुगर, जुलाई 1996 और इन्डियन शुगर, अक्टूबर 1998

सब ट्रापिकल क्षेत्र

ट्रापिकल क्षेत्र

6000
5000
4000
3000
2000
1000
0

1990-91
1991-92
1992-93
1993-94
1994-95
1995-96
1996-97
1997-98

महाराष्ट्र
गुजरात
आन्ध्र प्रदेश
तमिलनाडू
केरल
कर्नाटक
पान्डिचेरी
गोआ

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि गुड एव चीनी के विपणन विधि मे पर्याप्त अन्तर है, जहाँ गुड के विपणन मे प्राथमिक मडी से लेकर थोक मडी तक और उसके बाद जब तक कृषि पदार्थ अन्तिम उपभोक्ता के हाथ मे नहीं पहुँचता है अनेक विपणन सम्बन्धी खर्च इनकी कीमतो मे सम्मिलित होते रहते है। परिणामत किसान द्वारा प्राप्त की गई कीमत तथा उपभोक्ता द्वारा दी गयी कीमत मे एक बडा अन्तराल उपस्थित हो जाता है।

मडियो को विनियमित किए जाने के परिणामस्वरूप मडियो मे होने वाली आवश्यक कटौतियों मे पर्याप्त कमी आयी है। जहाँ अनियमित बाजारो मे पहले विभिन्न प्रकार के व्यय जैसे आढत, दलाली, पल्लेदारी, तुलाई, धर्मादा, चौकीदारी, मेहतर, मुनीमी आदि के नाम पर काफी कटौतियाँ होती थी और भारी मात्रा मे नमूने के नाम पर जिस ली जाती थी, तौल भी दोषपूर्ण थी, बिना कृषक या विक्रेता की सहमती के मूल्य निर्धारण हुआ करता था वहीं अब मंडियो के नियमन से मडियो मे अनावश्यक व्यय न लेकर निर्धारित व्यय ही लिये जाते है। माल की तुलाई सही काँटों वह बाँटो से होती है। किसान या विक्रेता को बिक्री होने पर तुरन्त भुगतान मिल जाता है और आढ़तियो की कृपा पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। इस प्रकार अनेक सुधार हुए है जिसके परिणामस्वरूप विपणन लागत मे कुछ कमी आयी है।

चीनी के विपणन मे प्रधान समस्या चीनी के अनावश्यक भडारण पर प्रतिबन्ध चीनी की चोर बाजारी को रोकने के लिए लगाया है। विक्रेता एव व्यापारी वर्ग प्राय चीनी का कृत्रिम अभाव उत्पन्न करके उपभोक्ताओ को ऊँची कीमत पर बेचते हैं।

******

सप्तम् अध्याय

शोध निष्कर्ष एवं सुझाव

7.1

उत्तर प्रदेश मे व्यावसायिक फसलो एव उनके उत्पादो के विपणन अध्ययन हेतु कुछ व्यावसायिक फसलो (गन्ना, तिलहन एव इनके प्रमुख उत्पाद गुड चीनी, सरसो तेल) का चुनाव किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध प्राथमिक एव द्वितीयक ऑकड़े पर आधारित हैं। प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश मे कृषि विपणन की दशा अभी भी अविकसित एव अवैज्ञानिक है, जिससे कृषि का व्यवसायीकरण नहीं हो पाता है। राष्ट्र का व्यापार विदेशी मुद्रा अर्जन, रोजगार स्तर, राष्ट्रीय आय और राजनैतिक स्थायित्व कृषि पर ही निर्भर है। जनसख्या का दो तिहाई भाग प्रत्यक्ष जीविकोपार्जन हेतु कृषि पर आधारित है, और राष्ट्रीय आय मे कृषि का योगदान लगभग ३० २५ प्रतिशत है। राष्ट्र के निर्यात मे कृषि का योगदान २५ प्रतिशत है, फिर भी कृषि के क्षेत्र मे अभी उन्नयन की सभावना है।

आज भी कृषक विशेषकर छोटे कृषक बोवाई से लेकर विपणन तक आवश्यक वित्तीय सहायता प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं क्योकि उनकी आर्थिक सक्षमता इतनी नहीं होती है कि वे उचित मूल्य आने तक फसल को रोक सके। सस्थागत साख लेने मे आने वाली परेशानियो के कारण किसान पेशेवर साहूकार तथा महाजन से ऊँची ब्याज दर पर ऋण लेने को विवश होता है तथा पूर्व निर्धारित भाव पर ही महाजन के हाथो बेचने को बाध्य हो जाता है।

देश मे उपलब्ध अन्न उत्पाद को सुरक्षित रखने हेतु गोदामो का अभाव है ऐसी स्थिति मे चूहे, दीमक तथा अन्य कीडो से अनाज की बर्बादी बडे पैमाने पर होती है। एक अनुमान के अनुसार १० से २० प्रतिशत अनाज कीडो द्वारा नष्ट कर दिया जाता है। परिवहन साधनो जैसे - रेलमार्ग, पक्की सडको के अभाव मे मण्डियो तक अनाज सब्जियाँ तथा अन्य उत्पाद समय पर नहीं पहुँच पाते। ऐसी स्थिति मे या तो परिवहन

लागत बढ जाती है या फिर तैयार माल खराब हो जाता है। दोषो मे उत्पादको और उपभोक्ताओ के बीच अनेक मध्यस्थो जैसे - गॉव का स्थानीय व्यापारी, दलाल, थोक व्यापारी और खुदरा दुकानदार महाजन आदि के कारण किसानो को उचित कीमत नहीं मिलती है। मण्डियो मे रहने वाले बिचौलिए ही इस अव्यवस्था का लाभ उठाते हैं। किसान का अशिक्षित होना मण्डी सूचनाओ के उचित सम्प्रेषण का अभाव, माप-तौल व अनेक बुराईयो के साथ-साथ अनुचित कटौतियॉं भी विपणन व्यवस्था की मुख्य दोष हैं। कृषि उपज का अलग-अलग किस्मो और कोटियो मे दोष पूर्ण निर्धारण तथा मण्डी में शक्तिशाली मध्यस्थो के बीच किसान का कमजोर होना, उसे अपना माल महाजनो को मनमानी कीमत पर बेचने को मजबूर होना पड़ता हैं।

भारत को कृषि उत्पादो का निर्यातक बनाने का मुख्य श्रेय कृषि अनुसधान और उत्पादन मे वृद्धि का है। देश उदारीकरण प्रक्रिया से ही कृषि के क्षेत्र मे उत्पादन और निर्यात के मामले मे अद्वितीय वृद्धि कर पाया है किन्तु अभी और अधिक कृषि उत्पादन मे स्थिरता लाने के लिए आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकियों को अपनाना होगा ताकि निर्यात से होने वाली आय बढे। कुछ वर्ष पहले खाद्य तेलो की कमी हुई थी और इनका आयात काफी बढ़ गया था लेकिन आज स्थिति यह है कि खाद्य तेलो का आयात घटकर ३०० करोड रू० प्रतिवर्ष हो गया है। वहीं हमारी तिलहनी फसलो और उनसे बनने वाली उत्पादो का निर्यात आठ गुना बढ़कर २५०० करोड़ रू० से भी ऊपर हो गया है।

आजादी के बाद के दौर मे कृषि उत्पादन मे करीब चार गुने से ज्यादा की शानदार बढ़ोत्तरी हुई और अनाज की पैदावार जो १९५० के दशक के प्रारम्भ मे ५ करोड टन थी, २ ५ करोड़ वार्षिक की दर से बढ़कर इस वक्त २० करोड़ टन के स्तर पर पहुँच चुकी है। कहॉं एक वक्त हमे अनाज के लिए दुनिया के और देशो का मोहताज रहना पड़ता था और कहाँ आज हम खाद्यान्न उत्पादन मे न सिर्फ आत्मनिर्भर हैं बल्कि अनाज निर्यात करने वाले देशो मे हमारी गिनती होती है। देश को इस स्थिति तक पहुँचाने मे हरित क्रान्ति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

वैसे यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि भारत को कृषि उत्पाद के घरेलू एव विदेशी व्यापार नियत्रण मे थोड़ी और छूट देनी चाहिए ताकि उन क्षेत्र मे वर्तमान उपलब्ध अवसरो मे और भी बढ़ोत्तरी की जा

सके। हालाकि १९९१ से ही आर्थिक उदारीकरण की नीति प्रारम्भ की गई, परन्तु फिर भी कृषि तथा कृषि उत्पादन पर किसी न किसी प्रकार से नियत्रण बना हुआ है।

विषय की दृष्टि से १९८६ से १९९४ तक के उरूग्वे दौर के समझौतो को तीन शीर्षको मे बॉटा जा सकता है। पहला बाजार तक पहुँच के समझौतो दूसरा बहुपक्षीय नियमो तीसरा नए क्षेत्रो से जुडे समझौते। उरूग्वे दौर के समझौते १ जनवरी १९९५ को लागू हुए। उरूग्वे दौर के समझौतो को लागू होने के पॉच या अधिक वर्ष बाद आज कृषि क्षेत्र के उदारीकरण उपायो के प्रति असतोष होना स्वाभाविक है। अवधारणा के स्तर पर तीन प्रकार की समस्याएँ है। पहली, समझौते लागू नहीं किए गए हैं बल्कि उनका उल्लघन हुआ है। दूसरी, समझौतो की अवहेलना की गई है अर्थात् कुछ कामो से समझौते की भावना का उल्लघन हुआ है, न कि कानून का। तीसरा, कुछ मुद्दे वर्तमान समझौतो से हटकर भी है।

योजनाकाल मे भारतीय कृषि की उपलब्धियाँ इस दृष्टि से तो ठीक कही जा सकती है कि आज भारत खाद्यान्न उत्पादन के मामले मे तो आत्मनिर्भर है तथा देश के कुल राष्ट्रीय आय मे भी कृषि का योगदान एक तिहाई के लगभग है। भारतीय कृषि ६० करोड़ रू० से अधिक जनसंख्या के जीवन-यापन का एक अग भी है, लेकिन जब भारतीय कृषि की उत्पादकता की तुलना विकसित देशो से की जाती है तो वह अत्यधिक पिछडी हुई दशा मे प्रतीत होती है। भारतीय कृषि की नीची उत्पादकता के लिए सस्थागत, प्रौद्योगिकीय एव नीतिगत कारक मुख्य रूप से उत्तरदायी है। पिछले वर्ष मे कृषि विकास के लिए जो भी नीतियॉं अपनाई गई है वे मुख्य रूप से उत्तरदायी हैं तथा सम्पूर्ण कृषि व्यवस्था के एक क्षेत्र तक ही सीमित रही है। कभी खाद्यान्न उत्पादन के आत्मनिर्भरता पर जोर दिया गया तो कभी तिलहन उत्पादन को बढ़ाने की बात कही गई है। अब तक की नीतियो का सबसे बडा दोष यह रहा है कि इसमे समुचित रूप से कहीं भी कृषि उत्पादकता बढ़ाने की बात पर बल नहीं दिया गया है। यदि आने वाले दिनो मे १०० करोड़ से अधिक जनसख्या की उदरपूर्ति के साथ उसके जीवन स्तर को ऊँचा उठाना है तो कृषि उत्पादकता को बढ़ाकर विश्व के विकसित देशो के स्तर पर लाना होगा।

सुझाव :-

हमारे जीवन मे खाद्य पदार्थ के रूप मे चीनी, गुड, सरसो तेल आदि का महत्त्व इतना अधिक हो गया है कि इनका अभाव पूरे जनजीवन को अस्त-व्यस्त कर देता है। इन फसलो के महत्व को देखते हुए हमे मात्र इनके उत्पादन पर ही नहीं बल्कि विपणन व्यवस्था पर भी विशेष ध्यान देना होगा, क्योकि अगर एक अच्छी विपणन प्रणाली नहीं रहेगी तो अच्छे उत्पादन की भी सम्भावना नहीं रहेगी। इसके अतिरिक्त व्यावसायिक फसलो के बढते हुए महत्व के कारण इनके उत्पादन मे निरन्तर वृद्धि की सम्भावना बढ़ती जा रही है। ऐसी स्थिति मे इनके बाजार मे विस्तार हुआ है। अत इनकी विपणन की अच्छी प्रणाली को बढाने पर अधिक से अधिक बल दिया जाना आवश्यक हो गया है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि कृषि उत्पादो का निर्यात बढ़ाने के लिए नए बाजारो की तलाश की जाए तथा वाणिज्य मत्रालय द्वारा निर्यात को प्रोत्साहन देने वाली अल्पकालीन रणनीति मे भी कृषि उत्पादो को भी सम्मिलित किया जाए। कृषि निर्यात के स्पष्ट नीति का निर्धारण किया जाए। काडला बन्दरगाह की सभी चोटियो को सामान्य निर्यातको हेतु खोला जाए। विश्व बाजार में स्वास्थ्य सुरक्षा और गुणवत्ता का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। अत ऐसे सभी सम्भव प्रयास करने होगे, जिससे कि हमारे उत्पाद विदेशी मानको पर खरे उतरे। इस सदी के अन्त तक कृषि निर्यात बढ़कर ९६ अरब डालर हाने की आशा है। फिलहाल यह अभी ३१ ४ अरब डालर के आस-पास चल रहा है।

नवीं योजना हेतु निम्नलिखित चार सुझाव है।

- भारत की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता बढ़ाई जाए।
- कृषक एव उद्यमी अपनी भूमिका को विस्तृत करे।
- देश के एक अरब से अधिक जनसख्या के अलावा विश्व के ५५० करोड लोगो तक अपने उत्पाद पहुँचाने की योजना बनाई जाए।
- कृषि उत्पादो से विश्व स्तर पर साख बनाने हेतु प्रयास किए जाए।

इसके अतिरिक्त उक्त क्षेत्रीकरण, पैकिंग, भण्डारण, परिसस्करण, परिवहन तथा विपणन की बेहतर व्यवस्था, शोध एव विकास की निरतरता, कृषको को निर्यातोन्मुखी चेतना जगाने, लागत मे कमी से स्पर्धा मे टीकने तथा निर्यात सवर्धन के लिए राष्ट्रव्यापी वातावरण बनाने की आवश्यकता है, ताकि कृषि निर्यात से अधिक विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सके और करोड़ो कृषको को उसका सीधा लाभ मिले और उनका जीवन स्तर उपर उठ सके।

अन्य क्षेत्रो की भाँति हालांकि सरकार की यह नीति रही है कि कृषकों को उनकी उपज का उचित मूल्य मिले ताकि उसे अधिक उत्पादन करने हेतु अभिप्रेरित किया जा सके, तथा उपभोक्ताओ को उचित मूल्य पर वस्तुएँ उपलब्ध हो सके लेकिन अभी भी मण्डियो के विस्तार के साथ-साथ किसानो मे जागरूकता पैदा करना अत्यावश्यक है। इसके साथ उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने हेतु प्रयास किए जाएँ ताकि वह नीची कीमतो पर उत्पाद बेचने को विवश न हो। किसानो को प्रिंट मीडिया तथा दृश्य प्रचार माध्यमो द्वारा मण्डी मे प्रचलित भावो के बारे मे नवीनतम जानकारी उपलब्ध करायी जाए। सुरक्षित भण्डार हेतु शीत भण्डार एव गोदामो की स्थापना व्यापक स्तर पर की जाए ताकि शीघ्र नाशक अनाज नष्ट न हो। परिवहन हेतु रेल सुविधा के साथ-साथ पक्की सडको का जाल ग्रामीण अचलो तक बिछाया जाए। पुराने शीत भण्डारो और गोदामो को आधुनिक रूप देकर उनकी क्षमता बढ़ाई जाए। साथ ही किसानो को उनकी वित्तीय आवश्यकताओ हेतु फसल बिकने तक उचित दरो पर ऋण उपलब्ध कराया जाए ताकि वे अपनी सामाजिक और पारिवारिक जिम्मेदारियो के दबाव मे माल बेचने को विवश न हो। छोटे-छोटे किसानो को सहकारी बिक्री समितियों द्वारा विक्रय हेतु प्रोत्साहित किया जाए। सरकारी स्तर पर वर्तमान विपणन व्यवस्था के दोषो को दूर करने हेतु पारदर्शी नीति अपनानी चाहिए।

7.2

उत्तर प्रदेश मे कृषि विपणन की भूमिका और उसका महत्व बडी तेजी से बढता जा रहा है। आज यह अधिकाधिक महसूस किया गया है कि भारत जैसी कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास तव तक सभव नहीं है जब तक की कृषको को उनकी उपज का लाभकारी मूल्य दिलवाने की पक्की व्यवस्था नहीं हो जाती। इन विचारो के साथ ही अर्थव्यवस्था के भूमडलीकरण के बाद की गतिविधियो से देश मे कृषि विपणन मे अब तक प्रचलित अवधारणाओ मे एक नया आयाम जुड़ गया है। आज न केवल किसानो को उपज का लाभाकारी मूल्य दिलवाने मे बल्कि पर्याप्त मात्रा मे सामग्री उपलब्ध कराने मे कृषि विपणन एक महत्वपूर्ण जरिया है। आज इस बात की तत्काल आवश्यकता है कि आधुनिक विपणन के सभी प्रमुख घटको की सेवाएँ कृषि विपणन के क्षेत्र मे भी शुरू की जाए। कृषि उत्पादो के मूल्य सवर्धन मे विशिष्ट भूमिका अदा करने के लिए आधुनिक विपणन के सभी महत्वपूर्ण घटको की आवश्यकता है। जैसे - ग्रेडिग, मानकीकरण और भडारण ब्रैडिग, आकर्षक पैकेजिग, बाजार सम्बन्धी सूचनाओ के आदान प्रदान के लिए विश्वस्तरीय प्रौद्योगिकी, यातायात के साधन, उच्च स्तर के विज्ञापन तकनीक और प्रतिस्पर्धात्मक सेल्समैनशिप ये सभी घटक उस स्थिति मे और भी जरूरी हो जाते हैं जब उत्पादों को कडी प्रतिस्पर्धा वाले अंतर्राष्ट्रीय बाजारों के लिए तैयार किया जाता है।

कृषि विपणन के क्षेत्र मे काम कर रहे लोगों की क्षमताओ और योग्यताओ मे सुधार के लिए सगठित प्रयासो की आवश्यकता है। इसके लिए यह जरूरी है कि इस क्षेत्र मे शिक्षा, प्रशिक्षण और अनुसधान की वर्तमान प्रणाली का वस्तुनिष्ठ आकलन किया जाए ताकि । इसके प्रमुख दोषो को वैज्ञानिक ढग से निदान किया जा सके। इस तरह के निदान से भारत मे कृषि विपणन की भावी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए सुधारात्मक उपाय शुरू करने मे मदद मिलेगी। इस क्षेत्र मे कार्मिको की शिक्षा, प्रशिक्षण और अनुसधान आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए अनेक सस्थान कार्यरत है। जो इस समय अच्छे ढग से काम कर रहे हैं।

कृषि विपणन के अन्तर्गत सभी वस्तु विनिमय तथा क्रय विक्रय की क्रियाएं शामिल होती है। हमारे कृषि प्रधान देश की तरक्की एव खुशहाली के लिए कृषि विपणन व्यवस्था का बेहतर होना अति

आवश्यक है। अत सर्वप्रथम आजादी से पहले सन् १९३५ मे कृषि विपणन सलाहकार का कार्यालय खोला गया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति होने के बाद से इस सगठन का विस्तार और तेजी से हुआ तथा बाद मे उसका नाम बदलकर विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय कर दिया गया जो अब कृषि मन्त्रालय के अन्तर्गत काम कर रहा है। इसका मुख्यालय फरीदाबाद (हरियाणा) मे तथा प्रधान शाखा कार्यालय नागपुर मे है। यह निदेशालय कृषि, बागवानी, पशुधन, डेयरी तथा वनोत्पादो के लिए उपयुक्त गुणवत्ता, परिभाषाओ एव श्रेणी के आधार पर १५१ कृषि वस्तुओ पर मानको का निर्धारण करता है। जिसे एग्रीकल्चर मार्किंग ''कृषि चिन्ह'' अर्थात् ''एगमार्क'' कहा जाता है।

मण्डी समितियो को चलाने, नियत्रण तथा मार्ग दर्शन के लिए १९७२-७३ से राज्यो मे मण्डी परिषदो का गठन किया गया। इन परिषदों ने कृषकों के हित में खलिहान दुर्घटना बीमा योजना समूह, जनता व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा योजना, ग्रामीण गोदाम निर्माण, सडक और पुलिया निर्माण, ग्राम विकास योजना, पेयजल हेतु हैण्ड पम्प लगाने तथा खाण्डसारी इकाइयो हेतु एक मुश्त योजना आदि की शुरूआत वर्तमान कृषि विपणन व्यवस्था का उद्देश्य है।

सहकारी क्षेत्र मे नोडल एजेन्सी के रूप मे राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय सहकारी कृषि विपणन महासघ द्वारा समर्थन मूल्य पर चयनित कृषि उत्पादो की खरीद बिक्री एव आयात निर्यात से सम्बन्धित प्रमुख गतिविधियो का सचालन किया जाता है। गुजरात मे अमूल डेयरी के विपणन सघ की उपलब्धियाँ देश भर में अग्रणी स्थान रखती है। सहकारिता के आधार पर गुजरात मे अमूल डेयरी की सफल विपणन व्यवस्था की भाँति मध्य प्रदेश मे सोयाबीन और महाराष्ट्र तथा उत्तर प्रदेश मे गन्ने की फसल बहुत बड़े पैमाने पर होती है तीनो राज्यो मे ही विपणन व्यवस्था सहकारी क्षेत्र मे है। कृषि विपणन जागृति मे गुजरात के कृषक सबसे आगे है। गुजरात के कृषक जागरूक है अत लाभ उठाते हैं।

राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र की शाखा प्रतिदिन हर जिले मे स्थित अपने सूचना केन्द्रो से जानकारी लेकर अनाज मण्डियो मे चल रहे भाव का परिपत्र जारी करता है। इससे किसानों को अपने जिले की मडी मे बैठे-बैठे यह जानकारी मिल जाती है कि किस जिले मे किस अनाज का क्या भण्डार है और उसके

क्या भाव है। इस जानकारी के आधार पर कृषक अपनी फसल कब कहाँ और किस भाव पर बेचे इसका फैसला करते हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् कृषि उपजो के विपणन हेतु नियमित बाजारो एव सहकारी विपणन समितियो की सख्या मे वृद्धि हुई है। फिर भी अनेक दोष आज भी व्याप्त है। इनमे से कुछ दोष निम्न हैं।

- ❖ एक साधारण कृषक को अपने उपज का विक्रय करने के लिए अनेक प्रकार के व्ययो का भार सहना पड़ता है।
- ❖ कृषको को उसकी उपज के मूल्य का तुरन्त भुगतान नहीं किया जाता है। बल्कि काफी विलम्ब से किया जाता है।
- ❖ सामान्य कृषक अपनी उपज का भली प्रकार श्रेणीकरण भी नही कर पाता है।
- ❖ आज भी अपने देश के कृषको के पास अपने उपज के लम्बे समय तक सुरक्षित रखने के लिए उचित भण्डारण सुविधा का अभाव है।
- ❖ ग्रामीण क्षेत्रो के निकट, नियमित बाजार पर्याप्त सख्या मे नहीं है।
- ❖ भारतीय किसान पूर्णरूप से मानसून पर निर्भर है जो कि अनिश्चित है।

कृषि विपणन के बहुआयामी विकास के लिए भली भाँति तैयार किए गए अनुसधान कार्यक्रम की आवश्यकता है। जिसका उद्देश्य विपणन प्रक्रिया और वास्तविक बाजार दोनो मे सुधार होना चाहिए।

डा० राधाकृष्ण मुकर्जी के अनुसार भारत के किसान के पास वर्ष मे केवल १४६ कार्यदिवस उपलब्ध होते हैं। यह सच है कि बेकारी की इस समस्या का निदान न केवल कठिन अपितु दुरूह है। लेकिन विकेन्द्रीत औद्योगिक विकास से इसे कम आवश्य किया जा सकता है। फिर कृषि आधारित उद्योग स्थानीय ससाधनो पर आधारित होने के साथ-साथ श्रम प्रधान होते हैं और इसके लिए बहुत कम पूँजी विनियोग की आवश्यकता होती है।

वैसे तो विश्व का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल १३३९ करोड हेक्टेयर है किन्तु इसमे से मात्र १३७ करोड हेक्टेयर (लगभग ९ १०प्रतिशत) कृषि के अन्तर्गत आता है। जब हम भारत के सम्बन्ध मे बात करते हैं तो ज्ञान होता है कि हमारे यहाँ कुल भौगोलिक क्षे० ३२९ मिलियन (लगभग ३२.९ करोड़) हेक्टेयर

है जो कि विश्व के क्षेत्रफल का मात्र २ ४ प्रतिशत है जो विश्व की १५ प्रतिशत मानव जनसख्या को भोजन प्रदान करता है।

भारतीय मृदा मे औसत रूप से नाट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश की कमी है। सल्फर और जिक की भी कमी काफी मात्रा मे पाई जाती है। कहीं-कहीं लोहा, ताँबा की भी कमी प्रकाश मे आयी है। अनुसधान से यह भी पता चलता है कि धान-गेहूँ पद्धति मे १० मीट्रीक टन फसलो की उपज के लिए लगभग ७०० किलोग्राम नाइट्रोजन फास्फोरस एव पोटाश प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार गेहूँ आधारित अन्य फसल पद्धतियो मे ५००-७०० किलोग्राम प्रति हेक्टेयर ग्रहण किये जाते हैं जो जाने वाले उर्वरक तत्वो से कहीं अधिक है। जिसे केवल मृदा से पूर्ति कराना असम्भव है।

उल्लेखनीय है कि सन् १९८१-९१ के मध्य जनसख्या मे वार्षिक वृद्धि दर २१ ३ प्रतिशत रही जो भविष्य मे सन् २०००-२००५ एव २०१० ई० तक १०२३, ११३७ एव १२६३ मिलियन होने का अनुमान है। अत सन् २००० तक देश की १०२३ मिलियन जनसख्या की भरण-पोषण हेतु २४ करोड टन खाद्यान्न उत्पादन करना पड़ा, जबकि इसके विपरीत उर्वरको द्वारा २०६ लाख टन की पूर्ति सम्भावित है।

आज जब हम अधिक उपज देने वाली प्रजातियो से धान और गेहूँ की अधिकाधिक उपज ले रहे है और जनसख्या वृद्धि रूक नहीं पाई है। इतनी बड़ी जनसख्या के लिए भोजन जुटाना हमारे लिए वास्तव मे एक चुनौतीपूर्ण कार्य है एक अनुमान के अनुसार चावल के उत्पादन को सन् २००० तक ७२.६ मिलियन टन बढ़ामा गया। ठीक इसी प्रकार इन वर्षो मे गेहूँ के उत्पादन को क्रमश ७०, ८१ ३, ९४ ५ मिलियन टन बढाने की जरूरत होगी।

भारत ने पिछले ५० वर्षो के दौरान कृषि उत्पादन मे बहुत प्रगति की है। १९५०-५१ में खाद्यान्न उत्पादन ५ ०८ करोड टन था जो १९९६-९७ मे बढकर १९ १० करोड टन तक पहुँच गया । इस तरह देश खाद्यान्न उत्पादन मे आत्मनिर्भर हो गया है। १९५०-६१ के दौरान भारत की जनसख्या ४३ ९२ करोड़ थी जो १९९१ मे बढ़कर ८४ ६३ करोड तक पहुँच गई। अनुमान लगाया गया है कि १९९६-२००१ और २००१-२००६ मे जनसख्या क्रमश· १०० ६२ करोड़ तथा १०८ ५९८ करोड तथा २००६-२०११ मे ११६ ४२५ करोड़ तक हो जाएगी। १९९१ की जनगणना के अनुसार १९८० के समूचे दशक के दौरान

जनसख्या वृद्धि दर २ १० प्रतिशत रही। भारत की जनगणना के सदर्भ तिथि १ मार्च २००१ को ०० ०० बजे के अनुसार भारत के महारजिस्ट्रार एव जनगणना आयुक्त ने देश की अन्तिम जनसख्या १, ०२, ७०, १५, २४७ व्यक्ति घोषित की। पिछले दस वर्षों मे भारत की जनसख्या ८४ करोड ६३ लाख से बढकर अब १ अरब २ करोड ७० लाख हो गई है। जनसख्या मे वार्षिक दर २ १४ से घटकर १ ९३ प्रतिशत हो गई है। पिछले दशक (१९९१-२००१) मे जनसख्या मे २१ ३४ प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस दशक मे जितनी जनसख्या बढी वह दुनिया के पॉचवे सबसे बडे देश ब्राजील की कुल जनसख्या से अधिक है।

भारतीय अर्थव्यवस्था मुख्यत· कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है। इस समय फसल बुआई का वास्तविक क्षेत्र लगभग १४ करोड हेक्टेयर है और सकल बुआई क्षेत्र १७ ८० करोड़ हेक्टेयर से १८ १० करोड़ हेक्टेयर तक है। करीब २ ४० करोड़ हेक्टेयर भूमि बजर या परती रहती है। लगभग ५० प्रतिशत भूमि क्षेत्र में किसी न किसी वजह से उत्पादन की दृष्टि से इस्तेमाल सीमित हो गया है। भारत मे जोत का औसत आकार केवल १ ६९ हेक्टेयर है। ७६ प्रतिशत से अधिक लोगो के पास २ हेक्टेयर से भी कम जोत है। दस हेक्टेयर से अधिक जोत भूमि केवल २ प्रतिशत है। ७६ प्रतिशत जोत वाले लोग केवल २९ प्रतिशत क्षेत्र मे कृषि करते हैं।

अनेक प्राकृतिक दबावो और सभार सत्र की समस्याओ के बावजूद योजनाबद्ध कृषि के विकास स्वतत्र भारत की उपलब्धियो के इतिहास मे एक गौरवपूर्ण अध्याय है। ये उपलब्धियॉ हमारे किसानो, उत्पादको की कठोर मेहनत तथा अनुसधान प्रसार और निवेश एव सेवा ऐजेसियो के आवश्यक सहयोग के साथ-साथ योजना और उत्पादन कार्यक्रमो के कार्यान्वियन का परिणाम है।

सुझाव :-

उपर्युक्त समस्याओ को ध्यान मे रखते हुए भारत सरकार द्वारा यातायात साधनो, सग्रहण व्यवस्था एव कीमत सम्बन्धी सूचनाओ के प्रसारण हेतु अनेक प्रयास जारी है। इसके अतिरिक्त, सहकारी विपणन समितियॉ ग्रामीण अचलो मे अपने सदस्यो के कृषि पदार्थो को एक बड़ी मात्रा मे खरीदकर स्थान उपयोगिता के लाभ दिलाने का कार्य कर रही है। किसान को उचित कीमत दिलाने के लिए उन्नत कृषि विपणन की पर्याप्त

दशाओ का विकास होना आवश्यक है, साथ ही साथ किसानो को शिक्षित एव विपणन कला मे दक्ष होना आवश्यक होता है। हमारे देश मे किसानो के पास विक्रय योग्य अतिरेक का अभाव रहता है। जिसके कारण वे अपनी उपज को मण्डी स्थल तक नहीं ले जाना चाहते हैं, क्योकि यह मँहगा पडता है उसे गाँव मे ही बेच देना आसान समझते हैं। जिससे उन्हे उचित कीमत नहीं मिल पाती है।

किसानो को अपनी उपज का सही मूल्य प्राप्त हो सके इस सदर्भ मे सन् १९३० के आर्थिक मदी काल से ही मूल्य नीति तथा कृषि मूल्य स्थिरीकरण की दिशा मे प्रयास जारी है। सन् १९३५ मे गन्ना कानून पास किया गया जिसके अतर्गत राज्य सरकारो को किसानो द्वारा चीनी मिलो को बेचकर गन्ने के न्यूनतम मूल्य निर्धारित करने का अधिकार दिया गया। उत्तर प्रदेश गन्ना कानून सन् १९६३ मे पास किया गया जिसके अनुसार सहकारी समितियो द्वारा चीनी कारखानो को बेचा जाता है।

इसके अतिरिक्त मार्च १९६६ मे भारत सरकार ने श्री बी० वैंकटैया की अध्यक्षता मे खाद्यान्न नीति समिति नियुक्त की जिसके मुख्य उद्देश्य प्रचलित खाद्य क्षेत्र की व्यवस्था व खाद्यान्न वसूली व वितरण व्यवस्था की जॉच करना तथा देश के विभिन्न राज्यो व वर्गो के बीच उचित मूल्यो पर खाद्यान्न वितरण के उचित प्रबध के लिए आवश्यक सुझाव देना था।

उत्तर प्रदेश की अधिकाश जनसख्या ग्रामीण अंचलो मे निवास करती है। इसलिए प्रदेश के सर्वांगीण विकास हेतु ग्रामीण मार्गो का विस्तार किया जाना आवश्यक है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण मार्गो के निमार्ण कार्यक्रम को प्राथमिकता दी जा रही है। इसकी पुष्टि इस तथ्य से हो जाएगी की प्रदेश मे छठी योजना काल के लिए मार्ग एवं सेतु कार्य हेतु निर्धारित ४१५ करोड की योजना परिव्यय मे ३१५ करोड रू० ७५ ९ प्रतिशत धनराशि न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम हेतु आवटित की गयी है।

सड़क परिवहन, सड़क एवं संचार सुविधाओ की उपलब्धता से देश एव प्रदेश की आर्थिक एव सामाजिक समृद्धि का बोध होता है। सड़को के माध्यम से ही विज्ञान, तकनीकी की नवीनतम उपलब्धियाँ सुदूर अचलो मे प्रवेश पाती है तथा कम खर्च एवं समय के विभिन्न जीवनोपयोगी वस्तुएँ कृषि जन्य उपज, कच्ची एव उद्योग जनित तैयार सामग्री सुगमता पूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान तथा बाजारो मे पहुँचती है और

आम जनता को दैनिक उपभोग की आवश्यक वस्तुएँ आसानी से सुलभ हो जाती है। इसके अतिरिक्त रोजागार के उपर्युक्त अवसर उपलब्ध कराने मे भी सडको की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस प्रकार हमारे देश एव प्रदेश मे यातायात के साधनो के विस्तार हेतु सरकार सतत् प्रयास कर रही है एव इसमे सरकार को पर्याप्त सहायता भी मिली है।

हमारे गाँव मे सग्रह व्यवस्था अत्यन्त पिछडी अवस्था मे है जिससे अनाजो मे भारी क्षति होती है इसे रोकने हेतु अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति के सुझावो पर सरकार ने १ अगस्त १९५६ से कृषि उपज (विकास व गोदाम) निगम अधिनियम पास किया। इसके अन्तर्गत ही दिसम्बर १९५६ मे राष्ट्रीय सहकारी विकास व गोदाम परिषद् की स्थापना की गई। इसका मुख्य कार्य सहकारी आन्दोलन को प्रोत्साहित करना व गोदामो का निर्माण व प्रबन्ध करना है। इस प्रकार सन् १९५७ में केन्द्रीय गोदाम निगम की स्थापना हुई। वर्ष १९७५ मे बिहार राज्य गोदाम निगम स्थापित किया गया। १९६० ई० तक इस प्रकार के गोदाम निगम सभी प्रान्तो मे स्थापित किए गए। उत्तर प्रदेश राज्य भण्डारण निगम की स्थापना २० मार्च १९५८ को हुई थी।

भारत मे कृषि उपज (श्रेणीकरण व चिन्हीकरण) कानून सन् १९३५ मे पास किया गया। इस अधिनियम के बन जाने के कारण सरकार को प्रभाव व वर्ग स्थापित करने का अधिकार मिल गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत भारत सरकार के कृषि विपणन सलाहकार को नियमानुसार विभिन्न व्यक्तियो को अधिकार प्रमाण पत्र निर्गमित करने का अधिकार प्रदान किया गया है। भारत सरकार के कृषि उत्पादन (वर्गीकरण एव चिन्हाकन) अधिनियम १९३७ के प्राविधानो के अधिन एव पशुजन्य उत्पादो का विश्लेषण, वर्गीकरण, पैकिग एव चिन्हाकन कार्य उत्तर प्रदेश में कार्यरत ५ एगमार्क वर्गीकरण प्रयोगशालाओ के द्वारा मुख्य रूप से किया जा रहा है। यह प्रयोगशालाएँ लखनऊ, हल्द्वानी (नैनीताल), मेरठ, आगरा एव वाराणसी मे स्थित है। इस योजना के अन्तर्गत मुख्य रूप से खाद्य तेलों, मसालो, घी, मक्खन, शहद का वर्गीकरण किया जाता है। इसके अतिरिक्त कृषि उपज के वर्गीकरण का लाभ उत्तर प्रदेश के उत्पादको को पहुँचाने की दृष्टि से प्रदेश के नवनिर्मित मण्डी स्थलो मे कृषि विपणन विभाग द्वारा स्थापित ५० प्राथमिक वर्गीकरण इकाईयाँ कार्यरत हैं। इनके

द्वारा उत्पादक स्तर पर कृषि उत्पादो के वाणिज्यात्मक वर्गीकरण का कार्य भारत सरकार के विपणन एव निरीक्षण निदेशालय द्वारा दिये गये निर्देशो के अनुरूप गुण निर्दिष्टयो के आधार पर दृष्टि परीक्षण से किया जाता है।

भारतीय कृषि साख की आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु २६ दिसम्बर १९७५ को एक अध्यादेश जारी किया गया जिसके अतर्गत ५० क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको की स्थापना की जानी थी, जिसके अनुसार २ अक्टूबर १९७५ को उत्तर प्रदेश मे २, राजस्थान मे १, हरियाणा मे १, पश्चिम बंगाल मे १, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की स्थापना की जा चुकी है। जिसकी ६४१६ शाखाएँ २४७ जिलो मे कार्यरत है। १९ जुलाई १९९६ को १४ व्यापारिक बैंको का एव ५ अप्रैल १९८० को ६ व्यापारिक बैको का राष्ट्रीयकरण हो जाने के पश्चात् व्यावहारिक बैंको द्वारा कृषि वित्त मे महत्वपूर्ण योगदान दिया जाने लगा है।

इसके अतिरिक्त सहकारी क्षेत्र मे भी कृषि साख उपलब्ध कराने की दिशा मे उत्तर प्रदेश मे महत्वपूर्ण कार्य किये जा रहे हैं। सहकारी ऋण एव अधिकोषण योजना के अतर्गत प्रदेश के कृषक परिवारो को सहकारिता की परिधि मे लाना है। तथा कृषि कार्यो की पूर्ति हेतु अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण की सम्पूर्ण आवश्यकताओ की यथा समय उचित ब्याज दरो पर आपूर्ति कर उनकी सामाजार्थिक समृद्धि सुनिश्चित करते हुए देश के कृषि उत्पादन एव समग्र विकास मे वृद्धि करना है।

7.3

भारत मे विनियमित बाजारो की स्थापना उस समय आरम्भ हुई जब ब्रिटिश सरकार मैनचेस्टर की सूती वस्त्र मिलो को उचित मूल्य पर शुद्ध कपास के सभरण की आवश्यकता अनुभव की। कृषि विपणन व्यवस्था मे व्याप्त दोषो एव कुरीतियो को दूर करने हेतु उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रथम प्रयास सन् १९३८ मे किया गया था, किन्तु १९३९ मे युद्ध सम्बन्धी मसले पर कॉंग्रेस मत्रीमडल द्वारा त्याग पत्र दे देने के कारण इस विधेयक पर विचार नहीं हो सका। स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् योजना आयोग ने कृषि मण्डियों के विनियमन पर जोर दिया। १० नवम्बर १९६४ से राज्य मे कृषि उत्पादन मण्डी अधिनियमन लागू हुआ। वर्ष १९६४ मे

नियमावली बनी ताकि उत्पादको को उनकी उपज का उचित मूल्य, व्यापारियो को अपने परिश्रम का उचित प्रतिफल तथा उपभोक्ता की इच्छित वस्तु प्राप्त हो।

मडियो के विनियमन से पूर्व अनियत्रित बाजारो मे किसानो से अनेक प्रकार की कटौतियाँ व्यापारी वसूल करते थे। फलत उपभोक्ता को रूपये मे किसान का हिस्सा बहुत ही कम हो जाता था। किन्तु अब मण्डी मे वसूल किए जाने वाले खर्च स्पष्ट एव पूर्व निश्चित हैं नियमित मडियो मे अनियमित मडियो की अपेक्षा खर्चे कम लिए जाते हैं और किसानो एव विक्रेताओ से मध्यस्थ मनमाने खर्चे नही वसूल सकते हैं।

आज मानवीय जीवन का हर पहलू व्यावसायिक सोच से प्रेरित होता जा रहा है। किसी भी तरह के कार्य को करने से पूर्व उसमे से होने वाले लाभ का मूल्याकन पहले किया जाता है। कृषि कार्य से जुड़े किसान इस बात की शिकायत बहुत करते हैं कि उन्हे इतनी आमदनी नही मिलती है कि वे अपने जीवन स्तर मे गुणात्मक सुधार कर सके।

उत्तर प्रदेश मे कृषि उत्पादन के क्रय - विक्रय को विनियमित करने तथा मडियो की स्थापना के उद्देश्य से वर्ष १९६९ मे कृषि उत्पादन मडी अधिनियम पारित किया गया तथा वर्ष १९६४ मे नियमावली बनी, यह नियमावली उत्तर प्रदेश मे कृषि उत्पादन मडी नियमावली १९६४ कही जाती है। इस अधिनियम के अन्तर्गत अब तक प्रदेश की २५३ मडियो का विनियमन किया गया है, जिनके साथ ३७५ उपमंडी स्थान है।

उत्तर प्रदेश कृषि उत्पादन मडी समिति अधिनियम १९७२ के द्वारा प्रथम मडी समितियों के सदस्यो एव पदाधिकारियो के कार्यकाल को समाप्त करके मडी समिति तथा इसके सभापति एव उपसभापतियो के समस्त अधिकार, कृत्य एव कर्तव्य जिलाधिकारियो मे निहित कर दिये गये थे।

वर्तमान समय मे राज्य सरकार के द्वारा उ०प्र० कृषि उत्पादन मण्डी समिति अधिनियम १९८४ पारित किया गया है। जिसके अन्तर्गत मण्डी समिति के समस्त अधिकारो का प्रयोग, कृत्यो का सम्पादन और कर्तव्यो का पालन राज्य सरकारो के द्वारा नामित की जाने वाली ग्यारह सदस्यीय दल समिति के द्वारा किए जाने की व्यवस्था है।

मण्डी के अन्तर्गत विक्रेता अथवा क्रेता द्वारा क्रय-विक्रय की प्रक्रिया मे किए जाने वाले खर्चे को मण्डी खर्च कहते हैं। मण्डी खर्च के अन्तर्गत अढतिया को आढत, दलाल को दलाली, तौलने के लिए

तौलाई, पल्लेदार की पल्लेदारी, मण्डी शुल्क, बाजार शुल्क आदि के अतिरिक्त किसान को मिलावट के लिए गर्दा, उपज सूखने से उसका वजन घट जाता है इसलिए दलाल, मेहतर, पानीवाला आदि के लिए दाना तथा अस्पताल, गोशाला मदिर आदि के लिए धर्मादा आदि देने पड़ते हैं। इन विभिन्न कटौतियो के कारण उपभोक्ता के रूपये मे किसान का हिस्सा बहुत ही कम हो जाता है। एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत मे उपभोक्ता के रूप मे किसान का हिस्सा चीनी में ६५ १७ प्रतिशत, अलसी मे ७९ ३५ प्रतिशत, आलू में ५६ ३० प्रतिशत, गेहूँ मे ६८ ०० प्रतिशत पाया गया है। कुल विपणन व्यय मे मध्यस्थो का प्रतिशत हिस्सा सबसे अधिक महाराष्ट्र मे व सबसे कम आध्र प्रदेश मे पाया गया है।

इस सदी के ७० के दशक मे प्रकाश-असवेदी अधबौनी किस्मो के आने से धान और गेहूँ की पैदावार मे आशाजनक प्रगति दिखाई देने लगी थी। ये किस्मे किसानो के बीच खाद्य-पानी देने पर अच्छी उपज देने के कारण प्रचलित होने लगी जिससे खाद्यान्न उत्पादन मे क्रान्ति सी आ गई। जो सन् १९५०-५१ मे ५० मिलियन टन से बढकर १९९४-९५ मे १९१ ०४ मिलियन टन तक पहुँच गया है। अर्थात् ४ गुनी (लगभग) उत्पादन मे वृद्धि मिल चुकी है, जिससे सन् १९६८ मे डॉ० विलियम गाड ने हरित क्रान्ति का नाम दिया जो १९६८ से ८० तक यह युग रहा। खाद्य एव कृषि सगठन ने "विश्व कृषि सन् २००० की ओर" अनुमान लगाया है कि धरती की ३०-५० प्रतिशत जमीने अनुचित प्रबन्ध के कारण खराब हो चुकी है। खास तौर से पिछले २५ वर्षों मे खेती के लिए जगल साफ करने की और खेती से ज्यादा पैदावार निचोडने के दुहरे लालच ने मिट्टी के कटाव, पोषक तत्वो, सूक्ष्म जीवो एव जीवाश की कमी की समस्या बढा दी है। इस प्रकार लगभग हर वर्ष ६० लाख हेक्टेयर भूमि खेती के योग्य नहीं रहती। कुछ इलाको मे तो मिट्टी का कटाव इतना ज्यादा हो चुका है कि भारी खर्चा करने पर भी इन मिट्टियो मे जान डालना मुश्किल है। दूसरा कारण जल अर्थात् सिचाई से सम्बन्धित है "विश्व पर्यावरण विकास आयोग ने अपनी रिपोर्ट "हमारा साझा भविष्य" मे विश्व के जलश्रोतो की गम्भीर स्थिति की ओर ध्यान दिलाया गया है। रिपोर्ट मे कहा गया है कि सन् १९४० से १९८० के बीच ४० वर्षों मे दुनिया मे पानी की खपत दोगुनी हो गई है और सन् २००० मे यह फिर दोगुनी हो गई।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि टिकाऊ खेती कोई एक नारा नही है बल्कि भविष्य के लिए मानव की अत्यन्त आवश्यकता भी है। एक सर्वोत्तम रणनीति यह होगी कि पर्यावरण के कुप्रभाव को कम किया जाए और आगे चींटी के झुण्ड की तरह बढती हुई इस मानव जनसख्या की वर्तमान एव भविष्य की आवश्यकताओ को पूरा किया जा सके।

सुझाव :-

यह सत्य है कि मडी अधिनियम द्वारा निर्धारित व्यापारिक परिव्यय से अधिक वसूली चोरी छिपे मध्यस्थ किसानो से कर लेते हैं किन्तु विनियमन से पूर्व होने वाली वसूली की तुलना मे यह काफी कम है। विनियमित मडियो मे विपणन प्रणाली तथा व्यवहार वैज्ञानिक एव सुसगठित होते हैं। इनमे एक रूपता पायी जाती है। विनियमित मडियो मे तौल मे कोई गडबडी नहीं पायी जाती है क्योकि तौल मडी के कर्मचारियो के सामने होती है। किसानों को भुगतान हेतु इन्तजार नही करना पडता है। भुगतान माल के बिक्री के तुरन्त बाद कर दिया जाता है। विनियमित मडियो मे प्रभावीकरण एव वर्गीकरण की सुविधाये भी प्रदान की जाती है जिससे कृषको को उत्पादन का सही मूल्य प्राप्त हो जाता है। विनियमित मडियो की आमदनी का कुछ हिस्सा कृषको की सुविधा तथा आराम के लिए व्यय किया जाता है ताकि पशुओ एव मालो को धूप एव पानी से सुरक्षित रखा जा सके। सडको को पक्का कराया जाता है। ताकि किसान को अपना माल मण्डी तक लाने मे असुविधा न हो। विनियमित मण्डियो मे जितने भी मध्यस्थ कार्य करते है उनको मडी समिति से अनुज्ञा पत्र लेना पडता है। यदि मध्यस्थ किसी प्रकार की अनियमितता करने से कतराते है जिससे इन मडियो मे अनियमितताओ की कमी पायी जाती है। विनियमित मडियो से उपभोक्ताओ को भी लाभ होता है, क्योकि उनको उचित मूल्य पर वर्गीकृत एव श्रेणीकृत वस्तुएँ प्राप्त होती है। स्पष्ट है कि विनियमित मण्डियो से किसान, विक्रेता एव उपभोक्ता तीनो को लाभ हुआ है।

7.4

उत्तर प्रदेश मे तिलहन फसलो का एक महत्वपूर्ण स्थान है। भारत मे क्षेत्राच्छादन की दृष्टि से खाद्यानो के पश्चात तिलहनी फसलो का दूसरा स्थान है। देश के तिलहन उत्पादन मे उत्तर प्रदेश का सातवॉ स्थान है। देश के कुल उत्पादन का ७ ४ प्रतिशत तेल उत्तर प्रदेश मे उत्पादित होता है। प्रदेश मे १९९६-९७ मे १२ ७८ लाख हे० क्षेत्र मे तिलहनी फसले बोयी गयी थी, जिसमे १५ ४६ लाख मी०टन उत्पादन प्राप्त हुआ था जो क्षेत्रफल एव उत्पादन के मामले मे १९५०-५१ से क्रमश ४ व ८ गुना अधिक था, लेकिन १९९७-९८ मे क्षेत्रफल एव उत्पादन मे प्रतिकूल मौसम के कारण कमी हुई है। वर्ष १९९७-९८ मे क्षेत्रफल ११ ६५ लाख हे० और उत्पादन १० ०२ लाख मी० टन हुआ तथा १९९८-९९ मे १० ५१ लाख हे० रहा जिससे उत्पादन १० ८९ लाख मि० टन प्राप्त हुआ।

तिलहन उ०प्र० की मुख्य नकदी /औद्योगिक फमल है। यहॉ पर देश के कुल तिलहन उत्पादन का २० प्रतिशत उत्पादित होता है। राई सरसो के उत्पादन मे तो इस प्रदेश का प्रथम स्थान है, परन्तु यह बडी ही निराशाजनक बात है कि यद्यपि तिलहनी फसलो के अन्तर्गत क्षेत्रफल मे कोई खास गिरावट नहीं आई है। परन्तु औसत उत्पादन प्रति हेक्टेयर एव कुल उत्पादन घटा है। तिलहनी फसलो एव उनके तेलो का मूल्य दिन-प्रतिदिन बढता जा रहा है जिसके कारण एक सामान्य आदमी को अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड रहा है।

उपर्युक्त उद्देश्यो को ध्यान मे रखते हुए ही हमे तिलहन उत्पादन नीति का निर्धारण करना होगा। हम उसकी प्रतीक्षा नहीं कर सकते जबकि गेहूँ की भॉति तिलहन की अधिक उपज देने वाली फसले निकलेगी बल्कि जो हमारी वर्तमान प्रणालियॉ है उनसे ही उत्पादन बढाने का कार्यक्रम बनाना होगा क्योकि अभी भी उनकी क्षमता से काफी कम औसत उत्पादन प्राप्त हो रहा है।

उत्तर प्रदेश मे तिलहन विकास योजना तिलहनो के उत्पादन बढाने के उद्देश्य से पिछड़े क्षेत्र बुन्देलखण्ड पूर्वी जिले एव तिलहन की क्षमता रखने वाले अन्य जनपदो मे मूँगफली, तिल, अण्डी, राई सरसो, अलसी एव कुसुम के उत्पादन बढाने हेतु वर्ष १९९१-९२ मे कार्यान्वित कराई गई। रबी, तिलहन कार्यक्रम मे

वर्ष १९९१-९२ मे विशेषत यह प्रयास करने का विचार रखा गया था कि राई - सरसो के वर्तमान शुद्ध क्षेत्रफल मे सघन विधियाँ अपनाकर इसके उत्पादन मे वृद्धि करना तथा साथ ही साथ जो क्षेत्रफल राई - सरसो के अन्तर्गत मिश्रित बोया जाता है। उसके शुद्ध क्षेत्रफल को बदलता है।

प्रदेश में कमोबेश मात्रा मे प्राय सभी तिलहनो की खेती होती है, किन्तु लाही सरसो का उत्पादन सर्वाधिक है। अत लाही सरसो के अतिरिक्त अन्य तिलहनी फसल जैसे अलसी, मूँगफली के विपणन सम्बन्धी क्रियाएँ हैं चूँकि सभी तिलहनो की विपणन क्रियाएँ लगभग एक समान है और कुल ९ प्रकार के तिलहन हमारे देश मे पाए जाते हैं। अत सभी तिलहनो का अलग-अलग अध्ययन करना न तो सभव ही रहा और न ही अध्ययन की दृष्टि से आवश्यक।

तिलहन के एकत्रीकरण मे तेल मिलें महत्वपूर्ण स्थान रखती है। तेल दो प्रकार से निकाला जाता है। (१) तेल घानियों द्वारा (२) तेल मिलो द्वारा। प्राय तेल मिले पूँजी-पतियो की होती है और ये क्रेताओ के साथ प्रतिस्पर्धा करती है किन्तु जिन क्षेत्रो मे तेल मिले नहीं है वहाँ पर तेल घानियाँ महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। किसान द्वारा अपने कुल तिलहन की उपज का अनुमानत· १८ प्रतिशत तक अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए रोक लिया जाता है। शेष आधिक्य को वह या तो स्वय मडी को, गाव के व्यापारी को, थोक व्यापारी को, घूमता फिरता व्यापारी, गाँव की घानी को, मिल के प्रतिनिधि को एव सहकारी समिति को बेच देता है।

जैसा कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे यह सप्ष्ट किया जा चुका है कि विपणन के प्राय सभी कार्यो मे वित्त की आवश्यकता पड़ती है। बिना वित्त के विपणन का चक्र चलना कठिन होता है। हमारे देश मे किसानो के पास विक्रय योग अतिरेक की कमी है। इसके अतिरिक्त हमारे देश के किसानो की आर्थिक स्थिति खराब है। अत ऐसी स्थिति मे उन्हे ऋण का सहारा लेना आवश्यक होता है। गाँव मे किसान को जिन स्रोतो से ऋण उपलब्ध होता है, तिलहन उत्पादक किसान उन स्रोतो से ऋण प्राप्त करते है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय तिलहन विकास परियोजना के अन्तर्गत तिलहन की खेती हेतु अनुदान राशि प्रदान की गयी है।

अत उत्तर प्रदेश मे राष्ट्रीय तिलहन विकास परियोजना के अन्तर्गत विभिन्न विकास कार्यक्रमो जैसे कृषि रक्षा, उर्वरक वितरण, गोदाम निर्माण, रसायन छिड़काव आदि के सन्दर्भ मे कृषको को अनुदान की सहायता प्रदान कराई गई है। इससे प्रदेश के तिलहन उत्पादको को पर्याप्त प्रोत्साहन मिलने की सम्भावना है।

सुझाव :-

तिलहनी फसलो के विपणन मे मध्यस्थो की अधिक संख्या पायी जाती है। चूँकि इन फसलो के एकत्रीकरण के अन्तिम बिन्दु औद्योगिक निर्माता होते हैं, अत सबसे पहले इन फसलो के विपणन में मध्यस्थो की सँख्या कम की जाए।

तिलहनी फसलो की उत्पादकता मे वृद्धि हेतु उच्च गुणवत्ता युक्त प्रमाणित बीज की मात्रा, सतुलित मात्रा में उर्वरको का प्रयोग, जिप्सम का प्रयोग, कीट रोगो से बचाव एवं समय से बुवाई, सिचाई, निराई-गुड़ाई पर बल दिया जाय। इसके लिए न्याय पचायतवार क्षेत्र की जानकारी करने के उपरान्त ऐसे मुख्य बिन्दु चिन्हित कर लिए जाय जिनके कारण उत्पादकता प्रभावित होती हैं। इन्हीं चिन्हित बिन्दुओ पर आधारित तिलहन उत्पादन को अभियान के रूप मे न्याय पचायत/ग्राम पचायत मे चलाया जाय। ऐसे नियोजित एव क्रियान्वित कार्यक्रम से फसल पर जो प्रभाव पड़ेगा उसे अन्य कृषको को भी दिखाया जाय।

बुन्देलखण्ड मे खाली खेतो मे तिलहनी फसलो की बुवाई करके तथा ज्वार बाजरा, असिचित धान के स्थान पर तिलहनी फसले उगाकर क्षेत्र का विस्तार किया जाय। सूरजमुखी के क्षेत्र का विस्तार इलाहाबाद, कानपुर, बरेली, मुरादाबाद, मेरठ, आगरा एव लखनऊ मे किया जाये। इसके साथ ही जायद मे आलू, सब्जी, मटर, तोरिया, गन्ना की पेड़ी/अगेती, राई/सरसो की कटाई के उपरान्त खाली खेतो मे सूरजमुखी की बुवाई हेतु कृषको को प्रेरित किया जाय।

तिलहन की बिक्री मुख्यत उसकी किस्म के आधार पर की जाती है। अलग-अलग किस्म के तिलहन का भाव अलग-अलग होता है। तिलहन की किस्म का उसके विपणन पर अधिक प्रभाव पडता है। यदि तिलहन खराब किस्म का होता है तो तेल भी अच्छे किस्म का नहीं प्राप्त किया जा सकता है। फलस्वरूप इसके मूल्य भी कम मिलते हैं, यही कारण है कि तिलहन मे शुद्धता को अधिक महत्व दिया जाता है। अत तिलहन

की तैयारी मे किसानो को अधिक ध्यान देना चाहिए, किन्तु इस सम्बन्ध मे मुख्य कठिनाई यह है कि तिलहन की खेती पृथक रूप से नहीं की जाती वरन् अन्य खाद्य फसलो के साथ की जाती है। फलस्वरूप इसमे अन्य खाद्यान्न मिल जाते हैं और इनका श्रेणीयन तथा वर्गीकरण करना कठिन हो जाता है। तिलहन मे मिलावट दो प्रकार की होती है। (१) अन्य तिलहनो की मिलावट तथा (२) गेहूँ आदि अन्य अनाजो की मिलावट। व्यवहार मे शुद्ध तिलहन मिलना कठिन होता है। तिलहनो का वर्गीकरण उनके रग-रूप या आकार के आधार पर किया जाता है जैसे अलसी का वर्गीकरण बडा व छोटा के आधार पर किया जाता है। सरसो या लाही का पीली भूरी के आधार पर किया जाता है।

7.5

भारत मे तेल निकालने वाले बीजो मे उत्पादन की दृष्टि से लाही व सरसो का स्थान मूँगफली के बाद दूसरा है। इसकी खेती पूरे देश मे लगभग १८६५ ४५ हजार हेक्टेयर भूमि में होती है और पूरे देश का कुल उत्पादन लगभग ५५५ ७५ हजार मैट्रिक टन है। लाही सरसो का उत्पादन उत्तर प्रदेश मे देश के कुल उत्पादन का ४८ ६६ प्रतिशत है क्षेत्रफल के दृष्टि कोण से पूरे देश के लाही सरसो के उत्पादन क्षेत्र का ३८ ७५ प्रतिशत भाग केवल उत्तर प्रदेश मे ही है। इस प्रकार लाही सरसो के उत्पादन एव क्षेत्रफल दोनो की दृष्टि से पूरे देश मे उत्तर प्रदेश का प्रथम स्थान है।

मडलवार के दृष्टिकोण से देखे तो आगरा मण्डल सरसो के क्षेत्रफल और उत्पादन दोनो दृष्टियो से उत्तर प्रदेश मे प्रथम स्थान रखता है। इसके बाद क्रमश कानपुर, मथुरा, इटावा, मैनपुरी, खीरी, फर्रूखाबाद जनपदो का स्थान आता है।

किसान अपनी उत्पत्ति का कुछ भाग बीज के लिए एव कुछ भाग घरेलू उपभोग हेतु रखकर शेष भाग की बिक्री कर देते हैं। किसान द्वारा लाही सरसो की बिक्री प्राय गाँव के व्यापारी, घूमता-फिरता व्यापारी, थोक व्यापारी, सीधे मडी को एवं मिल को की जाती है। विभिन्न जोत वर्ग के कृषक अपनी कुल उपज का औसतन १२ ४४ प्रतिशत भाग स्वय मडी मे ले जाकर बेचता है। स्वय मडी मे ले जाकर बेचने मे बड़े

किसानो का प्रतिशत भाग अधिक है, और छोटे किसानो के पास विपणन योग्य अतिरेक कम होता है। जिसकी वजह से वह अपनी उपज को शहर या बाजार मे ले जाने की अपेक्षा गॉव मे ही बेच देना उपर्युक्त समझते है।

किसान को सस्थागत एव निजी श्रोतो से ऋण प्राप्त होते हैं निजी श्रोतो मे मुख्यत बडे किसान, महाजन, साहूकार समितियॉ एव बैंक प्रमुख हैं। राई सरसो हेतु यह राशि ५ ५० रू० प्रति हेक्टेयर निर्धारित की गयी है। प्रदेश मे तिलहन उत्पादन को बढावा देने हेतु तिलहन की फसल मे उर्वरक एव कृषि रक्षा उपचार हेतु कृषको को सहकारिता विभाग द्वारा ऋण वितरण किया जाता है।

गोरखपुर प्रखण्ड मे किए गए सर्वेक्षण के अनुसार कृषको को प्राप्त होने वाले ऋणो से विभिन्न सस्थाओ का भाग इस प्रकार रहा है। बड़े किसान तथा कृषक महाजन ३२.२० प्रतिशत, बनिया एव मध्यस्थ २३ ४४ प्रतिशत, सरकार एव बैंक ५.४४ प्रतिशत, सहकारी समितियॉ ३० ०६ प्रतिशत अन्य ८ ८ प्रतिशत।

विपणन हेतु बनियो को भी ऋण की आवश्यकता होती है। चूँकि बनियो मे इन्तजार करने की शक्ति भी अधिक होती है अत अधिक लाभ कमाने की आशा मे वह कृषि पदार्थो को सग्रहीत भी कर लेते हैं। अत किसानो से खरीदे गये कृषि पदार्थों के मूल्यो का भुगतान करने के लिए एव अन्य आवश्यकताओ के लिए यदि पैसे की आवश्यकता पडती है तो वे अल्पकालीन ऋणो से अपना काम चला लेते हैं, लेकिन बनिया प्राय अपनी रकम अधिक दिनो तक फॅसा कर रखना नहीं पसद करता है। उनका प्रयास होता है कि वे अपने ही पूँजी से कई बार खरीद बिक्री करके कुल लाभ को अधिकतम किया जाये। बनियो को ऋण प्राय थोक व्यापारी, अढ़तिये, मडी के फुटकर व्यापारी व बैंको से प्राप्त होता है। अढतिये बनियो को ऋण प्राय उनकी साख के आधार पर देते हैं। अढ़तिये दिये गये धनराशि का सरखत बनियो से लिखवा लेते हैं। अढ़तिये और थोक व्यापारी को यदि ऋण की आवश्यकता होती है तो ये प्राय बैंक से ऋण प्राप्त करते हैं। बैंक उनके बिक्री कर के आधार पर पूॅजी का पता लगा लेते हैं और इस पूँजी का ६० प्रतिशत तक ही ऋण के रूप मे देते हैं। अढ़तियो को ऋण तेल निकालने वाली मिलो द्वारा भी दिये जाते हैं।

उत्पादक सरसो की जब बिक्री कर रहा होता है तो उसे प्रति टन ४०० रू० विपणन खर्च वहन करने पड़ते हैं। जिससे उत्पादक को अपनी उपज की वास्तविक कीमत से ४०० रू० कम प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार उत्पादक द्वारा वहन किया गया विपणन खर्च उपभोक्ता कीमत का ६ ५ प्रतिशत है। उत्पादक द्वारा वहन किये जाने वाले विपणन खर्चों मे दलाली, चुँगी, पल्लेदारी, कर्दा, नमूना आदि सम्मिलित हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जिस उपज की उत्पादक को ३९६० रू० प्रति क्विटल की दर मे कीमत प्राप्त हो रही है, वही उपज (उत्पादक ⇨ फुटकर व्यापारी ⇨ थोक व्यापारी ⇨ मिल) कई विक्रय भागो से होकर मिल मालिक तक पहुँचती हैं तो वह ४६६० रू० प्रति क्विटल से बिक रही है। इस प्रकार मिल मालिक द्वारा दी गयी कीमत और उत्पादक को प्राप्त कीमत मे ७०० रू० प्रति क्विटल का अन्तर आ रहा है। अब मिल मालिक द्वारा विधायनी क्रिया सम्पन्न होती है, जिसमें होने वाले खर्च इस प्रकार है। सरसो का सफाई का खर्च ५० रू० प्रति क्विटल, पेराई की लागत २०० रू० प्रति क्विटल, प्रतिस्थापन खर्च ५० रू० प्रति क्विटल, भराई टीना पैकेजिग के खर्चे १६१० ३७ प्रति क्विटल। इस प्रकार मिल मालिक द्वारा वहन किया गया कुल खर्च ४१३०.७५ रू० प्रति टन है।

अत सरसो तेल की उपभोक्ता कीमत मे सरसो उत्पादक का हिस्सा मात्र ६४ ७३ प्रतिशत शेष ३५ २७ प्रतिशत मे विभिन्न खर्च एव मध्यस्थों का प्राप्त लाभाश सम्मिलित है।

सुझाव :-

व्यावसायिक फसलो के विपणन मे मध्यस्थो की अधिक संख्या पाई जाती है चूँकि इन फसलो के एकत्रीकरण के अन्तिम बिन्दु औद्योगिक निर्माता होते हैं, अत ये कृषि पदार्थ पहले विभिन्न विक्रय मार्गो का अनुसरण करके औद्योगिक निर्माता तक पहुँचते है, तत्पश्चात इनको औद्योगिक इकाइयो द्वारा औद्योगिक उत्पादो मे रूपातरित करके अतिम उपभोक्ता तक पहुँचाया जाता है। उदाहरणत· सरसो एव सरसो तेल के एकत्रीकरण एव वितरण की क्रिया मे निम्न प्रक्रिया मार्ग को अपनाया गया है।

उत्पादक ⇨ फुटकर व्यापारी ⇨ थोक व्यापारी ⇨ निर्माता (तेल मिल)

निर्माता ⇨ थोक व्यापरी ⇨ फुटकर व्यापारी ⇨ उपभोक्ता

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि सर्वप्रथम सरसो की विभिन्न विपणन कार्यकर्ताओ के माध्यम से निर्माता तक पहुँचाया जाता है। निर्माता द्वारा विधायनी क्रिया सम्पन्न होती है। तत्पश्चात् सरसो एव सरसो तेल का उत्पादन होता है। अब निर्माता द्वारा विभिन्न विपणन कार्यकर्ताओ के माध्यम से इन औद्योगिक उत्पादो को अतिम उपभोक्ता तक पहुँचाया जाता है। स्पष्ट है कि अन्य कृषि पदार्थों की तुलना मे व्यावसायिक फसलो के विद्यमान की प्रक्रिया अधिक जटिल होती है एव इसमे मध्यस्थो की अधिकता भी पाई जाती है। परिणामत उत्पादन को प्राप्त कीमत और उपभोक्ता द्वारा दी गई सब कीमत मे अधिक अन्तर आ जाता है।

सरसो तेल की उपभेक्ता कीमत मे उत्पादक से लेकर अन्तिम उपभोक्ता तक के अनेक विपणन सम्बन्धी खर्चे एव विपणन कार्यकर्ताओ के लाभाश सम्मिलित है। परिणामत उत्पादक द्वारा प्राप्त की गयी कीमत एव उपभोक्ता द्वारा दी गयी कीमत मे अधिक अन्तर आ गया है। अत इस बात पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि विपणन व्यय का वास्तविक भुगतान करने वाला कौन सा वर्ग है। चूँकि एक ओर उत्पादक (किसान) द्वारा वहन किए जाने वाले विपणन खर्चो का हस्तातरण सम्भव नही हो पाता है, अत यह खर्च उत्पादक को ही अपनी उपज की कीमत में से अदा करना होता है। जिससे उसे अपनी उपज की वास्तविक धनराशि से कम धनराशि प्राप्त होती है। जबकि दूसरी ओर उपभोक्ता कीमत मे समस्त विपणन खर्चो के सम्मिलित हो जाने के कारण उपभोक्ता कीमतो मे वृद्धि हो जाती है। और लाभ बिचौलियो को मिलता है।

अत विभिन्न जोत वर्ग के किसान को अपनी कुल स्वय मण्डी मे ले जाकर बेचना चाहिए ताकि अधिक से अधिक मुनाफा मिल सके। स्वय मे ले जाकर बेचने मे बडे किसानो का प्रतिशत भाग अधिक है, और छोटे किसानो का कम है, ऐसा इसलिए होता है कि छोटे किसानो के पास विपणन योग्य अतिरेक कम होता है जिसकी वजह से वह अपनी उपज को शहर या बाजार मे ले जाने की अपेक्षा गॉव मे ही बेच देना उपयुक्त समझते हैं।

सम्पूर्ण भारत का आधे से अधिक गन्ना अकेले उत्तर प्रदेश मे उत्पादित होता है। इसलिए उत्तर प्रदेश को भारत का सबसे बडा गन्ना उत्पादक राज्य कहा जाता है। विश्व के कुल गन्ना उत्पादन का २० प्रतिशत गन्ना अकेले भारत मे उगाया जाता है। यहाँ २० ५४ लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल मे गन्ने की खेती की जाती है। उत्तर प्रदेश मे कुल ११९ चीनी मिलें स्थापित है। जिनमे से १०० चीनी मिले इस वर्ष कार्यरत है। इनमे से २२ चीनी मिले सरकारी क्षेत्र मे २७ चीनी मिले सहकारी क्षेत्र मे तथा ५१ चीनी मिलें निजी क्षेत्र मे है।

वर्ष १९९८-९९ मे चीनी मिलो की गन्ना किसानो ने ३२५९ ८९ करोड रू० का गन्ना बेचा। इसी प्रकार वर्ष १९९९-२००० में कुल ४०९२ २७ करोड रू० का गन्ना चीनी मिलो द्वारा खरीदा गया। वर्ष २०००-०१ मे किसानो ने पुन ३९८५ ६७ करोड रू० का गन्ना चीनी मिलो को बेचा। वर्तमान शासन की कुशल अनुश्रवण व्यवस्था तथा दृढ़ सकल्प के कारण जहाँ वर्ष २०००-०१ मे विगत वर्ष के शत-प्रतिशत गन्ना मूल्य का भुगतान सुनिश्चित कराया गया वहीं इस वर्ष के कुल देय गन्ना मूल्य रूपया ३९८५ ६८ करोड मे से ७ अगस्त २००१ तक गन्ना किसानो को ३७३० ४६ करोड रूप का भुगतान किया जा चुका है ,जो कुल देय का ९३ ६० प्रतिशत है।

लगभग चार अरब की विशाल पूँजी को गाँवो की ओर मोड़ा गया है। जिससे कि गाँवो की खुशीहाली बढी है। प्रदेश मे खाडसारी एव गुड उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिए अनेक निर्णय वर्तमान सरकार द्वारा लिये गये हैं। प्रदेश मे कुल १०६२ लाइसेसकृत इकाईयाँ है जिनमे से इस वर्ष ६७२ इकाईयाँ कार्यरत रही है। इनके द्वारा कुल ७४२ ४५ लाख कुन्तल गन्ना पेरकर ३१ ६१ लाख कुतल खाडसारी एव ग्यारह लाख कुतल गुड का उत्पादन किया गया है।

पूरे देश मे लगभग २७ लाख हेक्टेयर भूमि मे गन्ना पैदा किया जाता है। इसमे से अधिकाशत लगभग ८० प्रतिशत उत्तर भारत मे तथा शेष बीस प्रतिशत दक्षिण भारत मे उपजाया जाता है। भारत वर्ष के पूरे क्षेत्रफल का लगभग ५६ प्रतिशत गन्ना उत्तर प्रदेश मे उपजाया जाता है। प्रदेश मे २२ लाख

परिवारो की आजीविका गन्ना उत्पादन का कार्य है जिसमे केवल पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक लाख व्यक्तियो का गन्ना उत्पादन ही मुख्य कार्य है।

चीनी मिलो के गन्ने की पूर्ति की समुचित व्यवस्था करने के साथ-साथ प्रदेश की गन्ना समितियो का एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी है कि प्रतिवर्ष गन्ना किसानो को विभिन्न कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु १० - १५ करोड़ रू० के उत्पादक ऋण वितरित करती है। हमारे देश मे गन्ने का प्रयोग अनेक रूपो मे किया जाता है। गन्ने से गुड़, राव, भेली, चूर्ण, शक्कर, श्वेत चीनी, सीरा, खोइया, प्रेसमड आदि बनाये जाते हैं। भारत मे प्राचीन काल से ही खाण्डसारी, भूरी शक्कर एव गुड का उत्पादन होता रहा है। गन्ने से शक्कर बनाने की विधि भारत की ही देन है। सन् १९३९ मे द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण चीनी की माँग मे वृद्धि हुई और चीनी कारखानो की स्थिति सुधरने लगी। युद्ध काल मे चीनी उद्योग ने सतोषजनक प्रगति की और सन् १९४५ मे देश मे चीनी का उत्पादन लगभग दस लाख टन से ऊपर पहुँच गया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय वर्ष १९४७ मे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के आग्रह पर केन्द्र सरकार ने चीनी के उत्पादन एव वितरण से नियन्त्रण हटा लिया, लेकिन इसका परिणाम यह हुआ कि चीनी के मूल्य मे तीव्र वृद्धि होने लगी। परिणामत वर्ष १९४८ मे चीनी पर पुन नियन्त्रण लागू करना पडा। दिसम्बर १९९८ मे देश मे ५५ लाख टन चीनी का स्टाक उपलब्ध था। वर्ष १९९९ मे १५५ लाख टन चीनी उत्पादन की सभावना है। इस प्रकार वर्ष १९९९-२००० मे देश मे उपलब्ध चीनी का भण्डार २१० लाख टन हो गया जबकि २०००-२००१ मे चीनी की खपत १५० लाख टन होने की आशा है।

भारत मे चीनी की उत्पादन लागत अतर्राष्ट्रीय बाजार मे प्रचलित २४० डालर प्रतिटन कीमत से काफी ऊँची है। सरकारी सरक्षण के बावजूद अन्य भारतीय उद्योगो की भाँति चीनी उद्योग ने भी कभी तकनीकी और प्रबधकीय सुधारो की ओर पर्याप्त ध्यान नही दिया।

हमारे देश मे गन्ना का मुख्यत गुड, खाड, चीनी के उत्पादन मे प्रयोग किया जाता है। उत्तर प्रदेश के कुल गन्ना क्षेत्रफल का सबसे बडा भाग गुड के उत्पादन मे प्रयुक्त है। खाडसारी व गुड उद्योग भी हमारे देश का बहुत बडा उद्योग है और लाखो लोग इससे आजीविका पाते हैं। गन्ने के कुल उत्पादन का

औसतन २५ ३० प्रतिशत भाग ही चीनी मिलो मे जाता है। बाकी की गुड व खाडसारी बनाने, बीज व चुसने मे खपत होती है।

चीनी के उत्पादन मे सामान्यत गन्ना मूल्य ६१ ०३ प्रतिशत है, गन्ना क्रय कर ३ ६५ प्रतिशत, गन्ना कटाई यातायात एव अन्य व्यय ६ ९७ प्रतिशत, चीनी उत्पादन मे किया गया व्यय ६ ८१ प्रतिशत, अवमूल्यन १ ६९ प्रतिशत अन्य हानियाँ ० १४ प्रतिशत है। इस प्रकार चीनी का उत्पादन मूल्य मे कृषक यानि उत्पादक का हिस्सा ६१ ०३ प्रतिशत मात्र है। शेष उत्पादन लागत एव विक्रय सम्बन्धी व्यय है।

उत्तर प्रदेश ने चीनी उत्पादन में कुछ नया कीर्तिमान बनाया है। प्रदेश मे कार्यरत १०९ चीनी मिलों द्वारा ४८७ ५१ मी०टन गन्ना पेरकर ४५ ५६ लाख मिट्रिक टन चीनी का इस वर्ष रिकार्ड उत्पादन हुआ है। इस वर्ष ७४.८१ लाख मिट्रिक टन अधिक गन्ना पेरकर ८ २७ लाख टन अधिक चीनी का उत्पादन हुआ है जो नया कीर्तिमान है। वर्तमान मे गत वर्ष के बकाये मे से ५९ ३५ करोड़ तथा इस वर्ष कुल ३८३७१० करोड़ अर्थात् कुल ३८९६ ४५ करोड़ रूपये गन्ना मूल्य का रेकार्ड भुगतान किया गया है। गन्ना घटतौली रोकने के लिए कुल १०५३१ निरीक्षण किये गये जिनमे कुल २१०० अनियमिततायें पकडी गई। दण्डस्वरूप ४९७ मिल तौल लिपिको के लाइसेस जब्त किये गये। ११० समिति तौल लिपिको का निलम्बन किया गया ७०७ मामलो मे न्यायालय मे वाद दायर किये गये हैं।

स्पष्ट है कि गुड एव चीनी के विपणन विधि मे पर्याप्त अन्तर है जहाँ गुड के विपणन मे प्राथमिक मडी से लेकर थोक मडी तक और उसके बाद जब कृषि पदार्थ अन्तिम उपभोक्ता के हाथ मे नही पहुँचता है अनेक विपणन सम्बन्धी खर्च इनकी कीमतो मे सम्मिलित होते रहते है। परिणामत किसान द्वारा प्राप्त की गई कीमत तथा उपभोक्ता द्वारा दी गयी कीमत में एक बड़ा अन्तराल उपस्थित हो जाता है।

सुझाव :-

चीनी मिलो द्वारा गन्ने से चीनी बनाने के अतिरिक्त शीरे से अल्कोहल व गन्ने की खोई को मिल के ब्वायलर मे जलाने का कार्य किया जाता था। गन्ने के सह-उत्पादो का और अधिक बेहतर उपयोग कर खुशहाली बढाने का सकल्प वर्तमान शासन ने लिया। वर्तमान सरकार के लगातार प्रयासो से केन्द्र सरकार ने

बरेली मे शीरे पर आधारित गैसोहल के एक पाइलट प्रोजेक्ट की शुरूआत कर दी है। वर्तमान मे उत्तर प्रदेश मे बजाज हिन्दुस्तान गोला चीनी मिल जिला लखीमपुर, सिवहारा चीनी मिल बिजनौर जनपद तथा सीतापुर जनपद की हरगॉव चीनी मिलो मे जलविहीन अल्कोहल बनाया जा रहा है। जिसकी तीव्रता ९९ ६ प्रतिशत है। बरेली मे भारतीय तेल निगम तथा भारत पेट्रोलियम के डिपो से कुल ११० पेट्रोल पम्प पर पेट्रोल मिश्रण के रूप मे गैसोहल उपलब्ध है। द्वितीय चरण मे अल्कोहल मिश्रित पेट्रोल को लखनऊ, आगरा, कानपुर, बनारस, इलाहाबाद, तथा मेरठ जैसे महानगरो मे भी उपलब्ध कराये जाने की परियोजना का अनुरोध किया गया है। उत्तर प्रदेश मे लगभग पॉच सौ करोड रू० के पेट्रोल आयात व्यय मे इससे कमी तथा पर्यावरण प्रदूषण रोकने मे भी मदद मिलेगी। गैसोहल दुनिया के विभिन्न देशो मे अनेक वर्षों से पेट्रोल के विकल्प के रूप मे प्रयोग किया जा रहा है।

गन्ने का विपणन मुख्यत इस बात पर निर्भर करता है कि उनका प्रयोग किन उद्देश्यो के लिए किया जा रहा है। हमारे देश मे गन्ना का प्रयोग निम्न कार्यो मे होता है।

- ✓ बीज के लिए, चुसने के लिए अथवा पीने के लिए, रस निकालने के लिए।
- ✓ पेरकर उसका रस निकालने के लिए जो खाडसारी, राब, गुड बनाने वालो को बेच दिया जाता है।
- ✓ सीधे गुड बनाने के लिए यह प्रथा अधिकाशत· उन स्थानो मे प्रचलित है जहॉ या तो स्थानीय जनता का गुड का उपयोग अधिक होता है अथवा जहॉ चीनी मिले अथवा खाडसारी मिलें अधिक नहीं है।

गन्ने की एकत्रीकरण मे निम्नलिखित सस्थाओ की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

- ➢ किसान ।
- ➢ खाडसारी मिले ।
- ➢ लाइसेस प्राप्त आढतिए ।
- ➢ सहकारी गन्ना विकास समितियॉ ।
- ➢ उत्तर प्रदेश मे सहकारी गन्ना विकास समितियॉ ।

प्रत्येक सस्था के सदस्यो एव पदाधिकारियों को अपने उद्देश्यो की पूर्ति के लिए जहॉ कुछ अधिकार प्राप्त होते हैं उसी के साथ-साथ कुछ दायित्व भी होते हैं इनका एक दूसरे से चोली दामन का साथ

है। यदि गन्ना समितियो के सचालन केवल अपने अधिकार की पूर्ति की बात करे और अपने कर्तव्यो की ओर जागरूक न रहे, तो उस समिति का जीवित रहना ही असम्भव है। जिसके आधार पर उनकी उत्तर प्रदेश सरकारी समितियाँ अधिनियम १९६५ नियामावली १९६८ एव सदस्यो द्वारा बनाई गई तथा निबन्धक महकारी गन्ना समितियाँ (गन्ना आयुक्त) उत्तर प्रदेश द्वारा निबधित उपविधियो के अन्तर्गत अधिकार प्राप्त है। अत समिति के सभी सदस्यो की पूरी जानकारी होनी चाहिए जो विभिन्न रूप मे उक्त प्राविधानो के अतर्गत उन पर रखी गयी है।

अन्तत सरकार का यह दायित्व होना चाहिए कि वह वस्तुओ के मूल्यो का सही प्रकार से निर्धारण करे और यह देखे कि विपणन क्रिया से सम्बद्ध सभी लोग, चाहे वे थोक व्यापारी अथवा फुटकर व्यापारी हो निर्धारित भावो को ही लागू रखें। चूँकि व्यवसायिक फसलो का बडे पैमाने पर और शीघ्रता से क्रय विक्रय होता है, अत विपणन के विभिन्न स्तरो पर विपणन मे सलग्न विभिन्न मध्यस्थो के लाभ की दर को निर्धारित करना होगा। इनके लाभाश की मात्रा निर्धारित करते समय, इनके द्वारा किये जाने वाले विपणन खर्चो का भी ध्यान रखना होगा। इसके अतिरिक्त विपणन मे लगे हर सदस्य को मण्डी समिति का लाइसेस धारक आवश्य होना चाहिए। इस बात पर भी कड़ी दृष्टि रखी जानी चाहिए कि मण्डी अधिनियम के नियमो का जो सदस्य उल्लघन करे या सरकार द्वारा निर्धारित कीमतो से अधिक कीमत ले तो उन्हे दण्डित किया जाय और यहाँ तक कि उनका लाइसेस रद्द किया जाय। इसके अतिरिक्त ऐसे व्यापारी जो जमाखोरी, मिलावट तथा काला बाजारी करते हैं उनके विरुद्ध सरकार द्वारा व्यापक अभियान चलाया जाना चाहिए। वास्तव मे आर्थिक न्याय और समानता पर आधारित समाज व्यवस्था को बनाये रखने के लिए विपणन क्रिया मे लगी सभी सस्थाओ के कार्यो एव गतिविधियो का इस प्रकार नियंत्रण किया जाना आवश्यक है कि जिससे एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के शोषण को समाप्त किया जा सके।

******

Selected Bibliography

Author	Name of the Book
Ghosh, Alak	*Indian Economy, it's Nature & Problems, Calcutta The world press Pvt Ltd 1962*
Gupta, A P	*Marketing of Agricultural Produce in India, Vora, & Co Pvt Ltd 3 Round Building Bombay. 400002*
Govil, K L	*Marketing in India, Gautam Bros & Co Kanpur, 1954*
H L Hansen	*Marketing Text Techniques & Cases, Home Word, Illinois, Richard D I. Inc, 1967,*
Khol's Richard L	*Marketing of Agricultural Products, The Mac Millian Co New York 1959*
Kulkarni, K R	*Agricultural Marketing in India (vol I & II), The Co-operatore Book depot, 5/32 Ahmed Sailor Building, Dabar, Bombay-14, 1964*
Kulkarni, K R	*Theory & Practice of Co-operative in India, the co-operatore Book depot Bombay, Bombay, 1958*
Cettinger, J P	*Economic Analysis of Agricultural Projects, Baltimore & London The John Hopkins University Press, 1972*
Duddy, F dward A & Revzan, Devid A	*Marketing – An Institutional Approach, McGraw Hill Book Co New York, 1953*
H W	*Sir Isac Pitman & Son Ltd London.*
Agnew, Hough E & Others	*Outlines of Marketing, McGraw Hill Book Co. New York, 1950*

Bhatnager, K P & Others	*Indian Rural Economy Kishore Publishing House Kanpur, Revised Edition 1958*
Bakken & Schaars	*Economics of Co–operative Marketing, McGraw Hill Book Co Inc New York, Landen, 1937*
Blace J D & M E Kiefer	*Future food and agricultural policy, New York, McGraw Hill, 1948*
Brunt & Darrah	*Marketing of Agricultural Products, Ranald Press Company New York, 1955.*
Cochen, R L	*The Economics of Agriculture, Cambridge University Press. 1940.*
Clark, F T	*Market & Market Research, London · Pitman, 1948*
Clark, F E	*Reading in Marketing, New York Mac Millan Co., 1933*
Clark, F E & Clark C P	*Principles of Marketing Mac–Millan Co Ltd, London New York, 1947*
Clark, F E & Weld, L D H	*Marketing of Agricultural Products, Mac–Millan & Co Ltd, London, New York, 1946.*
Convers, P D & Huagy	*The Elements of Marketing.*
Knights C C	*The Technique of Sales Manship Sir Isaac Petman & Sons Ltd, 1954*
Lele, U J	*Foodgrain Marketing in India, Ithaca London : Carnell University Press, 1971.*
Lawis, H T & England, W B	*Procurement Principle Cases, Homewood, Illinore Richard D Irwin Ine, 1957*

Mamoria, C B	*Agricultural Problems of India, Kitab mahal Pvt Ltd Allahabad. 1966*
Maynard H H & Bsekman, T H	*Principles of Marketing the Ronald Press Company London, 1952.*
Revised By	
Moore, J R Johl, S S & Khusro, A M	*Indian Foodgrain Marketing, Prentice – Hall of India Pvt. Ltd., New York, 1973*
Mukherjee, B B	*Agricultural Marketing in India, Thaper Spink Co. Pvt Ltd Calcutta, 1960*
Mamoria Co Bo & Delhi, Roto	*Principles & Practice of Marketing in India, Ketab Mahal, Allahabad, 1963.*
Nair, M P & Hansen, H L	*Reading in Marketing McGraw Hill Book Co., Inc. Toronto New York, 1956*
Nystram, Paul H	*Marketing Hand Book, Ronald Press Co New York, 1958*
Phillips, C F & Duncan, D J	*Marketing Principles & Method, Tichard Do Irwin Ineg Home wood Illnaes, U S A*
Pyle, J F	*Marketing Principles McGraw Hill Book Co Inc. New York, 1956*
Srivastava, R S	*Agricultural Marketing in India & Abroad, Vora & Co, Publishers Pvt. Ltd , 03 Round Building, Bombay – 02, 1960*
Singh, T D	*Marketing of Mill Made Catton Fabrics Castudy in Uttar Pradesh & Delhi, Shodh Prakashan, 1966*
Shultz T W	*Economie Organization of Agriculture, McGraw Hill Book Co. New York, 1953.*

Tonsley, Raybourn D & Others	*Principles of Marketing, Mac Millan Co. New York, 1968.*
Thomson F L	*Agricultural Marketing, McGraw Hill Book Co., New York, 1951*
Thomson F & Foote	*Agricultural Market Prices, New York, 1952*
Hindi Books	
भालेराव एम0 एस0	भारतीय कृषि अर्थशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९७७ ।
शर्मा, टी0 आर0 एवं जैन, एस0 सी0	बाजार व्यवस्था, साहित्य भवन, आगरा, १९८० ।
सिंह, अशोक कुमार	भारत मे कृषि विपणन, विजय प्रकाशन मन्दिर, सुड़िया, वाराणसी ।
Journal's	
	"Agricultural Marketing" *Directorate of Marketing & Inspection, Ministry of Rural Reconstruction, Nagpur.*
	"Indian oilseed Journal" *The Secretary Indian Central oilseed Committee, Hyderabd – 1*
	"Sugarcane Herald" *Indian Sugarcane Committee, Rahtak Road, New Delhi.*
	Indian Journal of Agricultural Economics, Indian Society of Agricultural Economics, Bombay.

Report's	
Government of India	*Report on the Marketing of linseed in India, 1938.*
" "	*Report on the Marketing of Castorseed in India, 1947.*
" "	*Report on the Marketing of Rapeseed & Mustard in India 1966*
" "	*Report in the Marketing of Sugar in India & Burma, 1943*
" "	*Agricultural Produce (Grading & Marketing Act. 1937, with Rules Made Prior to 31st August 1940)*
" "	*Report of the National Planning Committee on Rural Marketing & Finance 1948.*
" "	*Report on the Co–operative Planning Committee 1945*

Magazines & Statistical Publications :-

- ✓ उ०प्र० मे कृषि आँकडे, १९९१-९२, निदेशक, कृषि साख्यिकीय एव फसल बीमा, उ०प्र०, कृषि भवन, लखनऊ।
- ✓ साख्यिकीय डायरी उ०प्र०, १९९४, अर्थ एव सख्या प्रभाग राज्य नियोजन सस्थान, उ०प्र०, लखनऊ।
- ✓ उ०प्र० मे कृषि सक्षेप १९९४, निदेशक, कृषि साख्यिकीय एव फसल बीमा, कृषि भवन, उतर प्रदेश, लखनऊ।
- ✓ तिलहन उत्पादन कार्यक्रम वर्ष १९९३-९४, कृषि निदेशालय, उ०प्र० (कपास एव तिलहन अनुभाग) लखनऊ।
- ✓ गन्ना मासिक, उत्तर प्रदेशीय सहकारी गन्ना समिति सघ लि०, १२ राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ।
- ✓ "गन्ना समाचार" उत्तर प्रदेश गन्ना किसान सस्थान, ११ बटलर रोड (तिलक मार्ग) लखनऊ, उ०प्र०।

- ✓ उ०प्र० में गन्ने की स्वीकृत जातियों का विस्तृत विवरण, १९९४, उ०प्र० गन्ना किसान संस्थान, ११ [illegible], लखनऊ।
- ✓ "एक [illegible] इकाई" न्यूनतम आवश्यकताएं उत्तर प्रदेश गन्ना किसान संस्थान, ७ डाली बाग, लखनऊ।
- ✓ उ०प्र० मे गन्ने की आधुनिक खेती, १९९०, उ०प्र० गन्ना किसान संस्थान, लखनऊ।
- ✓ प्रगति के पच्चीस वर्ष १९९५, राज्य कृषि उत्पादन मण्डी परिषद, उ०प्र०, १६ ए०पी० सेन रोड, लखनऊ।
- ✓ तिलहन, कपास, एवं तम्बाकू निर्देशिका (१९९५-९६) कृषि निदेशालय, उ०प्र० (कपास एव तिलहन अनुभाग), कृषि भवन, लखनऊ।
- ✓ "उ०प्र० कृषि उत्पादन मण्डी अधिनियम, १९६४ के अधीन बनायी गयी नियमावली", निदेशक, कृषि विभाग, उ०प्र० लखनऊ द्वारा प्रकाशित।
- ✓ खाद्य सांख्यिकीय बुलेटिन, अर्थ एवं सांख्यिकीय निदेशालय, कृषि एवं सहकारिता विभाग, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- ✓ "योजना" सूचना और प्रसारण मत्रालय, भारत सरकार पटियाला हाउस, नई दिल्ली।
- ✓ "योजना" प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा योजना भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली।
- ✓ रोजगार समाचार, पूर्वी खण्ड, चौथा तल, ५१७ रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली।
- ✓ प्रतियोगिता दर्पण, साहित्य भवन, आगरा।
- ✓ भारत मे आर्थिक सर्वेक्षण, २००१-२००२ ।
- ✓ बजट - २००१-२००२ ।
- ✓ बजट - २००२-२००३ ।
- ✓ *Productivity of Sugarcane in Uttar Pradesh, Uttar Pradesh Ganna Kishan Sonsthan, Lucknow, 1995*

✓ *उ०प्र० के गन्ने की स्वीकृत जातियो का विस्तृत विवरण, १९९४, उ०प्र० गन्ना किसान सस्थान, ११ तिलक मार्ग, लखनऊ।*

✓ *"एक लाभकारी खाण्डसारी इकाई" न्यूनतम् आवश्यकताएँ उत्तर प्रदेश गन्ना किसान सस्थान, ७ डाली बाग, लखनऊ।*

✓ *उ०प्र० मे गन्ने की आधुनिक खेती, १९९०, उ०प्र० गन्ना किसान सस्थान, लखनऊ।*

✓ *प्रगति के बारह वर्ष १९९५, राज्य कृषि उत्पादन मण्डी परिषद, उ०प्र०, १६ ए०पी० सेन रोड, लखनऊ।*

✓ *तिलहन, कपास, एव तम्बाकू निर्देशिका (१९९५-९६) कृषि निदेशालय, उ०प्र० (कपास एव तिलहन अनुभाग), कृषि भवन, लखनऊ।*

✓ *"उ०प्र० कृषि उत्पादन मण्डी अधिनियम, १९६४ के अधीन बनायी गयी नियमावली", निदेशक, कृषि विभाग, उ०प्र० लखनऊ द्वारा प्रकाशित।*

✓ *खाद्य साख्यिकीय बुलेटिन, अर्थ एव साख्यिकीय निदेशालय, कृषि एव सहकारिता विभाग, कृषि मत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।*

✓ *"योजना" सूचना और प्रसारण मत्रालय, भारत सरकार पटियाला हाउस, नई दिल्ली।*

✓ *"योजना" प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मत्रालय, भारत सरकार द्वारा योजना भवन, ससद मार्ग, नई दिल्ली।*

✓ *रोजगार समाचार, पूर्वी खण्ड, चौथा तल, ५९७ रामकृष्णपूरम्, नई दिल्ली।*

✓ *प्रतियोगिता दर्पण, साहित्य भवन, आगरा।*

✓ *भारत मे आर्थिक सर्वेक्षण, २००१-२००२ ।*

✓ *बजट - २००१-२००२ ।*

✓ *बजट - २००२-२००३ ।*

✓ *Productivity of Sugarcane in Uttar Pradesh, Uttar Pradesh Ganna Kishan Sonsthan, Lucknow, 1995*

- ✓ *Uttar Pradesh Kirshi Upadan Mandi (Amandments) Rules 1988, Utter Pradesh extra-ordinary gazetts, April 8, 1988*
- ✓ *Agricultural Situation in India, Government of India, Directorats of Economics & Statistics, Ministry of Agricultures & Irrigation, Controller of Publication, New Delhi*
- ✓ *India & Bharat, Ministry of Information & Broad-casting, Government of India*
- ✓ *Activities of the Directorate of Marketing & Inspection, Directorate of Marketing and Inspection Ministry of Agricultural & Rural Development, Government of India Faridabad 1985*
- ✓ *Directorate of Marketing & Inspection Fifty Years of Service to the Nation 1935 – 85, Golden Public Year, Faridabad, 1985*
- ✓ *Seventh Five Year Plan of Agricultural Marketing, Volume III, Agricultural Production Commissioner's Branch Department of Agricultural Marketing, 1994*

News Paper :-

1. आज
2. अमर उजाला
3. दैनिक जागरण
4. राष्ट्रीय सहारा
5. हिन्दुस्तान
6. जन सता
7. नवभारत टाइम्स
8. *Financial Express*
9. *The Economic Times*
10. *The Times of India*
11. *Hindustan Times*

******

Devendra Tripathi, 227, Triveni Nagar, Naini, Allahabad. Ph.No. (0532) 696417.